Issue-13/Vol-44/Mrach. 2025 ISSN No. 2319 - 5908
An International Bilingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal

शोध संदर्श

SHODH SANDARSH

शिक्षा, साहित्य, मानविकी, कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य आदि

Chief Editor :
Prof. (Dr.) V.K. Pandey

Editor :
Dr. V.K. Mishra
Dr. V.P. Tiwari

विविध ज्ञान - विज्ञान - विषय का मन्थन एवं विमर्श।
नव - उन्मेषी दशा - दिशा से भरा 'शोध - सन्दर्श' ॥

Issue-13/Vol-44/March 2025 Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal SHODH SANDARSH ISSN No. 2319 - 5908

ISSUE-12 / Vol.-44/March 2025 **ISSN NO. 2319-5908**

An International Bilingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal

SHODH SANDARSH

शोध संदर्श

Education, Literature, Humanities,
Art, Culture, Science, Commerce etc.

Patron

Prof. (Dr.) A.P. Ojha

Head.
Deptt. of AIHC & Archaeology
Allahabad Central University, Prayagraj (UP)

Chief Editor

Prof. (Dr.) Vimlesh Kumar Pandey

Professor
Ancient History, Culture and Archaeology
Saltanat Bahadur P.G. College, Badlapur, Jaunpur (UP)

Editors

Prof. Sushaim Bedi

Deptt. of Hindi
Colambia University USA

Dr. Vijay Pratap Tiwari

Mentor of SSIJ and Educationist,
Delhi, India

Dr. Vijay Kumar Mishra

Founder VP Print Media and Research
Institute, Prayagraj (UP)

Dr. Pramod Kumar Pandey

Ex. Prof. & Head of Maithili
T.M. Bhagalpur University, Bhagalpur
Bihar

Co-editor

Dr. Girja Prasad Mishra

Asstt. Professor (B.Ed)
P.G. College Patti Pratapgarh (U.P.)

Editorial Managerable Office

Vijay Pratap Tiwari

539-A, Bukhshi Khurd, Daraganj, Prayagraj (UP)-211006
Email : shodhsandarshalld@gmail.com
Website : www.shodhsandarsh.com
Mobile : 09415627149, 09450586526, 09015465436

Publisher & Printer

Vagisha Prakashan, Old Jhunsi, Kohna, Jhunsi, Prayagraj (UP)
Email : Vijaykumarmishra1976@gmail.com

SHODH SANDARSH

शोध संदर्श

Education, Literature, Humanities,
Art, Culture, Science, Commerce etc.

Editorial Board

Prof. (Dr.) Saroj Goswami
Head Deptt. of Hindi
Govt. Girls P.G. College, Rewa (M.P.)

Dr. Ramratan Sahu
Associate Professor & Branch Head History
Dr. C.V. Raman University, Kargi Road,
Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Vijai Kumar Srivastava
Associate Prof. Deptt. of physics
DDU Gorakhpur University, Gorakhpur

Dr. Lakshmi Pandey
Associate Professor
University Department of Psychology
T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar

Dr. Jamil Ahmed
Asstt. Professor, Deptt. of AIHC & Arch.
Ishwar Saran P.G. College, Prayagraj

Dr. Nar Narayan "Shastri"

Dr. Sanjay Kumar Singh
Economic and Statistical Officer, (U.P.)

Anil Kumar Swadeshi
Associate Prof. Deptt. of English
PGDA V College, Delhi University, Delhi

Manohar Pathak
Work as Research Intern at CSIR-NISCAIR for Indian
Journal of Natural Products and Resources

Dr. Bare Lal Jain
Assistant Prof. Dept. Of Hindi
A.P.S. University, Riwa (MP)

Peer Reviewed Committee

Prof. Sita Ram Dubey
Ex. Head
Deptt. of AIHC & Archaeology Banaras Hindu
University, Varanasi (U.P.)

Dr. Lal Sahab Singh
Associate Professor
Head Deptt. of Political Science
R.R.P.G. College Amethi, (U.P.)

Prof. P.D. Singh
Associate Professor
Deptt. of Sanskrit
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Dr. Shashi Kumar Singh
Associate Professor Deptt. of Sanskrit
Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar (M.P.)

Prof. Anurag Bhadoria
Associate Professor Deptt. of Management
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Prof. (Dr,) Sachchidanand Chaturvedi
Head Deptt. of Hindi
Central University, Hyderabad, (Telangana)

Dr. Vijendra Pratap Singh
Assistant Professor
Deptt. of Hindi, Govt. P.G. College, Jalesar, Etah (U.P.)

Dr. Pramod Kumar Singh
University Department of Maithili
T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur

Legal Advisor

Dhirendra Kumar Mishra

सम्पादकीय

भारत एक ऐसा देश है जहाँ शिक्षा को सदा से पूजा गया है। ''विद्या ददाति विनयम्'' जैसे श्लोकों में शिक्षा को जीवन के उच्चतम मूल्यों से जोड़ा गया है। लेकिन आज जब हम 21वीं सदी के तीसरे दशक में हैं, तो शिक्षा का स्वरूप पूरी तरह बदल चुका है। दूसरी ओर, आधुनिकता की तेज़ रफ्तार ने समाज को सुविधाएँ दी हैं, लेकिन उसके साथ ही मानवता, संस्कार और संतुलन को भी चुनौती दी है। हर कोई तेज़ दौड़ रहा है। लेकिन यह नहीं जानता कि जा कहाँ रहा है। शिक्षा के विविधिकरण ने जहाँ असीमित संभावनाओं को जन्म दिया है वहीं परंपरागत ज्ञान और संस्कारों को बलि की वेदी पर चढ़ा दिया।

परंपरागत ज्ञान और संस्कारों के लोप पर आज चर्चा करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि ये न सिर्फ हमारी पहचान का हिस्सा हैं, बल्कि जीवन जीने के दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवहार और मानसिक संतुलन को गहराई से प्रभावित करते हैं। परंपरागत ज्ञान से तात्पर्य है वो ज्ञान, कौशल, रीति–रिवाज, लोकगीत–कहानियाँ, औषधियाँ, कृषि पद्धतियाँ आदि जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक या अभ्यास के ज़रिये हस्तांतरित होते आए हैं। संस्कारों में वे मर्यादाएँ, सामाजिक और नैतिक मूल्य, परंपराएँ, उत्सव, रीति–रिवाज शामिल होते हैं। लेकिन आज की पीढ़ी में ज्यादा पाने की चाह परंपरागत ज्ञान और संस्कारों को भूलती जा रही है। लोगों का ज़िक्र कम होता है, हित कम होता है, नई पीढ़ियाँ उनसे कटती जाती हैं।

आजकल गाँव–देहात से शहरों में पलायन होने से युवा पीढ़ियाँ गांवों की जीवनशैली, वहाँ के लोकगीत, कहानियों, भाषा की बोलियाँ, कृषि–औजारों की पारंपरिक विद्या आदि से दूर होती जा रही हैं। मोबाइल, इंटरनेट, वेब–शॉपिंग, सोशल मीडिया ने जीवन को सुविधाजनक तो बनाया है, पर इस सुविधा के साथ एक कीमत भी चुकाई है : समय, पारिवारिक संवाद, अनुभव, धैर्य, प्रकृति से लगाव आदि जटिल और गहरे व्यवहार जहाँ बनते थे वहाँ टूटने लगे हैं। उदाहरण के लिए, लोककथा सुनाने की प्रथा बहुत कम होती है; त्योहारों के दौरान सामूहिक आयोजन कम हो रहे हैं, विवाह–शादियों, अनुष्ठानों में पूर्व की तरह सामुदायिक भागीदारी नहीं बची; बुजुर्गों से सीखने, बातों, अनुभवों का हस्तांतरण अब नहीं हो पा रहा है।

परंपरागत ज्ञान की अनेक शाखाएँ विशेष रूप से जोखिम में हैं। जैसे औषधीय पौधों का ज्ञान, पारंपरिक खेती की तकनीकें (जैसे स्थानीय बीज, वर्षा–आधारित खेती, प्राकृतिक उर्वरक आदि) और मौसम के अनुसार खेती करना, जैव विविधता की समझ, हस्त–कलाएँ और कुटीर उद्योग, लोक संगीत–नृत्य, लोककथाएँ, कहानियाँ और कहने–सुनने की भाषाएँ। जब ये लुप्त हों, तो सिर्फ कला–संस्कृति नहीं खो रही, बल्कि मानव जीवन की विविधता, पर्यावरण के साथ सामंजस्य, ज्ञान का स्रोत, सामाजिक संरचनाएँ और पहचान भी प्रभावित होती हैं।

इस तरह की परंपराओं के लुप्त होने के कई कारण हैं– आधुनिक शिक्षा प्रणाली जिसमें वैश्विक विज्ञान–तकनीक को महत्व है और स्थानीय, लोक और पारंपरिक ज्ञान को कम स्थान मिलता है; रोजगार–आधारित जीवन की ज़रूरतें; आर्थिक दबाव कि पारंपरिक तरीके, नई जीवन शैली, पश्चिमी संस्कृति, आधुनिकता की ओर झुकाव, भाषा की उपेक्षा, क्योंकि मातृभाषा में शिक्षा–साधन कम; मीडिया–मनोरंजन का प्रभाव "नया, आधुनिक" ही बेहतर समझा जाना; सूचना–तकनीक और डिजिटल जीवन ने अनुभवों को सरल व त्वरित बना दिया पर गहराई को कम किया।

पारंपरिक संस्कारों के लोप से सामाजिक व्यवहार पर कई प्रकार के दुष्प्रभाव होते हैं। उदाहरणस्वरूप, पारिवारिक संबंधों में दूरी बढ़ जाती है; बुजुर्गों का सम्मान और उनसे सीखने की परंपरा कम होती है; आपसी संवाद कम; सामाजिक बंधन, संयुक्त अनुभवों जैसे त्योहार, सामूहिक कार्य–धर्म से लोगों का भाव कम हो जाता है; सहयोग और सहानुभूति की भावना प्रभावित होती है। मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है–जब व्यक्ति अपनी जड़ों से कट जाता है, तब पहचान का संकट मडराने लगता है और अकेलापन, अस्थिरता महसूस होती है।

परंपरागत ज्ञान का होना सिर्फ अतीत की बात नहीं है; यह वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए उपयोगी है। पर्यावरण संरक्षण में पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ, जल संचयन, मौसम के अनुसार बीज चयन आदि बहुत प्रासंगिक हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र में आयुर्वेद, होम्योपैथी, लोक औषधियों का ज्ञान यदि सुरक्षित रखा जाए, तो छोटी–बड़ी बीमारियों में सहायक सिद्ध हो सकता है। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सामुदायिक समर्थन, संस्कारों से मिलने वाला जीवन दृष्टिकोण, नैतिक आचार संहिताएँ व्यक्ति को स्थायित्व और शांति देने में समर्थ हैं।

इन परंपरागत ज्ञान और संस्कारों का संरक्षण हो सकता है। इसके लिए सबसे पहला कार्य है परंपरागत ज्ञान और संस्कारों का दस्तावेजीकरण : मौखिक ज्ञान, लोकगीत–कहानियाँ आदि को रिकॉर्ड करना (ऑडियो–वीडियो), विविध भाषाओं में लिपिबद्ध करना। पुस्तकालयों, संग्रहालयों और डिजिटल प्लेटफार्मों की भूमिका बड़ी है, जैसे–जैसे सरकार और गैर–सरकारी संस्थाएँ "Traditional Knowledge Digital Library" आदि पहलें कर रही हैं। शिक्षा–निति में स्थानीय विषयों और लोककलाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करना जरूरी है; स्कूल–कॉलेजों में बच्चों को अपने राज्य, गाँव, भाषा की लोक परंपराएँ, लोककहानियाँ, लोकनृत्य आदि सीखने–पढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। हस्त–कलाकारों, पारंपरिक ज्ञान धारकों को आर्थिक प्रोत्साहन देना चाहिए, जिससे वो अपनी विद्या छोड़कर अन्य काम करने पर न मजबूर हों। मीडिया एवं सोशल मीडिया प्लेटफार्मों से पारंपरिक संस्कारों, लोक विद्या आदि का प्रचार–प्रसार करना चाहिए ताकि युवा उनसे परिचित हों। सामुदायिक कार्यक्रमों, उत्सवों, मेलों, पारंपरिक कार्यशालाओं के माध्यम से लोगों को जोड़ना चाहिए। सरकारें एवं स्थानीय स्वायत्त संस्थाएँ संसाधन उपलब्ध कराएँ; संरक्षण योजनाएँ बनाएँ; संरक्षण की नीतियाँ बनाते समय उन लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करें जिनके पास यह ज्ञान है।

अगर समय रहते ये कदम नहीं उठाए गए तो परंपरागत ज्ञान एवं संस्कारों का अगला चरण यह हो सकता है कि अनेक भाषाएँ, बोलियाँ लुप्त हो जाएँ; लोक संगीत–कला गायब हो जाएँ; पारंपरिक कृषि–जोखिमों के बीच अनुकूलन कौशल खत्म हो जाए; सामाजिक सहानुभूति, नैतिक मूल्यों की कमी आने वाले समय में सामाजिक अस्थिरता ला सकती है; पहचान की समस्या बढ़ेगी कि हम कौन हैं? हमारी जड़ें कहाँ हैं।

इसलिए परंपरागत ज्ञान और संस्कारों के लोप को सिर्फ सांस्कृतिक धरोहर की समस्या न मानकर, उसे सामाजिक, पर्यावरणीय, आर्थिक, मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए। जो समाज अपनी जड़ों से परिचित रहकर आगे बढ़ता है, वह अधिक संतुलित, सहिष्णु और स्थायी रहता है। महान परंपराएँ हमें केवल भूतकाल से जोड़ती नहीं हैं; वे हमें जीवन जीने के तरीके आज भी दे सकती हैं और भविष्य के लिए दिशा निर्देश हो सकती हैं। युवा–पीढ़ी, नीति–निर्माता, समाजसेवी सभी मिलकर यह उत्तरदायित्व उठा सकते हैं कि ये ज्ञान ठीक तरह से संरक्षित हों, पुनर्जीवित हों और आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचें।

Content

- **ताराशंकर बंद्योपाध्याय और फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में महिलाओं की भूमिका और स्थिति का विश्लेषण-** *डॉ. रेखा श्रीवास्तव एवं विशाल कुमार यादव* **1-8**
- **पंचायती राज व्यवस्था में 73वें संशोधन के बाद महिला प्रतिनिधियों की समाज में भूमिका** *-सुबोध कुमार* **9-12**
- **भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में प्रेस की भूमिका-***डॉ. जगन्नाथ प्रसाद* **13-17**
- **इतिहास और इतिहास लेखन : इतिहास की प्रकृति का अध्ययन** *-डॉ. विजय शंकर श्रीवास्तव एवं पुष्पा कुमारी* **18-22**
- **The Impact of Emotional Maturity on Academic Performance and Social** Adaptation in College Students*-Dr. Anisha Kumari* **23-30**
- **भारतीय संस्कृति का विशिष्ट पर्व कुम्भ मेला-***डॉ. आदित्य नाथ* **31-35**
- **बौद्ध साहित्य में वर्णित खाद्य पदार्थ-***डॉ. सुषमा कुमारी* **36-38**
- **Cultural Practices and the Communication Patterns in Tribal Societies : A Comparative Analysis of the Santhal, Sauria Paharia, and Kharwar Tribes** *-Dr. Sunita* **39-47**
- **बिहार में शिक्षा के माध्यम से महिलाओं का सशक्तिकरण-***डॉ. नीलम कुमारी* **48-52**
- **प्राचीन भारतीय शिक्षा के केन्द्र के रूप में नालन्दा का महत्त्व-***डॉ. नीरज कुमार* **53-56**
- **The Role of Digital Media in Shaping Teenagers' Social Behavior and Mental Well-being-***Ritika Kumari* **57-60**
- **शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन-***डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र एवं नीतू मिश्रा* **61-67**
- **ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता : समाज कार्य के दृष्टिकोण से सामुदायिक विकास और स्व-रोजगार मॉडल्स-***आशीष कुमार मौर्य एवं प्रो. विवेक कुमार सिंह* **68-70**
- **विकसित भाएरत में वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और उत्पीड़न : एक गुणात्मक अध्ययन** *-दामिनी पाण्डेय एवं प्रो. विवेक कुमार सिंह* **71-73**
- **तिलक के स्वराज की धारणा और समकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इसकी महत्ता का अध्ययन** *-मोना कुमारी* **74-77**
- **माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन-***कु. नीतू एवं डॉ. सोमेश नारायण सिंह* **78-81**
- **भारतीय लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता का उदय और विकास : एक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य** *-प्रो. हेमन्त मालवीय एवं सुभाष चन्द्र दुबे* **82-88**
- **क्षेत्र के आधार पर सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन-***डॉ. अंगद प्रसाद मौर्य* **89-92**
- **माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन** *-डॉ. कृष्ण कुमार सिंह* **93-96**
- **Evaluation Systam in Indian History***-Dr. Girja Prasad Mishra* **97-99**
- **वेद विहित खगोलीय ज्ञान एवं प्रकृति पूजा का अन्तर्सम्बन्ध-***डॉ. सुनील कुमार विश्वकर्मा* **100-104**
- **उत्तर भारत में औरंगजेब की असहिष्णु धार्मिक नीति एवं गोकुलाजाट-***डॉ. सुरेन्द्र सिंह* **105-108**
- **Childhood Autism Spectrum Disorder : A Review Study** *-Mrityunjay Kumar Bhagat & Dr. Lakshmi Pandey* **109-114**

- **Effect of Regular Yogic Practices on the Mental Health of Higher Secondary School Students : A Cross-sectional Study**-*Dr. Rakesh Kumar* **115-119**
- **Internet Addiction and Depression, Anxiety, and Stress in Adolescents : A Psychological Study**-*Vijay Kumar & Dr. Rajiv Ranjan* **120-123**
- **Credit Risk Management Practices and NPA Performance in Rural Branches : A Case Study of Siwan District**-*Vijay Kumar Sharma* **124-126**
- **Awareness and Perception of Digital Marketing in Saran District, Bihar : A Theoretical Perspective**-*Sunny Kumar* **127-128**
- **जनपद जौनपुर में कृषि भूमि उपयोग का सामाजिक आर्थिक विकास पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन**-*डॉ. रमाशंकर यादव* **129-137**
- **मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास : जनपद गोण्डा का प्रतीक अध्ययन**-*श्याम किशोर वर्मा* **138-141**
- **भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी का स्थान : प्राचीन भारत के विशेष संदर्भ में**-*कु. प्रियंका सिंह एवं प्रो. प्रदीप कुमार सिंह* **142-146**
- **गरीबी, शिक्षा, असमानता और मानवाधिकार जैसे आधुनिक मुद्दों के संदर्भ में गांधीवादी सिद्धान्त**-*अभय कान्त त्रिपाठी एवं डॉ. उत्कर्ष उपाध्याय* **147-154**
- **शिक्षकों की सतत और व्यापक मूल्यांकन प्रणाली (CCE) के प्रति दृष्टिकोण : एक तुलनात्मक अध्ययन**-*ऋचा सिंह* **155-158**
- **नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में समाज**-*डॉ. ममता उपाध्याय* **159-162**
- **राजी सेठ के उपन्यासों में स्त्री**-*डॉ. वर्षा खरे* **163-165**
- **जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंध**-*डॉ. राकेश कुमार साकेत* **166-168**
- **नये भारत के केन्द्र में नारी शक्ति**-*डॉ. नीतू सिंह* **169-172**
- **महिला शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ**-*कु. दीप्ति सिंह एवं डॉ. गीता सिंह* **173-177**
- **Evolution of Diasporic Family Identity in Bollywood Cinema Since 1960s**-*Dr. Rochak Saxena & Mr. Karan Vora* **178-189**
- **Impact of Verbal and Emotional Intelligence on Academic Success Among Adolescents**-*Dr. Rakesh Kumar Dangi & Smt. Manisha Thakur* **190-195**
- **आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण से उत्पन्न परिस्थिति में ब्रिटिश हस्तक्षेप : मध्य भारत की रियासतों के विशेष संदर्भ में**-*डॉ. प्रतिभा दिरवाया* **196-198**
- **गोरखपुर टेराकोटा शिल्प : ऐतिहासिक लोककला व आधुनिक नवाचार का संगम**-*कु. अमृता सिंह एवं डॉ. सुनीता* **199-205**
- **पं. मदन मोहन मालवीय के दृष्टिकोण से शिक्षा का महत्त्व**-*डॉ. अतुल कुमार सिंह एवं शमीम अहमद* **206-209**
- **योग को व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में मूल रूप से उतारने की प्रक्रिया**-*प्रो. (डॉ.) भृगुनाथ पाण्डेय* **210-211**
- **विद्यानिवास मिश्र जी की दृष्टि में भारतीय संस्कृति की निरंतरता के अवयव**-*कुमारी विभा द्विवेदी* **212-213**
- **बिहार के औरंगाबाद जिला में लिंगानुपात का स्थानिक-कालिक विश्लेषण**-*डॉ. नरेन्द्र कुमार सिंह एवं रंजीत कुमार* **214-219**
- **महिलाओं के विरुद्ध हिंसा**-*डॉ. राजेश त्रिपाठी एवं कृष्ण पाल सिंह परमार* **220-223**
- **जहानाबाद जिले में स्वयं सहायता समूह का जलवायू के कारण सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर प्रभाव**-*विजीता कुमारी एवं डॉ. मनीषा कुमारी* **224-229**

- **नई शिक्षा नीति-2020 के परिप्रेक्ष्य में यथार्थ ज्ञान और मूल्य शिक्षा : महर्षि पतंजलि के योग दर्शन के सम्बन्ध में**-*प्रो. (डॉ.) दिनेश प्रसाद मिश्रा एवं शुभंकर पाण्डेय* **230-235**
- **कूटकाव्य के प्रणेता क्षेमेन्द्र का संस्कृत साहित्य में योगदान**-*डॉ. गिरिजा शंकर* **236-237**
- **हड़प्पा सभ्यता में सामाजिक न्याय : एक अवलोकन**-*देवेन्द्र सिंह* **238-241**
- **बिहार राज्य के जिला कैमूर में नगरीकरण का परम्परागत व्यवसायों पर प्रभाव**
  -*दुर्गेश कुमार चतुर्वेदी एवं डॉ. रत्नेश शुक्ल* **242-248**
- **तुलसी के रामचरितमानस का भाव और कला-पक्षीय चित्रण**-*अर्चना पाण्डेय* **249-252**
- **भीष्म साहनी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना**-*यज्ञेश चतुर्वेदी* **253-255**
- **भारतीय ज्ञान परम्परा में अपभ्रंश के रत्न कवि (योगीन्दु और मुनि राम सिंह)**-*डॉ. बारेलाल जैन* **256-258**
- **सृष्टि के ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला-योग**-*डॉ. गोपेन्द्र कुमार साहू* **259-262**
- **Gender Equality and Women Empowerment During Covid -19 and Beyond**
  -*Dr. Vidya Kumari* **263-268**
- **ManjuKapur's *Custody* : A Study through A Feminist Lens**-*Dr. Anamika Gupta* **269-273**
- **सृष्टि के ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला-योग**-*डॉ. उमेश कुमार* **274-280**
- **उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति युवाओं का दृष्टिकोण एक सामाजिक अध्ययन**
  -*मयंक शुक्ल एवं डॉ. गीतांजलि श्रीवास्तव* **281-292**
- **Understanding of Youth About Professional Social Work Services : A Study based on two Degree College at Prayagraj District**
  -*Juhi Dass & Dr. Geetanjali Srivastava* **293-304**
- **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचनात्मक आलोचना दृष्टि**-*निशि सिंह* **305-308**
- **पटना में नगरीय अपशिष्ट (पॉलीथीन-प्लास्टिक) समस्या एवं समाधान का प्रतीकात्मक अध्ययन**-*डॉ. अमित कुमार* **309-312**
- **सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध**-*सौरभ कुमार शर्मा एवं डॉ. ओम प्रकाश द्विवेदी* **313-316**
- **महाकवि बाणभट्ट कृत कादम्बरी का काव्यात्मक अनुशीलन**-*उर्मिला मौर्या* **317-318**
- **डॉ. उमेश प्रसाद सिंह के ललित निबंध**-*उषा विश्वकर्मा* **319-321**
- **राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नारी की सामाजिक स्थिति**-*डॉ. मोनिका कुमारी* **322-324**
- **Some Glimpses of Buddhism and Its Evidence in Uttarakhand**
  -*Prof. (Major) Vimlesh Kumar Pandey* **325-328**
- **Fast Moving Consumer Goods & Brand Management in India**
  -*Dr. Amit Kumar Sahu* **329-331**
- **वैश्वीकरण और हिन्दी भाषा की उपादेयता**-*डॉ. राजेश कुमार मीना* **332-334**
- **Revisiting the Past : A Study of Recent Trends in History Writing on Late 18th and 19th Century Himachal Hills**
  -*Dr. Rakesh Kumar Sharma & Utsav Jai Surya Thakur* **335-343**

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 1-8

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

ताराशंकर बंद्योपाध्याय और फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में महिलाओं की भूमिका और स्थिति का विश्लेषण

*डॉ. रेखा श्रीवास्तव** *विशाल कुमार यादव***

सारांश : *हिन्दी और बंगाली साहित्य में एक विशेष कथा युग के निर्माता फणीश्वरनाथ रेणु और ताराशंकर बंध्योपाध्याय हैं। जब हम हिन्दी साहित्य के विकास और उपन्यासों के विकास पर ध्यान देते हैं, तो हमें प्रेमचंद, यशपाल, शिवकुमार, भैरव प्रसाद गुप्त और रेणु जैसी एक परंपरा दिखाई देती है, जो प्रेमचंद युगीन साहित्य से लेकर आधुनिक युग तक के हिन्दी साहित्य में नारी के परिवर्तन को उजागर करती है। प्रेमचंद ने 'पूस की रात', 'कफन', 'गोदान', 'गबन' जैसे उपन्यासों में जिस ग्रामीण परिवेश में नारी की स्थिति का वर्णन किया, वही विकसित रूप रेणु के उपन्यासों में प्रकट होता है। बंगाली साहित्य में शरतचंद्र, बंकिमचंद्र, विभूतिभूषण आदि ने एक नई परंपरा की स्थापना की, जिसमें ग्रामीण जीवन के साथ–साथ नारी की स्थिति का चित्रण किया गया है।*

मुख्य शब्द : *मानसिक पीड़ाएँ, अनदेखी, सहधर्मिणी, सामजिक, असहाय, संघर्षशील, वेदना।*

प्रस्तावना : नारी आधुनिक कथा–साहित्य का एक महत्वपूर्ण तत्व है। साहित्य में नारी का सौंदर्य और विभिन्न क्रियाकलापों के साथ–साथ उनकी समकालीन स्थिति भी महत्वपूर्ण है। आधुनिक उपन्यासों में नायक की तुलना में नायिका का चरित्र अधिक आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह विशेषता केवल ताराशंकर और रेणु के उपन्यासों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आधुनिक विश्व कथा साहित्य में भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। अंचल विशेषता और बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण ही आधुनिक उपन्यास की कथा इन पात्रों के इर्द–गिर्द घूमती रही है। ताराशंकर बंद्योपाध्याय और फणीश्वरनाथ रेणु दोनों ही आधुनिक युग के ग्रामीण कथाकार हैं, इसलिए उनके उपन्यासों में आधुनिक भारतीय नारी के साथ–साथ भारतीय ग्रामीण नारी की विभिन्न परिस्थितियों और रूपों का चित्रण किया गया है। इन दोनों उपन्यासकारों का मुख्य विषय ग्रामीण नारी के प्रेम, संघर्ष और जीवन कला के विविध रूप हैं।

भारतवर्ष में वैदिक युग के दौरान नारी का स्थान अत्यंत ऊँचा रहा है। नारी को रिद्धि–सिद्धि, शक्ति, ज्ञान और धन–सम्पदा प्रदान करने वाली दयामती स्वरूप माना गया है, इसलिए उसे वैदिक युग के आरंभ से ही देवी के रूप में पूजा जाता रहा है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में साहित्यकारों ने नारी की विभिन्न स्थितियों को प्रस्तुत किया है। इस काल में कवियों ने वीरता से भरे काव्य ग्रंथों में नारी के सौंदर्य का वर्णन किया है। भक्तिकाल में अधिकांश संतों ने नारी को अपनी साधना के मार्ग में बाधा माना है। हालांकि, उसे माया का रूप मानने के बावजूद उसकी पतिव्रता और प्रेमिका के रूप में प्रशंसा की गई है। सूफी कवियों ने नारी को छलनामयी प्रतीक के रूप में दर्शाया है। रीतिकाल में नारी केवल पुरुषों के आकर्षण का केंद्र बनकर रह गई और उसके परकीय भेदों का वर्णन किया गया। इस काल में वह केवल विलास का साधन बनकर रह गई। आधुनिक काल में भी उसकी स्थिति में बदलाव आया है।

ग्रामीण नारी के स्वरूप के साथ–साथ शहरी नारी के स्वरूप का भी उल्लेख किया गया है। इसी परंपरा में ताराशंकर बंध्योपाध्याय और फणीश्वरनाथ रेणु के आंचलिक उपन्यासों में नारी की ग्रामीणता, दलितता, संघर्ष, उपेक्षा, पीड़ा, पवित्रता और धैर्य की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

** शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश*

*** शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश*

विषय : वर्तमान में पितृसत्ता कई देशों की संस्कृति में गहराई से समाहित है। पितृसत्ता का अर्थ है, पुरुषों का महिलाओं पर प्रभुत्व, जिसके कारण महिलाएँ हमेशा पुरुषों के अधीन रहने के लिए बाध्य होती हैं। परिवार एक ऐसी संस्था है जहाँ स्त्री–पुरुष के बीच असमानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, जो पितृसत्ता का एक प्रमुख संकेत है। शुभ्रा परमार के अनुसार, ''पितृसत्ता का तात्पर्य एक पुरुष प्रधान समाज में हर परिवार और सामाजिक ढांचे में पिता के नियंत्रण से है। पिता अपने घर के सभी सदस्यों पर पूर्ण अधिकार रखता है और इसके बदले में वह अपने परिवार के सदस्यों को आर्थिक सहायता और सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध होता है।''[1]

मातृतंत्र या मातृसत्ता में समाज की सभी वस्तुएँ महिलाओं के चारों ओर केंद्रित होती हैं। राजनीतिक नेतृत्व, नैतिक अधिकार, संपत्ति, परिवार और बच्चों के नियंत्रण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मातृसत्ता में माता और स्त्री के वंश को प्रमुखता दी जाती है। वर्तमान में भी भारत के कई राज्य मातृसत्ता के सिद्धांतों का पालन करते हैं।

मातृसत्ता का समाज केवल भारत में ही नहीं, बल्कि कई अन्य देशों की संस्कृति का भी हिस्सा था, जहाँ पिता की पहचान आवश्यक नहीं मानी जाती थी। इस व्यवस्था में माँ का स्थान सत्ता के केंद्र में होता था। मातृसत्ता के समाज में नारी पुरुष की सहारा होती थी, जबकि पितृसत्ता के समाज में वही नारी अबला के रूप में बदल जाती है। इस परिवर्तन को विवर्तन या परिवर्तन (पतन) कहा जा सकता है?

पितृसत्ता समाज में शक्ति का मुख्य केन्द्र पुरुष होता है। पुरुष प्रधान समाज में, परिवार की संरचना में पिता अर्थात् पुरुष का नियंत्रण होता है, जहाँ पुरुष को घर और समाज दोनों ही स्थानों पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं और उनकी सुरक्षा के प्रति जिम्मेदारी होती है। महिलाओं के अधिकार और उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे उत्पादन, प्रजनन, और पालन–पोषण, का निर्णय पुरुष ही करते हैं। शुभ्रा परमार के अनुसार, ''पितृसत्ता एक पारंपरिक धारणा है। यह ऐसी कल्पनाएँ हैं जो हमारी सोच, दृष्टिकोण और मानसिकताओं को दर्शाती हैं।''[2]

पितृसत्ता की जड़ें इतिहास, धर्म और प्रकृति में सदियों से विद्यमान हैं। मातृसत्ता के कारण समाज में माँ का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है, जिससे वह सम्मानित और सभी कार्यों की अधिकारिणी बनती है। लेकिन पितृसत्ता के प्रभाव में महिलाओं को उनके प्राकृतिक और जैविक भेद के कारण लिंग असमानता, शोषण, अपमान, नियंत्रण और हिंसा का सामना करना पड़ता है। लिंग भेद महिलाओं के पोषण, स्वास्थ्य, देखभाल, शिक्षा, कार्य, रोजगार और निर्णय लेने के अधिकारों में भी भेदभाव उत्पन्न करता है। 'पुरुष' स्वभाव से महिलाओं की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धी होते हैं। वे शक्ति प्राप्त करने की इच्छा, दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति, जाति और लिंग को सर्वोपरि मानने जैसे गुणों से युक्त होते हैं। जबकि महिलाएँ स्वभाव से सहनशील, त्यागमयी, संस्कारी, सुशील और सभ्य–मानवीय संवेदनाओं को धारण करने वाली होती हैं। इस प्रकार, पुरुष स्वभाव से ही पितृसत्ता को बढ़ावा देते हैं।[3]

रेणु और ताराशंकर (द्वारा रचित) इन लेखों में सत्ताओं के संदर्भ में अपनी–अपनी रचनाओं के माध्यम से आधुनिक युग के परिवेश का परिचय प्रस्तुत करते हैं। यह विशेष रूप से एक विशिष्ट जाति के माध्यम से प्रकट होता है, जो आंचलिकता को दर्शाता है और ग्रामीण तथा दलित परिवेश में महिलाओं की स्थिति को भी उजागर करता है।

जांगल गाँव की सद्जाति के संदर्भ में, यहाँ के लोग जमींदार हैं और उनके परिवार की महिलाएँ सभ्य नागरिकों के रूप में मानी जाती हैं, जिसके कारण वे घर की चारदीवारी में सीमित रहती हैं। वहीं, जांगल गाँव में संथाल और कहार जाति के लोग मजदूर और खेत मजदूर हैं, जो दलित वर्ग में आते हैं। पुरुष और महिलाएँ दोनों ही अपनी जीविका अर्जित करते हैं और स्वतंत्र हैं। फिर भी, वहाँ मातृसत्ता की बजाय पितृसत्ता का वातावरण बना हुआ है।

वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक नारी के विकास पर कई आलोचनाएँ की गई हैं। जैसे कि हिन्दू धर्म में मनु स्मृति में महिलाओं के लिए निर्धारित सभी कर्मकांड पुरुषों से भिन्न और अत्यंत कठिन माने गए हैं। यह कठिनाई कमलेश और ताराशंकर की कृतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, हालांकि एक अलग दृष्टिकोण से। ''लक्ष्मी मठ में निवास करती हैं, सतगुरु की सेवा के साथ–साथ महंत की भी दासी हैं, जो रोज सुबह साहेब की बंदगी करती हैं। लक्ष्मी के व्यक्तित्व में अब साधु–सुभाव, आचार, विचार और नियम–धर्म समाहित हो गए हैं। यह साहेब की कृपा है।''[4]

ताराशंकर ने नारी की कोमलता और पुरुष की कठोरता का एक अद्भुत चित्रण प्रस्तुत किया है। ''गणदेवता'' का अनिरूद्ध छिरू को अच्छी तरह से जानता था, फिर भी पत्नी की बात पर विचार करने के बजाय उसे धक्का देकर बाहर की ओर बढ़ गया। पद्य बुद्धिमती थी, उसने न तो गुस्सा किया और न ही मना किया। फिर उसने आवाज दी, ''अजी ओ, सुनो–सुनो, लौट आओ।'' उसने धीरे से हँसते हुए कहा, ''मैं पीछे से रोक रही हूँ, सुनो।'' इस बार छेड़े जाने पर अनिरूद्ध बिगड़कर पलटा। पद्य ने हँसते हुए कहा, ''थोड़ा–सा पानी पी लो, फिर जाओ।'' लौटकर अनिरूद्ध ने जोर से उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया और कहा, ''टोकेगी पीछे से।''[5]

वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक नारी की स्थिति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, लेकिन यह कहना कठिन है कि इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप वास्तविकता में कितना बदलाव आया है। वैदिक युग में नारी को देवी के रूप में पूजा जाता था, जबकि वीरगाथा युग में उसे योद्धा के रूप में देखा गया। मध्ययुग में नारी को लौकिक प्रेमिका और त्यागी के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि रीतिकाल में वह भोग्या के रूप में सामने आई। मध्ययुग में नारी को माया और मुक्ति के मार्ग में बाधा के रूप में देखा गया। कबीर की वाणी में इस विचार को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है, "ई माया रघुनाथ को बौरी, खेलन चली अहेरा हो XXXXX जंगल में के जंगम मारे, माया किन्ह हुँ न भोगी हो।"[6]

वैदिक काल और पूर्व वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक थी। उस समय उनका उपनयन संस्कार होना और वेदों की ऋचाओं की रचना करना इसके प्रमाण हैं। अपाला, घोषा, विश्ववारा आदि उस युग की प्रमुख महिलाएँ थीं। समय और इतिहास इस बात के गवाह हैं कि वैदिक युग की लावण्या, अनुसया, अहल्या, दुर्गा, सीता, शंकुंतला आदि ने अपनी–अपनी श्रेणी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। कथा साहित्य आज भी उनकी गाथाएँ सुनाता है, अर्थात् कथा–साहित्यों और ग्रंथों में उनकी कहानियाँ आज भी जीवंत हैं। ''जानकी, जिन्हें न जनकपुरी के वैभव का कोई सुख था और न अर्थव्यय में वन जाकर धरती में समाने का कोई दुःख था, कलंक मुक्ति के लिए धरती में समाने वाली सीता 'जानकी' को कोई दुःख नहीं था।''[7]

समय परिवर्तनशील है, अर्थात् स्थिति हमेशा एक समान नहीं रहती। नारी की स्थिति में भी परिवर्तन आने लगा। मुगलकाल में उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई, जिसे महिलाओं के लिए अंधकार और घातक पतन का काल कहा जाता है। मुगल बेगमों की तरह पर्दानशीं महिलाएँ हराम की स्थिति में जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होने लगीं। डॉ. नीलू कुमारी का कहना है, ''मानसकालीन नारी की परिस्थिति अत्यंत कठिन है। वह त्रासदी में जी रही है। वह अनेक प्रकार के बंधनों में जकड़ी हुई है। विपरीत परिस्थितियों में भी वह अपनी आवाज नहीं उठाती। पराधीनता उसकी नियति बन चुकी है।''[8]

वैदिक युग में वेदों के अनुसार नारी को देवी के रूप में पूजा जाता था, जहाँ उसे शक्ति के प्रतीक के रूप में आराधना की जाती थी। दुर्गा, सीता, राधा, सती, सावित्री जैसी पूजनीय नारियाँ हैं, जिनका उल्लेख सती कथा, दुर्गा चालीसा, दुर्गा सप्तशती आदि पौराणिक ग्रंथों में मिलता है। स्त्री को शक्ति का प्रतीक माना गया है, और हमारे वेद तथा पुराण इस बात के साक्षी हैं। जिन नारियों का स्थान श्रेष्ठ नहीं था, उन्हें भी मिथक के अनुसार उचित सम्मान दिया जाता था, जैसे मेनका, रम्भा, उर्वशी, रति आदि। माँ, स्त्री, बहन और बेटी का पूर्ण सम्मान किया जाता था। जब नारी अनाथ और असहाय होती थी, तब उन्हें मंदिर में देव सेवा हेतु देव–दासी बना दिया जाता था। लेकिन समय के साथ जमींदार, सामंत वर्ग और पूंजीपति, विलासी और कामुक पुरुषों ने उन्हें अपनी दासी बनाकर उनका शोषण करना शुरू कर दिया।

बीसवीं सदी के मध्य में नारी जागरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिसका प्रमुख कारण स्वतंत्रता आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना थी। साहित्य ने इस जागृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि जागृति के सभी साधन साहित्य में विद्यमान थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, नारी को एक मुक्त वातावरण प्रदान किया गया, जिसमें समान अधिकारों की बात की गई। उस समय बंगाली साहित्य में शरतचंद्र और रवींद्रनाथ की रचनाओं में नारी को विशेष महत्व दिया गया, जबकि ताराशंकर के उपन्यासों में यह महत्व नगण्य था। विकास की परंपरा में नारी की प्रगति बहुत धीमी रही, जिसका मुख्य कारण समाज की पुरानी सोच थी। आधुनिक युग में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया, लेकिन वह केवल एक कठपुतली बनकर रह गई, जिसकी डोर पुरुष प्रधान समाज के हाथों में थी। फिर आधुनिक युग के मध्य, अर्थात् 1915 के आसपास, यह स्थिति और भी स्पष्ट हुई।

नारीवादी आंदोलन की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के आस–पास ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई, जो बीसवीं सदी तक जारी रहा। इस आंदोलन में महिलाओं ने मताधिकार की माँग की। इसके बाद, अत्याचार और

शोषण के खिलाफ आंदोलन तेज हुआ, विशेषकर 1980 के दशक में, जब मताधिकार के साथ–साथ मुक्ति और शैक्षणिक अधिकारों की भी माँग की गई। नारीवादी दृष्टिकोण ने पुरुष प्रधान समाज में पितृसत्ता को नारी के शोषण और अत्याचार के रूप में देखा। रेणु और ताराशंकर के उपन्यासों में इसी आधार पर स्त्री पात्रों की कल्पना की गई है। ग्रामीण और शहरी स्त्री पात्रों का उल्लेख किया गया है, लेकिन ग्रामीण पात्रों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। अंचल की महिलाएँ, जो ग्रामीण संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं, इन रचनाकारों के उपन्यासों में ग्रामीण समाज की कहानियों को प्रस्तुत करती हैं, जिससे ग्रामीण नारियों की परिकल्पना स्वाभाविक रूप से उभरती है।

रेणु और ताराशंकर अपने कथानकों में ग्रामीण वास्तविकताओं और परिवेश का चयन करते हैं, साथ ही वे गहरे जीवन के अनुभवों को भी प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि उनकी कलात्मकता उनके कथानकों में अत्यधिक प्रभावी नहीं होती और न ही उनकी कल्पना की अतिशयोक्ति दिखाई देती है। पूर्णिया की मेरीगंज गांव से जुड़ाव के कारण उनकी कहानियाँ सहज, सरल और स्वाभाविक लगती हैं, जिसमें कोई जटिलता नहीं होती। उपन्यास की शुरुआत में ही स्त्री विमर्श की झलक मिलती है। कथा की शुरुआत एक मोटी की बेटी को उठाकर ले जाने से होती है। ''मोगला ही टीशन पर गोरा सिपाही एक मोटी की बेटी को उठा लेता है, इसी को लेकर सिख और गोरे सिपाहियों में लड़ाई हो गई है।''[9]

आजादी के पश्चात परिवर्तन की आवश्यकता स्पष्ट रूप से सामने आती है, न केवल शहरी क्षेत्रों में, बल्कि ग्रामीण इलाकों में भी परिवर्तन की महत्ता बढ़ने लगती है। मेरीगंज के ग्रामीण क्षेत्र में मलेरिया केंद्र की स्थापना होने जा रही है, किंतु गांव में डिग्रीधारी चिकित्सकों की कमी है। इस कारण शहर से एक अनुभवी डॉक्टर को बुलाने की योजना बनाई जा रही है। गाँव में नए परिवर्तन और विकास की अवधारणा में स्वाभाविक रूप से सुंदरता और नारी सम्मान की भावना जुड़ जाती है। मार्टिन साहब और उनकी पत्नी गाँव में अस्पताल खोलने की योजना बना रहे हैं। परी के समान सुंदर मेरी को मलेरिया जैसे संकट ने प्रभावित किया है, जिससे वह पागलपन की हद तक पहुँच गया है और डिस्पेंसरी खोलने का प्रयास कर रहा है, किंतु अस्पताल की स्थापना में सफल नहीं हो पा रहा है। फिर भी, परिवर्तन की संभावनाएँ दिखाई देने लगती हैं। जातीय संघर्ष, राजनीतिक बाधाएँ, और सामाजिक पिछड़ापन जैसी अनेक विकृतियों के बावजूद विकास और परिवर्तन की संभावनाएँ बनी हुई हैं। साहेब की मेम परी के समान थी, जैसे इंद्रासन की परी। मेरीगंज पहुँचने के ठीक एक सप्ताह बाद, जब मेरी को 'जड़ैया' ने घर दबाया, तब मार्टिन ने यह महसूस किया कि यहाँ एक डिस्पेंसरी खोलवाना पोस्ट ऑफिस से पहले आवश्यक था।[10]

स्त्री उत्पीड़न को ''मैला–आँचल'' में प्रमुखता से दर्शाया गया है। इसमें महान धार्मिक संतों, समाज सुधारकों और नेताओं के माध्यम से सामाजिक अव्यवस्था का चित्रण किया गया है। एक प्रतिष्ठित धार्मिक मठ का महंत, जो कामना–विलास में लिप्त है, भक्ति के नाम पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है। इस स्थिति में गाँव की कमजोर महिलाएँ इसके शिकार बनती हैं, लेकिन वे अपनी आवाज नहीं उठा सकतीं क्योंकि वे दलित और कमजोर हैं, और एक पुरुष–प्रधान समाज में जी रही हैं। एक आपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति समाज का सम्मानित नागरिक है, और उसके खिलाफ आवाज उठाने का साहस गांववालों में नहीं है, क्योंकि वे गरीब, अशिक्षित और अंधविश्वासी हैं। रेणु ने इस वास्तविकता को हमारे सामने उजागर किया है। महंत ब्रह्म बेला में लक्ष्मी को जगाने का आदेश देते हैं।[11]

लक्ष्मी महंथ के आकर्षण में या शोषण की पीड़ा में जीवन व्यतीत करती है, लेकिन अपने साधुपन के कारण वह उसके कार्य को प्रोत्साहित करती है और स्वयं पीड़ित होती है। रेणु केवल आंख में उंगली डालकर इस कठोर सत्य को नहीं दिखाते, बल्कि इस अन्तपुरी की आंतरिक कथा को बहुत रोचक शिल्पकला के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

"लक्ष्मी उठी। उठकर महंथ साहब के आसन के पास आई। हाथ जोड़कर साहेब को नमस्कार किया और आंखें मलते हुए कुएँ की ओर चली गई।... लक्ष्मी के रंग–रूप में अब साधु–सुभाव, आचार–विचार और नियम–धर्म समाहित हो गया है। यह साहेब की दया है।"[12]

रेणु ने व्यंग्यात्मक शैली में इसका वर्णन इस प्रकार किया है– ''माघ की ठंडी सुबह में, मठ से प्रातकी की निर्गुणवाणी शून्य में तैर रही है। बूढ़े महंथ साहब पहले पद का उच्चारण करते हैं। उनके दांत न होने के कारण प्रातकी के शब्द स्पष्ट नहीं निकलते। गले की थरथराहट सुर में बाधा डालती है और बेसुरा राग सुनाई देता है। दमे से कमजोर शरीर में दम कहाँ है... लेकिन लक्ष्मी सब कुछ संभाल लेती है। पांच साल पहले, प्रातकी गाने के

समय उसकी आँखों की पलकें नींद से भारी रहती थीं। जब महंथ साहब गीत की दूसरी पंक्ति 'भोर भयो–भव भोर भरम' गाते थे, तब वह अपनी हँसी रोकने में बहुत कठिनाई महसूस करती थी। लेकिन अब ऐसा नहीं है। उसकी बोली और सुर दोनों ही मीठे हैं। वह तन्मय होकर गाती है। उसकी सुरीली तान और महंथ साहब के बेसुरे और मोटे राग का मेल भले ही न हो, फिर भी संगीत की निर्मल धारा में कोई विरोध नहीं उत्पन्न होता।''[13] अस्पताल के उद्घाटन की प्रक्रिया में परिवर्तन की एक नई लहर उत्पन्न होती है, जो उत्साह का संचार करती है। महंथ भंडारा का आयोजन किया जाता है, जिसमें महिलाएँ, बच्चे और वृद्ध सभी को भोजन प्रदान किया जाएगा। इस उत्सव के माहौल में अंतर्विरोध भी प्रकट होता है। महंथ के पापों का पर्दाफाश होने लगता है। सभी लोग मिलकर काम में जुटे हुए हैं, जबकि संथाल टोली की महिलाएँ मिट्टी लगाने का कार्य कर रही हैं। इसी समय, यादव टोली का एक किसान उनके कच्चे राज़ को उजागर कर देता है। ''अंधा महंथ अपने पापों का प्रायश्चित कर रहा है। बाबा जी होकर जो रखेलिन रखता है, वह बाबा जी नहीं है। ऊपर से बाबा जी और भीतर से धोखेबाज़। आप क्या कहते हैं? रखेलिन नहीं, दासिन है?''[14]

आज भी बेसहारा लड़कियाँ समाज में धर्म के ठेकेदारों का शिकार बनती हैं। आज़ादी के बाद भी इस दिशा में कोई जागरूकता नहीं आई है। पुरुषों की वासना से बचना आसान नहीं है। लक्ष्मी के पिता गुरु–भाई थे, और उनकी मृत्यु के बाद देखभाल का दायित्व महंत सेवादास पर आ गया। गुरु–भाई की पुत्री होने के नाते, सेवादास का उस पर पूरा अधिकार होता है, जिससे वह उसे अपने कामवासना की आग में झोंक देता है, इससे पहले कि वह जवान हो सके। रेणु ने यथार्थ का वर्णन करते समय कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई है, और उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया है कि यह केवल मेरीगंज के मठ की स्थिति नहीं है, बल्कि यह पुरुष प्रधान समाज की ग्रामीण स्थिति को भी दर्शाता है। ऐसे बच्चे बर्बर कामुक नजरों का शिकार होते हैं। मठ जैसे धार्मिक स्थलों में आज भी धर्म के नाम पर शोषण होता है, और आधुनिक युग में यह शोषण का केंद्र मठ, संस्थाएँ, अनाथ आश्रम आदि हैं।

बसुमतिया का महंथ यह दावा करता था कि लक्ष्मी दासिन का पिता हमारा गुरु–भाई था, इसलिए उसके निधन के बाद उस पर मेरा अधिकार है। सेवादास का तर्क था कि लक्ष्मी पर उसका हक है। अंततः लक्ष्मी कानूनी रूप से सेवादास की हो गई। सेवादास के वकील ने समझाया था कि महंथ साहब, इस लड़की को पढ़ा–लिखाकर उसकी शादी करवा दीजिएगा। महंथ साहब ने वकील साहब को आश्वासन दिया था कि लक्ष्मी हमारी बेटी की तरह रहेगी, लेकिन मनुष्य की सोच को क्या कहा जाए। मठ में लाते ही किशोरी लक्ष्मी को उन्होंने अपनी दासी बना लिया। लक्ष्मी अब जवान हो चुकी है, लेकिन लक्ष्मी के जवान होने से पहले ही महंथ सेवादास की दृष्टि अपनी ज्योति खो चुकी थी। यह समझना कठिन है कि लक्ष्मी की जवानी को देखकर उसकी क्या स्थिति होती।[15]

रेणु ने शोषक वर्ग में धर्माध्यक्षा का भी आलोचना की है। उनके लोलुप और कामुक प्रवृत्तियाँ ऐसे पात्रों के षोशण के स्वरूप को उजागर करती हैं। रेणु उन शोषित हितकारियों के माध्यम से उनकी निंदा भी कराते हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोग महंथ की आलोचना करते हैं, "अब तो महंथ सेवादास को बहुत से लोग प्रणाम और बंदगी भी नहीं करते।... धर्म भ्रष्ट हो गया है। बगुला भगत है। ब्रह्मचारी नहीं, व्यभिचारी है।"[16] उपन्यासकार ने ऐसी कटु टिप्पणियों का उपयोग करके उन आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का विरोध किया है जो उनके हृदय में कांटे की तरह चुभती रही हैं। रामदास, एक उत्तराधिकारी के रूप में, मठ की कोठारी में आक्रमण करता है और यह मानता है, ''माया से कोई भी परे नहीं है। माया को कोई भी पराजित नहीं कर सका। ...मुझे स्वर्ग की आवष्यकता नहीं है। ...मैं इस नरक में पहली बार नहीं आया हूँ। कृतू मेरी दासी है।''[17]

पुरुष प्रधान समाज में नारी को दासी के रूप में जीवन यापन करना पड़ता है। रेणु ने ग्रामीण सौंदर्य के साथ–साथ महंत जैसे महान व्यक्तियों की क्रूरता और कामुकता पर भी ध्यान केंद्रित किया है। एक ज्ञानी समझे जाने वाले भगवान के सेवक ने धर्म के नाम पर एक छोटी बच्ची का बलात्कार किया है, जिसके कई गवाह हैं, लेकिन वे चुप हैं। यादव टोली का किसनू कहता है कि जब लक्ष्मी दासिन को मठ पर लाया गया, तब वह पूरी तरह से अबोध और नादान थी, केवल एक कपड़ा पहनती थी। वह बच्ची और पचास वर्ष का बूढ़ा गिद्ध, दोनों में कितना अंतर है। रात में लक्ष्मी की रोने की आवाज ऐसी थी कि उसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए। हम सो नहीं पाते थे। उठकर भैंसों के बाड़े में जाकर उन्हें चराने ले जाते थे। रोज सुबह लक्ष्मी दूध लेने के लिए आती थी, उसकी आँखें कदम के फूलों की तरह खिली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर वह चुपचाप मुँह टुकर–टुकर देखने लगती थी। बिल्कुल गाय की बाछी की तरह, जिसकी माँ मर गई हो।[18]

रेणु ने समाज के ठेकेदारों और धर्मगुरुओं को गिद्ध के रूप में वर्णित किया है, जिनकी तीव्र दृष्टि अपने शिकार को खोज निकालती है और उसे नोचकर खा जाती है। ''जब अंधा व्यक्ति पकड़ता है, तो मानो उसके हाथों में मगरमच्छ की शक्ति आ जाती है। अंधे की पकड़, चाहे कितनी भी कोशिश कर ले, मुठ्ठी हिलती नहीं है। यह हाथ है या हार की संडसी। दाँतहीन मुँह की दुर्गंध! ...लार... ।" महंथ साहेब! कृपया सुनिए।[19]

गाँव के अनपढ़ और सरल लोगों के बीच ही इनका निवास होता है। उदाहरण के लिए, सेवादास की अनुपस्थिति में रामदास लक्ष्मी को अपनी इच्छाओं का शिकार बनाने से नहीं चूकता। भारत में आज भी नाबालिग लड़कियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इसी कारण से कहा गया है, ''यह रामदास भी चंडाल के समान है...'' महंथ एक बार चार दिनों के लिए पुटरैनिया गए थे। हमने सोचा कि चार रातें लक्ष्मी चौन से बिता सकेगी। लेकिन वह बाघ के मुँह से छूटकर बिल्ली के मुँह में चली गई। इसके बाद लक्ष्मी इतनी बीमार पड़ी कि वह मरते–मरते बची।[20]

महंथ का मठ लक्ष्मी के लिए एक कोठा बन गया था। लक्ष्मी उस मठ की कोठारिन बन गई थी, लेकिन इसके बावजूद जीने की आशा बनी रही। जब लक्ष्मी युवती बनी, तब उसने बालदेव के साथ प्रेम–विवाह कर गृहस्थी बसाई। इससे रेणु की स्पष्ट और स्वच्छ दृष्टिकोण का पता चलता है, साथ ही उनकी जीवन की इच्छा को बनाए रखने की क्षमता भी प्रकट होती है। केवल रेणु ही हैं जो धीरे–धीरे पाठकों को सभी क्रियाकलापों की जानकारी देते हुए उनकी सोच को सकारात्मकता प्रदान करते हैं और आधुनिकता की ओर गति देते हैं। यह शिल्पकला केवल रेणु में ही है, अन्यथा कोठेबालियों को समाज आज भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखता, बल्कि जिस स्त्री का बलात्कार हो चुका है, उसे मृत्यु को स्वीकार करने पर मजबूर कर देता है। लेकिन रेणु के पाठक इसे सहजता से लेते हैं और जीने की अभिलाषा व्यक्त करते हैं, समाज में नया उत्साह का अनुभव कराते हैं।

रेणु ने एक ओर नारी के शोषण और प्रताड़ना को दर्शाया है, जबकि दूसरी ओर नारी का आकर्षक रूप प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया है। 'परती परिकथा' की ताजमनी और 'मैलाआँचल' की ममता इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। ममता ताजमनी और इरावती मुक्तवर्ग की सोच को दर्शाती है। ममता का प्रेम स्वाभाविक, शुद्ध और समाज द्वारा स्वीकृत है, जबकि लक्ष्मी और ताजमनी का प्रेम समाज के विरुद्ध है।

ताराशंकर के उपन्यासों में ग्रामीण समाज की कहानी प्रस्तुत की गई है, इसलिए ग्रामीण महिलाओं की छवि स्वाभाविक रूप से उभरती है। इनमें नारी पात्र दलित वर्ग से संबंधित हैं, जो अशिक्षित, मेहनती, सहज और सरल स्वभाव की हैं। फिर भी, उन्होंने नारी के आत्म–सम्मान और उनकी पहचान को बनाए रखने के लिए पूरी कोशिश की है।

''हाँसूली बाँक'' की नायिका पाखी अंत तक ''काराली'' का साथ निभाती है और ''काराली'' की अनुपस्थिति में अकेले जीवन यापन करती है तथा अपनी जीविका अर्जित करती है। केवल पाखी ही नहीं, दलित महिलाएँ और संथालिन भी अपनी जीविका स्वयं कमाती हैं। कहार लोग सूरज उगने से बहुत पहले ही जाग जाते हैं। उस समय पूर्व क्षितिज पर केवल आभा का आभास होता है, पूर्व–दक्षिण कोने में ''भूरूकवा'' यानी शुक्रतारा चमकता रहता है, उसी भोर में कहार लोग उठते हैं। अपने–अपने प्रातः कृत्य करके महिलाएँ घर आँगन में पानी के छीटे देती हैं, माडली करती हैं, रात के जूठे बर्तन थोड़े धरे होते हैं, उन्हें मांजती हैं। गाय–बकरियों को निकालकर जगह पर बाँधती हैं। बत्तखों को छोड़ देती हैं, कच–पच करती हुई बत्तखें लपककर नील–बाँध में उतर पड़ती हैं और फिर घाट की ओर भागी आती हैं, मुँह डूबा–डूबा कर जूठे बर्तन से अन्न–कण खोजती हैं।

पत्थर जैसी कठोर मिट्टी में पुरुष मिलकर पिछली संध्या को घड़े से पानी भरकर उसे भिगो देते हैं। सुबह–सुबह पुरुष कहार उस पर फावड़ा चलाते हैं। मिट्टी से संबंधित कोई न कोई कार्य हमेशा चलता रहता है। रुककर पुरानी दीवारों की मरम्मत का कार्य निरंतर जारी रहता है। जब कोई नया मकान बनता है, तब यह कार्य दिनभर चलता रहता है। यदि कोई अन्य काम नहीं होता है, तो वे साग–भाजी की क्यारियाँ तैयार करते हैं। घर की साग–सब्जी गृहस्थों के लिए पेट के बच्चे की तरह ही सहारा बनती है।

ताराशंकर की रचनाएँ स्वतंत्रता के प्रारंभिक काल की हैं, अर्थात् आधुनिक युग के आरंभिक चरण की। उस समय स्वतंत्रता आंदोलन अपने चरम पर था। स्वतंत्रता का यह संघर्ष केवल एकांगी नहीं, बल्कि सर्वांगीण और बहुआयामी था। उस युग की श्रमजीवी महिलाएँ अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने में संलग्न थीं, जिनका वर्णन उन्होंने किया है। उन्होंने देखा, समझा और परखा है। हालाँकि, समय और परिवेश के अनुसार नारी की स्थिति

उतनी प्रभावशाली नहीं दिखाई देती। महाजन, जमींदार और उच्च वर्ग के सामने वे अक्सर दमित और शोषित स्थिति में रहती हैं।

दलित और छोटी जाति की मानी जाने वाली महिलाएँ सदियों से अपनी आजीविका स्वयं अर्जित करती आ रही हैं। शहरी और नगरीय जीवन में इसका अभाव देखने को मिलता है। भले ही वे किसी उच्च पद पर कार्यरत न हों, लेकिन श्रम करके वे आत्मनिर्भर बन जाती हैं और स्वतंत्रता से जीवन व्यतीत करती हैं। शायद यही कारण है कि वे अपने मन के साथी के साथ संबंध स्थापित कर सकती हैं। पति के अन्य महिलाओं के साथ संबंध होने पर भी वे आपत्ति नहीं करती हैं।

यदि किसी स्त्री के होते हुए उसका पति विवाह करता है, तो पत्नी तुरंत शंख बजाकर और लोहे की चूड़ी उतारकर फेंक देती है और गालियाँ देते हुए वहाँ से चली जाती है। वह किसी अन्य पुरुष के पास पहुँच जाती है। कहार महिलाएँ सौत के साथ गृहस्थी नहीं करतीं। यदि पति पैसे वाला या प्रभावशाली होता है और किसी अन्य महिला को अपने घर ले आता है, बिना विवाह किए या केवल रख लेता है, तो इस पर कहार महिलाएँ आपत्ति नहीं करतीं, लेकिन विवाह करने पर वे इसे सहन नहीं करतीं। रेनू उनकी स्थिति को समझते हुए उनके तर्क प्रस्तुत करते हैं, कहार टाँके की महिलाएँ कोई फेंकने वाली वस्तु नहीं हैं, पति को उनकी परवरिश नहीं करनी पड़ती है, वे स्वयं मेहनत करके खाती हैं। रूप और जवानी के अलावा, मेहनत करने की क्षमता की भी कद्र होती है। इसी कारण से, काना, लँगड़ा, लूला, बूढ़ा, इन सबके यहाँ घरवाली का स्थान सादर खाली रहता है और वे भी उस पर दखल नहीं देते।

अशिक्षा और गरीबी के कारण वह शोषित होती है। जमींदार और सामंत वर्ग के लोग उनका जमकर शोषण करते हैं। इसी कारण से "आज रात मंझाले घास आएंगे, उनके बच्चे का अन्नप्राशन होगा। घोष के यहाँ काम पड़ता है तो बनवारी की बड़ी जिम्मेदारी होती है, जैसे लकड़ी काटना, घर–द्वार को साफ–सुथरा रखना, चूल्हा बनाना, हाट से सब्जी लाना, और मजदूर का सारा भार उसे उठाना पड़ता है। टोले में भी यह कहना होगा कि मजदूरी मिलेगी। बाहर के लोगों को क्या मिलेगा? इसके अलावा पत्तल में भरपेट भोजन के अलावा बाल्टी भर बढ़ती भात–दाल और तरकारी का छन्ना भी मिलेगा। महिलाएँ जूठी पत्तलें साफ करेंगी और जूठे बर्तन मांजेंगी।" ताराशंकर और रेणु जैसे महान उपन्यासकारों के ग्रामीण नारी पात्रों में पारंपरिक जीवन–मूल्यों के प्रति गहरी अनास्था और निराशा छाई हुई है, जैसे 'गणदेवता' की दुर्गा को पंचों पर विश्वास नहीं है और रेणु के 'मैला–आंचल' में भी यही स्थिति है।

पात्रों में दोनों की सचेतना लगभग समान बनी रही है। इसका मुख्य कारण काल और परिवेश रहा है। दोनों रचनाकारों ने स्त्री–पुरुष के संबंधों को समाज में प्रतिष्ठित रूप में नहीं, बल्कि उपेक्षित, अनैतिक और रोगग्रस्त अवस्था में प्रस्तुत किया है। ''मैला–आंचल'' शीर्षक की प्रासंगिकता गाँव की स्त्री–पुरुषों के अनैतिक शारीरिक संबंधों से जुड़ी हुई है। उनके संबंधों में अशिक्षा, कुंठा, संस्कारहीनता और मजबूरी का संकेत मिलता है। इसका वास्तविक कारण जर्जर आर्थिक अव्यवस्था प्रतीत होती है। डॉ. प्रशांत का ममता से विवाह और उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को अपनाना समाज का सकारात्मक पहलू है, जो अनैतिक प्रवृत्तियों से कुछ हद तक मुक्ति दिलाता है।

ताराशंकर के 'गणदेवता' में देबू की पत्नी 'बिल्लू' और पद्मबहू जैसे पात्र साकारात्मकता को बनाए रखते हैं। इस कारण, दुर्गा की इच्छा के बावजूद, देबू पंडित उसे स्वच्छ रूप में देखता है, जिससे दुर्गा के मन में देबू के प्रति सम्मान बढ़ता है। दूसरी ओर, संघर्षरत 'पाखी' आत्महत्या कर लेती है जब कराली सुवासी से विवाह कर लेता है। हालांकि, उसमें प्रतिवाद की एक हल्की झलक अवश्य दिखाई देती है, लेकिन अंततः उसे बसंत के मालिक के घर में जूठा–मुठा खाकर जीना पड़ता है। इसी बीच, पाखी शाम को रोना–धोना छोड़कर कराली से लड़ पड़ती है। एक कटार उठाकर अपने माथे पर मारने का प्रयास करती है, लेकिन अचानक उसके मन में विचार आता है, ''अकेली क्यों मरूँ मैं?''[21]

ताराशंकर के 'गणदेवता' में देबू की पत्नी 'बिल्लू' और पद्मबहू जैसे पात्र साकारात्मकता को बनाए रखते हैं। इस कारण, दुर्गा की इच्छा के बावजूद, देबू पंडित उसे स्वच्छ रूप में देखता है, जिससे दुर्गा के मन में देबू के प्रति सम्मान बढ़ता है। दूसरी ओर, संघर्षरत 'पाखी' आत्महत्या कर लेती है जब कराली सुवासी से विवाह कर लेता है। हालांकि, उसमें प्रतिवाद की एक हल्की झलक अवश्य दिखाई देती है, लेकिन अंततः उसे बसंत के मालिक

के घर में जूठा–मुठा खाकर जीना पड़ता है। इसी बीच, पाखी शाम को रोना–धोना छोड़कर कराली से लड़ पड़ती है। एक कटार उठाकर अपने माथे पर मारने का प्रयास करती है, लेकिन अचानक उसके मन में विचार आता है, ''अकेली क्यों मरूँ मैं?''[22]

उपसंहार : लेखकों ने पात्रों की दयनीय स्थिति को प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। ताराशंकर बंध्योपाध्याय और फणीश्वरनाथ रेणु ने पिछड़े वर्ग की कठोर वास्तविकताओं को उजागर करते हुए गहरी चिंता व्यक्त की है। उन्होंने भविष्य के प्रति चेतावनी देने का प्रयास किया है। राधा अंचल की कठोर भूमि की तरह, कठोर सत्य को सहजता से प्रस्तुत किया गया है। फिर भी, लेखकों ने कथाकारों के संबंधों की सच्चाई को व्यक्त करते हुए मर्यादित प्रेम संबंधों को प्रोत्साहित किया है। ''मैला–आँचल'' में डॉ. प्रशांत और कमली का प्रेम–लीला तथा 'गणदेवता' में और बिल्लू के प्रेम को मर्यादित तरीके से उकेरा गया है।

इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि हिंदी और बंगाली साहित्य में लेखकों ने नारी को एक विशिष्ट स्थान पर स्थापित करने का प्रयास किया है। इसमें विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता, जीवन जीने की इच्छा, धैर्य, क्षमा, त्याग और बलिदान की संघर्षशीलता को प्रदर्शित किया गया है। समाज और साहित्य में उनकी स्थिति आज भी दयनीय बनी हुई है। दोनों रचनाकार केवल उनकी स्थिति की जानकारी ही नहीं देते, बल्कि उससे निपटने के लिए प्रेरणा भी प्रदान करते हैं। दोनों कथाकारों का सकारात्मक दृष्टिकोण उन्हें विपरीत परिस्थितियों से लड़ने के लिए प्रेरित करता है और उनके आशा के अनुरूप जीवन जीने का वातावरण तैयार करता है।

संदर्भ–सूची

1. शुभ्रा परमार, नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, ओरियंट ब्लैक स्वान, 2015 प्रथम संस्करण, पृ. 30
2. वही, पृ. 32
3. वही, पृ. 35
4. भारत यायावर,मैला आँचल, रेणु रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 35
5. ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, गणदेवता, रचनावली, मित्र एंड घोष पब्लिशर्स प्रा. लि., कलकत्ता, प्रथम संस्करण– बैशाख 1380, पृ. 22
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, 1990, पृ. 127
7. कुसुम खेमानी, लावण्यदेवी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2015, पृ. 195
8. रामायण और मानस के नारी पात्र में वैषम्य, पृ. 196
9. भारत यायावर, मैला आँचल, रेणु रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 11
10. वही, पृ. 27
11. वही, पृ. 35
12. वही, पृ. 32
13 वही, पृ. 36
14. वही, पृ. 38
15. वही, पृ. 39
16. वही, पृ. 39
17. वही, पृ. 123
18. वही, पृ. 39
19. वही, पृ. 56
20. वही, पृ. 39
21. ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, हाँसुली बाँकेर उपकथा, रचनावली, मित्र एण्ड घोष पब्लिशर्स प्रा. लि., कलकत्ता, प्रथम संस्करण–बैशाख 1380, पृ. 75
22. वही, पृ. 252

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 9-12

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पंचायती राज व्यवस्था में 73वें संशोधन के बाद महिला प्रतिनिधियों की समाज में भूमिका

*सुबोध कुमार**

सारांश : *संविधान संशोधनों ने बड़ी संख्या में महिलाओं को ग्राम विकास में भागीदारी ही नहीं बल्कि नेतृत्व करने का अवसर भी दिया है। परन्तु राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के सवाल पर महिलायें कई दशकों से संघर्ष करती आ रही हैं। निर्णय लेने वाले व्यक्तियों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी बहुत कम हैं। कितनी महिलायें नीति निर्णायक स्थिति में रही हैं? जबसे महिलाओं को राजनीतिक भागीदारी प्राप्त हुई है सभी स्तरों पर कितने निर्णय लिए गए हैं? महिलाओं का सशक्तीकरण केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक प्रश्न से भी हैं। दुर्भाग्य से महिलाओं के सशक्तीकरण का मामला राजनीतिक भागीदारी में अभी भी बहुत पिछड़ा है। आरक्षण के बावजूद महिलायें अभी भी हाशिए पर है। निर्णयकारिता में उनका योगदान न के बराबर है। वे केवल पति के डमी उम्मीदवार या रबर स्टैम्प ही बनकर रह गई है। कुछ चुने हुये उदाहरण है जिनसे परिलक्षित होता है कि महिलायें पंचायती राज में अपनी सहभागिता पूर्ण रूप से निभा पा रही हैं। राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की छवि को रूढ़िवादी ढंग से प्रदर्शित किया जाता है और महिलाओं को राजनीति में प्रवेश के लिए उत्साहित नहीं किया जाता है।*

प्रमुख शब्द–*निर्णयकारिता, सहभागिता, महिलाओं का प्रतिनिधित्व, स्वतंत्र मतदाता, राजनीतिक जागरुकता।*

महिलाओं के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन हो चुके हैं जिसमें बताया गया है कि महिलाएँ स्वतंत्र मतदाता नहीं होती है क्योंकि उस वर्ग का अधिसंख्य निरक्षर होता है। उन्हें सूचनायें कम मिल पाती है। उनमें राजनीतिक जागरुकता का अभाव रहता है तथापि इन अध्ययनों में राजनीतिक भागीदारी शब्द की परिभाषा बहुत ही संकीर्णता से की गई है जिससे उसका सम्पूर्ण भाव स्पष्ट नहीं होता है। राजनीति में महिलाओं को हाशिए पर रखा जाता है यह घटना सार्वभौमिक है। संस्थायें एवं विचारों के कारण महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में समान भागीदारी से रोका जाता है उसे अपंग बनाने का प्रयास किया जाता है। किसी भी समाज में जन सामान्य की राजनीतिक सहभागिता जितनी अधिक होती है राजसत्ता को उतना ही अधिक स्थायित्व प्राप्त होता है। चूँकि महिला एवं पुरुष स्वभावतः एक दूसरे के पूरक होते हैं। इसीलिए राजनीतिक क्षेत्र में भी पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं की सहभागिता सत्ता क्षेत्र में स्थायित्व का प्रमुख कारक सिद्ध हो सकती है।

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के नाम पर बनी पंचायती राज संस्थाएँ ही ग्रामीण विकास को सार्थक गति प्रदान कर सकती हैं। चाहे नामकरण भिन्न हो किन्तु विश्व के बहुत सारे देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय सरकारें सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इनमें कोलंबिया, चिली, फिलीपीन्स, जाम्बिया, मैक्सिको तथा आइवरोकोस्ट आदि प्रमुख हैं। ''प्रत्यक्ष लोकतंत्र के घर'' के नाम से प्रसिद्ध स्विटजरलैण्ड में स्थानीय सरकारें सर्वाधिक सशक्त है। भारत में राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान, संपूर्ण देश के विकास तथा ग्रामीण क्षेत्रों की चहुँमुखी उन्नति हेतु 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान की 11वीं अनुसूची में जिन 29 विषयों का समावेश किया गया है, वे वस्तुतः सामाजिक आर्थिक विकास की कुंजी हैं।

यह गांधीजी थे जिन्होंने ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्तर पर लोकतन्त्र को आगे बढ़ाने एवं पोषित करने के लिए ग्राम पंचायत को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में महसूस किया। उन्होंने यह निश्चयपूर्वक कहा कि जब

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, एस.आर.के. पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद, उ.प्र.*

तक पंचायतों को पर्याप्त अधिकार प्रदान नहीं किये जाते गाँवों में वास्तविक स्वराज नहीं लाया जा सकता। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 के पैरा चार को उनके आग्रह पर जोड़ा गया। यह अनुच्छेद बताता है कि 'राज्यों को ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाना चाहिए तथा उन्हें ऐसी शक्तियों एवं प्राधिकारों से वेष्ठित करना चाहिए जो कि उनके स्व–षासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हो। जनवरी 1957 में, भारत सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की कार्यप्रणाली के अध्ययन करने तथा इसका सबसे बेहतर रखरखाव एवं क्रियान्वयन कैसे हो इस हेतु सुझाव प्रस्तुत करने के लिए बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने एक त्रिस्तरीय स्वशासन की व्यवस्था का सुझाव दिया जिसका जवाहरलाल नेहरू ने नामकरण 'पंचायती राज' किया।

स्थानीय अथवा ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतें, मध्य अथवा विकासखण्ड स्तर पर पंचायत समिति एवं सर्वोच्च अथवा जिला स्तर पर जिला परिषद् का निर्माण किया जाना था। इन नयी संस्थाओं के पास विविध प्रकार की शक्तियाँ एवं पर्याप्त वित्त होना था। इस समिति ने दो प्रमुख निर्देशात्मक आशाएँ प्रदान की, इसमें यह तर्क दिया गया कि विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण होना चाहिए एवं प्रशासकीय विकेन्द्रीकृत व्यवस्था निर्वाचित संस्थाओं के अधीन होना चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं की त्रिस्तरीय संरचना को राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा जनवरी 1958 में मेहता समिति की अनुशंसा के आधार पर अस्तित्व में लाया गया। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने जिला एवं विकासखण्ड स्तर पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं के आरम्भ करने के पीछे के उद्देश्यों को समर्थन प्रदान किया तथा यह सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य को अपने राज्य की परिस्थितियों के अनुकूल इस संरचना को बनाना चाहिए।

हमारा देश ग्राम्य प्रधान रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने ग्रामीण समुदाय के विकास पर ध्यान दिया। सरकार द्वारा ग्रामीण विकास को गतिशील करने के उद्देश्य से सामुदायिक विकास योजना 1952 एवं राष्ट्रीय विकास योजना 1953 प्रारम्भ की गयी परन्तु दुर्भाग्यवश यह योजनायें अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम (जो 24 अप्रैल, 1993 से लागू हुआ) द्वारा पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। महिलाओं के विकास के दृष्टिकोण से 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर साबित हुआ जिसने पंचायतों में 33 प्रतिशत सीटों पर महिला प्रतिनिधियों को आरक्षण प्रदान किया। इसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को राजनैतिक रूप से सशक्त किया जाना है। यह भी तय किया गया कि यह आरक्षण महिला पदाधिकारियों के स्वयं के लाभ के लिए न हो बल्कि चुनी गयी महिलायें पिछड़ी व दबी महिलाओं के जीवन–स्तर में सुधार कर सकें। अधिनियम केवल महिलाओं को आरक्षण देने तक ही सीमित नहीं है अपितु उनकी अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करना चाहता है। साथ ही साथ उन महिलाओं को भी आरक्षण प्रदान करता है जो अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़ी जातियों की है तथा उन्हें भी निर्णयकारिता में भाग लेने का समान अवसर प्रदान करता है।

संविधान के 73वें संशोधन के उपरान्त अनुच्छेद 243घ(1) के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। ऐसे आरक्षित स्थानों की संख्या यथासाध्य उसी अनुपात में होगी जोकि उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गये स्थानों का अनुपात है और इसका निर्धारण उस क्षेत्र की उनकी जनसंख्या के आधार पर किया जायेगा। ऐसे स्थानों को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम से आवंटित किया जायेगा। खण्ड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहने की व्यवस्था है परन्तु पदों के कुल एक तिहाई स्थान स्त्रियों के आरक्षित रहेंगे। इस खण्ड के अधीन आरक्षित पदों को विभिन्न पंचायतों में चक्रानुक्रम से आवंटित किये जाने का प्रावधान है।

भारत में ग्रामीण समुदाय के सर्वांगीण विकास के लिए 1952 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' तथा 1953 में 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा योजना' चलायी गयीं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों में आत्मनिर्भरता तथा जनसहभागिता को बढ़ावा देना था लेकिन सरकार को इस कार्य में आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिल सकी। इसका मुख्य कारण इस योजना में कार्यरत कर्मचारियों में ग्रामीण जीवन के ज्ञान की कमी एवं प्रशिक्षण का अभाव था। अतः 1957 में बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में गाँवों के विकास के लिए एक अध्ययन दल का गठन किया गया। जिसे बलवन्त राय मेहता समिति के नाम से जाना जाता है। 1959 में इस समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज की स्थापना की सिफारिश की, जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लाक स्तर पर मध्यस्तरीय पंचायत समिति तथा

जिला स्तर पर 'जिला परिषद' के गठन पर बल दिया गया था। समिति की सिफारिश के मुताबिक देश की कुछ राज्य सरकारों ने इसे लागू किया, किन्तु 1969 के बाद पंचायती राज प्रणाली में गिरावट आने लगी।

पंचायती राज संस्थाओं को नवजीवन प्रदान करने व ग्रामवासियों की भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अशोक मेहता समिति (1977), जी.वी. के. राव समिति (1985), लक्ष्मी मल सिंधवी समिति (1986), पी.के. धुगन समिति (1988), तथा 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक (पारित नहीं हुआ) जैसे अनेक प्रयास किये गए। अन्ततः इन समितियों की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए 73वें संविधान संशोधन के रूप में 23 अप्रैल, 1993 से नवीन पंचायती राज सम्पूर्ण देश में लागू हुआ। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ग्रामीण स्वराज्य की जिस धारणा का बीजारोपण किया था उसे स्व. राजीव गाँधी ने पहली बार संविधान संशोधन करते हुए 'पंचायती राज विधेयक में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण के साथ पारित किया। इस संशोधन द्वारा पंचायत को एक संवैधानिक संस्था बनाकर शासन की आधारभूत इकाई के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। पूर्व में संविधान के अनुच्छेद 40 में मात्र राज्य द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को प्रोत्साहित करने की बात कही गयी थी तथा पंचायती राज के स्वरूप आदि के संदर्भ में कोई स्वतंत्र व्यवस्था नहीं दी गयी थी। 73वें संशोधन द्वारा संविधान की धारा 243 को प्रतिस्थापित करते हुए पंचायतों को संवैधानिक दर्जा दिया गया। इस नई धारा को जोड़ते समय राज्यों के पंचायती राज विशय पर कानून बनाने के अधिकार को समाप्त तो नहीं किया गया परन्तु उसे इस धारा की व्यवस्थाओं द्वारा परिमार्जित अवश्य कर दिया गया।

73वें संविधान संशोधन में आम जनता की सत्ता में भागीदारी के लिए कानून प्रस्तुत किया गया है। 73वें संविधान संशोधन की धारा 243(6) के अनुसार, पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो और ऐसी विधि में पंचायतों को उपयुक्त स्तर पर ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जो उसमें निर्दिष्ट की जाएं निम्नलिखित के सम्बन्ध में शक्तियां और उत्तरदायित्व न्यायगत करने के लिए प्रबन्ध किए जा सकेंगे–

- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना।
- आर्थिक विकास कार्यान्वित करना और सामाजिक न्याय की ऐसी योजनाओं को जो उन्हें सौंपी जाएँ, जिसके अन्तर्गत वे योजनायें भी हैं, जो 11वीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के सम्बन्ध में हैं।

स्वतंत्रता के बाद राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू कर दी गई थी। वर्ष 1961 से इस व्यवस्था को त्रिस्तरीय स्वरूप में लागू किया गया। 22, अप्रैल, 1994 को इसे संवैधानिक निकाय के रूप में लागू किया गया। मार्च 2008 में पारित पंचायत संसोधन अधिनियम के अनुसार, पंचायत में महिलाओं के लिए आरक्षण 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया। राज्य में पंचायतों की त्रिस्तरीय व्यवस्था लागू है, जो निम्न है–

जिला पंचायत–यह पंचायती राज्य व्यवस्था का सबसे शीर्ष निकाय है। यह एक निगमित निकाय भी है। इसके सदस्यों का चुनाव जिले की 18 या इससे अधिक आयु वर्ग की जनता करती है।

क्षेत्र पंचायत–त्रिस्तरीय व्यवस्था में यह मध्य स्तरीय निगमित निकाय है। इसके अध्यक्ष को प्रमुख एवं उपाध्यक्ष को उप–प्रमुख कहा जाता है। क्षेत्र पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 20 से कम व 40 से अधिक नहीं हो सकती है। इनका चुनाव ग्राम सभा के 18 या इससे अधिक आयु के मतदाता करते हैं।

ग्राम पंचायत–पंचायतीराज व्यवस्था में सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होती है। किसी भी ग्राम पंचायत में सदस्यों की संख्या 5 से कम व 15 से अधिक नहीं हो सकती है। ग्राम पंचायत सदस्यों एवं पंचायत अध्यक्ष (प्रधान) का चुनाव ग्राम सभा के 18 वर्ष या इससे अधिक आयु के सदस्यों द्वारा किया जाता है। ग्राम सभा द्वारा एक उप–प्रधान भी चुना जाता है।

ग्राम सभा से सम्बन्धित विषयों से ग्रामीण समाज की महिलाओं को परिचित कराया जाये, जिसका माध्यम मुख्य रूप से गैर सरकारी संगठन हो। प्रत्येक गांव में घर–घर जाकर लोगों को शिक्षा के प्रति जागरुक किया जाये। ग्रामीण महिलाओं को सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं की जानकारी महिला अधिकारियों द्वारा दिलाई जाये। इसके साथ ही उनको सामाजिक कार्य करने की जिम्मेदारी अधिक से अधिक दिया जाना चाहिए। महिलाओं को समाज में योगदान के लिये समाज के अन्दर बाहर आने जाने के लिए तैयार किया जाये। उनके अन्दर अधिकारियों एवं कर्मचारियों से सम्पर्क करने, योजना की जानकारी करने की क्षमता उत्पन्न की जाये। जिससे वे समाज में सही दिशा में अपना योगदान दे सकें।

निष्कर्ष–पंचायती राज व्यवस्था में यदि महिलाओं को समान अवसर व सुविधायें प्रदान की जायें तो महिलाएँ न सिर्फ पुरुषों के समान बल्कि उनसे बेहतर कार्य कर सकती हैं। विपरीत परिस्थितियों में भी महिलाओं द्वारा अपेक्षा से अधिक किए गए कुशल कार्यों द्वारा परम्परागत शक्ति पुंज पुरुषों की मानसिकता में बदलाव आया है। आज के शहरीकरण, औद्योगीकरण व यान्त्रिकीकरण के युग में पुरुश व महिला सहभागिता के चक्र को पुनर्परिभाषित किया गया है कि मानवीय संसाधनों के विकास में महिला विकास अन्तर्निहित है।

संदर्भ–सूची

1. अग्रवाल, उमेश चन्द्र (मार्च 2001), भारत में महिला समानता और सशक्तीकरण के प्रयास, योजना, राकेश प्रेस, नई दिल्ली

2. आहूजा, राम (2003), सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन्स न्यू दिल्ली

3. आहूजा, राम (2004), भारतीय सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

4. पाण्डेय, राजेश (2001), भारतीय महिलाओं के संवैधानिक अधिकार, देशभक्त प्रकाशन, लखनऊ

5. बोहरा, आशारानी, (1993) भारतीय नारी : दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

6. बोहरा, आशा रानी, औरत (कल, आज और कल), कल्याणी शिक्षा परिषद्, 3320–21, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली–2011

7. अग्रवाल, प्रमोद कुमार, (2008), भारत में पंचायती राज, ज्ञान गंगा, दिल्ली पृ. 15–58

8. चौथा विश्व महिला सम्मेलन (1995), बीजिंग, कार्यवाही हेतु घोषणा पत्र तथा बीजिंग घोषणा, संयुक्त राष्ट्र

9. त्यागी, सुरेन्द्र (2011), पंचायती राज और ग्रामीण विकास, वंदना पब्लिकेषन्स, नई दिल्ली, पृ. 1–58

10. आनन्द, प्रो. सुगम (2007), भारतीय इतिहास में नारी, साहित्य संगम, इलाहाबाद, पृ. 89

11. कुमार, डॉ., राज (2010), महिला एवं विकास, अर्जुन पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 31–41

12. कर्णावत, शशि (2009), पंचायती राज व्यवस्था में रोजगार, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

13. कटारिया, डॉ. सुरेन्द्र (2003), ग्रामीण विकास एवं पंचायतीराज, आर. बी.एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. 1–32

14. चतुर्वेदी, राकेश (2018), पंचायतों का सशक्तीकरण, ''उद्योग नगर प्रकाशन, ए–32, अशोक नगर, गाजियाबाद।

15. तिवारी, नुपुर, (2019), रिथिकिंग दा रोटेशन टर्म ऑफ रिर्जवड सीटस् फॉर वीमन इन पंचायती राज, कॉमन वेल्थ जनरल ऑफ लोकल गवरनेन्स Htpp/Wikipedia.org.in

16. तिवारी, वी. के. (2019), भारतीय संसद में महिला प्रतिनिधित्व, विकास परिचर्चा, व्यावहारिक शोध एवं विकास संस्थान, लखनऊ

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 13-17

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में प्रेस की भूमिका

*डॉ. जगन्नाथ प्रसाद**

सारांश : *1858 से 1919 के बीच का समय केवल भारतीय राष्ट्रवाद की उत्पत्ति का नहीं, बल्कि इसके सक्रिय विकास का भी गवाह रहा। प्रेस ने संगठित रूप में सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों की शुरुआत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा, यही वर्ग राजनीतिक जागरूकता के अग्रदूतों को प्रदान करता था, जिसने अंततः राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय आंदोलन के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। सबसे प्रभावी जन मीडिया के रूप में, प्रेस ने इस संदर्भ में राजनीतिक संगठनों के गठन और प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रेस की जड़ें प्राचीन जासूसी और संचार प्रणालियों में हैं। स्याही और कागज के आविष्कार से पहले, समाचार का महत्व स्पष्ट रूप से समझा जाता था। प्राचीन शासक समाचार एकत्र करने में रुचि रखते थे, क्योंकि यह प्रशासन के लिए आवश्यक था और लोगों के लिए जानकारी प्राप्त करने का एक साधन था। भारतीय प्रेस ने निस्संदेह कट्टर विचारों के प्रचार का एक माध्यम के रूप में कार्य किया और सुधारक और राष्ट्रवादी विचारों के बढ़ते समूह के गठन में मदद की। इसने महिला भ्रूण हत्या, विधवापन, बाल विवाह, महंगे विवाह प्रणाली, वेश्यावृत्ति, अछूत प्रथा, अंधविश्वास, सरकारी फिजूलखर्ची, कराधान, ब्रिटिश सरकार और यूरोपीय समुदाय की नस्लीय घमंड, सेवाओं का भारतीयकरण और विधायी संस्थानों में भारतीय प्रतिनिधित्व जैसे मुद्दों पर बहस को जीवित रखा। कई समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और जर्नल सामने आए। 18वीं और 19वीं सदी विभिन्न भागों में सामाजिक–धार्मिक, राजनीतिक–आर्थिक और बौद्धिक गतिविधियों के उदय के कारण प्रमुख बनी, विशेष रूप से बंगाल और तमिलनाडु में। प्रेस के माध्यम से आर्थिक जागरूकता का विचार उभरा, जो अंततः देश में उपनिवेशी सरकार के लिए एक चुनौती बन गया। इस प्रकार, एक चरण में प्रेस भारतीय राष्ट्रवादियों, विशेष रूप से देश के युवाओं के हाथों में एक शक्तिशाली हथियार बन गया, जिसने सभी प्रांतों के व्यक्तियों को राष्ट्रीय कारण के लिए एकीकृत किया।*

मुख्य शब्द : *भारतीय राष्ट्रवाद, सामाजिक–धार्मिक–सुधार आंदोलन, राजनीतिक जागरूकता, राजनीतिक संगठन, संचार प्रणाली, प्रशासन, प्रचार, भारतीयकरण, ब्रिटिश सरकार, यूरोपीय समुदाय, स्थानीय प्रेस।*

परिचय : 1858 से 1919 के बीच का समय केवल भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का नहीं, बल्कि इसके सक्रिय विकास का भी साक्षी रहा। जागरूक भारतीय बुद्धिजीवियों को उनके मुक्ति के कार्यक्रम में एक वाणिज्यिक और प्रारंभिक औद्योगिक वर्ग द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ। प्रेस ने संगठित रूप में सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों की शुरुआत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा, यही वर्ग राजनीतिक जागरूकता के अग्रदूतों को प्रदान करता था, जिसने अंततः राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय आंदोलन के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। इस वर्ग ने राजनीतिक जागरूकता के अग्रणी के रूप में तेजी से शक्ति और संख्या में वृद्धि की। उन्होंने प्रेस का उपयोग बढ़ती हुई प्रभावशीलता के साथ किया। इस अवधि की विशेषता भारतीय प्रेस के बढ़ते राजनीतिकरण से थी।[1] प्रारंभ में, केवल कुछ समाचार पत्रों ने राजनीतिक मुद्दों के लिए अपने स्थान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा समर्पित किया।

मीडिया के रूप में प्रेस : प्राचीन शासक समाचार एकत्रित करने में रुचि रखते थे, क्योंकि यह प्रशासन के लिए आवश्यक था और लोगों के लिए जानकारी प्राप्त करने का एक साधन था। प्रारंभिक हिंदू शासक राज्य के उद्देश्यों के लिए समाचार संग्रह और संचार के लिए एक विस्तृत जासूसी प्रणाली बनाए रखते थे। वे न केवल अपने राज्य के भीतर, बल्कि पड़ोसी राज्यों से भी प्रशासनिक और राजनीतिक महत्व की जानकारी एकत्र करते थे। इस संदर्भ में, प्रेस ने राजनीतिक संगठनों के गठन और प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका मुख्य कारण यह था कि राजनीतिक संघ और समाज सामान्य विचारों और विचारधाराओं के प्रसार के लिए प्रेस पर निर्भर थे;

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बी.डी. कॉलेज, पटना*

इसके अलावा, प्रारंभिक राजनीतिक संघों या समाजों में देश के विभिन्न हिस्सों में बड़ी संख्या में लोगों की वफादारी नहीं थी। प्रेस की उत्पत्ति प्राचीन जासूसी और संचार प्रणालियों से हुई है। स्याही और कागज के आविष्कार से पहले, समाचार का महत्व स्पष्ट रूप से समझा जाता था। प्रबुद्ध भारतीयों ने ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से स्थानीय भाषाओं में समाचार पत्रों के प्रकाशन में रुचि दिखाई।[2]

भारतीय प्रेस, निस्संदेह, कट्टर विचारों के प्रचार का एक माध्यम बना और सुधारक तथा राष्ट्रवादी विचारों के एक बढ़ते समूह के निर्माण में सहायता की। इसने महिला भ्रूण हत्या, विधवापन, बाल विवाह, महंगे विवाह प्रणाली, वेश्यावृत्ति, अछूत प्रथा, अंधविश्वास, सरकारी फिजूलखर्ची, कराधान, ब्रिटिश सरकार और यूरोपीय समुदाय की नस्लीय घमंड, सेवाओं का भारतीयकरण और विधायी संस्थानों में भारतीय प्रतिनिधित्व जैसे मुद्दों पर बहस को जीवित रखा। अधिकांश समाचार पत्र मुख्यतः स्थानीय मामलों से संबंधित थे। हालांकि, समय के साथ, उनके रुचि और दृष्टिकोण में बड़े राजनीतिक मामलों की ओर एक स्पष्ट बदलाव आया। सामान्य मुद्दे उभरने लगे, और विशेष रूप से स्थानीय भाषा के प्रेस में इन मुद्दों पर चर्चा ने विचारों का एक महत्वपूर्ण सहमति उत्पन्न करना शुरू किया।

19वीं सदी के पहले भाग में, भारत और तमिलनाडु में प्रेस अपने प्रारंभिक चरण में था। कई समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और जर्नल सामने आए, जिनमें से अधिकांश का जीवनकाल अस्थायी था। फिर 1857 की घटना हुई, जिसने ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की कमियों को उजागर किया। इस घटना ने शासक और शासित दोनों की निराशा को सामने लाया। इस घटना के परिणामस्वरूप कंपनी का प्रशासन समाप्त हो गया। इसके फलस्वरूप, भारत सरकार का नियंत्रण ब्रिटिश क्राउन को सौंपा गया, जो रानी की उद्घोषणा के साथ 1858 में एक मैग्ना कार्टा के रूप में हुआ। इससे जनता का विश्वास और आत्मविश्वास पुनर्स्थापित हुआ। प्रेस और पत्रकारिता को अस्थायी रूप से एक झटका लगा था, लेकिन यह फिर से नई ऊर्जा और साहस के साथ जीवित हो गई। इसके बाद, सरकार विभिन्न क्षेत्रों में विशेष रूप से सतर्क और सक्रिय हो गई ताकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को मजबूत किया जा सके। इसने तमिलनाडु और भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों की शुरुआत की, साथ ही राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया में भी। आंतरिक और बाहरी कारणों ने जनता में जागरूकता के उदय को जन्म दिया। यह कहा जाना चाहिए कि सामाजिक–धार्मिक आंदोलनों का विस्तार, बार–बार आने वाली अकाल, बढ़ती आर्थिक कठिनाइयाँ, अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार, 1870–1871 में जर्मनी और इटली का स्वतंत्रता और एकीकरण, आयरिश होम रूल आंदोलन, अफ्रीका और एशिया में पश्चिमी प्रभुत्व का विस्तार, ये सभी प्रमुख कारक थे जो स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान व्यक्तियों के सोचने के तरीके में परिवर्तन के लिए जिम्मेदार थे। यह परिवर्तन प्रेस और पत्रकारिता के माध्यम से संभव हुआ।[3] वास्तव में, इसका उभरते सार्वजनिक दृष्टिकोण के साथ एक कारणात्मक संबंध था; दोनों ने न केवल आपस में बातचीत की, बल्कि एक दूसरे पर काफी हद तक निर्भरता भी विकसित की।

18वीं और 19वीं सदी सामाजिक–धार्मिक, राजनीतिक–आर्थिक और बौद्धिक गतिविधियों के उभार के कारण महत्वपूर्ण बन गई, विशेष रूप से बंगाल और तमिलनाडु में। 19वीं सदी के तीसरे चौमास में कई संगठन जैसे भामा समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, शुद्धि आंदोलन, सनातन धर्म सभा, कूका आंदोलन, सिंह सभा आंदोलन, अहमदिया आंदोलन और अन्य कई संगठनों का उदय हुआ और उन्होंने नई जमीन हासिल की। लगभग सभी संगठनों के अपने–अपने पत्र थे। जल्द ही, कई समाचार समाज, लीग, बहस क्लब और संघ अस्तित्व में आए। ये संस्थाएँ अपनी विचारधाराओं, मिशनों, लक्ष्यों और उद्देश्यों को स्थानीय और एंग्लो–इंडियन प्रेस के माध्यम से लोकप्रिय बनाने में सक्षम थीं। यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न समुदायों के संगठनों और राजनीतिक संघों ने अपने प्रेस (अखबार, पत्रिकाएँ आदि) की स्थापना की।[4] इस अवधि में कुछ प्रमुख राजनीतिक संगठनों का भी उदय हुआ, जैसे भारतीय संघ, मद्रास महाजन सभा, बंबई प्रेसीडेंसी संघ, भारतीय संघ और निश्चित रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो 25 दिसंबर, 1885 को स्थापित हुई। इन सभी संघों ने, उनके चरित्र, उद्देश्य और लक्ष्यों के बावजूद, प्रेस के लाभ और उपयोग को महसूस किया और समझा। उन्होंने अपने समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का प्रबंधन किया। 1857 के बाद, सबसे महत्वपूर्ण विकास जो हुआ, वह था एंग्लो–इंडियन प्रेस और भारत के लोगों के बीच संबंध। 1858 से 1885 के बीच, प्रेस और पत्रकारिता का इतिहास कई कारणों से विशेष महत्व रखता था। केवल शिक्षित और विचारशील व्यक्तियों ने ही इनकी ओर आकर्षित नहीं किया, बल्कि एक व्यापक खाई ने उन्हें उनके अंग्रेजी समकक्षों से दूर कर दिया।

स्थानीय प्रेस : स्थानीय प्रेस ने विशेष रूप से इस तथ्य को नकारा कि सभा का उपयोग भारतीय जनता को कुछ महत्वपूर्ण रियायतें देने के अवसर के रूप में नहीं किया गया। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण विशेषता

स्थानीय प्रेस का उदय था। स्थानीय और एंग्लो–इंडियन प्रेस ने 19वीं सदी के दूसरे भाग के अधिकांश समय में सहमति का एक माध्यम उत्पन्न करने की क्षमता दिखाई। इसने अंग्रेजी प्रेस के साथ तुलना को चुनौती दी। ईश्वर चंद्र विद्यासागर का पत्र 'सोम प्रकाश' कई स्थापित पत्रों के साथ प्रतिस्पर्धा करता था। बंगाल सचिवालय के रजिस्ट्रार ने अपनी गोपनीय रिपोर्ट में इसके संपादक की क्षमता और साहस को स्वीकार किया। 1857 के बाद के दौर में, स्थानीय प्रेस को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। संपादकों के पास विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ नहीं थीं। पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, उन्हें आय के कई अन्य स्रोतों को आजमाना पड़ा। हालांकि, इसने उन्हें समाज की बेहतर समझ प्रदान की और उन्हें जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया। प्रशासन और स्थानीय संपादकों के बीच कोई प्रेम नहीं था।[5]

पुलिस और मजिस्ट्रेट ने स्थानीय भाषाओं के संपादकों के खिलाफ कठोर और सख्त तरीकों का उपयोग किया, जो कि उनकी कमजोर सामाजिक–आर्थिक स्थिति के कारण था। यह माना जाता था कि स्थानीय भाषाओं के समाचार पत्रों का प्रकाशन लाभदायक व्यवसाय नहीं था। उनकी प्रसार संख्या कई कारकों से प्रभावित थी। उदाहरण के लिए, पहले, जिस क्षेत्र में उस विशेष स्थानीय भाषा का उपयोग होता था; दूसरे, उसके पाठकों का आर्थिक स्तर अपेक्षाकृत कमजोर था, जिसके कारण सदस्यता में चूक होती थी। इसलिए, समाचार पत्रों के कॉलम में डिफॉल्टर्स के लिए करुणामय अपीलें करनी पड़ती थीं। उस समय स्थानीय भाषाओं के पत्रिकाओं का प्रकाशन अंग्रेजी भाषा के पत्रों के साथ सहायक के रूप में प्रचलित नहीं था, और कमजोर संसाधनों वाले स्थानीय पत्रों के लिए रॉयटर की सदस्यता लेना और संवाददाताओं को नियुक्त करना संभव नहीं था। मजबूरन, उन्होंने अधिकारियों और क्लर्कों के माध्यम से आधिकारिक रहस्यों में झांकने की कोशिश की, जिससे पत्रिकाओं के प्रति उनका रवैया उग्र हो गया।

पत्रकारिता का दृष्टिकोण : पत्रकारिता ने यह कहा कि भारत में राजनीतिक आंदोलन को मजबूत किया जाना चाहिए और भारतीयों को देश में विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच विद्यमान नफरत को भुला देना चाहिए। जब गांधी ने असहयोग और खिलाफत आंदोलन की शुरुआत की, तब प्रेसीडेंसी में राष्ट्रीयतावादी अंग्रेजी और स्थानीय भाषा की पत्रकारिता ने जनमत को इन आंदोलनों के पक्ष में आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाचार पत्रों ने देखा कि गांधी और कांग्रेस ने स्वतंत्रता, आत्म–सम्मान और आत्म–निर्णय प्राप्त करने के लिए असहयोग का समर्थन किया। यह एक सिद्धांतों का आंदोलन था और यदि वे सरकार के साथ सहयोग करते हैं बजाय इसके कि ऐसे आंदोलन की शुरुआत करें, तो दुनिया भारत के लोगों पर हंसती। सरकारी स्कूलों, न्यायालयों, विधायी परिषदों और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार असहयोग आंदोलन से अलग नहीं किया जा सकता। मद्रास मेल, न्यू इंडिया, जस्टिस और द्रविडियन जैसे पत्रों ने असहयोग आंदोलन के खिलाफ प्रचार कार्य में संलग्नता दिखाई।[6]

द्रविडियन ने यह अवलोकन किया कि 'चाहे राजतंत्र हो या गणतंत्र, लोगों को सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों और नियमों का पालन करना चाहिए। देश में शांति तभी स्थापित हो सकती है जब इन कानूनों का सम्मान किया जाए।'[7] यदि देश के कानूनों को नजरअंदाज किया जाता है, तो हर जगह अशांति, अव्यवस्था, अन्याय और घृणित अपराध फैल जाएंगे। हिंदू और जस्टिस ने मलाबार विद्रोह के प्रकोप को खिलाफत आंदोलन से जोड़ा और चेतावनी दी कि मलाबार की समस्या स्वराज का संकेत है। जस्टिस ने कहा कि हत्या, बलात्कार और बलात्कारी धर्मांतरण गांधी की रणनीतियों के अनिवार्य परिणाम थे। हालांकि, राष्ट्रीयतावादी अंग्रेजी और स्थानीय पत्रिकाओं ने इस सिद्धांत का पूरी तरह से खंडन किया कि विद्रोह गैर–सहयोगियों के उपदेश के कारण हुआ। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि यह 'अन्यायपूर्ण आदेश और जिला अधिकारियों का गैर–जिम्मेदाराना व्यवहार' था जिसने समस्या को जन्म दिया। उन्होंने यह भी जोड़ा कि मॉपलाओं के उन्माद की आग को कुछ व्यक्तियों की लापरवाह प्रचार ने भड़काया। मद्रास प्रेसीडेंसी के लोगों की भावनाओं को शांत करने के लिए, वेल्स के राजकुमार 13 जनवरी, 1922 को मद्रास बंदरगाह पर उतरे। एंग्लो–भारतीय पत्रिकाओं के साथ–साथ न्यायिक संस्थाओं, अधिकांश मलयालम पत्रों और कुछ अपवादों के साथ दक्षिण कर्नाटकी गैर–ब्राह्मण पत्रिकाओं ने वेल्स के राजकुमार की यात्रा का स्वागत किया, जबकि हिंदू, स्वदेशी मित्र, आंध्र पत्रिका, कृष्ण पत्रिका, हितकारिणी, राष्ट्रवादी उर्दू और कर्नाटकी पत्रिकाओं ने वेल्स के राजकुमार की यात्रा की निंदा की। हालांकि, कुछ राष्ट्रवादी पत्रिकाओं ने वेल्स के राजकुमार की गतिविधियों को समान महत्व दिया। प्रेस ने वेल्स के राजकुमार के बहिष्कार की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जब गांधी ने चौरी–चौरा घटना के बाद असहयोग आंदोलन को निलंबित किया, तो प्रेस इस विकास पर विभाजित हो गई। राष्ट्रीय, अंग्रेजी और स्थानीय प्रेस जैसे स्वदेशी मित्रन, तमिलनाडु और आंध्र पत्रिका ने असहयोग आंदोलन के निलंबन का विरोध किया, जबकि कांग्रेस समर्थक प्रेस जैसे नवसक्ति और ऊलियान ने कांग्रेस कार्य समिति के निर्णय का समर्थन किया। राष्ट्रपति में प्रेस के दृष्टिकोण चाहे जो भी हों, उनमें से अधिकांश ने सरकार के दमनकारी उपायों का विरोध करने में एकजुटता दिखाई। वफादार पत्रिकाएँ जैसे द्रविडियन ने सरकार का समर्थन किया और राष्ट्रीय आंदोलन के खिलाफ लिखा। इसका कारण स्पष्ट और सरल है, क्योंकि उनके अपने हित जुड़े हुए थे।[8]

पत्रकारिता की भूमिका : इस प्रकार, पत्रकारिता का भारत में नई राजनीति के उदय के साथ एक अनौपचारिक संबंध था। एक ओर, इसने राजनीतिक जागरूकता के विकास को प्रभावित किया और राजनीतिक चेतना के प्रसार को संभव बनाया। पत्रकारिता ने विशेष रूप से उन विचारों और विचारधाराओं को साझा किया जब यह लोगों के लिए सबसे प्रभावी जन संचार माध्यम था। दूसरी ओर, भारतीय पत्रकारिता की प्रकृति स्वयं समकालीन राजनीति से प्रभावित थी। यह आपसी अंतःक्रिया निरंतर थी। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य का कोई भी पहलू ऐसा नहीं था जिस पर स्थानीय प्रेस ने विस्तृत चर्चा न की हो। इसके अलावा, भारतीय समाज की विविधता को सच्चाई से दर्शाते हुए, भारतीय प्रेस ने इन विभिन्न मुद्दों पर विभिन्न प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत किया। लेकिन स्थानीय प्रेस ने केवल प्रतिक्रियाओं को ही नहीं दर्शाया, बल्कि इन प्रतिक्रियाओं को व्यापक और ठोस श्रेणियों में समेकित करने की प्रक्रिया को भी संभव बनाया, जिसके बिना किसी भी प्रकार की एकीकृत राजनीतिक कार्रवाई असंभव रहती। यह कहा जा सकता है कि ये संगठन प्रभावी जन संचार माध्यम के बिना टिकाऊ प्रस्ताव नहीं हो सकते थे, जिसे प्रेस ने उन्हें प्रदान किया। यह सत्य है कि राजनीतिक या अर्ध–राजनीतिक संघों और समाजों के उदय के बिना ऐसी ठोसता शायद ही संभव होती। इस प्रकार, स्थानीय और क्षेत्रीय प्रेस तथा भारतीय राजनीतिक विकास के बीच एक आपसी अनौपचारिक संबंध था।[9]

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन : पत्रकारिता ने न केवल तमिलनाडु में, बल्कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनीतिक–आर्थिक परिवर्तन लाए। इसे आधुनिक समय में चौथे स्तंभ और आधार के रूप में माना गया है। वास्तव में, पत्रकारिता ने आधुनिक तमिलनाडु और आधुनिक भारत की वैचारिक नींव स्थापित करने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की। विशेष रूप से स्थानीय भाषाओं में पत्रकारिता ने एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में कार्य किया, जिसके माध्यम से व्यक्तियों, संगठनों और संस्थानों ने न केवल अपने विचार, विचारधाराएँ और सिद्धांतों का आदान–प्रदान किया, बल्कि नए घटनाक्रमों का निर्माण भी किया। यह समाज का एक प्रभावशाली दर्पण और एक शक्तिशाली सामाजिक संस्था के रूप में कार्य करती रही, जो अक्सर व्यक्तियों के दृष्टिकोण को दर्शाती थी। पत्रकारिता ने न केवल राष्ट्र–राज्य की नींव रखी, बल्कि भारत में राष्ट्रीयता, धर्मनिरपेक्षता और जनहित प्रशासन जैसे भावनाओं का निर्माण भी किया। इसके महत्व और सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए, तमिलनाडु की पत्रकारिता की भूमिका का मूल्यांकन करना स्वतंत्रता संग्राम के पहले चरण में अत्यंत आवश्यक हो गया। पत्रकारिता के सहयोग और सहायता से समय–समय पर सम्मेलन, बैठकें और सभा आयोजित की जा सकीं; विवादों का समाधान किया जा सका, आंदोलनों का आयोजन हुआ, संस्थानों का निर्माण हुआ और उनके कार्यक्रमों और नीतियों को जनसामान्य तक पहुँचाया गया।[10] मध्यवर्ग और पेशेवर वर्ग वास्तव में ब्रिटिश द्वारा प्रदान की गई शिक्षा प्रणाली का परिणाम था। हालांकि, यह नकारा नहीं जा सकता कि प्रेस ने उक्त वर्ग के अस्तित्व में आने के प्रारंभिक चरण में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष : प्रेस के माध्यम से आर्थिक जागरूकता का एक विचार उभरा, जिसने अंततः देश में उपनिवेशी सरकार के लिए एक चुनौती प्रस्तुत की। तमिलनाडु के राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर के कई नेताओं ने इस मीडिया के माध्यम से अपने सार्वजनिक करियर की शुरुआत की और अपनी पहचान केवल प्रांतीय स्तर पर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी स्थापित की। इस प्रकार, एक समय में प्रेस भारतीय राष्ट्रवादियों, विशेष रूप से देश के युवाओं के हाथों में एक शक्तिशाली हथियार बन गया, जिसने सभी प्रांतों के व्यक्तियों को राष्ट्रीय कारण के लिए एकजुट किया। यही कारण था कि तमिलनाडु का प्रेस किसी विशेष क्षेत्र तक सीमित या अलगाव में नहीं रहा। लगभग सभी भारतीय नेता, चाहे वे किसी भी प्रांत से हों, प्रेस की स्वतंत्रता को देश की समग्र प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक मानते थे। इसके अलावा, प्रेस ने एक विपक्षी गुट के रूप में कार्य किया, क्योंकि 1885–1916 के दौरान राजनीतिक पार्टी प्रणाली पूरी तरह से विकसित नहीं हुई थी। यह सत्य है कि प्रेस ने भारत में उपनिवेशी शासन

की दमनकारी और शोषणकारी नीतियों का काफी विरोध किया। इस प्रकार, पश्चिम को श्रेय दिया जाना चाहिए जिसने जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाने में इसके महत्व को समझा। 18वीं सदी के मध्य में भारत में ब्रिटिश शासन की शुरुआत के साथ, यहाँ कोई भी प्रकार का प्रेस नहीं था।

संदर्भ–सूची

1. अबुल कलाम आज़ाद, भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की, मुंबई, 1958
2. अंबिका चरण मजूमदार, भारतीय राष्ट्रीय विकास, मद्रास, 1915
3. अमोट स्टैनफोर्ड, भारतीय प्रेस का इतिहास, नई दिल्ली, 1829
4. एंथनी स्मिथ, समाचार पत्र – एक अंतरराष्ट्रीय और ऐतिहासिक दृष्टिकोण, लंदन, 1979
5. बाम्स, मार्गरीटा, भारतीय प्रेस, मुंबई, 1940
6. बंदमतरमम, डब्ल्यू.आर., भारतीय राजनीति, कोलकाता, 1898
7. बर्डवुड, सर जॉर्ज, भारत का स्थानीय प्रेस, नई दिल्ली, 1879
8. चलापति, एम., भारत में प्रेस, नई दिल्ली, 1968
9. चटर्जी, ए.सी., भारत का स्वतंत्रता संग्राम, 1947
10. चिंतामणि, सी.वाई., म्यूटिनी के बाद की भारतीय राजनीति, मद्रास, 1937

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 18-22

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

इतिहास और इतिहास लेखन : इतिहास की प्रकृति का अध्ययन

*डॉ. विजय शंकर श्रीवास्तव** *पुष्पा कुमारी***

सार : *यह शोध पत्र सामान्यतः इतिहास और इतिहास लेखन पर चर्चा करता है। इस पत्र को पढ़ने के बाद, पाठक को इतिहास के अर्थ, स्वभाव और दायरे को सही ढंग से समझने में सक्षम होना चाहिए। साथ ही, यह पत्र कुछ प्रसिद्ध इतिहासकारों के 'इतिहास' के संबंध में विचारों पर भी ध्यान केंद्रित करेगा। इतिहास लेखन सामान्यतः उस दृष्टिकोण को संदर्भित करता है जिसमें इतिहास का अध्ययन किया जाता है। इसलिए, इतिहास को सही ढंग से समझने के लिए, हमें इतिहास लेखन का भी उचित ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार, इस पत्र का उद्देश्य 'इतिहास' विषय पर एक उचित मार्गदर्शिका प्रदान करना है।*

सांकेतिक शब्द : *इतिहास, इतिहास लेखन, इतिहास का स्वभाव, इतिहास लेखन का इतिहास।*

परिचय : अंग्रेजी शब्द 'इतिहास' ग्रीक शब्द 'हिस्टोरिया' से निकला है, जिसका अर्थ है 'जांच, अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान'। हालांकि, 'इतिहास' शब्द जर्मन शब्द 'गेशिच्टे' से लिया गया है, जिसका अर्थ है अतीत की महत्वपूर्ण कथा। सामान्यतः, इतिहास अतीत के अध्ययन को संदर्भित करता है और यह सभ्यता के सभी पहलुओं को कवर करता है। जो विद्वान इतिहास के बारे में लिखते हैं, उन्हें इतिहासकार कहा जाता है। इतिहास लेखन का विकास प्राचीन ग्रीक इतिहासकारों जैसे हेरोडोटस और थ्यूसीडाइड्स के साथ शुरू हुआ। हेरोडोटस, जिन्हें 'इतिहास का पिता' कहा जाता है, पहले इतिहासकार थे जिन्होंने जानकारी को एक खाते के रूप में एकत्रित और व्यवस्थित रूप से संसाधित किया। विभिन्न इतिहासकारों ने इतिहास की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

एडवर्ड हैलेट कैर– ''इतिहास वर्तमान और अतीत के बीच एक अंतहीन संवाद है और इतिहासकार का मुख्य कार्य अतीत को समझना और उस पर अधिकार प्राप्त करना है, ताकि वर्तमान को समझा जा सके।''[1]

प्रोफेसर कार्ल जी. गुस्तावसन– ''इतिहास मानव ज्ञान का एक शिखर है, जहाँ से हम अपनी पीढ़ी के कार्यों को देख सकते हैं और उन्हें उचित आयामों में समायोजित कर सकते हैं। इतिहास व्यक्ति को यह देखने में सक्षम बनाता है कि वह उस जीवित प्रक्रिया का हिस्सा है, जो अतीत से उभरी है और अनिवार्य रूप से हमारे जीवनकाल से परे फैलेगी। हम अतीत के उत्पाद हैं, लेकिन पूर्ण उत्पाद नहीं हैं।''[2]

विल डुरेंट– ''इतिहास उन सभ्य पुरुषों की कथा है जिन्होंने अतीत में क्या सोचा या किया।''[3]

प्रोफेसर ए.एल. रोव्स– ''इतिहास मूलतः समाजों में पुरुषों के जीवन का रिकॉर्ड है, जो उनके भौगोलिक और भौतिक परिवेश में होता है। उनका सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश एक–दूसरे के साथ बातचीत से उत्पन्न होता है, समाज और उसके भौगोलिक स्थिति के बीच।''[4]

प्रोफेसर जी.आर. एल्अन– ''इतिहास उन सभी मानव कहानियों, विचारों, कार्यों और दुखों से संबंधित है जो अतीत में हुईं और वर्तमान में उनका प्रभाव है; और यह घटनाओं के दृष्टिकोण से परिवर्तन और विशिष्टता के संदर्भ में इनसे निपटता है।''[5]

जॉन जैकब एंडरसन– ''इतिहास उन घटनाओं की कथा है जो मानवता के बीच हुई हैं, जिसमें राष्ट्रों के उत्थान और पतन का विवरण शामिल है, साथ ही अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों का भी जो मानव जाति की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करते हैं।''[6]

* *शोध निर्देशक, पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, आर.एल.एस.वाई. कॉलेज, औरंगाबाद*

** *शोधार्थी, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया*

थॉमस चार्ली : ''विश्व इतिहास महान व्यक्तियों की जीवनी है।''[7]

लॉर्ड एक्अन– ''इतिहास मानव स्वतंत्रता की खुला कहानी है।''[8]

हेनरी जॉनसन– ''इतिहास, अपने व्यापक अर्थ में, वह सब कुछ है जो कभी हुआ।''[9]

आर. जी. कॉलिंगवुड– ''हर इतिहासकार इस बात पर सहमत होगा, मुझे लगता है, कि इतिहास एक प्रकार की खोज या अनुसंधान है। यह किस प्रकार की खोज है, यह मैं अभी नहीं पूछता? मुख्य बात यह है कि यह सामान्यतः उन चीजों में आता है जिन्हें हम विज्ञान कहते हैं : अर्थात, विचारों के वे रूप जिनके माध्यम से हम प्रश्न पूछते हैं और उनके उत्तर देने का प्रयास करते हैं। सामान्यतः विज्ञान, यह समझना महत्वपूर्ण है, केवल उन चीजों को इकट्ठा करने और उन्हें इस या उस प्रकार के पैटर्न में व्यवस्थित करने में नहीं है जो हम पहले से जानते हैं। यह उस चीज़ पर ध्यान केंद्रित करने में है जिसे हम नहीं जानते, और उसे खोजने का प्रयास करने में है। पहले से ज्ञात चीजों के साथ धैर्यपूर्वक खेलना इस लक्ष्य की ओर एक उपयोगी साधन हो सकता है, लेकिन यह स्वयं में लक्ष्य नहीं है। यह केवल एक साधन है। यह वैज्ञानिक रूप से तब तक मूल्यवान है जब तक कि नई व्यवस्था हमें उस प्रश्न का उत्तर देती है जिसे हम पहले से पूछने का निर्णय ले चुके हैं। यही कारण है कि सभी विज्ञान हमारे अपने अज्ञानता के ज्ञान से शुरू होता है– न कि हमारे सभी चीजों के अज्ञानता से, बल्कि किसी निश्चित चीज के अज्ञानता से – संसद की उत्पत्ति, कैंसर का कारण, सूर्य की रासायनिक संरचना, बिना किसी व्यक्ति या घोड़े या किसी अन्य आज्ञाकारी जानवर के मांसपेशियों के प्रयास के पंप को काम करने का तरीका। विज्ञान चीजों को खोजने का कार्य है : और इस अर्थ में इतिहास एक विज्ञान है।''[10]

इतिहास की उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि मानव सभ्यता में इतिहास का महत्व कितना है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य कई क्षेत्रों का इतिहास में समावेश है।

इतिहास की प्रकृति : पहले, इतिहास को केवल अतीत में घटित घटनाओं का रिकॉर्ड माना जाता था। हालांकि, वर्तमान समय में, इस विषय का अध्ययन एक अधिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है। एक इतिहासकार को घटनाओं का मूल्यांकन और विश्लेषण निष्पक्षता के साथ करना आवश्यक है। व्यक्तिगत राय और विचारों को ऐतिहासिक तथ्यों में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

वास्तव में, कई बार इतिहास लिखते समय, एक इतिहासकार निष्पक्ष नहीं रह पाता और इस प्रकार उसके कार्यों पर उसकी पूर्वाग्रह का प्रभाव पड़ता है। एक इतिहासकार अपने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में अतीत का विश्लेषण करता है, इसलिए उसके लिए पूर्वाग्रहित राय विकसित करने की संभावना होती है। इतिहासकार वर्तमान के प्रकाश में अतीत का अध्ययन करता है, इसलिए वर्तमान समय के विकास अतीत के विश्लेषण को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए, एक इतिहासकार के लिए किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त रहना आवश्यक है।

1. **गतिशीलता–** इतिहास मानव के समय के साथ विकास का अध्ययन करता है। इतिहास स्थिर नहीं है, बल्कि इसकी प्रकृति गतिशील है। यह दर्शाता है कि मनुष्य ने युगों के माध्यम से कैसे प्रगति की है।

2. **अतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान का अध्ययन–** वर्तमान अतीत का परिणाम है। इसलिए, इतिहास हमें यह समझने में मदद करता है कि समाज अपनी वर्तमान स्थिति में कैसे पहुँचा।

3. **कालक्रमानुसार–** इतिहास उन घटनाओं की श्रृंखला से संबंधित है जो किसी विशेष समय पर हुईं। प्रत्येक घटना उस समय की पृष्ठभूमि में दर्ज की जाती है जब यह हुई।

4. **स्वाभाविक रूप से वस्तुनिष्ठ–** इतिहास का आदर्श विवरण जितना संभव हो सके वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। डेटा को प्रामाणिक स्रोतों पर आधारित तैयार करने की व्यवस्था होनी चाहिए और पूर्वाग्रह से मुक्त व्याख्या की जानी चाहिए। यह अतीत की स्पष्ट समझ में सहायक होता है।

5. **बहुआयामी–** मानव सभ्यता के हर पहलू का अध्ययन इतिहास के अंतर्गत किया जाना चाहिए। इतिहास को केवल राजनीतिक इतिहास या शासकों के इतिहास तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए, जिन्होंने लंबे समय तक इतिहास पर प्रभुत्व रखा है।

6. **उचित विश्लेषण–** चयनित घटनाओं का केवल वर्णन नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि एक उचित विश्लेषण की आवश्यकता है। हालांकि, यह विश्लेषण पूर्वाग्रह रहित और किसी भी प्रकार के प्रभावों से मुक्त होना चाहिए। सत्य और केवल सत्य ही एक लेखन को ऐतिहासिक रिकॉर्ड में बदलने के लिए आवश्यक है।

9. महत्वपूर्ण– इतिहास केवल उन घटनाओं को दर्ज करता है जो स्वभाव में महत्वपूर्ण होती हैं। दैनिक जीवन की अप्रासंगिक और महत्वहीन घटनाएँ इतिहास का हिस्सा नहीं बनतीं।

10. स्थायी और निरंतर– इतिहास मानव विकास के युगों के माध्यम से विकास को दर्शाता है, इसलिए इतिहास एक ऐसा प्रक्रिया है जो अत्यधिक स्थायी और निरंतर है, जिसने सभ्यता की यात्रा को देखा है।

इतिहास का महत्व : सामान्यतः, लोग वर्तमान में जीने में अधिक रुचि रखते हैं और मृत अतीत में नहीं। हालांकि, अतीत के उचित ज्ञान के बिना वर्तमान की सही समझ नहीं हो सकती। वास्तव में, अधिकांश वर्तमान समस्याओं की जड़ें अतीत में हैं। हम इन समस्याओं के उचित समाधान तक नहीं पहुँच सकते जब तक हम यह नहीं समझते कि ये समस्याएँ कैसे उत्पन्न हुईं और विकसित हुईं। इसके अलावा, हम अपनी क्षमताओं को सही तरीके से नहीं जान सकते जब तक हम अतीत में मानव सभ्यता की यात्रा के बारे में नहीं पढ़ते। इतिहासकार आर. जी. कॉलिंगवुड के शब्दों में, 'इतिहास मानव आत्म–ज्ञान के लिए है। यह सामान्यतः माना जाता है कि मनुष्य के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह स्वयं को जाने : जहाँ स्वयं को जानने का अर्थ है केवल अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को नहीं जानना, जो उसे अन्य मनुष्यों से अलग करती हैं, बल्कि उसके मानव होने की प्रकृति को जानना। स्वयं को जानने का अर्थ है, पहले, यह जानना कि मनुष्य होना क्या है; दूसरे, यह जानना कि आप किस प्रकार के मनुष्य हैं; और तीसरे, यह जानना कि आप कौन हैं और कोई और नहीं है। स्वयं को जानने का अर्थ है यह जानना कि आप क्या कर सकते हैं; और चूँकि कोई भी यह नहीं जानता कि वह क्या कर सकता है जब तक वह प्रयास नहीं करता, मनुष्य क्या कर सकता है, इसका एकमात्र संकेत यह है कि मनुष्य ने क्या किया है। इसलिए, इतिहास का मूल्य यह है कि यह हमें सिखाता है कि मनुष्य ने क्या किया है और इस प्रकार मनुष्य क्या है।

इतिहास लेखन की विधा : इतिहास लेखन की विधा अतीत के वर्णनों का विश्लेषण है। यह शब्द इतिहास लेखन के कला को संदर्भित करता है। यह ऐतिहासिक घटनाओं का इतिहास या इतिहास का इतिहास है। यह हमें इतिहास लेखन के विकास और परिवर्तन की कहानी बताता है, जो विभिन्न ऐतिहासिक चरणों में हुआ। इसमें इतिहास लेखन से संबंधित तकनीकों और विचारों का विकास भी शामिल है। इतिहास लेखन में विश्लेषण आमतौर पर अतीत और वर्तमान में अन्य इतिहासकारों की व्याख्याओं, वर्णनों, डेटा के उपयोग या कार्यप्रणाली पर केंद्रित होता है। कोनल फुरे और माइकल जे. सेलवोरिस के अनुसार, ''इतिहास लेखन उस तरीके का अध्ययन है जिससे इतिहास लिखा गया है और लिखा जा रहा है। ऐतिहासिक लेखन का इतिहास... जब आप 'इतिहास लेखन' का अध्ययन करते हैं, तो आप सीधे अतीत की घटनाओं का अध्ययन नहीं करते, बल्कि उन घटनाओं की बदलती व्याख्याओं का अध्ययन करते हैं जो व्यक्तिगत इतिहासकारों के कार्यों में होती हैं। हालांकि इतिहास में कार्यप्रणाली के प्रश्न हमेशा इतिहासकारों को चिंतित करते रहे हैं, आधुनिक इतिहास लेखन का अध्ययन ई.एच. कैर के कार्य ''इतिहास क्या है?''[11] के साथ शुरू होता है। इस कार्य में कैर पारंपरिक विश्वास को चुनौती देते हैं कि ऐतिहासिक अनुसंधान और इतिहास लेखन की विधियों का अध्ययन महत्वहीन था। इतिहास लेखन का अध्ययन एक अधिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता करता है, जो ऐतिहासिक तथ्यों और डेटा की साधारण जांच से परे जाता है। इतिहास लेखन में अध्ययन स्रोतों की पुष्टि करता है, आमतौर पर उस इतिहासकार पर शोध करके जिसने इसे लिखा है, उसकी सामाजिक स्थिति और उस समय लिखी जा रही इतिहास की प्रकृति के आधार पर। ई. एच. कैर ने अपने कार्य में ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में क्या माना जाना चाहिए, इसका विस्तृत वर्णन किया है। कैर के शब्दों में, 'ऐतिहासिक तथ्य क्या है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिस पर हमें थोड़ी और बारीकी से विचार करना चाहिए। सामान्य ज्ञान के अनुसार, कुछ बुनियादी तथ्य हैं जो सभी इतिहासकारों के लिए समान होते हैं और जो इतिहास की रीढ़ की हड्डी का निर्माण करते हैं– उदाहरण के लिए, यह तथ्य कि हैस्टिंग्स की लड़ाई 1066 में लड़ी गई थी। लेकिन इस दृष्टिकोण पर दो टिप्पणियाँ की जा सकती हैं। पहली बात, इतिहासकार का मुख्य ध्यान ऐसे तथ्यों पर नहीं होता। यह जानना निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है कि यह महान लड़ाई 1066 में लड़ी गई थी और न कि 1065 या 1067 में, और यह हैस्टिंग्स में लड़ी गई थी, न कि ईस्टबोर्न या ब्राइटन में। इतिहासकार को इन बातों में गलती नहीं करनी चाहिए। लेकिन जब इस प्रकार के बिंदुओं को उठाया जाता है, तो मुझे हाउसमैन की टिप्पणी याद आती है कि 'सटीकता एक कर्तव्य है, गुण नहीं।' किसी इतिहासकार की सटीकता की प्रशंसा करना ऐसा है जैसे किसी वास्तुकार की प्रशंसा करना कि उसने अपने निर्माण में अच्छी तरह से सूखे लकड़ी या सही मिश्रित कंक्रीट का उपयोग किया। यह उसके काम की एक आवश्यक शर्त है, लेकिन उसकी मूल कार्यक्षमता नहीं। इसी प्रकार के मामलों के लिए, इतिहासकार को उन 'सहायक विज्ञानों' पर भरोसा करने का अधिकार है जिन्हें

इतिहास के लिए कहा गया है– पुरातत्व, लेखनशास्त्र, मुद्रा विज्ञान, कालक्रम, आदि। इतिहासकार को उन विशेष कौशलों की आवश्यकता नहीं होती जो विशेषज्ञ को किसी मिट्टी के बर्तन या संगमरमर के टुकड़े की उत्पत्ति और अवधि निर्धारित करने, किसी अस्पष्ट लेख को पढ़ने, या एक सटीक तिथि स्थापित करने के लिए आवश्यक जटिल खगोलीय गणनाएँ करने में सक्षम बनाते हैं। ये तथाकथित बुनियादी तथ्य, जो सभी इतिहासकारों के लिए समान होते हैं, आमतौर पर इतिहासकार के कच्चे माल की श्रेणी में आते हैं, न कि स्वयं इतिहास की।

अतीत स्वयं कभी नहीं बदल सकता, अर्थात् इतिहास को परिवर्तित नहीं किया जा सकता, हालाँकि अतीत की हमारी समझ हमेशा बदलती और विकसित होती रहती है। विभिन्न इतिहासकार अपने–अपने तरीकों, सिद्धांतों और प्राथमिकताओं के अनुसार अतीत का विश्लेषण और व्याख्या करते हैं। वे नई सिद्धांतों और निष्कर्षों का निर्माण करते हैं जो हमारे अतीत की समझ को बदल सकते हैं। इतिहासलेखन इस परिवर्तन की प्रक्रिया को पहचानता और विश्लेषित करता है। इतिहासलेखन को समझने के लिए, हमें पहले इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि हमारे इतिहास की समझ कभी भी पूर्ण नहीं होती। अतीत की समझ चुनौतियों और आलोचनाओं से मुक्त नहीं होती। हमें ऐतिहासिक तथ्यों (जो प्रमाण द्वारा प्रदर्शित और सत्य के रूप में मान्यता प्राप्त होते हैं) और इतिहास (इन तथ्यों का विश्लेषण और व्याख्या) के बीच का अंतर भी समझना चाहिए। अतीत में निश्चित रूप से कई निश्चित तथ्य होते हैं। उदाहरण के लिए, प्रथम विश्व युद्ध 1914 में प्रारंभ हुआ, भारत ने 1947 में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की, और जापानी शहर हिरोशिमा पर परमाणु बमबारी 6 अगस्त, 1945 को हुई। ये तथ्य अपने आप में अलग–थलग और अर्थहीन हो सकते हैं। एक इतिहासकार की भूमिका इन व्यक्तिगत तथ्यों को विश्लेषण और अनुसंधान के माध्यम से समझाना है। इसके लिए, वे तथ्यों की जांच और व्याख्या करते हैं, अनुमानों का निर्माण करते हैं, सिद्धांत तैयार करते हैं और अपने निष्कर्षों को अपने लेखन के रूप में व्यक्त करते हैं।

इतिहास लेखन का इतिहास : 19वीं सदी से, इतिहास लेखन एक स्वतंत्र शाखा के रूप में यूरोप में उभरा। यह यूरोपीय प्रबोधन के युग में हुए दार्शनिक पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप विकसित हुआ। उसी समय से, विश्वभर में इतिहास लेखन पर कई कृतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इतिहास लेखन के विकास के विभिन्न चरणों को इन कृतियों के माध्यम से देखा जा सकता है। ये विभिन्न इतिहासकारों के विचारों की प्रगति और ऐतिहासिक लेखन में बदलते तरीकों को दर्शाते हैं। तथ्यों के संग्रह, उनका विश्लेषण और उन्हें एक समझदारी से व्याख्या करने की विधि अचानक नहीं उभरी, बल्कि यह एक क्रमिक प्रक्रिया थी जो लोककथाओं और विभिन्न अर्ध–ऐतिहासिक लेखनों के माध्यम से विकसित हुई। प्रत्येक मानव संस्कृति हमें अतीत की कहानियाँ सुनाती है, जिसमें हमारे पूर्वजों, नायकों या देवताओं के कार्य शामिल होते हैं। प्राचीन सभ्यताओं द्वारा लिखी गई प्रारंभिक क्रोनिकल को उचित इतिहास के रूप में नहीं माना जा सकता। हालांकि, ऐतिहासिक लेखन की प्रगति में उनकी महत्ता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अर्ध–ऐतिहासिक प्रथाएँ जैसे कि धर्मशास्त्रीय और मिथकीय परंपराएँ प्राचीन मिस्रवासियों और मेसोपोटामियाई लोगों द्वारा उत्पन्न की गई थीं। धर्मशास्त्रीय लेखन आमतौर पर मानवता की गतिविधियों के बारे में होते हैं, हालाँकि मनुष्य के कार्यों को कुछ दिव्य या अलौकिक शक्तियों द्वारा नियंत्रित बताया जाता है। धर्मशास्त्रीय लेखनों में, राजाओं को आमतौर पर भगवान के अवतार या मानवता के शासन के लिए भगवान द्वारा नियुक्त किया गया माना जाता है। मिथक आमतौर पर देवताओं के बारे में होते हैं और सामान्य मनुष्यों के बारे में नहीं। मिथकों में वर्णित घटनाएँ प्राचीन अतीत में घटित होने का दावा किया जाता है। प्राचीन मेसोपोटामियाई और मिस्री लेखन में मिथक और धर्मशास्त्र के तत्व देखे जा सकते हैं। प्राचीन हिब्रू ग्रंथों में भी अपने लेखन में मिथक और धर्मशास्त्र की एक बड़ी मात्रा शामिल है।

सार्वभौमिक इतिहास मानवता के इतिहास को एक संपूर्ण या एकीकृत इकाई के रूप में प्रस्तुत करने को संदर्भित करता है। सार्वभौमिक इतिहास के इतिहासकार इतिहास को एक संगठित संपूर्ण के रूप में मानते हैं, जो कुछ मौलिक विशेषताओं या अटूट सिद्धांतों द्वारा संचालित होता है। सार्वभौमिक इतिहास पश्चिमी इतिहास लेखन की प्रारंभिक परंपरा में एक आधार बनाता है। प्राचीन ग्रीको–रोमन ऐतिहासिक परंपरा में, पहला सार्वभौमिक इतिहास ग्रीक इतिहासकार एपोरस द्वारा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में लिखा गया था। हालांकि उनका काम खो गया है, फिर भी इसके प्रभाव को पोलिबियस और डियोडोरस के कार्यों में देखा जा सकता है। इसके बाद, सार्वभौमिक इतिहास ने रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म के उदय के लिए एक प्रभावशाली दृष्टिकोण प्रदान किया।

विश्व इतिहास उन सामान्य पैटर्नों का अध्ययन करता है जो दुनिया की सभी संस्कृतियों में उभरते हैं। राष्ट्रीय या क्षेत्रीय इतिहास के विपरीत, विश्व इतिहास ऐतिहासिक घटनाओं का वैश्विक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। विश्व इतिहास का उदय वर्तमान वैश्वीकरण के प्रवृत्ति का परिणाम है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की

शुरुआत में लिखे गए इतिहासों के विपरीत, जो मुख्य रूप से राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर केंद्रित थे, विश्व इतिहास उन सामान्य पैटर्नों पर ध्यान केंद्रित करता है जो सभी वैश्विक संस्कृतियों में प्रकट होते हैं। विश्व इतिहास के एक विशिष्ट अध्ययन के क्षेत्र के रूप में आगमन 1980 के दशक से शुरू हुआ, जब विश्व इतिहास संघ की स्थापना की गई। यह ऐतिहासिक अनुसंधान में एक लोकप्रिय दृष्टिकोण बनता जा रहा है। विश्व इतिहास के इतिहासकार एक सीमित दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं, जिसमें दो प्रमुख विषय होते हैं– एकीकरण (कैसे और किस प्रक्रिया से विश्व इतिहास ने दुनिया भर के लोगों को एकजुट किया) और भिन्नता (कैसे विश्व इतिहास के विभिन्न पैटर्न मानव स्वभाव की विविधता को व्यक्त करते हैं)।

महिलाओं का इतिहास महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका का अध्ययन करता है। इसमें महिलाओं के अधिकारों और समानता के विकास का इतिहास शामिल है; ऐतिहासिक महत्व की महिलाओं और समूहों का विश्लेषण; और विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं का महिलाओं पर प्रभाव। महिलाओं के अध्ययन का एक अन्य पहलू उन जीवन में भिन्नताएँ हैं जो राष्ट्रीयता, जाति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति और समाज के विभिन्न अन्य पहलुओं के कारण उत्पन्न होती हैं। महिलाओं का इतिहास औपचारिक रूप से 1970 के दशक से शुरू हुआ, जब नारीवादी लहर ने देखा कि महिलाओं के दृष्टिकोण और पिछले नारीवादी आंदोलनों को मुख्यधारा के ऐतिहासिक अनुसंधान से काफी हद तक बाहर रखा गया था।

इतिहास लेखन का महत्व : प्रारंभिक आधुनिक काल में, ''इतिहास लेखन'' शब्द का सामान्यतः उपयोग केवल इतिहास के लेखन को संदर्भित करने के लिए किया जाता था। इतिहास लेखन को इतिहास से इस आधार पर भिन्न किया जाना चाहिए कि यह सीधे अतीत की घटनाओं का अध्ययन नहीं करता, बल्कि विभिन्न इतिहासकारों के ऐतिहासिक लेखन में उन घटनाओं के बदलते स्पष्टीकरण और व्याख्याओं पर ध्यान केंद्रित करता है। जबकि इतिहास ''अतीत का अध्ययन'' है, इतिहास लेखन यह जानने का प्रयास करता है कि विभिन्न इतिहासकारों ने अतीत का अध्ययन कैसे किया और किसी विशेष विषय पर लेखन में एक विशेष विचारधारा को अपनाने के लिए किस बात ने उन्हें प्रेरित किया।

इतिहास लेखन हर एक इतिहासकार के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है, चाहे उनके लेखन की प्रकृति या वे जिस दर्शक वर्ग को संबोधित कर रहे हों, क्योंकि यह एक स्तर की पारदर्शिता प्रदान करता है जो दूसरों को यह समझने की अनुमति देती है कि तथ्य कहाँ से प्राप्त किए जा रहे हैं और उन्हें कैसे संसाधित किया जा रहा है।

संदर्भ–सूची

1. बेंटले, एम. (1999), आधुनिक इतिहास लेखन, न्यूयॉर्क : राउटलेज
2. ब्लॉच, मार्क (2017), इतिहासकार की कला आकर बुक्स
3. कॉलिंगवुड, आर. जी. (1946), इतिहास का विचार, ऑक्सफोर्ड ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
4. ई.एच. कार (1991), इतिहास क्या है?, संस्करण, पहली बार 1961 में प्रकाशित, पेंगुइन यूके
5. ई. श्रीधरन (2004), इतिहास लेखन की पाठ्यपुस्तक, ओरिएंट ब्लैक स्वान
6. होब्सबॉम, एरिक (1998), इतिहास पर एबैकस पब्लिशर्स
7. रॉबर्ट्स, एम. (2004), एनाल्स स्कूल और ऐतिहासिक लेखन, पी. लैम्बर्ट और पी. स्कोफील्ड (सं.), इतिहास बनाना : एक अनुशासन के इतिहास और प्रथाओं का परिचय (पृ. 78–92). न्यूयॉर्क : राउटलेज
8. टकर, अवीजर (2008), इतिहास और इतिहास लेखन के दर्शन का साथी, विली–ब्लैकवेल
9. व्हाइट, एच. (1987), रूप की सामग्री : कथा संवाद और ऐतिहासिक प्रतिनिधित्व, बाल्टीमोर : जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस
10. व्हाइट, एच. (1966), इतिहास का बोझ, इतिहास और सिद्धांत, 5(2), 111–134.
11. व्हाइट, एच. (1987), मेटाहिस्ट्री. लंदन, इंग्लैंड : जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 23-30

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

The Impact of Emotional Maturity on Academic Performance and Social Adaptation in College Students

*Dr. Anisha Kumari**

ABSTRACT : *This study seeks to explore the influence of emotional maturity on academic performance and social adjustment among college students. Emotional maturity refers to the capacity to regulate one's emotions, which is essential for achieving personal goals and aspirations. Conversely, adjustment involves modifying behavior and needs to achieve equilibrium in various situations. Both emotional maturity and adjustment are crucial factors in the lives of students. For this research, a sample of 140 students from the second semester of a Bachelor of Arts program, comprising both male and female participants, was randomly selected from various colleges in the Patna (Bihar). The participants were aged between 20 and 24 years. A descriptive survey research design was employed for the study. The Emotional Maturity Scale (developed by Dr. Singh and Dr. Bhargava in 1989) and the Social Adjustment Inventory (by Hugh M. Bell) were utilized as measurement tools. Data analysis was conducted using the SPSS statistical software. The findings indicated a significant negative correlation between emotional maturity and academic achievement among college students, while no significant correlation was found between emotional maturity and social adjustment.*

Keywords : *Emotional, Adjustment, Maturity, Achievement, Contemporary etc.*

INTRODUCTION : In contemporary society, life has become increasingly stressful due to the numerous challenges encountered in daily activities, which significantly impact mental health. The pace of life has accelerated, and in many households, both parents are employed, leading to heightened tension and pressure both at work and home. This situation adversely affects the mental well-being of both parents and their children. Various factors contribute to a child's mental health, including anxiety, depression, and an unhealthy home environment. When a child experiences mental health issues, it can hinder their ability to adjust across different aspects of life. Mental health plays a crucial role in a child's emotional maturity and overall adjustment. Emotional maturity is a key determinant of behavioral patterns.[1] The primary objective of any educational program is to assist students in developing emotional intelligence, where "emotional" pertains to feelings, and "maturity" signifies the capacity to respond appropriately to various stimuli in specific contexts.[2] Emotional maturity encompasses an individual's preparedness to manage adverse emotional responses. It reflects one's ability to regulate emotions and confront the realities of life.[3] By gaining self-awareness and connecting with our feelings and needs, we can fulfill our requirements and evolve into more mature individuals. Our emotional maturity is intrinsically linked to our emotions, which involves the capacity to analyze, assess the mental states of others, and influence their judgments and actions.

* ***Department of Psychology, Magadh University, Bodh-Gaya***

Emotional maturity is characterized by the capacity for self-regulation, which entails exhibiting appropriate behavior at the appropriate moments. It plays a crucial role in guiding adolescent development.[4] This concept of emotional maturity can be understood as our sensitivity to our surroundings and the individuals we engage with. By recognizing our emotions, we are better equipped to manage situations and devise effective solutions. Additionally, emotional maturity is often associated with possessing a strong sense of self.

Adjustment is an ongoing process that encompasses the ability to address personal challenges in a manner that is socially acceptable and constructive. It signifies the capability to navigate life effectively, fulfilling personal needs in a positive way. A well-adjusted individual can readily adapt to changing circumstances by modifying their behavior as necessary. Furthermore, such a person maintains a level of aspiration that is balanced, neither excessively low nor unrealistically high, in relation to their strengths and abilities. Social adjustment refers to the integration of social skills and social competence, which can be defined as a specific set of abilities that encompass both verbal and non-verbal communication, as well as the cognitive skills required for optimal social interaction. Social competence refers to an individual's overall ability to create a positive influence within their social environment. Consequently, social adjustment can be defined as the alignment of a person's skill set with their capacity to generate a favorable impact in their social context. In society, academic achievement is regarded as a fundamental criterion for evaluating an individual's overall capabilities and potential. Therefore, it holds significant importance in both education and the learning process. Academic achievement represents the results of educational endeavors. Educators and institutions prioritize the attainment of their educational objectives. This achievement is typically assessed through examinations or evaluations, although the methods may differ across institutions. The term "academic achievement" pertains to the performance of individuals and also reflects their progress in acquiring knowledge and developing educational skills across various subjects, which is generally determined by test scores.[5]

REVIEW OF LITERATURE

Chirag; S. and Koul; P.[6] (2022) conducted a study titled "Emotional Maturity and Self-Concept Among Undergraduate College Students." The primary aim of this research was to assess the emotional maturity levels of male and female undergraduate students. The study involved participants from Jammu, comprising 59 male and 59 female students aged between 19 and 22 years. Data collection was carried out using the Emotional Maturity Scale developed by Singh and Bhargava, along with the Self-Concept Questionnaire utilized by Saraswat. The results indicated a significant difference in emotional maturity between male and female undergraduate students.

Kondala; Rao T. and Saxena; A.[7] (2021) performed a study entitled "A Study on the Relationship Between Internet Usage and Emotional Maturity of Higher Secondary Students." This research aimed to explore the impact of internet usage on the emotional maturity of students at the higher secondary level. A descriptive study was conducted involving a sample of 200 students, evenly split between 100 boys and 100 girls, from both rural and urban schools in the Agra District. Data were gathered using the Emotional Maturity Scale (Singh & Bhargava, 2012) and the Internet Usage Scale (Saini & Kaur, 2017). The findings revealed a positive correlation between emotional maturity and internet usage.

Hamid; G. et al.[8] (2021) conducted a study titled "Susceptibility to Empathy and Its Relationship to Emotional Maturity Among University Students." The primary aim of this research was to explore the correlation between empathy and emotional maturity within a sample of university students. The descriptive study involved 400 participants (200 males and 200 females) from Diyala University, specifically from the morning session of the academic year 2019-2020. Participants were selected using a random stratified sampling method to ensure equal distribution.

Ismail; M.S. et al.[9] (2021) examined "Emotional Maturity Among Student Disciplinary Problems in Secondary School at Terengganu." The study aimed to assess the level of emotional maturity among students and to investigate any gender-based differences in this regard. A total of 361 students from government secondary schools (182 males and 179 females) were included in the study, which utilized a stratified random sampling technique across eight districts in Terengganu. A descriptive research design was employed, and the Emotional Maturity Scale developed by Dr. Singh and Bhargava in 1989 was utilized for data collection. The results indicated significant differences in emotional maturity levels based on gender.

Kaur; R. and Sharma; S.[10] (2022) conducted a study titled "Gender Differences in Social Adjustment and Interpersonal Support among Undergraduate Students." The primary aim of this research was to explore the gender disparities and the correlation between social adjustment and interpersonal support among university students in Punjab. The study's sample comprised 480 students, evenly divided between 240 males and 240 females, who were randomly selected from three strategically chosen government universities in the Punjab region. The researchers utilized the Social Adjustment Scale to assess the social adjustment of the students, while the Interpersonal Support Evaluation Scale was employed to evaluate the peer support available to them. The results indicated that male students exhibited significantly superior levels of social adjustment and interpersonal support compared to their female peers.

Mondal; C.[11] (2021) conducted a study titled "A Comparative Study on Social Adjustment among Rural and Urban Adolescent Students." The primary aim of this research was to determine whether a significant difference exists in the social adjustment of adolescent learners based on age. The survey method was employed, involving a sample of 140 participants, which included 70 rural adolescents (35 males and 35 females) and 70 urban adolescents (35 males and 35 females) from the South 24 Parganas District, including Baruipur. Data were gathered using the Adjustment Inventory developed by Dr. Rama Pal in 1985. The results indicated a significant difference in social adjustment among school-going adolescents.

Ge; Y. et al.[12] (2021) explored the "Associated Effects of Meaning in Life and Social Adjustment among Chinese Undergraduate Students with Left-Behind Experiences in the Post-Epidemic Period." This study examined how these students perceive and derive meaning in life, as well as their adaptation to the current social environment following experiences of life's impermanence. A total of 988 undergraduate students were assessed using scales measuring meaning in life and social adjustment. The findings revealed a correlation between the meaning in life and social adjustment during the post-epidemic period.

Alipio; M. M.[13] (2020) conducted a research study titled "Adjustment to College and Academic Performance: Insights from Filipino College Freshmen in an Allied Health Science Course." The primary aim of this study was to explore the correlation between the level of adjustment to college and the academic performance of first-year Radiologic Technology students at a higher education institution in the Philippines. A descriptive correlational design was utilized, involving a survey questionnaire administered to 132 participants. The results indicated that there was no significant correlation between the students' adjustment levels and their academic performance.

The rationale behind this study is that strong academic performance is a crucial indicator of future success for students and plays a significant role in career initiation. Numerous factors affect students' academic achievement, including family and school environments, parenting styles, attitudes, study habits, motivation, cognitive and non-cognitive factors, and socio-economic status. Emotional maturity emerges as a significant variable influencing both academic success and social adjustment among

college students. Many college students are in the later stages of adolescence, a period often characterized by behavioral disturbances. Thus, emotional maturity and adjustment are critical to individual behavior. As students represent the foundation of future generations, their emotional maturity is essential. It facilitates their adaptation to societal norms. Consequently, this study aims to investigate the emotional maturity and social adjustment of college students in the South 24 Parganas district, while also assessing the relationship between these two variables and the academic achievement of college students.

Objectives of the Study : The researchers have established the following objectives for this investigation :

1. To examine the differences in emotional maturity between male and female students;

2. To analyze the differences in social adjustment between male and female students;

3. To explore the relationship between emotional maturity and social adjustment among college students;

4. To investigate the correlation between emotional maturity and academic achievement in college students;

5. To compare the academic achievement of students with high emotional maturity against those with low emotional maturity.

6. The objective is to examine the disparity in academic performance between students with high social adjustment and those with low social adjustment.

The study's hypotheses were developed based on its objectives. The hypotheses are outlined as follows :

H01 : There is no significant difference in emotional maturity between male and female students;

H02 : There is no significant difference in social adjustment between male and female students;

H03 : There is no significant relationship between emotional maturity and social adjustment among college students;

H04 : There is no significant relationship between emotional maturity and academic achievement among college students;

H05 : There is no significant difference in academic achievement between students with high emotional maturity and those with low emotional maturity;

H06 : There is no significant difference in academic achievement between students with high social adjustment and those with low social adjustment.

METHODOLOGY : In this study, the researchers conducted a descriptive survey to gather information through fieldwork. The target population comprised college students from the Patna (Bihar). A sample of 140 students was drawn from various government colleges within this district. The participants included 60 male and 80 female students, with ages ranging from 20 to 24 years. The selection of the sample was executed using a random sampling technique.

Variables of the Study

Independent Variable : Emotional maturity.

Dependent Variable : Social adjustment and academic achievement.

Instruments utilized : The researchers employed various questionnaires as instruments to gather pertinent data from college students in the Patna (Bihar).

Emotional Maturity Scale (EMS) : This scale was created by Yashvir Singh and Mahes Bhargava. It consists of 48 items and is designed for use with both adolescents and adults. The EMS is a self-reporting tool that employs a five-point scale. The items are presented in a questionnaire format,

requiring respondents to select from five options : Very much, Much, Undecided, Probably, and Never. Responses are scored as follows : a response of "Very much" receives a score of 5, "Much" scores 4, "Undecided" scores 3, "Probably" scores 2, and "Never" scores 1. Consequently, the total score derived from the scale reflects the level of emotional maturity, with higher scores indicating greater emotional immaturity.

Social Adjustment Inventory (SAI) : This scale was created by Hugh M. Bell and has proven effective for individuals in high schools and colleges. It is applicable to both genders. The high reliability of the measures allows for meaningful comparisons between individuals. The Inventory assesses four distinct dimensions of adjustment: home, health, social and emotional isolation, in addition to an overall measure. However, the researchers focused solely on social adjustment among these dimensions. The inventory consists of 34 test items that include both positive and negative statements. Scoring the inventory is straightforward; one point is awarded for agreement with positive statements and one point for disagreement with negative statements. For the analysis, 140 students were randomly chosen from various colleges in the Patna (Bihar). Their responses were evaluated based on agree/disagree criteria, with points assigned for agreement with positive statements (1) and disagreement with negative statements (1). A higher score reflects a lower level of adjustment.

Academic Achievement : The overall percentage of marks obtained in the final examination of the preceding class of college students was utilized as the academic score.

Results and Interpretation: The findings and analysis of the data are presented in alignment with the study's objectives and hypotheses.

H1 : There is no significant difference in Emotional Maturity between male and female students.

Group Statistics

	Student type	N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean
Emotional Maturity Score	Female	79	97.09	17.081	1.922
	Male	60	116.13	27.251	3.518

Independent Samples t-Test

		Levene's Test for Equality of Variances		t-test for Equality of Means		
		F	Sig.	t	df	Sig. (2-tailed)
EMS	Equal variances assumed	1.723E1	.000	-5.045	137	.000
	Equal variances not assumed			-4.751	93.190	.000

The table presented above demonstrates that the calculated t-value for Emotional Maturity (EMS) was significant at the 0.01 level. Therefore, it can be concluded that a significant difference exists between male and female students regarding their Emotional Maturity.

H_0 2 : It is hypothesized that there is no significant difference between male and female students concerning social adjustment.

Group Statistics					
	Student type	N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean
Social Adjustment	Female	79	14.49	5.335	.600
	Male	60	16.82	4.545	.587

Independent Samples t-Test

		Levene's Test for Equality of Variances		t-test for Equality of Means		
		F	Sig.	t	df	Sig.(2-tailed)
SA	Equal variances assumed	3.633	.059	-2.708	137	.008
	Equal variances not assumed			-2.767	135.141	.006

The table presented above demonstrates that the calculated t-value for Social Adjustment (SA) was significant at the 0.01 level. Therefore, it can be concluded that a notable difference exists between male and female students regarding their Social Adjustment.

H*f* : There is no significant relationship between emotional maturity and the social adjustment of college students.

Correlations

		Emotional Maturity Score	Social Adjustment Score
Emotional Maturity Score	Pearson Correlation	1	-.135
	Sig.(2-tailed)		.112
	N	140	140
Social Adjustment Score	Pearson Correlation	-.135	1
	Sig.(2-tailed)	.112	
	N	140	140

Interpretation : The above table indicated that the obtainedcorrelation was not significant at 0.05 level of significance. Hence, it could be said that there was no significant relationship between emotional maturity and social adjustment of college students.

1. A notable disparity was observed between male and female students regarding emotional maturity.

2. A significant difference was found between male and female students concerning social adjustment.

3. No significant correlation existed between emotional maturity and social adjustment among college students.

CONCLUSION : The findings of this study indicate a notable disparity in emotional maturity between male and female students. Specifically, it was observed that boys exhibit a higher level of emotional maturity compared to girls. Additionally, social adjustment also varies between the genders, with boys demonstrating superior social adjustment relative to girls. The analysis revealed no significant differences in academic achievement between students with high emotional maturity and those with low emotional maturity. Furthermore, academic performance was found to be comparable among students with high social adjustment and those with low social adjustment. The current study suggests that there is no significant correlation between emotional maturity and social adjustment among college students. However, a negative and significant relationship was identified between emotional maturity and academic achievement, indicating that students with higher emotional maturity tend to have lower academic performance.

REFERENCES

1. Al-mesidin I. K. & Omar-Fauzee S. M. & Kaur A. (2017), Relationship between Social and Academic Adjustment Among Secondary Female Students in Jordan, European Journal of Education Studies, 3(2).

2. Bharti S. (2012), Adjustment and Emotional Maturity Among First Year College Students, Pakistan Journal of Social and Clinical Psychology, 10(2), 32-37

3. Bibi Sagufta et al. (2018), Social Achievement Goals and Academic Adjustment Among in College Students in Pakistan, European Online Journal of Natural and Social Science, 7(3), 588-593.

4. Chirag, S. & Koul, P. (2022), Emotional Maturity and Shelf Concept Among Undergraduate College Students, International Research Journal of Social Science, XI(1), 2231-0045.

5. D. Jaysree & Prof. Rani S. (2021), A Study to Social Adjustment and Social Maturity of Adolescents, Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR), 8(12).

6. Dr.Srivastava P.S. (2018), Social Adjustment Problems of School Going Academic Achievers, International Journal of Academic Research and Development, 3(1),164-166

7. Fernandez M.F. (2017), Predictions of Students Adjustment During Transition to University in Spain, Faculted de Psicothema, 29(1), 67-72.

8. Ge Y. et al. (2021), Associated Effects of Meaning in Life and Social Adjustment Among Chinese Undergraduate Students with Leftbehind Experiences in the Post-epidemic Period, Frontiers in Psychiatry.

9. Ismail M.S. et al. (2021), Emotional Maturity Among Student Disciplinary Problems in Secondary School at Terengganu, Malaysia, International Journal of Academic Research in Business and Social Science, 11(4)

10. Kaur R. & Sharma S. (2022), Gender Differences Social Adjustment and Interpersonal in Support Among Undergraduate Students, International Journal of Bio-resource and Stress Management, 13(1), 53-61

11. Kondala, Rao T. & Saxena, A. (2021), A Study of Relationship between Internet Usage and Emotional Maturity of Higher Secondary Students, International Journal of Engineering, Management and Humanities, 1(1), 22-29.

12. Mittelmeier, J. et al. (2019), Internationalization at a Distance at Home : Academie and Social Adjustment in South African Distance Learning Context, International Journal of Intercultural Relations, 1(12).

13. C. (2021), A Comparative Study on Social Adjustment with in Rural and Urban Adolescent Students, International Journel of Creative Research Thoughts (IJCRT), 9(2), 2320 - 2882.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 31-35

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय संस्कृति का विशिष्ट पर्व कुम्भ मेला

*डॉ. आदित्य नाथ**

मेले प्राचीन काल से ही भारत के सामूहिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता रहे हैं। ये भारतीय संस्कृति की सामूहिक पूजा और आराधना के भाव को व्यक्त करते हैं। कुम्भ पर्व पर लगने वाला कुम्भ मेला भारत का अति विशिष्ट स्नान पर्व है। प्रत्येक 12 वर्ष पर यह मेला भारत के चार पवित्र स्थानों पर लगता है। हरिद्वार में गंगा, प्रयाग में गंगा–यमुना के संगम स्थल, नासिक में गोदावरी एवं उज्जयिनी में शिप्रा पर यह मेला लगता है। हर 12वें वर्ष एक निश्चित ज्योतिषीय योग में कुम्भ का स्नान होता है। इस अवसर पर अनगिनत यात्री एवं तीर्थयात्री, जिनमें विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और परिधानों के लोग होते हैं, एक साथ सामूहिक रूप से स्नान करते हैं। कुम्भ मेला की तरह भारत में ऐसा कोई भी मेला नहीं है जो सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति को गहरे रूप में प्रभावित करता हो। इसी समय आकाश, भू–विन्यास और काल का पवित्र उद्भव और एकीकरण झलकता है। न कोई प्रचार अभियान, न कोई निमन्त्रण पत्र, न घोषणाएँ, पर फिर भी लाखों–लाख श्रद्धालु इस पर्व पर स्नान के लिए जुट जाते हैं। इन लाखों लोगों में गृहस्थ जन तो होते ही हैं, साधु–संन्यासी और सन्त–महन्तों की टोलियाँ भी होती हैं। वस्तुतः बिना किसी प्रचार–प्रसार के पीढ़ियों से इसमें दर्शन की भावना और श्रद्धा बनी हुई है।

कुम्भ मेले के इतिहास और उद्भव के बारे में प्राच्यवेत्ताओं में एकमतता का अभाव है। अनेक विद्वान् इसे अत्यन्त प्राचीन मानते हैं। लेकिन उन्होंने इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं बतलाई है। कई विद्वानों ने इसे ईसाई और इस्लाम यहाँ तक कि ब्राह्मण युग से भी प्राचीन माना है। कुछ ने इसे 17वीं और 18वीं शताब्दी का माना है। कुम्भ मेले के बारे में प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है। इसके बारे में जितनी भी जानकारी प्राप्त होती है वह मौखिक परम्पराओं पर आधारित है। अथर्ववेद[1], ऋग्वेद[2] के मंत्रों, यजुर्वेद माध्यन्दिन[3] शाखा के मंत्रों में कुम्भ का उल्लेख है। लेकिन सायण के भाष्य से यह स्पष्ट नहीं होता कि जिस कुम्भ का वर्णन संहिताओं में आया है उसका तात्पर्य वर्तमान कुम्भ मेला से है, यद्यपि सायण के समय में तीर्थयात्राओं का वर्णन सामान्य बात थी। सूत्र, स्मृति, पुराण, महाकाव्य और अन्य धर्मशास्त्रों में कुम्भ मेला का उल्लेख नहीं है। वायुपुराण[4] में कुम्भ का वर्णन श्राद्ध कर्म के लिये उपयुक्त एक पवित्र तीर्थ के रूप में आया है। इस कुम्भ को श्रीकुम्भ नामक तीर्थ से जोड़ा जाता है जो सरस्वती नदी के तट पर स्थित है। नारदीय पुराण[5] के अनुसार इस तीर्थ में पवित्र स्नान से यज्ञ करने के समान पुण्य प्राप्त होता है।

कुम्भ मेले की प्राचीनता के सन्दर्भ में दो परम्परायें मूल रूप से ज्ञात है। एक महाकाव्य–पुराण परम्परा है और दूसरी ज्योतिषीय गणना पर आधारित है। पहली परम्परा में क्षीरसागर–मंथन का सम्बन्ध कुम्भ मेले से जोड़ा जाता है। देवों और दानवों ने दैवी रत्नों की प्राप्ति के उद्देश्य से क्षीरसागर का मंथन किया। अन्ततोगत्वा 'अमृत कुम्भ' की प्राप्ति हुई। इसकी प्राप्ति हेतु देवों और दानवों में युद्ध हुआ। देवों को पराजित कर दानवों ने अमृत कुम्भ पर अधिकार कर लिया। जब देवताओं का उद्देश्य असफल होने लगा तो उन्होंने जयन्त को भेजा। जयन्त ने छल करके अमृत कुम्भ को प्राप्त कर लिया। जब राक्षसों को छल का पता चला तो उन्होंने जयन्त का पीछा किया। लेकिन निष्फल हुए। देवताओं ने जयन्त द्वारा हस्तगत अमृतघट की रक्षा हेतु चार ग्रहों को भेजा था। चन्द्रमा ने कुम्भ से अमृत को छलकने से बचाया। सूर्य ने कुम्भ को फूटने से बचाया। वृहस्पति ने कुम्भ को राक्षसों के आक्रमण से सुरक्षा प्रदान की। शनि ने जयन्त के भय से घट की रक्षा की। किन्तु इस भाग–दौड़ वाली परिस्थिति में अमृत पृथ्वी पर चार स्थानों पर छलक गया। वे स्थान–हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जयिनी है। ये चारों स्थान तभी से कुम्भ पर्व आयोजन के लिए पवित्र माने गये। जयन्त को अमृत कुम्भ स्वर्ग ले जाने में 12 दिन लगे। देवताओं का एक दिन मनुष्य के एक वर्ष के बराबर होता है। इसलिए प्रत्येक 12 वर्ष पर उन स्थानों में कुम्भ मेला लगता

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, हण्डिया, प्रयागराज*

है। सूर्य (अपने पुत्र शनि के साथ) तथा चन्द्रमा और वृहस्पति ने कुम्भ की रक्षा की थी इसलिए कुम्भ पर्व उक्त ग्रहों की साहचर्यता के अवसर पर ही होता है। पुराणों में एक अन्य कथा भी आती है। गरुड़ अपनी माँ विनता को सर्पों की माता कद्रु की कैद से छुड़ाने के लिए स्वर्ग से अमृत लाये। उन्होंने अमृत कुम्भ को कद्रु के पुत्रों को सौंपकर अपनी माँ को मुक्त किया। लेकिन इन्द्र ने अमृत कुम्भ को चुरा लिया और स्वर्ग वापस ले गये। अमृत कुम्भ से चार बूंदे पृथ्वी पर चार स्थानों पर गिर पड़ीं। कालान्तर में वही चारों स्थान कुम्भ पर्व को मनाने के लिए पवित्र स्थान माने गये।

उक्त कथाओं से भी कुम्भ पर्व की प्राचीनता का स्पष्ट बोध हो नहीं पाता। समुद्र मंथन और गरुड़ द्वारा अमृत हरण की कथाएँ महाभारत, रामायण, पुराण में विस्तार से वर्णित है किन्तु जयन्त या इन्द्र द्वारा इस अमृत कुम्भ को लेकर भागने और चार बूँदों के चार स्थानों पर असावधानीवश प्रस्रवण की चर्चा किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलती। इन कथाओं का कोई धर्मशास्त्रीय आधार नहीं है। ये जनश्रुतियाँ मात्र हैं, जो कुम्भ पर्व की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए कभी गढ़ी गयी। कुम्भ पर्व एक विशिष्ट धार्मिक स्नान पर्व है। यह नदी जल के अमरत्व का बोध कराता है। उन चार पवित्र स्थानों में जहाँ अमृत बूँदे गिरी थीं, हरिद्वार गंगा के किनारे प्रयाग, गंगा, यमुना, अदृश्य सरस्वती का संगम, गोदावरी तट पर स्थित नासिक तथा शिप्रा तट पर स्थित उज्जयिनी आते हैं। नदियों की पूजा परम्परा पर कुम्भ मेला केन्द्रित है। गोदावरी को मध्यवर्ती गंगा के नाम से पुकारा जाता है। ब्रह्म पुराण[6] में कहा गया है कि विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में गंगा गौतमी नाम पड़ा और उत्तर में भागीरथी नाम पड़ा। शिप्रा नदी के सम्बन्ध में भी उक्त मान्यता लागू होती है। गंगाजल विश्व की तमाम नदियों के जल से भी विशिष्टतम है। भारतीय धार्मिक विश्वास के अनुसार गंगाजल अमरत्व का खजाना है। इसलिए कहा जाता है कि देवताओं के अमृत के समान ही मानवों के लिए गंगाजल अमृत है।[7]

कुम्भ पर्व की ज्योतिषीय परम्परा जटिल है। यह पर्व तभी होता है जब कुम्भ योग लगता है। ज्योतिषीय कुम्भ योग चार प्रकार का होता है। पहला, जब वृहस्पति कुम्भ राशि में तथा सूर्य मेष राशि में प्रविष्ट होता है तो कुम्भ पर्व हरिद्वार में लगता है। दूसरा, जब वृहस्पति मेष राशि में तथा सूर्य व चन्द्रमा मकर राशि में माघ अमावस्या के दिन होते हैं तो कुम्भ पर्व प्रयाग में लगता है। तीसरा, जब सूर्य एवं वृहस्पति सिंह राशि में प्रविष्ट होते हैं तो नासिक में गोदावरी तट पर कुम्भ पर्व लगता है। चौथा, जब वृहस्पति सिंह राशि में और सूर्य मेष राशि में होता है तो कुम्भ पर्व उज्जयिनी में लगता है। इसको निम्नलिखित तालिका से भी समझ सकते हैं–

वर्ष	स्थान	हिन्दू माह	नक्षत्र एवं राशि का सम्मिलन	पर्वनाम
0	हरिद्वार	चैत्र (मार्च–अप्रैल)	वृहस्पति × कुम्भ राशि सूर्य × मेष राशि	कुम्भ
3	प्रयाग	माघ (जनवरी–फरवरी)	वृहस्पति × मेष राशि सूर्य और चन्द्रमा × मकर राशि	कुम्भ
6	नासिक	भाद्रपद (अगस्त–सितम्बर)	सूर्य और वृहस्पति × सिंह राशि या सूर्य और चन्द्रमा और वृह0×कर्क राशि	कुम्भ
–	हरिद्वार	चैत्र	वृहस्पति × सिंह, सूर्य × मेष	अर्द्धकुम्भ
9	उज्जयिनी	वैशाख्ा (अप्रैल–मई)	वृह0×सिंह, सूर्य × मेष या वृह0 और सूर्य और चन्द्रमा × तुला	कुम्भ
–	प्रयाग	माघ (जनवरी–फरवरी)	वृहस्पति×वृश्चिक राशि सूर्य × मकर राशि	अर्द्धकुम्भ
12	हरिद्वार	चैत्र (मार्च–अप्रैल)	वृहस्पति×कुम्भ राशि सूर्य × मेष राशि	कुम्भ

प्रयाग, नासिक, उज्जयिनी के कुम्भ मेलों का सम्बन्ध 'कुम्भ' शब्द से नहीं है। केवल हरिद्वार मेले का सम्बन्ध 'कुम्भ' से है। अनुश्रुत पौराणिक परम्परा के अनुसार कुम्भ मेला किसी एक विशेष पवित्र स्थान पर उस वर्ष होना चाहिए जब सूर्य, चन्द्रमा, वृहस्पति का योग कुम्भ राशि में होता है। यह संयोग हरिद्वार में होता है। नारदीय पुराण[8] में इस विशिष्ट ज्योतिषीय स्थिति का उल्लेख मिलता है। कुम्भ मेला तीन वर्षों के अन्तराल पर चारों स्थानों में क्रमशः मनाया जाता है। अन्तराल की गणना हरिद्वार से प्रारम्भ होती है। हरिद्वार के बाद प्रयाग, नासिक, उज्जयिनी में मेला लगता है। लेकिन नासिक और उज्जयिनी के कुम्भ मेलों का अन्तराल तीन वर्ष नहीं है, उन्हें एक ही वर्ष में मनाते हैं। उज्जयिनी में यदि कुम्भ मेला वैशाख में लगता है तो उसी वर्ष नासिक में भाद्रपद में मनाया जाता है।

कुम्भ पर्व का प्रचलन कब से प्रारम्भ हुआ, इसका निर्णय करना किंचित् कठिन है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 644 ई0 में सम्राट हर्षवर्धन द्वारा माघ मास में प्रयाग में आयोजित पंचवर्षीय सभा में भाग लिया था। उसने प्रयाग के धार्मिक मेले का पहला ऐतिहासिक सन्दर्भ अपने यात्रा वृत्तान्त में दिया है। उसने यहाँ के धार्मिक मेले को अनन्तकालीन माना है। उसके अनुसार हर्षवर्धन प्रत्येक 5वें वर्ष प्रयाग आते थे। यहाँ वे अपनी सम्पत्ति बौद्धों, ब्राह्मणों, गरीबों, असहायों को दान में दे देते थे। 75वें दिन उनके पास कुछ नहीं बचता था और वे अपनी बहन से माँगे हुए एक जोड़ी वस्त्र के साथ लौट जाते थे। विद्वानों का मानना है कि चीनी यात्री अर्द्धकुम्भ के अवसर का वर्णन किया है। कुछ लोगों के अनुसार कुम्भ पर्व का प्रवर्तन 9वीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने हिन्दू संस्कृति को सुदृढ़ तथा जगत् कल्याण के लिए डाली थी। इतिहासविद् जदुनाथ सरकार के अनुसार कुम्भ पर्व का प्रारम्भ 13वीं शताब्दी के आस–पास हुआ। उनका तर्क है कि नागा संन्यासियों ने हरिद्वार में वैष्णव वैरागियों पर कुम्भ के अवसर पर 1253 ई0 में निर्णायक विजय प्राप्त की थी। महाप्रभु चैतन्य के जीवन इतिहास से प्रयाग के कुम्भ पर्व का संकेत प्राप्त होता है। कहा गया है कि सन् 1514 ई0 में चैतन्य प्रयाग के कुम्भ मेले में उपस्थित थे। डॉ0 देवी प्रसाद दूबे[9] के अनुसार इस पर्व की शुरूआत पूर्व मध्यकाल का अन्तिम चरण माना है तथा इस पौराणिक आख्यान का प्रचलन मध्यकाल का अन्तिम चरण या मुगल काल माना है।

कुम्भ पर्व आर्य ऋषियों द्वारा सांस्कृतिक आत्मसात्करण की दीर्घकालीन प्रक्रिया में अपनाया हुआ अति प्राचीन पर्व है। यह कहना कठिन है कि चारों स्थानों पर लगने वाले कुम्भों में किस स्थान पर इसका प्रथम आयोजन किया गया रहा होगा। प्रयाग के सांस्कृतिक महत्व, गंगा एवं यमुना की गरिमा, माघ मास के पौराणिक महत्व आदि पर ध्यान देने पर यह कहना अनुचित नहीं है कि कुम्भ पर्व प्रयाग में अधिक महत्वशाली रहा है।

पूर्व मध्यकाल में राजनैतिक स्थिति ने विशेष आकार लेना आरम्भ कर दिया था। प्रत्येक राजतन्त्र अपनी राज्य सीमा में किसी विशेष धार्मिक सम्प्रदाय को प्रश्रय देने लगा था। कोई परम भागवत् था कोई महाशैव। इस स्थिति में सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक एकता एवं अखण्डनीयता को सुदृढ़ करने के लिए प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदायों के चिन्तकों ने कुम्भ पर्व को पहले से अधिक महत्व दिया एवं स्वयं उस अवसर पर उन स्थानों पर हर प्रकार की असुविधाओं एवं मार्गीय बाधाओं की उपेक्षा करते हुये एकत्र होकर परस्पर सम्मेलन के महत्व का समर्थन करने लगे। प्रत्येक क्षेत्र एवं सम्प्रदाय के पूजनीय चिन्तकों का एक स्थान पर एक विश्वास की दृढ़ता के लिए एकत्र होना सामान्य जन के आकर्षण का कारण बना। उन स्थानों पर महान् चिन्तकों के उत्तम विचारों से सामान्य जन के ज्ञान एवं विवेक का परिमार्जन होता था और वे भाव जगत में स्वयं को महान् पुण्यशाली मानते थे। अतः अति प्राचीन काल से लोक में प्रचलित यह पर्व मध्यकाल में पूर्ण राष्ट्रीय आकार पा गया था। तत्पश्चात् समुद्र मंथन के प्राचीन आख्यान के साथ सम्बद्ध होकर प्रस्तुत मिथक ने जन सामान्य में अपना स्थान बनाया।

प्रयाग कुम्भ मेला[10] का भू–वैन्यासिक प्रारूप गंगा–यमुना के मध्यवर्ती क्षेत्र में मुख्यतया नियोजित होता है। 6 वर्षों में अर्द्धकुम्भ तथा 12 वर्षों में एक पूर्ण कुम्भ पर्व होता है। पिछला अर्द्धकुम्भ 2019 ई0 में तथा पूर्ण कुम्भ 2013 ई0 में हुआ था। 12 साल का कुम्भ मेला 12 बार लगने के बाद (144 साल बाद) महाकुम्भ लगता है। पिछला महाकुम्भ 1881 ई0 में लगा था जो 144 वर्ष बाद 2025 ई0 में प्रयाग में वर्तमान में महाकुम्भ मेला लगा है। यह मेला दिव्य–भव्य–डिजिटल एकता का महाकुम्भ है। इस महाकुम्भ की प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है–

- उ.प्र. के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने दिनांक 02.12.2024 को उ.प्र. का 76वाँ जनपद 'महाकुम्भ नगर' घोषित किया।
- 4000 हेक्टेयर में बसे 'महाकुम्भ नगर' को 25 सेक्टर में विभाजित करके गंगा नदी पर 31 पाण्टून पुल (पीपे का पुल) का निर्माण किया गया।
- प्रयागराज एकमात्र ऐसा नगर है, जहाँ 11 धार्मिक कॉरिडोर है।

- पहली बार महाकुम्भ मेला क्षेत्र में बने अस्थायी नगर के लिए गूगल नेविगेशन भी उपलब्ध कराया गया है। जिससे लोगों को गूगल मैप पर ट्रेक, किसी विशेष स्थान का नजारा 360 डिग्री व्यू से देखना, पूजा–पाठ व प्रवचनों का ऑनलाइन विवरण, शिविर लोकेशन, लेजर शो, वॉटर स्पोर्ट्स आदि की जानकारी होती है।
- शाही स्थानों में पौष पूर्णिमा 13 जनवरी 2025 के दिन पहला शाही (अमृत) स्थान, मकर संक्राति 14 जनवरी 2025 के दिन दूसरा शाही (अमृत) स्नान, मौनी अमावस्या 29 जनवरी, 2025 के दिन तीसरा शाही (अमृत) स्नान, बसन्त पंचमी 3 फरवरी, 2025 के दिन चौथा शाही (अमृत) स्नान, माघ पूर्णिमा 12 फरवरी 2025 के दिन पाँचवा शाही (अमृत) स्नान, महाशिवरात्रि 26 फरवरी, 2025 के दिन आखिरी शाही (अमृत) स्नान।
- पर्यटन विभाग की ओर से सेक्टर–7 में शाम के वक्त मेरठ के पुष्पक गुप्ता की कंपनी ने 12 मिनट के शो में 2500 ड्रोन के जरिए सागर मंथन, 14 रत्न आदि के दृश्य दिखाया गया। यह शो 24–26.01.25 तक दिखाया गया।
- अर्द्धकुम्भ 2019 में योगी सरकार की कैबिनेट बैठक प्रयागराज मेला प्राधिकरण कार्यालय में हुई थी गंगा एक्सप्रेस वे की सौगात मिली थी। 22 जनवरी, 2025 को योगी सरकार की बैठक महाकुम्भ नगर में हुयी। इसमें पुल, मेडिकल कालेज व चित्रकूट, प्रयागराज, वाराणसी, विन्ध्याचल, अयोध्या को जोड़ता कॉरिडोर के साथ अन्य घोषणायें हुयीं।
- स्वस्थ महाकुम्भ के लिए–सरकारी/प्राइवेट अस्पतालों में 6000 बेड, 43 अस्पताल, 125 रोड एम्बुलेंस, 7 रिवर एम्बुलेंस, 1 एयर एम्बुलेंस। स्वच्छ महाकुम्भ के लिए–10200 स्वच्छता कर्मी, 2500 गंगा सेवा दूत, 1,50,000 शौचालय, 25000 लाइनर बैगयुक्त डस्टबिन। सुगम महाकुम्भ–प्रयागराज एयरपोर्ट का नया टर्मिनल, 7000 कुम्भ स्पेशल बस, 550 शटल बस, 5000 ई–रिक्शा, 13000 ट्रेन, 3000 स्पेशल ट्रेन, 9 रेलवे स्टेशन का नवीनीकरण।
- पौष पूर्णिमा में 1.65 करोड़ लोगों ने स्नान किया। मकर संक्रांति में 3.5 करोड़ लोगों ने स्नान किया, मौनी अमावस्या में लगभग 10 करोड़ लोगों ने स्नान किया। पूरे पर्व में सरकार का अनुमान है कि 45 करोड़ लोग स्नान करेंगे।
- 2025 ई0 में होने वाले महाकुम्भ मेले का बजट करीब 7500 करोड़ रुपये है। इस बजट में केन्द्र सरकार का योगदान भी शामिल है। इस मेले के लिए उ.प्र. सरकार ने 5435.68 करोड़ रुपये का बजट रखा है। उ.प्र. सरकार को महाकुम्भ मेले से 25000 करोड़ रुपये का राजस्व मिलने की उम्मीद है। इससे राज्य के आर्थिक विकास में दो लाख करोड़ रुपये का योगदान हो सकता है।
- महाकुम्भ मेले के अरैल क्षेत्र में भगवान महादेव को समर्पित शिवालय पार्क भारतीय मन्दिरों और पौराणिक विरासत की भव्यता प्रदर्शित करता है। 12 एकड़ में फैला यह पार्क कला, प्रकृति और मनोरंजन का अनूठा संगम पेश करता है। भारत के नक्शे की तरह अनोखे आकार वाले इस पार्क में अपने–अपने भौगोलिक स्थानों पर प्रमुख मंदिरों की प्रतिकृतियाँ हैं। निर्माण में उपयोग की जाने वाली अधिकांश सामग्री कचरे से प्राप्त की गई है। इसके निर्माण में लगभग 14 करोड़ रु. लगे। कम्पनी Z Tech India Limited इसके निर्माण, संचालन, रख–रखाव के लिए जिम्मेदार है।

वस्तुतः कुम्भ पर्व पर विभिन्न संस्कृतियों एवं समाजों का मेल होता है जिससे लोगों को एक दूसरे को जानने, समझने और कुछ सीखने का अवसर मिलता है। विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों के बारे में ज्ञान हो जाता है। इस पर्व पर लोग जाति, वर्ण, वर्ग, प्रान्त, भाषा की दीवारें लांघकर जल और किरणों के पारावार में अपने को खुला छोड़ देते हैं। पर्व के बहाने प्रकृति से जुड़ते हैं। यह पर्व धर्म का एक नया संदेश देता है, औदार्य और संकुचित सामाजिक–धार्मिक विचारों से मुक्ति का पाठ सिखाता है। वास्तव में कुम्भ मेला सभ्यता की ऊर्जा को संस्कृति में परिवर्तित करने की सबसे बड़ी आधारशिला है। पुनश्च भारत के विभिन्न भागों से आये तीर्थयात्रियों को एक सामान्य अनुभव एवं अनुभूति भी प्रदान करता है कि प्रत्येक तीर्थयात्री एक आस्था से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार कुम्भ मेला अनन्त सत्य की खोज में एक विशिष्ट पथ है।

सन्दर्भ–सूची

1. अथर्ववेद, 4/34/7, 19/53/3
2. ऋग्वेद, 1/116/7, 10/89/7
3. यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा, 19/87
4. वायुपुराण, 2/15/47

5. नारदीय पुराण, 2/65/100
6. विन्ध्यस्य दक्षिणेगङ्गा गौतमी सा निगद्यते।
उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते।। –ब्रह्मपुराण, 78/77
7. यथा सुराणाममृतं पितृणां च यथा स्वधा।
सुधा यथा च नागानां तथा गंगाजलं नृणाम्।। –महाभारत, 13/27/48
8. नारदीय पुराण, 2/66/44
9. दूबे, देवी प्रसाद, ''कुम्भ मेला : ओरिजिन एण्ड हिस्टारिसिटी ऑफ इण्डियाज ग्रेटेस्ट पिलग्रिमेज फेयर'' (नेशनल ज्यॉग्राफिकल जर्नल ऑफ इण्डिया, जिल्द 33(4), 1987 ई0।
10 लेखक डॉ. आदित्यनाथ के भौतिक 'महाकुम्भ मेला' के सर्वेक्षण के आधार पर।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 36-38

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बौद्ध साहित्य में वर्णित खाद्य पदार्थ

*डॉ. सुषमा कुमारी**

सारांश : *बौद्ध साहित्य ने उस समय की कृषि प्रणालियों और खाद्य उत्पादन के तरीकों का विस्तृत वर्णन किया है। बौद्ध आगमों में मुख्य रूप से धान की खेती का उल्लेख किया गया है, जो यह दर्शाता है कि उस समय धान की खेती एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी और चावल मुख्य खाद्य सामग्री था। अंगुत्तर निकाय में एक प्रसंग में भगवान बुद्ध भिक्षुओं से चर्चा करते हैं, जिसमें भिक्षुओं को धान या जौ की फसल के बारे में बताया गया है। यदि फसल को सही तरीके से नहीं काटा गया, तो यह संभावना है कि फसल बर्बाद हो जाएगी और इससे भिक्षुओं को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इसी प्रकार, जातकों में भी धान की खेती का उल्लेख मिलता है। इस लेख में बौद्ध साहित्य में वर्णित विभिन्न प्रमुख खाद्य पदार्थों की संक्षिप्त समीक्षा की गई है।*

मुख्य शब्द : *बौद्ध साहित्य, बौद्ध काल, खाद्य पदार्थ*

प्रस्तावना : कृषि में सहजीविता का महत्व अत्यधिक है, विशेषकर धान की खेती में। धान की फसल को उगाने वाली किसान महिलाएँ खेतों में फैले हुए धान के पौधों को संजोती हैं। इससे यह सुनिश्चित होता है कि धान की खेती सही तरीके से हो रही है। इसके बाद, जौ की फसल भी सहजीविता का एक उदाहरण है। जौ का उत्पादन भी महत्वपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त, अन्य फसलों जैसे कि उरद, मूँग, बाजरा, ज्वार, गेहूँ, चना, और सरसों का भी सहजीविता में योगदान होता है। साथ ही, इन फसलों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है।[1]

प्रमुख खाद्य पदार्थों में से एक ईख की खेती का उल्लेख बौद्ध आगमों में काफी मात्रा में किया गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि ईख की खेती किस प्रकार की जाती है। भगवान बुद्ध ने आंगुत्तल हनणाय में भिक्षुओं से कहा है, ''भिक्षुओं, जैसे ईख के बीज को भूमि में बोया जाता है, वैसे ही जितनी भी भूमि में उगाई जाती है, वह सब मधुर होती है।''[2] ईख की खेती का वर्णन भी बौद्ध आगमों में मिलता है।

इससे यह ज्ञात होता है कि ईख का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता था। उस समय भी लोग ईख को औषधि के रूप में प्रयोग करते थे। इस प्रणाली में यह देखा जा सकता है कि ईख का वर्णन कई प्रसंगों में किया गया है।[3] धान और जौ के साथ–साथ ईख भी प्राचीन समय में बड़ी मात्रा में उगाई जाती थी।

फसल के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बाड़ लगाने की प्रक्रिया में उसकी रखवाली का भी उल्लेख किया जाता है। कृषि में शास्त्रीय दृष्टिकोण से हानिकारक कीटों की पहचान महत्वपूर्ण है। यदि धान की फसल को उचित देखभाल के बिना छोड़ दिया जाए या उसे सही समय पर काटा न जाए, तो इसकी संभावना बढ़ जाती है कि फसल को नुकसान होगा और उसमें कीटों का प्रकोप हो सकता है। इन उदाहरणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध युग में धान और अन्य फसलों की खेती अत्यंत महत्वपूर्ण थी।[4] विभिन्न जातियों में भी हानिकारक कीटों के प्रभाव के प्रमाण मिलते हैं। तिलमुट्ठि जातक से संबंधित जानकारी में यह उल्लेखित है कि बुढ़िया द्वारा तिलों को साफ करने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों ने साफ तिलों को देखने की इच्छा व्यक्त की। तिलों से जुड़ी कई अन्य स्थानों का उल्लेख जातक साहित्य में मिलता है। तत्कालीन समाज में भोजन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मूंग का उपयोग विशेष रूप से किया जाता था।[5] बौद्ध साहित्य में खेती से संबंधित कई उद्धरण भी उपलब्ध हैं। छद्दन्त जातक में हर्षणाय ईख के वनों का वर्णन किया गया है। ईख की खेती किस प्रकार की जाती थी, यह भी बौद्ध साहित्य में वर्णित है।[6] अंगुत्तल हनणाय में भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि जैसे

* *यू.जी.सी./नेट, इतिहास*

ईख का बीज होता है, वैसे ही विभिन्न स्थानों में मधु उत्पन्न होता है। इस प्रणाली में मुख्य फसल के रूप में ईख की भी महत्वपूर्ण मात्रा में उपस्थिति देखी जाती है। नीसानी खेती का उल्लेख बौद्ध साहित्य में भी किया गया है। खेतों में निसानी की खेती मुख्यतः यहाँ की जलवायु के अनुसार होती थी। मिजानन जाति से संबंधित यह प्रक्रिया धुनणी द्वारा निसानी की धुनाई के रूप में की जाती थी। लीज डेविड्स का मानना है कि संभवतः निसानी खेती की शुरुआत बौद्ध युग से हुई, क्योंकि इसका प्राचीनतम उल्लेख सूत्र साहित्य और बौद्ध ग्रंथों में मिलता है।[7]

धान और गन्ने के खेतों में काम करने वाले लोगों का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। जैसे कि 'आनंद' में कहा गया है कि जब लोग धान के खेतों को सफेद कहते हैं, तो वास्तव में धान का खेत स्थायी नहीं होता।[8] इसी प्रकार, जब लोग गन्ने के खेतों को रगड़ते हैं, तो गन्ने का खेत भी स्थायी नहीं होता। इससे यह स्पष्ट होता है कि धान और गन्ने की खेती समय पर होती थी, क्योंकि इनका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में विशेष रूप से किया गया है।[9] बौद्ध साहित्य में विभिन्न प्रणालियों का उल्लेख है जो अन्न की खेती से संबंधित हैं। गन्ने की खेती के लिए उल्लेखनीय स्थान इक्ष्वाकु वंश के थे, जिनमें अयोध्या से लेकर रेणुका तक के क्षेत्र शामिल हैं। आज भी इन क्षेत्रों में गन्ने की खेती होती है, जबकि अन्य क्षेत्रों में इसकी उपस्थिति कम है। गौतम बुद्ध ने भी इस विषय पर विचार किए हैं।

बौद्ध स्रोतों से प्राप्त जानकारी के अनुसार, तात्कालिक कृषक समुदाय ने कृषक क्षेत्र में कृषि की नई तकनीकों को अपनाया। किसानों को खेती में विभिन्न फसलों के चयन की स्वतंत्रता थी, जिसके परिणामस्वरूप कृषि प्रणाली में जलवायु के अनुकूल और उपयुक्त फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई। इन फसलों में अनाज का विशेष महत्व था, जो जीवन के लिए आवश्यक था। इसके साथ ही, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए फसलों की विविधता को भी ध्यान में रखा गया। अनाज और फसल उत्पादन से संबंधित कई विचार और मनोवैज्ञानिक पहलुओं का उल्लेख साहित्य में मिलता है।[10] बौद्ध धर्म में धान की खेती एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। जातक साहित्य में धान की कृषि से संबंधित कई उल्लेख मिलते हैं। धान का उल्लेख इस प्रकार किया गया है कि इस युग के नागरिकों के लिए यह सबसे प्रिय खाद्य पदार्थ था। श्रावस्ती के निवासी ब्राह्मणों ने अचिरावती नदी के किनारे धान की खेती की थी, जिससे समग्र रूप से सौ गाड़ियों के बराबर धान की फसल उत्पन्न हुई। इसके अलावा, जातक कथाओं में यह भी उल्लेखित है कि एक दासी ने धान को धूल में फैलाकर उसे खाने के लिए तैयार किया था, जो कि एक आवश्यक प्रक्रिया मानी जाती थी। जातक कथाओं में जौ के भी प्रमाण मिलते हैं।[11]

उपयुक्त फसलों ने कृषि जीवन से संबंधित अध्ययनों में भी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं, जो साहित्य में उपलब्ध हैं। इनमें प्रमुख फसलें जैसे उड़द, सरसों, मसूर, सन और गेहूँ शामिल हैं। पारंपरिक समाज में कृषि जीवन में इन फसलों का उपयोग सामान्यतः किया जाता था। साहित्य में अन्न उत्पादन के साथ–साथ विभिन्न फसलों की खेती का भी उल्लेख मिलता है।[12] इनमें चना, राई, हल्दी, अदरक, 20 प्रकार की मिर्च, जीरा, हींग आदि प्रमुख हैं। संभवतः विभिन्न व्यंजनों को तैयार करते समय इन फसलों का उपयोग स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता होगा।[13]

जातक कथाओं में सब्जियों की बिक्री से संबंधित साक्ष्य प्राप्त होते हैं। सब्जी बेचने के लिए आवश्यक विवरण इन कथाओं में उपलब्ध होते हैं। सब्जी बेचने वालों को कुंजरे शब्द से संबोधित किया गया है। इन साक्ष्यों में खीरे, टमाटर, और अन्य सब्जियों का उल्लेख किया गया है।[14]

निष्कर्ष : इस प्रकार, बौद्ध साहित्य में विभिन्न प्रणालियों द्वारा खाद्य पदार्थों की खेती की जाती थी, जिनमें चावल, गन्ना, मटर, उड़द, सरसों, मसूर, सन', पान, मिर्च, हरी चना, राई, अदरक, चना, जीरा, हींग, उड़द, मूंग, बाजरा, नास, गेहूँ, जौ, हरी मटर, सरसों, खीरे, और रौणी जैसे प्रमुख अनाज शामिल थे।

संदर्भ–सूची

1. संयुत्तनिकाय, भाग–2, पृ. 830
   जातक, भाग–1, पृ. 36/328
2. जातक, भाग–1, पृ. 36/327
3. अवदानशतण, 1/293/9
   सुत्तनिपात, पृ. 17

4. जातक, भाग–4, 459 / 314
5. सुत्तनिपात, पृ. 15;
   इधरनाम ब्राह्मणावदान, पृ. 47
6. सुत्तनिपात, कसिभारद्वाजसुत्त, पृ. 15
   दिव्यवदान, 47 / 32
7. जातक, भाग 5, 524 / 134
   संयुत्तनिकाय, भाग–1, पृ. 138
8. संयुत्तनिकाय, भाग–2, देवनासुत्त, पृ. 583
9. ललितविस्तर, पृ. 128 / 16
10. महावस्तु, जिल्द 3, 50 / 15
11. संयुत्तनिकाय, देवनासुत्त, पृ. 583
12. जातक, भाग–5, 502 / 11
13. कौटिल्य अर्थशास्त्र, दूसरा अधिकरण, पृ. 100, 238, 244
14. दिव्यावदान, 414 / 24–25

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Management : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 39-47

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Cultural Practices and the Communication Patterns in Tribal Societies : A Comparative Analysis of the Santhal, Sauria Paharia, and Kharwar Tribes

Dr. Sunita*

Abstract : *Bihar, a state with a rich tapestry of cultural diversity, is home to a small but significant tribal population. Although the formation of Jharkhand in 2000 led to a shift in the tribal demographics of Bihar, several tribal communities, including the Santhal, Sauria Paharia, and Kharwar tribes, continue to reside within the state. These tribes offer a fascinating lens to explore the intersection of cultural practices and communication patterns in tribal societies.*

This study provides a comprehensive analysis of the socio-cultural life and communication methods of these three distinct tribal groups, examining how their traditions, lifestyles, and environments influence the way they interact, share information, and access media. By employing a diverse range of research methods—including in-depth interviews, observational studies, and case studies—the research captures the nuances of their communication systems.

The findings reveal both the commonalities and differences among the tribes. The Santhal and Sauria Paharia tribes predominantly rely on traditional interpersonal communication, shaped by their limited access to modern technological resources and their geographic and socio-economic circumstances. On the other hand, the Kharwar tribe, having experienced significant integration with non-tribal populations, demonstrates a greater embrace of modern communication technologies such as television, mobile phones, and digital platforms. Particularly notable is the younger generation of the Kharwar community, which is utilizing digital media to connect with broader audiences and advocate for their tribal concerns.

Through this comparative analysis, the study underscores the importance of understanding the cultural and contextual factors that shape communication patterns in tribal societies. It highlights the need for culturally tailored outreach strategies, focusing on improving literacy, increasing access to affordable media, and designing communication initiatives that respect and integrate tribal languages and traditions. The findings contribute valuable insights to the fields of anthropology, communication studies, and policy-making, offering a foundation for promoting tribal welfare and social inclusion in Bihar and beyond.

Key Words*: Bihar, Tribe, Cultural practices, Communication, Santhal, Sauria Paharia, Kharwar,Traditional Media, Interpersonal communication, Media*

Introduction : The tribal population in Bihar, though numerically a small segment, represents a significant repository of cultural heritage and traditions. According to the 2011 census, they make up

* ***Assistant Professor, International School of Management (ISM), Patna***

1.28 percent of the state's total population, a figure that has been steadily rising in recent years. This includes 32 unique tribal communities, each with distinct identities and lifestyles. These communities predominantly inhabit rural and remote areas, such as forests and hilly terrains, which have historically contributed to their isolation from mainstream society. This geographical seclusion has enabled the preservation of their traditions, languages, and practices over generations.

However, with the increasing interaction between tribal and non-tribal populations, some members of these communities have migrated to areas inhabited by mixed castes. This migration often results in a gradual blending of tribal and mainstream cultural practices, reflecting their adaptive nature and the broader social dynamics at play. Over time, such interactions have led to the partial assimilation of tribal groups into mainstream society, while still retaining aspects of their unique identities(Vidyarthi 1981, Basu, 2000,Kumar 2015, MTA 2013).

This study aims to delve deeper into the intricate communication systems of three prominent tribal groups in Bihar—Santhal, Sauria Paharia, and Kharwar. By investigating and comparing their modes of communication, the research seeks to understand how these groups maintain their cultural essence while navigating modern influences. The study also explores their strategies for adapting to changing societal contexts, showcasing their resilience and the evolving nature of their traditions. This comparative analysis promises to offer valuable insights into the interplay between cultural preservation and transformation within these tribal communities(Danda, 1991; Sekar and Ramasam, 1996; Padhi, 2005).

Santhal : The Santhal tribe is the largest and one of the most significant tribal communities in Bihar, known for their vibrant culture and traditions. Predominantly, the Santhal population is concentrated in the districts of Bhagalpur, Banka, Jamui, and Purnia, though their influence extends beyond the boundaries of Bihar. This community is also widely present in neighboring states such as Jharkhand, West Bengal, Odisha, and Assam, contributing to their prominence in eastern and northeastern India.Santhals are known for their distinct identity, which encompasses their unique language, rituals, and cultural practices(Chatterjee and Sarkar, 2016; Singh, 206; Verma, 2010).

Culture and Traditions : The Santhali language is a prominent marker of their identity. As part of the Austroasiatic language family, it holds linguistic significance. Adding to its distinction, the Santhali language has its very own script, Ol Chiki, which was developed in the 20th century. This script is a testament to the Santhals' commitment to preserving and promoting their language and cultural identity.. Traditionally, Santhals rely on agriculture, hunting, and forest produce for their livelihood. However, modernization has led many to take up jobs in cities.

Culturally, the Santhals are deeply connected to their ancestral roots and natural surroundings. They are skilled agriculturists and craftsmen, with traditional occupations including farming, hunting, and gathering forest produce. Their social structure is organized and community-oriented, emphasizing values like equality and collective decision-making. The Santhals are also known for their elaborate festivals, music, and dance forms, which reflect their close bond with nature and spirituality. Festivals such as Sohrai and Baha celebrate their agrarian lifestyle and community unity, often accompanied by traditional drum beats and lively dances.Sohrai, celebrated as a harvest festival, reflects gratitude for agricultural abundance and involves rituals cantered around animal worship. Another cherished event is Baha, or the flower festival, which is a beautiful tribute to nature worship and symbolizes renewal and harmony. These festivals are characterized by intricate rituals, vibrant traditional attire, and an emphasis on communal unity, showcasing the Santhals' rich cultural heritage and their close-knit social fabric(Singh, 2006; Verma, 2010).

Dance and music hold a sacred place in Santhal culture. They are not only a source of entertainment but also a medium for storytelling and passing down traditions. The rhythms of the Tamak (a percussion

instrument), Tumdak, and the sweet melodies of the Bansuri (flute) accompany their vibrant dances. Together, they create an enchanting cultural expression that embodies the Santhal spirit.The Santhals' rich cultural heritage is a treasure trove of traditions, values, and resilience. Their ability to adapt while preserving their distinct identity is an inspiration to many.

Socio-Economic Challenges among the Santhal : The Santhal community faces several contemporary challenges that impact their socio-economic and cultural well-being. Despite being one of the largest tribal groups in India, they often struggle with poverty and limited access to resources. Many Santhals rely on agriculture and forest-based livelihoods, but deforestation and land encroachments threaten their traditional practices. Social marginalization and discrimination further hinder their integration into mainstream society, while low literacy rates and inadequate educational opportunities limit their progress. Additionally, the community grapples with health issues due to poor access to healthcare facilities. Efforts to preserve their cultural heritage, including their language and traditions, are also challenged by modernization and external influences. Addressing these issues requires a balanced approach that respects their identity while promoting sustainable development.

Sauria Paharia : The Sauria Paharia tribe, recognized as one of India's Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs), stands out for its small population and relative isolation, which has allowed them to preserve their distinctive way of life. This community primarily resides in the picturesque and rugged Rajmahal Hills that stretch across Bihar and Jharkhand, providing a natural barrier that has shielded them from significant external influences. Their seclusion has been instrumental in maintaining their unique identity, language, and cultural traditions, which are deeply intertwined with their ancestral heritage and the natural environment(Kumar and Sinha, 2016; Chatterjee and Sarkar, 2016).

Culture, Traditions, and Lifestyle : The Sauria Paharias are deeply rooted in their culture, which reflects their close connection with nature. They communicate using a dialect of Malto, a language belonging to the Dravidian family. This linguistic distinction plays a crucial role in preserving their cultural uniqueness and fostering a sense of community cohesion across generations.

Their traditional lifestyle is centered around shifting cultivation, locally referred to as "jhumming." This method involves cultivating small plots of land for a temporary period before leaving them to regenerate naturally. In addition to farming, they rely heavily on hunting, gathering, and the collection of minor forest produce such as medicinal plants, honey, and firewood for their livelihood. These activities highlight their harmonious coexistence with their natural surroundings, reflecting a sustainable and eco-friendly way of living.

The Sauria Paharias follow animistic beliefs, venerating nature and ancestral spirits as part of their spiritual practices. Their worldview emphasizes respect and gratitude toward the elements of nature that sustain their lives. Among their principal deities is Sing Bonga, the Sun God, who is revered as the giver of light, life, and sustenance. This deep spiritual connection further strengthens their bond with their environment.

Their settlements consist of small and scattered hamlets, often perched on hilltops. These clusters of homes are modest and practical, constructed using locally available materials such as bamboo, wood, and thatch. The design and structure of their homes mirror their self-sufficient and resourceful approach to living, adapting perfectly to the natural landscape.

Despite their vulnerability, the Sauria Paharias showcase remarkable resilience and commitment to their traditional way of life. They offer an inspiring example of cultural endurance and ecological harmony, providing valuable insights into the lives of one of India's most unique tribal communities.

Socio-Economic Challenges among the Sauria Paharia Tribe : The Sauria Paharia community, recognized as a Particularly Vulnerable Tribal Group (PVTG), faces numerous contemporary challenges

that jeopardize their traditional way of life and overall well-being. Economic vulnerability stemming from poverty and reliance on shifting cultivation is compounded by deforestation and land-use changes, leading to instability in their livelihood. Modernization and external influences have diluted their unique cultural practices and agricultural methods, threatening their identity. Health-related issues, such as malnutrition and limited access to healthcare in their remote settlements, further exacerbate their struggles, while low literacy rates and poor educational opportunities hinder their socio-economic progress. Additionally, the depletion of forest resources and environmental degradation disrupt their sustainable lifestyle, while social marginalization and lack of political representation prevent them from fully integrating into mainstream society. Land rights conflicts and displacement from ancestral lands also pose significant risks, making their survival and cultural preservation increasingly challenging.A noteworthy aspect of their traditional occupation has been the production and sale of liquor, a practice deeply embedded in their culture and a significant source of livelihood. However, the liquor ban in Bihar, implemented in 2016 under the Bihar Prohibition and Excise Act, has impacted their economic stability, forcing many Sauria Paharia families to seek alternative livelihoods, which may not be as sustainable or culturally aligned. The prohibition has also led to challenges like the rise of illegal liquor trade and a gradual loss of traditional knowledge associated with liquor-making.

Kharwar : The Kharwar tribe in Bihar is a culturally rich yet socio-economically marginalized tribal community facing numerous challenges. Traditionally dependent on forest resources for their livelihoods, they excelled in sustainable practices such as gathering forest produce. However, deforestation and strict forest regulations have significantly disrupted their way of life, pushing many to shift to agriculture, which often fails to provide adequate economic stability.

Food and nutritional security remain a major concern as the depletion of forest resources has affected their access to nutrient-rich produce like mahua flowers. Low literacy rates and limited access to education further hinder their progress, restricting their opportunities for social and economic advancement. The community also struggles with social marginalization and inadequate political representation, leaving them vulnerable to exploitation and neglect.

Despite these challenges, the Kharwar tribe exhibits resilience and a deep connection to their cultural heritage. Addressing their issues requires a thoughtful approach that ensures their inclusion in mainstream development while preserving their identity and traditions. Their story sheds light on the broader struggles faced by tribal communities in India as they navigate the tensions between tradition and modernity.

Culture, Traditions, and Lifestyle : The Kharwar tribe, primarily found in Bihar and neighbouring states, has a rich cultural heritage deeply rooted in their traditions and lifestyle. Historically, the Kharwars have been forest-dependent, engaging in sustainable practices such as gathering forest produce and utilizing natural resources for their livelihood. Over time, many have transitioned to agriculture as their primary occupation, adapting to changing circumstances while maintaining a connection to their ancestral practices.

The Kharwars follow a simple yet structured social life, often living in close-knit communities. Their kinship system emphasizes strong familial bonds, with clear roles and responsibilities within the family unit. Traditional customs, such as monogamy and endogamy (marriage within the community), are prevalent, reflecting their adherence to age-old practices.

Religious beliefs play a significant role in their daily lives, with animism being a central aspect of their spirituality. The Kharwars worship natural elements, ancestral spirits, and deities, emphasizing their deep connection with nature. Rituals and ceremonies are integral to their culture, often accompanied by traditional music and dance, which serve as expressions of their identity and communal unity.

Their lifestyle is characterized by simplicity and resourcefulness. The Kharwars construct their homes using locally available materials like bamboo, wood, and thatch, reflecting their sustainable approach to living. Despite facing challenges such as deforestation, social marginalization, and limited access to education and healthcare, the Kharwar tribe continues to preserve its cultural identity and traditions, showcasing resilience and adaptability in the face of modern pressures.

Socio-Economic Challenges among the Kharwar Tribe : The Kharwar tribe of Bihar faces several challenges that impact their socio-economic and cultural well-being. Traditionally forest-dependent, they have been experts in gathering forest produce and practicing sustainable livelihoods. However, deforestation and strict forest regulations have disrupted their traditional way of life, forcing many to adopt agriculture as their primary occupation. Despite this shift, they continue to face economic hardships due to limited access to resources and opportunities.

Food and nutritional security is a significant concern for the Kharwar community. Many rely on forest produce like mahua flowers and other lesser-known foods, which are rich in nutrition but not widely recognized. The depletion of these resources has affected their dietary habits and overall health. Additionally, low literacy rates and inadequate access to education hinder their ability to engage with mainstream society and improve their living conditions.

Social marginalization and lack of political representation further exacerbate their struggles, leaving them vulnerable to exploitation and neglect. Efforts to address these issues require a sensitive approach that respects their cultural identity while promoting sustainable development and inclusion.

Methodology : The qualitative study on the Socio-Economic and Cultural lives of the Santhal, Sauria Paharia, and Kharwar tribes in Bihar was designed to offer a detailed and comprehensive exploration of their unique experiences.The research methodology employed in this study was rooted in qualitative approaches, emphasizing a detailed and nuanced exploration of the subject matter. To ensure the relevance and precision of the data collected, purposive sampling was utilized for selecting geographical areas, allowing the researchers to focus on regions of particular interest or significance to the study.The research focused specifically on the districts of Banka and Bhagalpur, with the blocks of Bausi and Katoriya in Banka, and Sanhaula and Kahalgaon in Bhagalpur purposively selected for their cultural significance and relevance to the study. This purposive sampling method ensured that the research focused on areas of importance. Additionally, random sampling was employed to select respondents, ensuring a diverse representation and reducing bias. The study utilized qualitative methods to delve deep into the socio-economic and cultural practices, traditions, and challenges of these tribal communities. The data collection methods included:

- **In-depth Interviews** : These interviews were conducted with community members, elders, and local leaders, enabling researchers to gather rich, detailed insights into the perspectives, practices, and socio-economic conditions of the tribes. The open-ended nature of the questions allowed for a free flow of information, capturing the depth and complexity of the community's realities.
- **Observational Studies** : By observing the communication practices and social interactions within natural settings, researchers gained an authentic understanding of how information is exchanged and knowledge disseminated among individuals and groups within the tribes. This immersion provided context-specific insights into interpersonal and communal dynamics.
- **Case Studies** : Detailed case studies highlighted individual experiences and unique scenarios within the community. These case studies offered a granular view of how socio-economic conditions, cultural practices, and communication systems interact and evolve over time.

This methodological approach allowed researchers to examine the communities' lived experiences comprehensively, combining general patterns with specific instances to create a multidimensional

analysis. The findings reflect both the challenges faced and the resilience displayed by the Santhal, Sauria Paharia, and Kharwar tribes in adapting to socio-economic and cultural changes.

Communication Pattern in Santhal and Sauria Paharia Tribes : The Santhal and Sauria Paharia tribes exemplify a unique communication pattern rooted in their socio-economic conditions and geographical isolation. Traditional methods dominate their exchange of information due to restricted access to modern technologies like television, smartphones, and digital platforms. This limited exposure to contemporary media fosters a profound reliance on interpersonal communication, which in turn nurtures deep, communal bonds and a closely-knit social structure.

Among the few forms of modern media that have reached these communities, radio stands out as a crucial medium. Its affordability, ease of use, and wide accessibility make it a lifeline of information for these tribes. Whether it's news updates, entertainment, or educational programs, radio bridges the information gap by providing vital insights in a format that suits their needs and lifestyle. Many community members actively tune in, ensuring that this medium plays a pivotal role in their connection with the outside world.

On the contrary, print media remains virtually absent in their lives. Two key factors underpin this disconnect:

1. **High Illiteracy Rates** : A significant portion of the tribal population struggles with reading, making newspapers and magazines less practical.
2. **Economic Constraints** : Limited financial resources hinder the affordability and circulation of printed materials, further deterring engagement with this medium.

Instead, word-of-mouth communication becomes a powerful alternative. This traditional method is not only widely utilized but also proves to be highly effective. Crucial information related to government schemes, health awareness campaigns, and educational opportunities is disseminated through community interactions. Informal gatherings, storytelling sessions, and village meetings act as platforms for sharing knowledge and fostering collective decision-making.

The communication practices of these tribes illuminate their resilience and adaptability. By blending time-tested interpersonal techniques with selective use of modern media like radio, they have created a system that respects their cultural identity while embracing technological advancements where feasible. This demonstrates the importance of adopting culturally sensitive communication strategies to promote inclusivity and ensure that information reaches these marginalized groups effectively. Their approach offers valuable insights into harmonizing traditional and modern communication in other similar communities.

Communication Pattern in Kharwar : The Kharwar tribe, an indigenous group, has undergone remarkable transformations in their communication patterns due to their integration with non-tribal populations. This close interaction has significantly influenced their way of life, allowing them to access and utilize modern communication technologies. Tools such as television, newspapers, and mobile phones have become integral to their daily routine, bridging the gap between their traditional practices and contemporary advancements. These technologies have not only enriched their sources of entertainment but have also enhanced their ability to engage with government initiatives and schemes, ensuring they stay informed about important updates and opportunities.

Television, for instance, is not merely a source of entertainment but a medium for gaining knowledge about the wider world. Similarly, newspapers bring insights into local, national, and international news, while mobile phones serve as versatile tools for communication, access to information, and connection to social and economic networks. These advancements empower the Kharwar community to better navigate the socio-political landscape and foster active participation in public life.

The shift towards modernity is particularly evident in the younger generation of the Kharwar tribe. They have enthusiastically embraced digital media platforms such as social media and online forums, recognizing them as powerful tools to raise social awareness and amplify their voices. Through these channels, they connect with broader communities, share their cultural narratives, and advocate for the issues impacting their tribe. This marks a generational transition where technology is not only a facilitator of communication but also a medium for empowerment and representation.

What stands out is the delicate balance the Kharwar tribe has achieved between cultural preservation and technological adaptation. While they actively engage with modern tools, they strive to maintain their cultural identity and traditions. This duality reflects their resilience and ability to evolve without losing touch with their roots.

These developments underline the importance of inclusive communication strategies that recognize and respect the unique journey of communities like the Kharwar tribe. By understanding their needs and fostering access to both traditional and modern communication methods, we can ensure their full participation in the digital age while honoring their cultural heritage.

Barriers to Communication : Barriers to communication within tribal communities stem from various socio-economic and infrastructural challenges that hinder effective information dissemination. Limited media access remains a significant obstacle, as many tribal households lack televisions, internet facilities, or modern communication technologies. This restricts their exposure to mass media platforms and hampers their ability to stay informed about essential government schemes, health programs, and other vital initiatives.

Economic constraints further exacerbate the situation, with the affordability of newspapers and mobile data posing a serious issue. The cost of such resources often remains beyond reach for many tribal families, particularly those living in poverty, thereby limiting their ability to access timely information and educational content.

Another critical barrier is language differences. Tribal communities often communicate in dialects that are distinct from mainstream regional languages. This linguistic diversity poses challenges in designing and delivering information that is easily comprehensible to them. Efforts to bridge this gap often require translation and localization, which are not always readily available or prioritized.

Illiteracy compounds these challenges, as high illiteracy rates among tribal populations make it difficult for individuals to engage with print media or digital communication effectively. Without adequate literacy skills, accessing newspapers, brochures, or online resources becomes nearly impossible, leaving a significant portion of the community dependent on oral and interpersonal methods for receiving information.

Collectively, these barriers highlight the need for inclusive and culturally sensitive communication strategies to reach tribal populations effectively. Tailored approaches that account for their unique linguistic, economic, and educational contexts can pave the way for better information access and enhanced social development.

Conclusion : The study reveals the diverse communication systems among tribal groups in Bihar, emphasizing the pivotal role of traditional interpersonal communication as the cornerstone of information exchange. Despite its continued significance, the extent of exposure to modern media platforms varies widely between communities, reflecting disparities in access to resources, literacy levels, and economic conditions.

To address these communication challenges, several targeted measures are essential. Improving literacy rates is a foundational step, as it empowers tribal populations to engage with print and digital media more effectively. Simultaneously, efforts to increase the accessibility of affordable communication

tools—such as mobile phones, radios, and internet services—can bridge the technological gap and foster inclusivity. Special attention must be given to community radio programs tailored to tribal languages and cultural contexts, as they offer a practical and impactful means of reaching these populations with relevant and actionable information.

Understanding and respecting the communication patterns of these tribes is critical for policymakers and development practitioners aiming to create meaningful outreach strategies. By adopting culturally sensitive approaches, policies can align with the unique needs and preferences of these communities, ensuring that vital information related to government schemes, health initiatives, and education is effectively disseminated. This thoughtful integration of traditional methods and modern technologies will not only enhance tribal welfare but also promote socio-economic development and empowerment across the region.

References

1. Annual Report (2016-17), Ministry of Tribal Affarirs, Government of India

2. Banothu Harishankar (2016). *Tribal Economic Development in India*. International journal of multidisciplinary advanced research trends ISSN: 2349-7408 volume iii, issue 1(3), June 2016.

3. Bose, Nirmal K., (1972), Some Indian Tribes, National Book Trust, India, New Delhi.

4. Census (2011), District Census Handbook Banka, Registrar General of India, Ministry of Home Affairs, Government of India, Available at https://data.gov.in/resources/villagetown-wise-primary-census-abstract-2011-banka-district-bihar on December 26, 2016.

5. Census (2011), District Census Handbook Bhagalpur, Directorate Of Census Operations, Bihar, Available at http://www.censusindia.gov.in/2011census/dchb/1022_PART_B_DCHB_BHAGALPUR.pdf on August 08, 2016.

6. Census (2011), Primary census Abstracts, Registrar General of India, Ministry of Home Affairs, Government of India, Available at http://www.censusindia.gov.in/DigitalLibrary/Archive_home.aspx on December 26, 2016.

7. Census (2011), Scheduled Tribe in India, Registrar General & Census Commissioner, India, Ministry Of Home Affairs Available at http://www.census2011.co.in/scheduled-tribes.php on June03, 2013.

8. Eleventh Five year plan (2007-12) and Annual Tribal Sub Plan (2009-10), tribal Development Department, Govt. of Himachal Pradesh, Shimla.

9. Ghurye, G. S. (1959), *The Scheduled Tribes*, 2nd Edition, Popular Book Depot, Lamington Road, Bombay.

10. Government of Himachal Pradesh, Directory of Villages Having Concentration of Scheduled Tribe Population Excluding Scheduled Areas in HP, 2001 Census, Tribal Development Department.

11. Gupta, S. K., Sharma, V. P., Sharda, N. K. (1998), Tribal Development, Appraisal and Alternatives, Indus Publishing Company, New Delhi.

12. Handa, O. C., (2005), Gaddi Land in Chamba its History, Art & Culture (New Light on Early Wooden Temples), Indus Publishing Company, New Delhi.

13. http://planningcommission.gov.in/reports/sereport/ser/stdy_land.pdf on 18th Nov 2017

14. http://planningcommission.nic.in/plans/planrel/fiveyr/10th/volume2/v2_ch4_2.pdf on 21st Nov 2017

15. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/42714/2/11_chapter%2002.pdf on 15th Nov 2017

16. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/902/13/13_chapter%207.pdf (20th Nov 2017)

17. http://www.ncst.nic.in/sites/default/files/Socio-conomic%20development%20for%20STs.pdf on 21st October 2017

18. Kalkoti Gopal (February 2014), *Accelerating Pace of Rural Development— Some Critical Aspects for Success*, Kurukshetra vol. 62, Ministry of Rural Development.

19. Kumar, Rajeev K. & A. K. Kapoor, (2009), *Management of A Primitive Tribe: Role of Development Dynamics*, Academic Excellence, New Delhi.

20. Kumar, Rajeev K. (2015), Status of Development of Parhaiya of Jharkhand.*Man in India,* Vol. 95 (3). July- Sep, 2015:449-461.

21. Majumdar, D N (1944). The Fortunes of Primitive Tribes. Lucknow: Universal Publications.

22. Negi, T. S., 1976, Scheduled Tribes of Himachal Pradesh: A Profile, Raj printers, Meerut.

23. Nehru, Jawaharlal. 'The Right Approach to Tribal People', Indian Journal of Social Work, Vol. XIV, 1953-4, pp. 231-5.

24. Rajneesh (2014), *Impact of various rural development Schemes: an evaluation*, International Journal of Management Research and Business Strategy, Vol. 3, No. 2, April 2014, ISSN 2319-345X

25. Rao M. Sundara; Ramu.P.; (2014). *An Overview of the Tribal Development Policy of India.* International Journal of Academic Research, Vol.1 Issue.1. June, 2014. ISSN: 2348-7666

26. Research report on "Utilization for Scheduled Tribes in Govt. Jobs (Central, State including PSUs)", Institute of Tribal Studies, H.P. University, Summer Hill, Shimla.

27. Sharma Arpita (2014), *Rural development schemes through years*, Kurukshetra vol. 62, Ministry of Rural Development, February 2014.

28. Singh R. (ed.), *Environmental Policy and Tribal Modernisation.* New Delhi: Anmol Publications Pvt. Ltd., 2000, pp.115-116.)

29. Statistical Profile of STs in India (2013), Ministry of Tribal Affairs, Statistics Division, Government of India

30. Sunita (2023), Status of Santhal, Sauria Paharia and Kharwar tribes of Bihar and role of media in awareness generation. *Annals of Anthropological Research & Reviews*. Vol.3, No.1, Pp-58-75, ISSN: 2583-0570

58Link:https://www.journal.skbu.ac.in/published/paper_full_text/371401710934768.pdf?v=1740217480

31. Sunita and Kumar R. K. (2018). Santhals and their communication system: With special reference to Bihar. Mediascape in 21stCentaury: Emerging perspective, Part 1, Kanishka publishers, distributers.

32. Sunita and Kumar R. K. (2019). Exposure of Tribal Communities to Modern Mass Media: A Case of Bihar State. *Journal of social work and social development* (UGC CARE listed journal), pp-90-108,Vishva Bharti Shanti Niketan, West Bengal, June 2019.

33. UNESCO, (1980),*Many Voices, One World.* Kogan Page, London/New York/Unesco, Paris.

34. Verma, V., (1996), Gaddis of Dhauladhar A Transhumant Tribe of the Himalayas, Indus Publishing Company, New Delhi.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 48-52

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बिहार में शिक्षा के माध्यम से महिलाओं का सशक्तिकरण

*डॉ. नीलम कुमारी**

सारांश : *इस पत्र में बिहार के संदर्भ में महिलाओं के सशक्तिकरण और शिक्षा के बीच के संबंध का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यह महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति का समग्र दृश्य प्रस्तुत करता है और यह भी रेखांकित करता है कि भारत के सबसे पिछड़े राज्य बिहार ने अपनी महिला जनसंख्या को शिक्षा के माध्यम से सशक्त बनाने के लिए कई योजनाओं को लागू करने की दिशा में कदम बढ़ाए हैं।*

मुख्य शब्द : *महिलाओं की शिक्षा, बिहार, आर्थिक विकास, लिंग समानता, शैक्षिक संकेतक, महिला सशक्तिकरण, सरकारी पहलकदमी।*

परिचय : किसी भी राष्ट्र या समाज का विकास उसके शैक्षिक प्रणाली पर निर्भर करता है, और विद्वानों के बीच इस बात पर व्यापक सहमति है कि शिक्षा व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं, के सशक्तिकरण की एक महत्वपूर्ण कुंजी है। यह लोगों की क्षमताओं को बढ़ाने, आत्मविश्वास विकसित करने और उनके जीवन को बदलने की शक्ति रखती है। शिक्षा हर व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है, लेकिन यह महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक है। यह केवल इसलिए नहीं है कि शिक्षा अवसरों का प्रवेश द्वार है, बल्कि इसलिए भी कि महिलाओं की शैक्षणिक उपलब्धियों का परिवार और पीढ़ियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में गाँधी ने भी कहा था, ''एक पुरुष को शिक्षित करें, आप एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं; एक महिला को शिक्षित करें, आप एक पूरी सभ्यता को शिक्षित करते हैं।''[1]

महिलाओं की शिक्षा को मानव क्षमता का एक महत्वपूर्ण तत्व और महिलाओं के सशक्तिकरण का एक प्रमुख कारक माना गया है।[2] 1994 के काहिरा सहमति ने विशेष रूप से महिलाओं के लिए शिक्षा को सामाजिक और आर्थिक विकास की एक शक्ति के रूप में मान्यता दी। प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिक पूर्णता को 20 वर्ष का लक्ष्य निर्धारित किया गया, साथ ही लड़कियों और महिलाओं के लिए माध्यमिक और उच्च शिक्षा तक व्यापक पहुँच को भी प्राथमिकता दी गई। 2015 तक शिक्षा में लिंग अंतर को समाप्त करना भी सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों के लिए एक मानक है। शुल्ज़ (2002)[3] का सुझाव है कि महिलाओं का सशक्तिकरण महिलाओं की कार्य भागीदारी में सुधार के माध्यम से हो सकता है। एक अच्छी तरह से शिक्षित महिला अपने बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित कर सकती है, जो भविष्य की कार्यबल का निर्माण करेंगे। रामास्वामी (2007) ने पाया कि जिन राज्यों में महिला ग्रॉस एनरोलमेंट रेशियो (GER) माध्यमिक शिक्षा के लिए अधिक है, वहां श्रम उत्पादकता में वृद्धि का सकारात्मक संबंध है। विकास के प्रभावों के संदर्भ में, भदारी और बोर्डोलोई (2006)[4] ने यह निष्कर्ष निकाला कि निरक्षरों की तुलना में, जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा पूरी की है, उनकी आय 31 प्रतिशत अधिक है, जिन्होंने मध्य विद्यालय पूरा किया है, उनकी आय 45 प्रतिशत अधिक है, जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी की है, उनकी आय 89 प्रतिशत अधिक है, स्नातकों की आय 136 प्रतिशत अधिक है और पेशेवरों की आय 171 प्रतिशत अधिक है। यह सुझाव देता है कि माध्यमिक शिक्षा आय पर प्रभाव डालने के लिए एक महत्वपूर्ण स्तर हो सकता है।

महिला सशक्तिकरण : सशक्तिकरण का अर्थ है व्यक्तियों और समुदायों के समग्र विकास को बढ़ावा देना। महिला सशक्तिकरण का विचार 1985 में नैरोबी में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया था। तब से यह विश्वभर में कई औपचारिक और अनौपचारिक अभियानों में एक महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दा बन गया है। महिलाएँ विश्व की लगभग आधी जनसंख्या का गठन करती हैं, लेकिन उन्हें दुनिया भर में समान अवसरों से वंचित

* *इतिहास विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर*

रखा जाता है। हालाँकि, नारीवाद और महिला आंदोलन के उदय के कारण हाल के समय में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है।[5] इन महिला आंदोलनों की सबसे महत्वपूर्ण मांगों में से एक शिक्षा तक आसान पहुँच है, क्योंकि एक शिक्षित महिला समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। बिहार, जो भारत का सबसे पिछड़ा क्षेत्र है और विश्व के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है, अपनी महिला जनसंख्या को सशक्त बनाने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। सरकार और गैर–सरकारी एजेंसियों के प्रयासों के बाद, मैट्रिक स्तर तक शिक्षित महिलाओं को विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए देखा गया, जैसे कि पैराटीचर्स, आंगनवाड़ी केंद्रों का संचालन, आशा कार्यकर्ता, और कुछ गांवों में बचत क्रेडिट योजनाओं में नेतृत्व करना। कई महिलाओं ने विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा चलाए जा रहे प्रशिक्षण कार्यक्रमों से लाभ उठाया है। राज्य के अलावा, गैर–राज्य के अभिनेता भी स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्रों में महिलाओं के विकास के लिए स्थान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन विकासों के बावजूद, बिहार में महिलाओं का सशक्तिकरण अभी भी एक सपना है। बिहार में महिलाओं के सशक्तिकरण के मार्ग में कई बाधाएँ हैं, लेकिन दो प्रमुख बाधाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।[6] पहला, सरकार और गैर–सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद, बिहार में पितृसत्तात्मक संरचनाएँ और मानदंड महिलाओं के विकास के लिए अभी भी बाधाएँ बनी हुई हैं। लेकिन, परिवार के पुरुष सदस्यों के आजीविका के लिए प्रवास के कारण, महिलाओं की भूमिकाएँ और जिम्मेदारियाँ बदल रही हैं। अब वे सभी प्रकार के कार्यों, चाहे वह घरेलू हो या खेत में, पर्यवेक्षण और निर्णय लेने में भाग ले रही हैं। दूसरा, हाल के समय में, महिलाओं की शिक्षा को बढ़ाने के लिए ईमानदार और गंभीर प्रयास किए गए हैं, फिर भी कम शिक्षा का स्तर महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए एक बाधा बना हुआ है। पंचायती राज प्रणाली में सभी स्तरों पर महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। यह बिहार सरकार की बड़ी उपलब्धियाँ हैं। लेकिन महिलाओं की शिक्षा के निम्न स्तर के कारण अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आए हैं। यह स्पष्ट है कि अधिकांश महिला प्रतिनिधियों की स्थिति केवल औपचारिक और नाममात्र की होती है। वास्तव में, परिवार के पुरुष सदस्य ही असली प्रतिनिधि होते हैं। पंचायत से संबंधित सभी निर्णय महिलाओं के प्रतिनिधियों के परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा लिए जाते हैं। हालांकि, शिक्षित महिला प्रतिनिधियों के मामले में यह हमेशा ऐसा नहीं होता।[7]

महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति : हालांकि राज्य ने महिलाओं की शिक्षा के विभिन्न संकेतकों में अच्छे परिणाम दिखाए हैं, फिर भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। पिछले दशक में महिलाओं की साक्षरता दर में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है, जो 33.57 प्रतिशत (2001) से बढ़कर 53.33 प्रतिशत (2011) हो गई है। तालिका–1 यह दर्शाती है कि दशकों में लिंग अंतर में काफी कमी आई है। 1981 में, बिहार में साक्षरता दर में लिंग अंतर 30.5 प्रतिशत था, जो 2011 में घटकर 20.06 प्रतिशत हो गया। 2011 की जनगणना के अनुसार, राज्य में कुल साक्षरता दर में 16. 8 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर में 20.2 प्रतिशत की दशक वृद्धि हुई, जो भारत के सभी राज्यों में सबसे अधिक है।[8]

तालिका–1 : बिहार में साक्षरता दर 1951–2011 (प्रतिषत में)

वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	महिला	लिंग अंतर
1951	13.49	22.68	4.22	18.46
1961	21.95	35.85	8.11	27.74
1971	23.17	35.86	9.86	26.00
1981	32.32	47.11	16.61	30.50
1991	37.49	51.37	21.99	29.38
2001	47.53	60.32	33.57	26.75
2011	62.82	73.39	53.33	20.06

स्रोत : विभिन्न जनगणनाएँ

हालांकि, प्राथमिक और उच्च प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन बिहार में महिलाओं की शिक्षा के उज्ज्वल भविष्य को दर्शाता है। तालिका–2 में दिखाया गया है कि उच्च प्राथमिक कक्षाओं में लड़कियों का नामांकन (50.49 प्रतिशत) लड़कों (49.51 प्रतिशत) की तुलना में अधिक है, जबकि राज्य में महिला जनसंख्या केवल लगभग 47. 8 प्रतिशत है। कुल मिलाकर, कक्षा 1 से 8 तक लड़कियों का नामांकन 49.77 प्रतिशत है, जबकि लड़कों का नामांकन (50.23 प्रतिशत) थोड़ी अधिक है, जो 0.46 प्रतिशत के अंतर से है।

तालिका–2 : बिहार में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन 2013–14 (सभी क्षेत्रों) संख्याओं और (प्रतिशत) में

कक्षाएँ	लड़के	लड़कियाँ	कुल
1 से 5	7590138(50.53)	7430617(49.47)	15020755(100)
6 से 8	3078468(49.51)	3139734(50.49)	6218202(100)
1 से 8	10668606(50.23)	10570351(49.77)	21238957(100)

स्रोत : DISE डेटा 2013

माध्यमिक शिक्षा में हाल के वर्शों में लड़कियों की नामांकन दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो लड़कों की तुलना में अधिक है। यह सरकार की योजनाओं (जैसे साइकिल योजना और पोशाक योजना) का परिणाम है, जिसने लड़कियों के नामांकन को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया है। तालिका–3 में दर्शाया गया है कि आयु समूह (15–16) में 2009 में 78.8 प्रतिशत लड़कियां सरकारी स्कूलों में नामांकित थीं, जो बढ़कर 83.6 प्रतिशत हो गईं, जबकि इसी आयु समूह में लड़कों का नामांकन 2009 में 81.8 प्रतिशत था, जो 2013 में घटकर 78.6 प्रतिशत रह गया। यह ध्यान देने योग्य है कि 2009 में साइकिल योजना लड़कों के लिए भी लागू की गई थी। 2009 में 14 प्रतिशत लड़के और 14.7 प्रतिशत लड़कियां स्कूलों से बाहर थीं। लेकिन पिछले 4 वर्षों में स्थिति में बदलाव आया है, अब 16.6 प्रतिशत लड़के और 11.4 प्रतिशत लड़कियाँ स्कूल से बाहर हैं। यह 15–16 आयु समूह की लड़कियों की स्कूलों और शिक्षा की ओर बढ़ती रुचि को दर्शाता है, लेकिन लड़कों के स्कूल से बाहर रहने की प्रतिशत वृद्धि चिंताजनक है और यह नीति निर्माताओं को विचार करने के लिए मजबूर करेगा।

तालिका–3 : ग्रामीण क्षेत्रों में 2009 और 2013 में लड़कियों और लड़कों की आयु समूह (15–16) में नामांकन (प्रतिशत में)

आयु (15-16 वर्ष)	2009		2013	
	लड़के	लड़कियाँ	लड़के	लड़कियाँ
सरकारी विद्यालय	81.8	78.8	78.6	83.6
निजी विद्यालय	2.8	4.3	4.1	3.4
अन्य विद्यालय	1.4	2.2	0.7	1.7
विद्यालय में नहीं	14.0	14.7	16.6	11.4
कुल	100	100	100	100

स्रोत : ASER रिपोर्ट 2009 और ASER रिपोर्ट 2013

उच्च शिक्षा के मामले में, बिहार भारतीय राज्यों में सबसे निचले स्तर पर है। बिहार उच्च शिक्षा के अधिकांश परिणाम संकेतकों पर अन्य राज्यों की तुलना में कमजोर प्रदर्शन करता है (मिश्रा 2013)। महिलाओं की उच्च शिक्षा की स्थिति भी पुरुषों से भिन्न नहीं है, बल्कि इससे भी खराब है। बिहार के 12वें पंचवर्षीय योजना के अनुसार, बिहार में उच्च शिक्षा में लिंग समानता सूचकांक 0.49 है, जबकि पूरे भारत में यह 0.70 है। यह दर्शाता है कि बिहार में महिलाओं की उच्च शिक्षा में भागीदारी काफी कम है। इसलिए, महिलाओं की उच्च शिक्षा में भागीदारी बढ़ाने के लिए महिला कॉलेजों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है। तालिका–4 में दिखाया गया है कि बिहार में कार्यशील आयु वर्ग के 7 प्रतिशत पुरुषों के पास उच्च शिक्षा है, जबकि महिलाओं के लिए यह केवल 2 प्रतिशत है (2009 में)। 1993 में उच्च शिक्षा प्राप्त पुरुषों का अनुपात 15.2 प्रतिशत से घटकर 2000 में 6.5 प्रतिशत हो गया, जबकि महिलाओं के लिए यह 8 प्रतिशत से घटकर 1.7 प्रतिशत हो गया। 2007 के बाद से, पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए उपायों में वृद्धि हुई है।

तालिका–4 : बिहार में कार्यशील आयु जनसंख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का प्रतिषत

वर्ष	पुरुष	महिला
1993	15.2	8.0
1999	8.0	2.8
2004	14.0	2.4
2007	6.5	1.7
2009	7.0	2.0

स्रोत : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

राज्य की पहलों का उद्देश्य महिलाओं की शिक्षा में सुधार : बिहार सरकार ने शिक्षा के माध्यम से लैंगिक समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में कई नीतिगत पहलों को लागू किया है। आमतौर पर माता–पिता महिला शिक्षा के खिलाफ नहीं होते, लेकिन इसके लिए भुगतान करने में हिचकिचाते हैं। इसके परिणामस्वरूप, लड़कियों को नुकसान उठाना पड़ता है (PROBE रिपोर्ट 1999, 97)। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार ने छात्राओं पर केंद्रित कई योजनाएं शुरू की हैं।

मुख्यमंत्री साइकिल योजना : मुख्यमंत्री साइकिल योजना (जिसे पहले मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना के नाम से जाना जाता था) बिहार सरकार की एक प्रमुख योजना है। यह योजना छात्रों की गतिशीलता को बढ़ावा देती है और उन्हें स्कूल जाने के लिए बिना किसी खर्च के यात्रा करने की सुविधा प्रदान करती है, जिससे परिवार के खर्चों में कमी आती है। साइकिलों ने स्कूलों तक पहुँचने की दूरी को कम किया है और विशेष रूप से एक पुरुष प्रधान समाज में लड़कियों को स्वतंत्रता और उद्देश्य का अनुभव कराया है। इस योजना की शुरुआत 2007 में केवल लड़कियों के लिए की गई थी, जिसे 2009 में लड़कों के लिए भी विस्तारित किया गया। इस योजना के तहत, जो छात्र 8वीं कक्षा पास करते हैं, उन्हें 9वीं कक्षा में नामांकन के बाद साइकिल प्रदान की जाती है। इसके परिणाम अप्रत्याशित और ठोस रहे हैं। 2006–07 में 9वीं कक्षा में नामांकित लड़कियों की संख्या 160,000 से बढ़कर 2009–10 में 490,000 हो गई। लड़कियों में ड्रॉपआउट की संख्या 2006 में लगभग 2.5 मिलियन से घटकर एक मिलियन हो गई।

साइकिलों का महिलाओं के सशक्तिकरण से गहरा संबंध है, जो 1800 के अंत में उनके आविष्कार के समय से शुरू हुआ। पुरुषों के लिए साइकिल एक नई खेल सामग्री थी, जबकि महिलाओं के लिए यह जीवन जीने का एक नया तरीका बन गई। बिहार के विभिन्न जिलों में साइकिल चलाने वाली कई लड़कियों ने इन साइकिलों में जीवन की नई उमंग पाई है।

मुख्यमंत्री अक्षर अंचल योजना : यह वयस्क साक्षरता कार्यक्रम बिहार सरकार द्वारा सितंबर 2009 में महिलाओं में उच्च निरक्षरता के स्तर को संबोधित करने के लिए शुरू किया गया था। 52.6 करोड़ रुपये के आवंटन के साथ, इसका उद्देश्य 15 से 35 वर्ष की आयु की 40 लाख निरक्षर महिलाओं को 6 महीने के भीतर साक्षर बनाना था।

बालिका प्रोत्साहन योजना : इस योजना के तहत, जो लड़कियाँ बिहार स्कूल परीक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित 10वीं कक्षा की परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होती हैं और सामान्य या BC-2 श्रेणी से संबंधित होती हैं, उन्हें प्रत्येक छात्रा को 10,000 रुपये दिए जाते हैं। यह राशि उन लड़कियों को दी जाती है जो (+2) कक्षा में नामांकित

हैं। राशि सीधे छात्रों के खाते में स्थानांतरित की जाती है। यदि खाता संख्या उपलब्ध नहीं है, तो उन्हें बैंक चेक या बैंक ड्राफ्ट दिया जाता है।

मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना : इस योजना के अंतर्गत, सरकारी और अल्पसंख्यक सहायता प्राप्त स्कूलों में कक्षा 6 से 8 में पढ़ने वाले छात्रों को पोषाक और अध्ययन सामग्री खरीदने के लिए 700 रुपये दिए जाते हैं। इस योजना की शुरुआत वित्तीय वर्ष 2008–09 में हुई थी। इसके अतिरिक्त, कक्षा 3 से 5 में पढ़ने वाले सभी छात्रों को पोशाक खरीदने के लिए 500 रुपये दिए जाते हैं, जो वित्तीय वर्ष 2009–10 से लागू है। अब, कक्षा 9 से 12 में पढ़ने वाली बालिकाओं को पोशाक खरीदने के लिए 1000 रुपये दिए जा रहे हैं। सर्व शिक्षा अभियान के तहत, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या बीपीएल परिवारों से संबंधित कक्षा 1 और 2 के छात्रों को पोशाक खरीदने के लिए 400 रुपये दिए जाते हैं।

निष्कर्ष : शोधकर्ताओं के बीच यह सर्वमान्य है कि शिक्षा मानव विकास और महिलाओं के सशक्तिकरण का मुख्य संकेतक है। यदि हम महिलाओं को सशक्त बनाना चाहते हैं, तो सबसे पहले उन्हें शिक्षित करना आवश्यक है। हालांकि, बिहार ने प्राथमिक शिक्षा (महिलाओं सहित) के पहुँच संकेतकों में संतोषजनक प्रगति की है, लेकिन गुणवत्ता में समझौता किया गया है। अब गुणवत्ता वाली शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। महिलाओं के उच्च शिक्षा में सुधार के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। महिलाओं की उच्च शिक्षा में सुधार के बिना, हम वास्तव में महिलाओं को सशक्त नहीं बना सकते।

संदर्भ–सूची

1. भंडारी, एल. और एम. वारडोई द्वारा 2006 में प्रकाशित ''आय में भिन्नताएँ और शिक्षा के प्रति लाभ'' शीर्षक लेख, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 41, संख्या 36 : 3893–3900 में उपलब्ध है।

2. षिक्षा के लिए जिला सूचना प्रणाली (DISE), 2013, NUEP।, नई दिल्ली द्वारा जारी की गई।

3. मिश्रा, प्राची द्वारा 2013 में ''बिहार में उच्च शिक्षा : इनपुट और परिणाम'' शीर्षक लेख एन.के. सिंह और निकोलस स्टर्न (सं.) द्वारा संपादित ''न्यू बिहार : शासन और विकास को पुनर्जीवित करना'', हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स इंडिया में प्रकाशित हुआ।

4. नुस्बाम, मार्था सी. द्वारा 2000 में ''महिलाएँ और कार्य – क्षमता दृष्टिकोण'' शीर्षक से नई दिल्ली में द लिटिल मैगज़ीन द्वारा प्रकाशित।

5. NSSO 2010 द्वारा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन की रिपोर्ट ''बिहार में कार्यशील आयु जनसंख्या में उच्च शिक्षितों का हिस्सा : लिंग के अनुसार'' में उपलब्ध है।

6. PROBE 1999 द्वारा भारत में बुनियादी शिक्षा पर सार्वजनिक रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

7. रामास्वामी, के.भी. द्वारा 2007 में ''विकास और रोजगार के क्षेत्रीय आयाम'' शीर्षक लेख, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 42, संख्या 49 : 47–56 में प्रकाशित।

8. शुल्ज़, टी.पी. द्वारा 2002 में ''सरकारों को लड़कियों की शिक्षा में निवेश क्यों करना चाहिए'' शीर्षक से विश्व विकास, 30, संख्या 2 : 207–25 में प्रकाशित।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 53-56

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्राचीन भारतीय शिक्षा के केन्द्र के रूप में नालन्दा का महत्त्व

*डॉ. नीरज कुमार**

सारांश : प्राचीन भारतीय शिक्षा के एक प्रमुख केंद्र के रूप में नालंदा का विशेष महत्व है। यह भारत के सबसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में से एक है, जो अपनी स्थापना के समय से ही एक महत्वपूर्ण और विश्व प्रसिद्ध शैक्षणिक संस्थान रहा है। इसकी स्थापना का श्रेय गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम को दिया जाता है। गुप्त साम्राज्य के बाद, हर्ष और पाल शासकों ने भी नालंदा को संरक्षण प्रदान किया। यहाँ की शैक्षणिक गुणवत्ता अत्यंत उच्च स्तर की थी, जहाँ केवल प्रतिभाशाली छात्रों का ही प्रवेश संभव था। इसकी प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैली हुई थी।

ह्वेनसांग ने कुछ समय यहाँ बिताकर शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ के विद्वान चीन, तिब्बत, स्याम और विश्व के अन्य क्षेत्रों में जाकर अपनी संस्कृति का व्यापक प्रचार करते थे। यह शिक्षा केंद्र मूलतः बौद्ध महायान षाखा के लिए स्थापित किया गया था, जहाँ व्याकरण, ज्योतिष, गणित, तर्कशास्त्र और विज्ञान की कई शाखाओं का अध्ययन और शिक्षण किया जाता था। लेकिन समय के साथ पूर्व मध्यकाल की कठिन परिस्थितियों ने इस विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र को समाप्त कर दिया।

मुख्य शब्द : नालंदा, प्राचीन भारत, शिक्षा, बौद्ध बिहार, विश्वविद्यालय, ह्वेनसांग, कुमारगुप्त प्रथम, पुस्तकालय, इत्सिंग, महायान संप्रदाय, चीन, तिब्बत, प्रवेश परीक्षा, द्वार पंडित।

प्रस्तावना : प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का एक प्रमुख और प्रसिद्ध केंद्र नालन्दा है, जिसकी पहचान वर्तमान बिहार में पटना के दक्षिण में लगभग 40 मील और राजगीर से उत्तर में लगभग 8 मील की दूरी पर स्थित आधुनिक बड़गांव नामक गांव से होती है। नालन्दा महाविहार प्राचीन काल में भारत का एक अत्यंत प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। प्रारंभ में यह एक बौद्ध विहार के रूप में स्थापित हुआ, लेकिन बाद में यह एक महान विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया। इस विष्वविद्यालय की स्थापना के बारे में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है, फिर भी गुप्त वंश के शासक कुमारगुप्त प्रथम (415–455 ई.) को इसकी स्थापना का श्रेय दिया जाता है।[1]

अनेक पुराभिलेखों और सातवीं षताब्दी ईस्वी में भारत यात्रा पर आए चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा इत्सिंग के यात्रा विवरणों से इस विश्वविद्यालय की जानकारी मिलती है। कुमारगुप्त प्रथम ने इस बौद्ध संघ को पहला दान दिया था। स्थापना के पश्चात इसे सभी शासक वंशों का समर्थन प्राप्त होता रहा। ह्वेनसांग के अनुसार, 470 ईस्वी में गुप्त सम्राट नरसिंहगुप्त बालादित्य ने नालंदा में एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाया और उसमें 80 फुट ऊँची ताम्र की बुद्ध प्रतिमा स्थापित की।[2] ह्वेनसांग ने लिखा है कि इसका संस्थापक शक्रादित्य था, जिसने बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों के प्रति अपनी गहरी श्रद्धा के कारण इसकी स्थापना की। शक्रादित्य की पहचान गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम से की जाती है। इसके बाद उनके उत्तराधिकारी अन्य राजाओं ने यहाँ कई विहारों और विश्वविद्यालय के भवनों का निर्माण करवाया। इसे महान संकाय के रूप में जाना जाता है।

स्थानीय शासकों और भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साथ–साथ इसे कई विदेशी शासकों से भी सहायता प्राप्त हुई। हर्श के समय तक नालन्दा महाविहार एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो चुका था। भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित यह स्थल जल्दी ही एक प्रतिष्ठित शैक्षणिक केंद्र के रूप में स्थापित हो गया, लेकिन 1303 ई. में बख्तियार खिलजी के विध्वंसक आचरण ने इस विष्वविद्यालय की प्रतिष्ठा को नष्ट कर दिया।[3]

अध्ययन का उद्देश्य : प्राचीन काल में भारत को जगतगुरु के रूप में जाना जाता था। इसे इस प्रतिष्ठा तक पहुँचाने में इसकी समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा के साथ–साथ नालंदा विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों का महत्वपूर्ण

* *यू.जी.सी. नेट (इतिहास)*

योगदान रहा है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उन परिस्थितियों का विश्लेषण करना है, जिन्होंने नालंदा को उस समय के शैक्षणिक क्षेत्र में शीर्ष स्थान पर स्थापित किया।[4]

साहित्य समीक्षा : प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य युवाओं को उनके सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए उचित प्रशिक्षण प्रदान करना था। इसके साथ ही, संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन, चरित्र और व्यक्तित्व के विकास, तथा महान विचारों के सृजन के लिए प्रेरित करना भी शामिल था। इस व्यापक और समग्र दृष्टिकोण वाली प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पर कई विद्वानों ने शोध किया है। इसी संदर्भ में, प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय की शिक्षा प्रणाली का गहन अध्ययन किया गया है। नालंदा विश्वविद्यालय को उजागर करने का श्रेय भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण को दिया जाता है, जिसने समय–समय पर अपनी वेबसाइट और विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से नालंदा महाविहार से संबंधित जानकारी को अद्यतन किया है।[5]

वास्तव में, ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृत्तांत में नालंदा की शिक्षा प्रणाली के बारे में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है। इसके बाद, कई अन्य विदेशी यात्रियों ने भी नालंदा की महत्वपूर्णता का उल्लेख किया है, जिनके लेखन का अनुवाद बील और वाटर्स जैसे विद्वानों ने अंग्रेजी में किया है, जिससे अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिक भारतीय और पश्चिमी विद्वानों ने भी इस क्षेत्र में निरंतर प्रयास किए हैं। ए.एस. अल्टेकर ने अपनी पुस्तक 'एजुकेशन इन एन्सिएंट इंडिया' में नालंदा की शिक्षा पद्धति पर गहन प्रकाश डाला है, जिसमें उन्होंने यहाँ की शैक्षणिक गतिविधियों के संचालन के तरीके का वर्णन किया है।[6] राधा कुमुद मुकर्जी ने 'एन्सिएंट इंडियन एजुकेशन : ब्राह्मणिकल एंड बुद्धिस्ट' में नालंदा के महत्व पर चर्चा की है।[7] हीरानंद शास्त्री ने भी 'नालंदा एंड इट्स एपिग्राफिक मटेरियल' में इस विषय पर महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है।[8]

विषय वस्तु : पुरातत्व विभाग के उत्खनन और बौद्ध ग्रंथों से प्राप्त जानकारी के अनुसार, नालंदा विश्वविद्यालय का क्षेत्रफल लगभग एक मील लंबा और आधा मील चौड़ा है। इसके चारों ओर एक चहारदीवारी थी और इसके मध्य में विभिन्न राजाओं द्वारा निर्मित विहार स्थित थे। इन भवनों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ भवन विद्यार्थियों के लिए बनाए गए थे, जबकि अन्य विद्याध्ययन के उद्देश्य से निर्मित थे। तीसरे प्रकार के भवन भिक्षुओं के लिए थे, और चौथे प्रकार के भवन धार्मिक कार्यों के लिए उपयोग किए जाते थे। विद्याध्ययन भवन में तीन सौ छोटे कमरे थे, जहाँ विद्यार्थी अपने गुरुओं के पास बैठकर शिक्षा ग्रहण करते थे। विदेशी यात्रियों के विवरण के अनुसार, नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षकों और छात्रों के लिए उत्कृष्ट आवास की व्यवस्था थी।

सभा भवन कई मंजिलों वाला और इतना ऊँचा था कि इसका शिखर आकाश को छूता था। यहाँ मठों के आस–पास सुंदर तालाब कमल के फूलों से भरे रहते थे। श्रमण आवास के मकराकृत बार्जे, रंग–बिरंगी ओलतियाँ, सुसज्जित और चित्रित मोती के समान लाल स्तंभ, सजावटी लघु स्तंभ और खपड़ियों से ढकी छतें, जो सूर्य की किरणों को हजारों रूपों में परावर्तित करती थीं– ये सभी बिहार की सुंदरता को और बढ़ा रहे थे।

नालंदा में लगभग बारह मीटर ऊँचा एक शानदार बौद्ध मंदिर या केंद्रीय देवालय स्थित था, जिसमें लगभग चौबीस मीटर ऊँची एक विशाल बौद्ध प्रतिमा स्थापित थी। नालंदा विश्वविद्यालय में 'धर्मगंज' नामक एक विशाल पुस्तकालय था, जो 'रत्नोदधि', 'रत्नसागर' और 'रत्नरंजक' नामक तीन बहुमंजिला भवनों से मिलकर बना था और विभिन्न धार्मिक तथा तांत्रिक ग्रंथों का संरक्षण करता था।[9] नालंदा महाविहार की स्थापना मुख्य रूप से बुद्ध की शिक्षा और बौद्ध धर्म के प्रचार के उद्देश्य से की गई थी।

कालान्तर में यहाँ बौद्ध संप्रदायों के ग्रंथों के अध्ययन के साथ–साथ विभिन्न धर्मों के शास्त्रों और दार्शनिक ग्रंथों का भी गहन अध्ययन प्रारंभ हुआ। नालन्दा की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों के अलावा, लंका, तिब्बत, मंगोलिया, चीन, कोरिया, जावा (दक्षिण–पूर्वी एशिया) और अन्य दूर–दराज के देशों के छात्र यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने लगे। ह्वेनसांग, इत्सिंग, हिएनचिन, चेहांग, ह्वीन्येह, आर्यवर्मन जैसे चीनी–कोरियाई विद्वान नालन्दा में आकर अध्ययन करते थे। यहाँ के प्रसिद्ध आचार्यों में शीलभद्र, धर्मपाल, चन्द्रपाल, शान्तिरक्षित, गुणमति, स्थिरमति, प्रभाकरमित्र, अंग, भद्रसेन, दिमनांग, ज्ञानचन्द्र, नागार्जुन, वसुबन्धु, असंग, धर्मकीर्ति आदि शामिल थे। ह्वेनसांग के भारत आगमन के समय नालन्दा में लगभग दस हजार आचार्य और विद्यार्थी निवास कर रहे थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय के कुलपति शीलभद्र अपने समय के एक अद्वितीय विद्वान थे, जिनके चरणों में बड़े–बड़े सम्राट भी नतमस्तक होते थे। शान्तिरक्षित को तिब्बत के नरेश ने अपने राज्य में बौद्ध धर्म के विकास और प्रचार

के लिए आमंत्रित किया और उन्हें 'आचार्य बोधिसत्व' की उपाधि से सम्मानित किया। कुछ समय बाद कमलशील, अविशा, स्थिरमति और बुद्धकीर्ति भी तिब्बत गए। चन्द्रगोमिन के ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया। चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए नालन्दा से जाने वाले विद्वानों में कुमारजीव, परमार्थ, सुधाकर सिंह और धर्मदेव शामिल थे।[10]

गुप्तकाल के दौरान नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र बन गया था। गुप्त राजाओं ने कई पीढ़ियों तक इसके संचालन के लिए अनेक गाँवों की आय दान में दी थी। यहां प्रवेश पाना अत्यंत कठिन था। हजारों विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। ये विद्यार्थी धन, संपत्ति, और यष–अपयष की चिंता किए बिना हमेशा ज्ञान की प्राप्ति में लगे रहते थे। वे सादगी और सदाचार के साथ जीवन व्यतीत करते थे। यह विश्वविद्यालय मुख्य रूप से महायान संप्रदाय की शिक्षा का केंद्र था, लेकिन यहां वेद, तर्कशास्त्र, आयुर्वेद, अथर्व विद्या और सांख्यदर्शन की शिक्षा का भी उचित प्रबंध किया गया था।[11]

नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने वाले छात्रों को निवास, वस्त्र, चिकित्सा और अध्ययन की सुविधाएँ निःशुल्क प्रदान की जाती थीं। वहाँ लगभग दस हजार छात्र और पंद्रह सौ से अधिक आचार्य, शिक्षक और विद्वान निवास करते थे। इन सभी के जीवन यापन के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय को राजाओं, सम्राटों और धनवान व्यक्तियों द्वारा अपार सम्पत्ति दान में दी जाती थी। विश्वविद्यालय के संचालन के लिए राज्य द्वारा भूमि भी उपलब्ध कराई गई थी। इत्सिंग के अनुसार, नालन्दा को दो सौ से अधिक ग्राम दान में मिले थे। इन ग्रामों से प्राप्त उपज की आय से विश्वविद्यालय का खर्च चलाया जाता था। ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है कि उसने विश्वविद्यालय के लिए आस–पास के गाँवों से प्रतिदिन कई बैलगाड़ियों में चावल और दुग्धशालाओं से मक्खन और दूध आते हुए देखा।[12]

विद्यार्थियों के भोजन के लिए मुख्य रूप से चावल प्रदान किया जाता था, और हर महीने घी, तेल तथा अन्य खाद्य सामग्री भी निश्चित मात्रा में दी जाती थी। अतिथियों को भी इसी प्रकार निःशुल्क भोजन उपलब्ध कराया जाता था। इस विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थियों को द्वार पण्डित द्वारा आयोजित की जाने वाली कठिन प्रवेश परीक्षा में सफल होना आवश्यक था।

ह्वेनसांग के अनुसार, दस में से केवल दो या तीन छात्र ही प्रवेश परीक्षा में सफल हो पाते थे। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए व्याकरण, न्यायशास्त्र और अभिधम्म का ज्ञान आवश्यक था। विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्र एक कठिन जीवन व्यतीत करते थे, और उनके शिक्षा पूरी होने के बाद, उनके ज्ञान और विद्या का हर जगह सम्मान किया जाता था। विश्वविद्यालय के नियम और उपनियम अत्यंत सख्त होते थे। सदाचार, नैतिकता और अनुशासन उनके जीवन के महत्वपूर्ण तत्व बन जाते थे। उनका दिन अध्ययन और वाद–विवाद में व्यतीत होता था, और सभी छात्र, चाहे बड़े हों या छोटे, एक–दूसरे को ज्ञान प्राप्त करने में सहयोग और सहायता प्रदान करते थे।[13]

प्रबंधन प्रणाली के लिए नालंदा विश्वविद्यालय एक संघबद्ध संस्था थी। इसमें सभी महाविद्यालय और विहार भी संघ के समान कार्य करते थे। इस विश्वविद्यालय की प्रबंधन व्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया गया था– आंतरिक और बाह्य। इन दोनों के कार्यों के लिए दो सभाएँ बनाई जाती थीं। इन सभाओं का प्रमुख अधिकारी मठाधीश होता था, जो कुलपति के रूप में कार्य करता था। इसे विद्वता के आधार पर नियुक्त किया जाता था। प्रत्येक संस्था के संचालन और प्रबंधन के लिए एक परिषद या कार्यकारिणी का गठन किया जाता था। महाविद्यालय के अधिकारियों में द्वार पण्डित (जो छात्रों की प्रवेश परीक्षा लेते थे), धर्मकोश (कुलपति), कर्मदान (उपकुलपति), स्थावर आदि शामिल होते थे। हर महाविद्यालय और विहार की अपनी विशेष मुद्रा या सील होती थी, जिन पर अक्सर 'धर्मचक्र' का चित्रण होता था। ऐसी कई मुद्राएँ उत्खनन के माध्यम से प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक मुद्रा पर लिखा है– 'श्री नालन्दा–महाविहार–आर्य–भिक्षु–संघव्य', जो प्रतिष्ठित नालन्दा विश्वविद्यालय की संचालन परिषद का प्रतीक है।[14]

युआनच्वांग ने उल्लेख किया है कि यहाँ के शिक्षक और छात्र अध्ययन और चर्चा में इतने संलग्न रहते थे कि उन्हें प्रतिदिन आठ घंटे की पढ़ाई भी बहुत कम लगती थी। जो छात्र अनुशासन के नियमों का उल्लंघन करते थे, उन्हें दंडित किया जाता था। इस विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध स्नातकों की संख्या काफी अधिक थी। इत्सिंग के अनुसार, यहाँ तीन हजार से अधिक छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। शिक्षकों की संख्या लगभग एक हजार पाँच सौ थी, जिनमें से लगभग सौ प्रतिदिन व्याख्यान देते थे। तिब्बत के ऐतिहासिक स्रोतों से पता चलता है कि नालंदा विश्वविद्यालय में आठ महाविद्यालय थे। इस विश्वविद्यालय के पहले कुलपति धर्मपाल थे, जो कांची के निवासी थे। इसके बाद, संभवतः असम के निवासी शीलभद्र कुलपति बने।

यहाँ मुख्यतः महायान संप्रदाय की अठ्ठारह शाखाओं के सिद्धांतों का अध्ययन कराया जाता था। इसके अतिरिक्त, चारों वेद, छह वेदांग, पुराण, न्यायमीमांसा, धर्मशास्त्र, धनुर्वेद, गंधर्ववेद, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, चित्रकला, विज्ञान, फलित ज्योतिष, कुक्कुट विज्ञान, अश्व विद्या, हस्तविद्या, राजनीति, गणित ज्योतिष, व्याकरण, गणित, आत्मज्ञान, हेतु विद्या (तर्कशास्त्र), शब्दविद्या (व्याकरण), चिकित्सा विज्ञान (आयुर्वेद), तथा अथर्ववेद (मंत्रविद्या) और सांख्य दर्शन भी पढ़ाए जाते थे। इस विश्वविद्यालय में आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार के विषयों का अध्ययन किया जाता था। इस प्रकार, यह सभी संप्रदायों, धर्मों और व्यक्तियों के लिए खुला था।

यहाँ ज्ञान अर्जन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ और स्वतंत्रता उपलब्ध थीं। नालन्दा किसी विशेष धार्मिक, साम्प्रदायिक या वर्गीय महाविद्यालय या विद्यापीठ के रूप में नहीं जानी जाती थी। इसका किसी एक सम्प्रदाय या धर्म से कोई सीधा संबंध नहीं था, बल्कि यह वास्तव में एक विश्वविद्यालय था, जिसमें स्नातकोत्तर महाविद्यालय भी शामिल थे। यहाँ बौद्ध साहित्य और दर्शन के साथ–साथ बौद्धेतर साहित्य का भी विस्तृत अध्ययन किया जाता था। आठवीं सदी तक, नालन्दा ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना ली थी।

ग्यारहवीं सदी में पाल शासकों के समर्थन और विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अभूतपूर्व विकास के बावजूद, बारहवीं सदी में तुर्कों के भयंकर आक्रमण और अमानवीय हमलों के कारण यह विश्वविद्यालय नष्ट हो गया। नालंदा विश्वविद्यालय के पतन ने भारत में बौद्ध धर्म के अवसान को भी बढ़ावा दिया।

निश्कर्श : उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय अपने अस्तित्व के दौरान भारत का ज्ञान भंडार ही नहीं, बल्कि विश्व में ज्ञान और विज्ञान का मार्गदर्शक भी बन गया। इस प्रकार, नालन्दा प्राचीन शिक्षा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्र था, जिसकी प्रतिष्ठा न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी फैली हुई थी। वास्तव में, यह एक विश्वभारती था, जहाँ से सम्पूर्ण देश में संस्कृति का प्रसार होता था। यहाँ के विद्वानों की महानता, उदारता और पाण्डित्य के कारण नालन्दा का नाम उस समय की दुनिया में विद्या के सर्वोच्च और उत्कृष्ट गुणों का प्रतीक बन गया था।

संदर्भ–सूची

1. मुंशी, के. एम. और मजूमदार, आर. सी. (1984), भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति : श्रेण्य युग, हिन्दी अनुवाद 'द क्लासिकल एज : हिस्ट्री ऐंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल', प्रकाशक, मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 470
2. पाण्डेय, धनपति (1988), प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 191
3. बील, 'लाइफ ऑफ ह्वेनसांग', पृ. 109; वाटर्स, 'युवानच्वांग', भाग 2, पृ. 164–171।
4. अल्टेकर, ए. एस. (1934), 'एजुकेशन इन एंशियन्ट इंडिया', दिल्ली, पुनर्मुद्रित 2009, पृ. 117
5. भारतीय पुरातत्व, खंड 20, पृ. 43
6. बील, ह्वेनसांग की जीवनी, पृ. 111–112
7. विद्याभूषण, भारतीय तर्कशास्त्र का इतिहास, पृ. 561
8. बील, ह्वेनसांग की जीवनी, पृ. 112
9. लुणिया, बी.एन. (2010–11), प्राचीन भारतीय संस्कृति, प्रकाशक : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 714।
10. सहाय, शिवस्वरूप (2000), प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 240
11. लुणिया, बी.एन. (2010–11), प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 715.
12. वाटर्स, युवानच्वांग, भाग 2, पृ. 164–165; बील, लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, पृ. 110–113.
13. इत्सिंग, रेकॉर्ड, पृ. 65, 154–155.
14. लुणिया, बी.एन. (2010–11), प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 715–716

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 57-60

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

The Role of Digital Media in Shaping Teenagers' Social Behavior and Mental Well-being

*Ritika Kumari**

Abstract : *Digital media has become an essential part of teenagers' lives, influencing their social behavior, communication patterns, and mental health. While digital platforms offer opportunities for learning, self-expression, and connectivity, they also pose significant risks, including cyberbullying, social isolation, digital addiction, and mental health issues. This paper explores both the positive and negative effects of digital media on adolescents, highlighting its role in shaping social interactions, emotional intelligence, and self-perception. It also discusses strategies for promoting responsible digital usage to enhance teenagers' well-being.*

Keywords : *Digital media, teenagers, social behavior, mental health, cyberbullying, digital addiction, self-perception, emotional intelligence, online harassment, screen time, digital dependency, misinformation, digital literacy, adolescent psychology, regulatory policies.*

Introduction : The advent of digital media has transformed the way teenagers interact with their environment, forming relationships and acquiring knowledge. Social media platforms, online gaming, and digital communication tools have redefined socialization and self-expression. However, excessive and unregulated usage has raised concerns about its impact on mental health and behavioral patterns. The constant exposure to digital content, particularly social media, has led to changes in self-perception, emotional well-being, and cognitive development among adolescents.

Teenagers are at a critical stage of psychological and emotional development. Digital media influences their identity formation, decision-making processes, and overall worldview. While it provides avenues for social connectivity and skill development, it also contributes to challenges such as online harassment, unrealistic social comparisons, and digital dependency. Additionally, excessive screen time can lead to physical health issues such as sleep disturbances and reduced physical activity. The integration of digital media into daily life necessitates a thorough understanding of its influence on adolescent behavior.

Furthermore, cultural variations play a role in digital media consumption patterns, influencing teenagers differently based on regional access, parental controls, and societal attitudes toward technology. This article examines the dual role of digital media in shaping teenagers' social behavior and psychological well-being, emphasizing the importance of responsible digital engagement to minimize potential risks.

Significance of the Study : This study is significant in understanding how digital media impacts teenage socialization and mental well-being. The growing dependence on digital communication necessitates a comprehensive evaluation of its effects. The key reasons why this study is important include :

* ***Research Scholar, Department of Psychology, Jai Prakash University, Chapra (Saran), Bihar***

1. Understanding the Psychological Effects of Digital Media : The study provides insights into how digital consumption influences adolescent mental health, including anxiety, depression, and self-esteem issues.

2. Identifying Behavioral Changes–Digital media exposure alters behavioral patterns, affecting communication skills, emotional intelligence, and social interactions.

3. Raising Awareness About Cyber Threats–The study highlights risks such as cyberbullying, online harassment, and exposure to inappropriate content, which can negatively impact teenagers.

4. Promoting Media Literacy and Responsible Usage–Educators, parents, and policymakers can use the findings to encourage digital literacy programs that teach responsible and critical engagement with online content.

5. Balancing the Benefits and Risks of Digital Media–While digital media fosters creativity and learning opportunities, it is crucial to balance screen time and real-life interactions to support holistic adolescent development.

6. Guiding Policy and Educational Interventions–The study can serve as a foundation for developing regulatory frameworks and educational programs that ensure safer digital environments for teenagers.

7. Enhancing Parental and Educational Guidance–The findings can help parents and educators develop better strategies for managing screen time, online safety, and promoting a balanced approach to digital media usage.

8. Addressing Digital Dependency and Addiction–With increasing concerns about excessive screen time, this study can highlight effective strategies for preventing digital addiction among teenagers.

9. Understanding Cultural and Regional Differences–This study acknowledges the role of cultural and regional factors in shaping digital media usage, providing a broader perspective on its varied impact on teenagers.

Literature Review :

1. Digital Media and Socialization : Research by Boyd (2019) suggests that digital media enhances teenagers' social skills by providing new modes of interaction. Social networking sites help in maintaining long-distance friendships and building new relationships, improving communication abilities and cultural awareness.

2. Impact of Social Media on Self-Esteem and Body Image : Studies by Tiggemann and Slater (2020) highlight that constant exposure to idealized images on social media can lead to body dissatisfaction and lower self-esteem. The pressure to conform to societal beauty standards has been linked to anxiety and depressive symptoms in adolescents.

3. Cyberbullying and Its Psychological Effects : According to Hinduja and Patchin (2021), cyberbullying is a significant negative consequence of digital media. Victims of online harassment experience heightened stress, emotional distress, and, in extreme cases, suicidal tendencies.

4. Digital Addiction and Its Consequences : A study by Montag et al. (2021) reveals that excessive screen time and social media addiction can lead to decreased attention spans, sleep disturbances, and increased feelings of loneliness and depression among teenagers.

5. Emotional Intelligence and Online Communication : Research by Goleman (2018) indicates that while digital communication fosters global connectivity, it may also reduce face-to-face interaction skills, affecting empathy and emotional intelligence in young individuals.

6. Cultural and Societal Influences on Digital Media Usage : According to Lim (2022), digital media impact varies across cultures, with some societies implementing stricter regulations to monitor teenage exposure, while others encourage open access to technology as a learning tool.

Positive and Negative Effects of Digital Media :

Positive Effects :

• **Enhanced Communication Skills**–Digital media provides teenagers with diverse platforms to express themselves and communicate with peers, family, and global communities.

• **Access to Educational Resources**–Online learning tools, educational videos, and interactive platforms support academic development and skill-building.

• **Creativity and Innovation**–Social media and digital platforms encourage creativity through content creation, gaming, and multimedia engagement.

• **Social Awareness and Activism**–Teenagers engage with global issues, promoting activism and awareness on social, political, and environmental topics.

• **Emotional Support Networks**–Digital spaces provide forums and communities where teenagers can share experiences and seek emotional support.

Negative Effects :

• **Mental Health Issues**–Overuse of social media has been linked to anxiety, depression, and low self-esteem among teenagers.

• **Cyberbullying and Online Harassment** – Exposure to online hate, bullying, and negative comments affects psychological well-being.

• **Sleep Disruptions and Reduced Physical Activity** – Excessive screen time leads to poor sleep quality and decreased engagement in physical activities.

• **Unrealistic Social Comparisons** – Exposure to curated online content creates pressure to meet unrealistic beauty and lifestyle standards.

• **Privacy Concerns and Data Exploitation**–Teenagers often share personal information without understanding privacy risks, leading to potential exploitation.

Mitigation Strategies :

• **Parental Guidance and Supervision**–Parents should monitor screen time, educate teenagers about online safety, and encourage offline activities.

• **Educational Programs on Digital Literacy**–Schools should integrate digital literacy into the curriculum to teach responsible online behavior and critical thinking.

• **Regulatory Policies and Safeguards**–Governments and tech companies should enforce policies to protect teenagers from harmful content and ensure data privacy.

• **Encouraging Offline Activities**–Teenagers should be encouraged to participate in sports, hobbies, and face-to-face social interactions to maintain a healthy balance.

• **Psychological Support and Counseling**–Schools and communities should provide mental health resources to support teenagers struggling with digital-related stress and anxiety.

Conclusion : Digital media plays a crucial role in shaping teenagers' social behavior and mental well-being. While it offers numerous benefits, excessive and unregulated use can have detrimental effects on mental health and social skills. Cultural and regional influences also play a role in shaping digital habits, requiring a nuanced approach to policy recommendations. Promoting responsible digital

engagement through education, parental guidance, and policy interventions can help mitigate risks and maximize the positive potential of digital media in adolescent development.

References

1. Boyd, D. (2019), It's Complicated : The Social Lives of Networked Teens, Yale University Press.

2. Goleman, D. (2018), Emotional Intelligence in the Digital Age, Bantam Books.

3. Hinduja, S., & Patchin, J. W. (2021), Cyberbullying : Identification, Prevention, and Response. Routledge.

4. Lim, S. (2022), Cultural Perspectives on Digital Media Consumption in Adolescents, Springer.

5. Montag, C., et al. (2021), Digital Media Addiction and Its Impact on Adolescent Mental Health, Journal of Adolescent Psychology, 45(2), 198-214.

6. Tiggemann, M., & Slater, A. (2020), Social Media Influence on Body Image Dissatisfaction, Journal of Youth Studies, 18(3), 245-260.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 61-67

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

*डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र** *नीतू मिश्रा***

सारांश : *समस्या कथन के अन्तर्गत* ***''शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''*** *किया गया है। उक्त समस्या कथन को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययनकर्त्री द्वारा वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। जनसंख्या के रूप में अध्ययनकर्त्री द्वारा प्रयागराज जनपद के समस्त माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् सामान्य एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में माना है। प्रतिदर्श के रूप में अध्ययनकर्त्री द्वारा प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों का चयन उद्देश्यपरक विधि से किया गया है तत्पश्चात् उसमें अध्ययनरत् 200 सामान्य एवं 200 श्रवण बाधित विद्यार्थियों जिसमें 100 ग्रामीण एवं 100 शहरी क्षेत्र से किया गया है। उपकरण के रूप में विद्यार्थियों की सामंजस्य के मापने हेतु ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह द्वारा निर्मित 'एडजेस्टमेन्ट इन्वेण्ट्री फॉर स्कूल स्टूडेन्ट्स' एवं डॉ. विजया लक्ष्मी चौहान और श्रीमती गुंजन गनोटा अरोड़ा द्वारा विकसित अभिभावक सहभागिता मापनी का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एम.एस. एक्सल सॉफ्टवेयर के माध्यम से प्रतिशतीय विश्लेषण, प्रसरण–विधि एवं टी–मान का प्रयोग किया है। अध्ययन के निश्कर्श में पाया कि– शहरी सामान्य विद्यार्थियों पर अभिभावक सहभागिता का उनके सामंजस्य पर प्रभाव शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है।*

मुख्य शब्द–*सामान्य, श्रवण बाधित, छात्र–छात्राएँ, समावेशी, विद्यालयी सामंजस्य, अभिभावक सहभागिता, प्रभाव, एनोवा, टी–अनुपात*

प्रस्तावना–यूनेस्को (2020) द्वारा निर्धारित कारकों में से निम्न है– दिव्यांगता के प्रति दृष्टिकोण संबंधी, भौतिक रुकावटें, पाठ्यक्रम, शिक्षकों की योग्यता एवं दृष्टिकोण, भाषा तथा संप्रेषण विविधता, सामाजिक आर्थिक कारक, वित्तीय संसाधन, शैक्षिक व्यवस्था का संगठन, नीतियां एवं परिवारिक सहभागिता आदि।

अभिभावक शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण होते है। शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण के रूप में बच्चों की सामान्य शिक्षा हेतु उचित पर्यावरण का निर्माण करना अभिभावकों का उत्तरदायित्व है। बच्चा जिस परिवेश में जन्म लेता है व जिस परिवार या समाज में उसका पालन–पोषण होता है, वह उसी परिवेश की भाषा, रहन–सहन और व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है। अभिभावक उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास में सहयोग प्रदान करता है। अतः अभिभावकों का उत्तरदायित्व बनता है कि वे सीखने के लिए उचित पर्यावरण प्रदान करें।

प्रत्येक बालक किसी न किसी सामाजिक वातावरण में रहता है। उसी वातावरण से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। बालक की इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधायें आती है। तो बाधाओं के कारण उनमें तनाव उत्पन्न होता है जिससे वह दुःखी तथा निराश हो जाता है। कुछ लोगों के साथ कुछ परिस्थितियों में बालक को प्रसन्नता तथा सन्तुष्टि का अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में उनका समायोजन अच्छा होता है परन्तु जिन लोगों के साथ या जिन परिस्थितियों में बालक को असन्तोष और अप्रसन्नता मिलती है। ऐसी स्थिति में उनका

* *विभागाध्यक्ष, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)*

** *शोध छात्रा, विशेष शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)*

समायोजन अच्छा नही होता है। सामान्य बच्चों का समायोजन अच्छा तब होता है जब उनकी इच्छाओं के अनुरूप उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय और जब उनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो वे कुसमायोजन के शिकार हो जाते है।

बच्चों की विद्यालयी शिक्षा की उचित व्यवस्था करना अभिभावकों का महत्वपूर्ण कार्य है। साथ ही आवश्यक है कि बालकों का घर पर भी विद्यालयी वातावरण प्रदान किया जाए। समाज अथवा राज्य द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग करके अभिभावक बच्चे की सर्वतोन्मुखी व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं।

अतः अध्ययनकर्त्री द्वारा उपरोक्त बातों को दृष्टिगत रखते हुए अपने षोध अध्ययन में सामान्य एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन को देखने का प्रयास किया है, क्योंकि श्रवण बाधित दिव्यांग बालकों की श्रेणी में आते हैं जिसमें अपने दिव्यांग को लेकर निराशा एवं कुण्ठा बहुत अधिक होती है और अपने आपको विद्यालय में शिक्षकों एवं बच्चों के साथ समायोजित करने में असमर्थ पाते हैं तथा अपने आपको अलग महसूस करने लगते हैं।

समस्या कथन–''शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन।''

अध्ययन का उद्देश्य–अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन।

2. शहरी शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन।

3. शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

H_{01} सामान्य एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर विद्यालयी वातावरण के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

$H_{01.1}$ सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर विद्यालयी वातावरण के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

$H_{01.2}$ श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर विद्यालयी वातावरण के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–अध्ययनकर्त्री द्वारा चयनित समस्या कथन वर्तमान विद्यार्थियों से अनुसूची एवं मापनी से सम्बन्धित आँकड़ों का संग्रहण करना है। अतः उक्त समस्या कथन को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययनकर्त्री द्वारा वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

जनसंख्या–जनसंख्या के रूप में अध्ययनकर्त्री द्वारा प्रयागराज जनपद के समस्त माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् सामान्य एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में माना है।

प्रतिदर्श : प्रतिदर्श के रूप में अध्ययनकर्त्री द्वारा प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों का चयन उद्देश्यपरक विधि से किया गया है तत्पश्चात् उसमें अध्ययनरत् 200 सामान्य एवं 200 श्रवण बाधित विद्यार्थियों जिसमें 100 ग्रामीण एवं 100 शहरी क्षेत्र से किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण–अध्ययनकर्त्री द्वारा चयनित समस्या कथन में प्रयुक्त चरों के लिए निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया गया है जो निम्नांकित है–

1. सामंजस्य अनुसूची–विद्यार्थियों की सामंजस्य के मापने हेतु ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह द्वारा निर्मित 'एडजेस्टमेन्ट इन्वेण्ट्री फॉर स्कूल स्टूडेन्ट्स'।

2. अभिभावक सहभागिता–डॉ. विजया लक्ष्मी चौहान और श्रीमती गुंजन गनोटा अरोड़ा द्वारा विकसित अभिभावक सहभागिता मापनी।

प्रयुक्त सांख्यिकी प्रविधियाँ : आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एम.एस. एक्सल सॉफ्टवेयर के माध्यम से प्रतिशतीय विश्लेषण, प्रसरण–विधि एवं टी–मान का प्रयोग किया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

1. शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{01} शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं. : 1

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का विवरण

अभिभावक सहभागिता	शहरी सामान्य विद्यार्थी				शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थी			
	संख्या	प्रतिशत	Σx	Σx^2	संख्या	प्रतिशत	Σx	Σx^2
उच्च	18	18%	1431	115759	13	13%	899	64625
मध्यम	66	66%	4624	329826	66	66%	3788	227566
निम्न	16	16%	1111	78577	21	21%	1150	67272
योग	100	100%			100	100%		

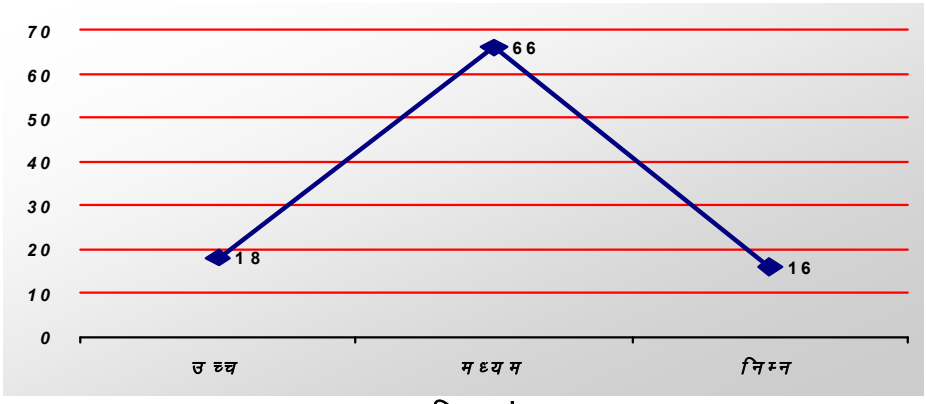

वक्र चित्र सं. : 1

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों की शहरी सामान्य प्रायिकता वक्र चित्र

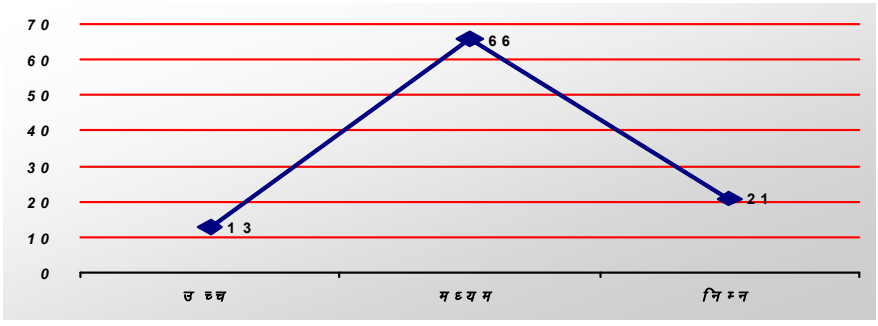

वक्र चित्र सं. : 2 : उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शहरी सामान्य प्रायिकता वक्र चित्र

सारणी सं. : 2

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	1354.24	677.12	7.70	.05(2,197) =3.09 .01(2,197) =4.82
Within Groups	97	9292.20	95.80		
Total	**99**	**10646.44**	**772.92**		

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्य एफ–अनुपात = 7.70 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 197) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान क्रमशः 3.09 एवं 4.82 से अधिक है, 0.05 एवं 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना अस्वीकृत। परिणामतः उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य में भिन्नता है।

सारणी सं. : 3

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमानों में अन्तर

Group	N	F	M	Difference of group	M_1~M_2
High	18	7.07	79.50	1-2	9.44
Moderate	66		70.06	1-3	10.06
Low	16		69.44	2-3	0.62

उच्च एवं मध्यम, उच्च एवं निम्न तथा मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमान क्रमशः 79.50, 70.06 एवं 69.44 है जबकि तीनों के मध्यमानों में अन्तर क्रमशः 9.44, 10.06 एवं 0.62 है जो कि यह दर्शाता है कि उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य में सार्थक अन्तर है।

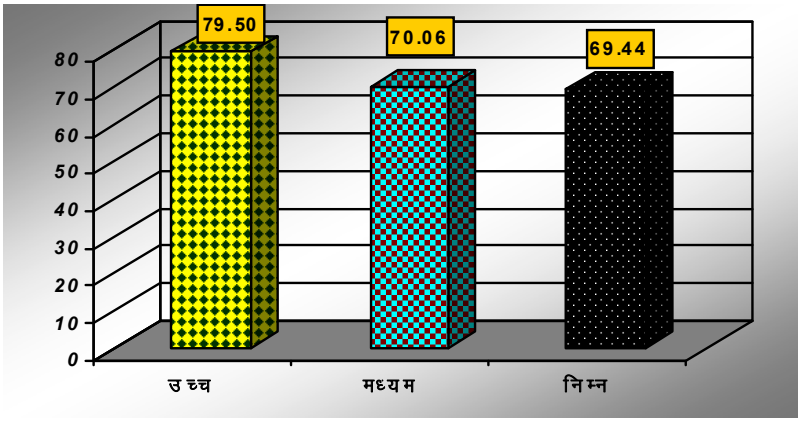

आरेख सं. : 4

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमानों का दण्ड आरेख

सारणी सं. : 4

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	1848.05	924.03	5.30	.05(2,197) =3.09 .01(2,197) =4.82
Within Groups	97	16909.26	174.32		
Total	**99**	**18757.31**	**1098.35**		

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्य एफ–अनुपात = 3.79 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 197) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान क्रमशः 3.09 एवं 4.82 से अधिक है, 0.05 एवं 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना अस्वीकृत। परिणामतः उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य में भिन्नता है।

सारणी सं. : 4.1

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमानों में अन्तर

Group	N	F	M	Difference of group	M_1~M_2
High	13	5.30	69.15	1-2	11.76
Moderate	66		57.39	1-3	14.39
Low	21		54.76	2-3	2.63

उच्च एवं मध्यम, उच्च एवं निम्न तथा मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमान क्रमषः 69.15, 57.39 एवं 54.76 है जबकि तीनों के मध्यमानों में अन्तर क्रमशः 11.76, 14.39 एवं 2.63 है जो कि यह दर्शाता है कि उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य में सार्थक अन्तर है।

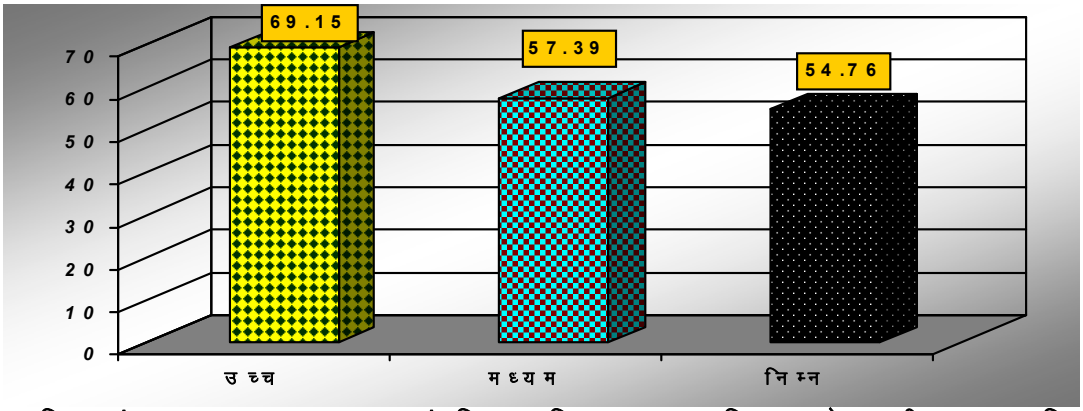

आरेख चित्र सं. : 5 : उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमानों का दण्ड आरेख

सारणी सं. : 5

शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

	शहरी सामान्य विद्यार्थी			शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थी			
Group	**N**	**F**	**M**	**N**	**F**	**M**	**Difference of group**
High	18	7.07	79.50	13	5.30	69.15	10.35
Moderate	66		70.06	66		57.39	12.67
Low	16		69.44	21		54.76	14.68

सारणी सं. 5 में दिये गये मानों से ज्ञात होता है कि उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का एफ–मान 7.07 है जबकि उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का एफ–मान 5.30 है। उपरोक्त एफ–मान से ज्ञात होता है कि शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों पर अभिभावक सहभागिता का प्रभाव है। साथ ही उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के मध्यमानों में अन्तर से ज्ञात होता है कि उच्च अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्यमानों में अन्तर 10.35 एवं मध्यम अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्यमानों में अन्तर 12.67 एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्यमानों में अन्तर 14.68 प्राप्त हुआ जो कि यह दर्शाता है कि उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों में समावेशी विद्यालयी सामंजस्य उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है। परिणामतः कह सकते हैं कि शहरी सामान्य विद्यार्थियों पर अभिभावक सहभागिता का उनके सामंजस्य पर प्रभाव शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है।

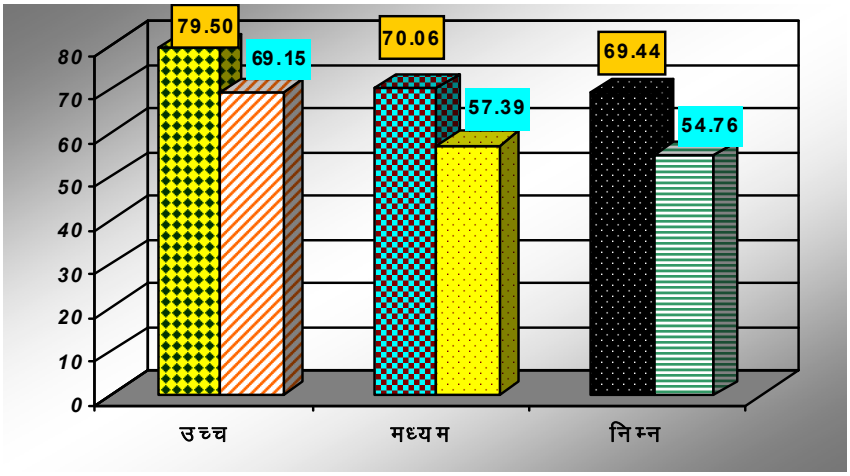

आरेख सं. : 5 : उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमानों का दण्ड आरेख

निष्कर्ष–66% शहरी सामान्य एवं 66% शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थी औसत अभिभावक सहभागिता वाले पाये गये।

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य में असमानता है। उच्च अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी

सामंजस्य के मध्यमान (79.50), अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्यमान (70.06) एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य के मध्यमान (69.44) है जबकि तीनों के मध्यमानों के बीच टी–मान में अन्तर है अर्थात् शहरी सामान्य विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता का प्रभाव है।

उच्च, मध्यम एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य में असमानता है।

उच्च अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमान (69.15), मध्यम अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमान (57.39) एवं निम्न अभिभावक सहभागिता वाले शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य का मध्यमान (54.76) है जबकि तीनों के मध्यमानों के टी–मान में अन्तर है अर्थात् शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों का समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर विद्यालयी वातावरण का प्रभाव है।

शहरी सामान्य एवं शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों के समावेशी विद्यालयी सामंजस्य पर अभिभावक सहभागिता के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि शहरी सामान्य विद्यार्थियों पर अभिभावक सहभागिता का उनके सामंजस्य पर प्रभाव शहरी श्रवण बाधित विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है।

सन्दर्भ–सूची

1. कुमार, अंकित (2019), इलाहाबाद जनपद में स्थित विशेष तथा समावेशी विद्यालयों में अध्ययनरत् श्रवण बाधित विद्यार्थियों के शैक्षिक सहभागिता का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

2. कुमार, विनोद (2021), श्रवण अक्षम विद्यार्थियों की शिक्षा में अभिभावकों की भूमिका का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

3. प्रधान, षिल्पा गडकरी (2022), उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् श्रवण बाधित छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक, वैयक्तिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

4. रानी, मोहनराज एवं लथा (2005), परसिवड फैमिली इन्वायर्मेन्ट इन रिलेषन्स टू एडजेस्टमेन्ट एण्ड ऐकेडमी एचिवमेन्ट, यूनिवर्सिटी ऑर मद्रास, चेन्नई, *जर्नल ऑफ इण्डियन ऐकेडमिक ऑफ एप्लाईड साइकोलॉजी*, वाल्यूम–31

5. वी., रामप्रबौ, और दशो, शशि कांता (2018), पैरेन्टल इनवाल्वमेण्ट एण्ड एकेडेमिक परफार्मेन्स ऑफ हायर सेकेण्डरी स्टूडेन्ट्स, *रिसर्च गुरु – ऑनलाइन जर्नल ऑफ मेल्टीडिस्पिलनरी सब्जेक्ट*, वॉ. 12, इश्शू–2, पृ. 761–764

6. सपुंगन, जीना मेड्रिगल एवं सपुंगन, रोनेल मोंड्रैगन (2014), पैरेन्टल इनवाल्वमेण्ट इन चाइल्ड्स एजुकेशन : इम्पोर्टेन्स, बैरियरस एण्ड बेनिफिट्स, *एशियन जर्नल ऑफ मैनेजमेण्ट साइंस एण्ड एजुकेशन*, वॉ. 3(2), पृ. 42–48

7. सुमनसेकेरा, डीगोडा गामागे इंदु रामिरा एवं अन्य (2021), रिव्यू ऑफ लिटरेचर ऑफ इनवाल्वमेण्ट एण्ड स्टाइल ऑफ पैरेन्ट्स टूवर्ड स्टूडेन्ट परफार्मेन्स, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस साइंटिफिक एण्ड टेक्निकल रिसर्च*, वॉ. 1, इश्शू–11, पष्0 26–38

8. सुलमान, कैशर एवं अन्य (2012), इफेक्ट ऑफ पैरेन्टल सोशियोइकोनॉमिक स्टेट्स ऑन द ऐकेडमिक एचिवमेण्ट ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन करक डिस्ट्रिक, पाकिस्तान, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्युमैन रिर्सोस स्टडीज*, वॉल्यूम–2, नं. 4, पृ. 14–25

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Social Work : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 68-70

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता : समाज कार्य के दृष्टिकोण से सामुदायिक विकास और स्व-रोजगार मॉडल्स

*आशीष कुमार मौर्य** *प्रो. विवेक कुमार सिंह***

सारांश : *ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता सामुदायिक विकास और स्व–रोजगार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यह शोध पत्र समाज कार्य के दृष्टिकोण से सामाजिक उद्यमिता के प्रभाव, इसके मॉडल्स, और ग्रामीण समुदायों के सशक्तिकरण में इसकी भूमिका का विश्लेषण करता है। द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर, यह पत्र ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता के अवसरों, चुनौतियों, और नीतिगत सुझावों पर प्रकाश डालता है।*

परिचय : भारत की 65% से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जहां गरीबी, बेरोजगारी, और बुनियादी सुविधाओं की कमी प्रमुख चुनौतियां हैं। सामाजिक उद्यमिता, जो सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए नवाचार और व्यवसायिक दृष्टिकोण को जोड़ती है, ग्रामीण भारत में सतत विकास का एक प्रभावी साधन बन रही है। समाज कार्य के सिद्धांत, जैसे समुदाय सशक्तिकरण, समावेशिता, और सामाजिक न्याय, सामाजिक उद्यमिता के साथ मिलकर ग्रामीण समुदायों के लिए स्व–रोजगार और सामुदायिक विकास के नए अवसर प्रदान करते हैं।

उद्देश्य

1. ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता के विभिन्न मॉडल्स का अध्ययन करना।
2. सामुदायिक विकास और स्व–रोजगार पर सामाजिक उद्यमिता के प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. समाज कार्य के दृष्टिकोण से सामाजिक उद्यमिता की चुनौतियों और अवसरों की पहचान करना।
4. नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति : यह शोध पत्र द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। डेटा स्रोतों में शामिल हैं :

- शैक्षणिक पत्रिकाएँ और लेख
- सरकारी रिपोर्ट्स (जैसे, नीति आयोग, ग्रामीण विकास मंत्रालय)
- गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) की केस स्टडीज
- सामाजिक उद्यमिता पर प्रकाशित पुस्तकें और ऑनलाइन डेटाबेस

सैद्धांतिक ढाँचा : यह अध्ययन सामाजिक पूंजी सिद्धांत (वबपंस ब्वपजंस जीमवतल) और सशक्तिकरण सिद्धांत (Empowerment Theory) पर आधारित है। सामाजिक पूंजी सामुदायिक नेटवर्क और सहयोग को बढ़ावा देती है, जबकि सशक्तिकरण सिद्धांत व्यक्तियों और समुदायों को आत्मनिर्भर बनाने पर केंद्रित है। समाज कार्य के दृष्टिकोण से, ये सिद्धांत सामाजिक उद्यमिता के प्रभाव को समझने में महत्वपूर्ण हैं।

ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता के मॉडल्स

1. सहकारी मॉडल : सहकारी समितियाँ, जैसे अमूल और लिज्जत पापड़, ग्रामीण महिलाओं और किसानों को स्व–रोजगार प्रदान करती हैं। ये मॉडल सामुदायिक भागीदारी और सामूहिक लाभ पर आधारित हैं।

* *शोधार्थी, समाज कार्य विभाग, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

** *प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

2. **माइक्रोफाइनेंस**–आधारित मॉडल : ग्रामीण क्षेत्रों में माइक्रोफाइनेंस संस्थान, जैसे SKS माइक्रोफाइनेंस, छोटे व्यवसाय शुरू करने के लिए ऋण प्रदान करते हैं।

3. **कृषि–आधारित उद्यम** : जैविक खेती, मधुमक्खी पालन, और हस्तशिल्प जैसे उद्यम ग्रामीण आजीविका को बढ़ावा देते हैं।

4. **प्रौद्योगिकी–आधारित मॉडल** : डिजिटल प्लेटफॉर्म, जैसे e-Choupal, किसानों को बाजार तक पहुँच प्रदान करते हैं।

5. **स्वास्थ्य और शिक्षा मॉडल** : अराविंद आई केयर और शिक्षा जैसे सामाजिक उद्यम ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ती सेवाएँ प्रदान करते हैं।

सामुदायिक विकास और स्व–रोजगार पर प्रभाव

• **आर्थिक सशक्तिकरण** : सामाजिक उद्यमिता ने ग्रामीण महिलाओं, युवाओं, और हाशिए पर रहने वाले समुदायों को स्व–रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं। उदाहरण के लिए, सेल्फ–हेल्प ग्रुप्स (SHGs) ने लाखों महिलाओं को उद्यमी बनने में सक्षम बनाया है।

• **सामाजिक समावेशिता** : सामाजिक उद्यमिता ने दलित, आदिवासी, और अन्य वंचित समूहों को मुख्यध ारा में शामिल किया है।

• **बुनियादी ढांचे का विकास** : सामाजिक उद्यमों ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शिक्षा, और स्वच्छता जैसी सेवाओं तक पहुंच बढ़ाई है।

• **पर्यावरणीय स्थिरता** : जैविक खेती और नवीकरणीय ऊर्जा पर आधारित उद्यम पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देते हैं।

चुनौतियाँ

1. **वित्तीय संसाधनों की कमी** : ग्रामीण उद्यमियों को पूंजी तक पहुंच में कठिनाई होती है।

2. **बाजार पहुंच** : ग्रामीण उत्पादों को शहरी और अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुंचाने में बाधाएँ।

3. **शिक्षा और प्रशिक्षण** : ग्रामीण उद्यमियों में तकनीकी और प्रबंधकीय कौशल की कमी।

4. **नीतिगत बाधाएँ** : जटिल सरकारी नियम और नौकरशाही प्रक्रियाएं।

5. **सामाजिक रूढ़ियाँ** : लिंग और जाति आधारित भेदभाव उद्यमिता को सीमित करते हैं।

अवसर

1. **डिजिटल क्रांति** : मोबाइल और इंटरनेट की बढ़ती पहुँच ग्रामीण उद्यमियों को बाजार और प्रशिक्षण प्रदान कर रही है।

2. **सरकारी योजनाएँ** : स्टार्टअप इंडिया, मुद्रा योजना, और ग्रामीण आजीविका मिशन जैसे कार्यक्रम वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं।

3. **NGOs और सामाजिक संगठन** : ये संगठन प्रशिक्षण, नेटवर्किंग, और संसाधन प्रदान करते हैं।

4. **युवा उद्यमिता** : ग्रामीण युवा नवाचार और प्रौद्योगिकी को अपनाने में रुचि दिखा रहे हैं।

केस स्टडीज

1. **अमूल** : दूध सहकारी मॉडल ने गुजरात के ग्रामीण किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया।

2. **लिज्जत पापड़** : इसने ग्रामीण महिलाओं को स्व–रोजगार और सामाजिक सम्मान प्रदान किया।

3. **सेल्को सोलर** : ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ती सौर ऊर्जा प्रदान कर ऊर्जा पहुंच बढ़ाई।

नीतिगत सुझाव

1. **वित्तीय सहायता** : ग्रामीण उद्यमियों के लिए कम ब्याज दरों पर ऋण और अनुदान।

2. **प्रशिक्षण और कौशल विकास** : डिजिटल साक्षरता और उद्यमिता प्रशिक्षण पर जोर।

3. **बाजार लिंकेज** : ग्रामीण उत्पादों के लिए ई–कॉमर्स और निर्यात अवसरों को बढ़ावा।

4. **नीतिगत सुधार** : सरकारी प्रक्रियाओं को सरल बनाना और प्रोत्साहन प्रदान करना।

5. सामुदायिक भागीदारी : सामाजिक उद्यमों में स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष : ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता सामुदायिक विकास और स्व–रोजगार के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है। समाज कार्य के सिद्धांतों के साथ संयोजन से, यह न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है बल्कि सामाजिक समावेशिता और पर्यावरणीय स्थिरता को भी प्रोत्साहित करती है। हालांकि, चुनौतियों को दूर करने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप, सामुदायिक सहयोग, और तकनीकी नवाचार आवश्यक हैं।

संदर्भ–सूची

1. नीति आयोग (2020), ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता पर रिपोर्ट।

2. ग्रामीण विकास मंत्रालय (2021), स्व–रोजगार और आजीविका मिशन।

3. Bornstein, D. (2007), How to Change the World : Social Entrepreneurs and the Power of New Ideas.

4. Yunus, M. (2010), Building Social Business : The New Kind of Capitalism that Serves Humanity's Most Pressing Needs.

5. जर्नल ऑफ सोशल वर्क एंड सोशल डेवलपमेंट (2022), ग्रामीण भारत में सामाजिक उद्यमिता पर लेख।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Social Work : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 71-73

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

विकसित भारत में वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और उत्पीड़न : एक गुणात्मक अध्ययन

*दामिनी पाण्डेय** *प्रो. विवेक कुमार सिंह***

सारांश–*भारतीय समाज में सशक्त वृद्ध महिलाएँ ही सशक्त समाज की नींव हैं किंतु जहां आज हम महिला सशक्तिकरण की बातें करते हैं वहीं वृद्ध महिलाओं के प्रति हिंसा और उत्पीड़न एक गंभीर समस्या है, जो कि पारिवारिक उपेक्षा, आर्थिक शोषण, मानसिक प्रताड़ना, दुर्व्यवहार और सामाजिक अलगाव के रूप में प्रकट होती है। प्रस्तुत शोध आलेख विकसित भारत के संदर्भ में वृद्ध महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों तथा उनके कारणों, प्रभावों और समाधान के उपायों का विश्लेषण करता है। क्योंकि हमारे देश में एक विकसित भारत की परिकल्पना तब ही संभव होगी जब वृद्ध महिलाओं को सम्मान, सुरक्षा और आत्मनिर्भरता मिलेगी।*

लेख द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर वर्तमान समय में वृद्ध महिलाओं की स्थिति उनके लिए बनाए गए कानूनों के प्रति जागरूकता को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यपूर्ण शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

कुंजी शब्द–*शारीरिक मानसिक तथा आर्थिक सुरक्षा, वृद्ध दुर्व्यवहार, विकसित भारत, महिला सशक्तिकरण।*

1. प्रस्तावना : अपनी बात को शुरू करने से पहले मैं आप सबका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगी आजकल जो बात हमारे व्यवहारिक जीवन में जो घटित हो रही है आज महिलाओं के प्रति हमारे समाज में विशेष वर्ग द्वारा कहा जाने लगा है 'आखिर चाहिए क्या औरत को 'यह एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी जो कि सोशल मीडिया पर ट्रेंड करती है, जब समाज में कोई स्त्री लीक से हटकर कार्य करती है। तो मेरा प्रश्न है कि औरत को क्या चाहिए इसका निर्धारण करने का अधिकार आपको किसने दे दिया... सदियों से आख़रि क्यों हमारे समाज को स्त्री विमर्श की बात करनी पड़ रही है और अभी भी बहुत कुछ मामलों में स्थित वही की वही है।

- महिलाओं की स्थिति को देखते हैं तो
- जैवकीय अधिकार 'स्त्री को कितना मुक्त किया जाए?'
- इस परिपाटी का निर्धारण करने का अधिकार पुरुष समाज को किसने दे दिया?
- हम बात करते हैं स्त्री विमर्श की (जेंडर एक सामाजिक संघर्ष)

हम इस धरा पर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ तो रहे हैं मगर हमारे समाज की महिलाएँ भी बटी हुई है विभिन्न जातियों नृजातीय समूह में और यह भी एक समस्याहै कि महिलाओं के समक्ष न तो दुष्मन स्पश्ट हैं न तो महिलाएँ किसी एक पायदान पर है।

भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य में वृद्ध महिलाओं की स्थिति चिंता का विषय बनी हुई है। भले ही देश आर्थिक और सामाजिक रूप से विकसित हो रहा हो, लेकिन वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और उत्पीड़न की घटनाएँ अब भी जारी हैं। यह हिंसा शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर हो सकती है। इस शोध का उद्देश्य विकसित भारत में वृद्ध महिलाओं के प्रति हिंसा और उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को समझना, इसके कारणों की पहचान करना और समाधान के उपाय सुझाना है।

वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध होने वाली सामाजिक हिंसा एक महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या है, जो पारिवारिक

* *शोधार्थी, समाज कार्य विभाग, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

** *प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

उपेक्षा, शारीरिक हिंसा, मानसिक उत्पीड़न, आर्थिक शोषण और लैंगिक भेदभाव के रूप में सामने आती है।

1. वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध सामाजिक हिंसा की परिभाषा और स्वरूप
2. वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध हिंसा विभिन्न प्रकार से प्रकट होती है, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं–
3. शारीरिक हिंसा : परिवार के सदस्यों या देखभाल करने वालों द्वारा मारपीट, धक्का–मुक्की।
4. मानसिक उत्पीड़न : अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा, दुर्व्यवहार सामाजिक अलगाव।
5. आर्थिक शोषण : संपत्ति हड़पना, पेंशन या अन्य आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण।
6. स्वास्थ्यगत समस्याएँ : दवाइयों, भोजन और उचित देखभाल की कमी।

शोध उद्देश्य

1. वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के स्वरूप की पहचान करना।
2. हिंसा और उत्पीड़न के कारणों का विश्लेषण करना।
3. कानूनों और सरकारी योजनाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

साहित्यक समीक्षा : साहित्यिक पुनरावलोकन करने से हमें इस विषय पर गहरी अंतर्दृष्टि मिलती है।

हेल्पएज इंडिया की राष्ट्रीय रिपोर्ट 2023– बुजुर्ग महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार में 16 फीसदी की वृद्धि।

यह रिपोर्ट बताती है कि भारत में लगभग 16 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने दुर्व्यवहार का सामना किया है, जिसमें शारीरिक हिंसा, अपमान, और मनोवैज्ञानिक शोषण शामिल हैं।

लॉन्गिट्यूडिनल एजिंग स्टडी ऑफ इंडिया (LASI)

यह अध्ययन बताता है कि भारत में कम से कम 5 प्रतिशत बुजुर्गों ने दुर्व्यवहार का अनुभव किया है, जिसमें शारीरिक, भावनात्मक, आर्थिक शोषण और उपेक्षा शामिल हैं। बिहार में यह प्रतिशत 11.7 प्रतिशत है, और शारीरिक दुर्व्यवहार का सामना करने वाले बुजुर्गों की संख्या उत्तर प्रदेश में 43 प्रतिशत है।

बबिता अग्रवाल (2015) के अध्ययन के अनुसार,

भारत में 60% वृद्ध महिलाएँ घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के अनुसार,

वृद्ध महिलाओं के खिलाफ अपराधों में वृद्धाश्रमों में होने वाले दुर्व्यवहार के मामले भी शामिल हैं।

• संयुक्त राष्ट्र (UN, 2018) की रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया भर में वृद्ध महिलाओं को उनकी संपत्ति और अधिकारों से वंचित किया जाता है।

साहित्य में वृद्ध महिलाओं पर आधारित कुछ कृतियां भी प्रकाशित हैं जिनको पढ़कर हम हमारे वर्तमान समाज में वृद्ध महिलाओं की स्थिति को समझने का प्रयास करते हैं जैसे कि–

• महादेवी वर्मा की कृतियों में वृद्ध स्त्रियों की संवेदना को दर्शाया गया है। जैसे –यामा, श्रृंखला की कड़ियाँ, स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र।

• मन्नू भंडारी की कहानियों में वृद्ध महिलाओं की सामाजिक स्थिति और उनकी संघर्षपूर्ण जिंदगी को चित्रित किया गया है। स्त्री–मन की जटिलताओं और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से उकेरते हैं। वृद्ध महिलाओं के लिए उनकी कृतियाँ विशेष रूप से प्रेरणादायक होती हैं। जैसे– आपका बंटी, एक कहानी यह भी।

• अमृता प्रीतमके लेखन में वृद्ध महिलाओं के अनुभवों को संवेदनशील तरीके से उकेरा गया है। जैसे–

आज़ाद औरतें (कहानी संग्रह), रसीदी टिकट (आत्मकथा), कागज़ और कैनवास (निबंध–संग्रह)

शोध की कार्यप्रणाली (Research Methodology)

शोध का प्रकार– गुणात्मक (Qualitative) और मात्रात्मक (Quantitative) अध्ययन।

आंकड़ों का स्रोत– द्वितीयक स्रोतों पर आधारित (सरकारी रिपोर्ट, एनजीओ रिपोर्ट, न्यायिक दस्तावेज, शोध पत्र, समाचार, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आंकड़े)।

आंकड़ों का संग्रह–पुस्तकालय अनुसंधान, ऑनलाइन डेटाबेस, सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों की रिपोर्ट।

यह शोध प्रारूप द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित एक व्यवस्थित अध्ययन का ढाँचा प्रस्तुत करता है, जो वृद्ध

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के विभिन्न पहलुओं को समझने और समाधान सुझाने में सहायक होगा।

निष्कर्ष और सुझाव : सामाजिक और साहित्यिक अनुसंधान इस बात को स्पष्ट करते हैं कि विकसित भारत में वृद्ध महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जो उनके शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि वृद्ध महिलाओं को पारिवारिक उपेक्षा और सामाजिक स्तर पर दुर्व्यवहार स्वास्थ्यगत एवं भावनात्मक रुप में एकाकीपन से संबंधित विभिन्न प्रकार की हिंसा झेलनी पड़ती है।

सुझाव–जागरूकता अभियान–वृद्ध महिलाओं के अधिकारों और उपलब्ध सहायता सेवाओं के बारे में जागरूकता बढ़ाना।

आर्थिक सशक्तिकरण–वृद्ध महिलाओं के लिए आर्थिक स्वतंत्रता के अवसर प्रदान करना।

कानूनी सहायता–कानूनी प्रक्रियाओं को सरल और सुलभ बनाना।

सामाजिक समर्थन–समाज में संवेदनशीलता बढ़ाना और वृद्ध महिलाओं के प्रति सम्मानजनक व्यवहार को प्रोत्साहित करना।

संदर्भ–सूची

1. https:@@www-indiatv-in @uttar&pradesh@horrific&85&year&old&woman&raped &and&died&in&uttar&pradesh&bareilly&up&know&more&here&2024&07&30&1063676\utm&Jul 30, 2024 6:38

2. उत्तर प्रदेश के बरेली में जुलाई 2024 में, एक 85 वर्षीय महिला के साथ दुष्कर्म किया गया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई।

3. हेल्पएज इंडिया की राष्ट्रीय रिपोर्ट 2023

4. भारत में महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा की समस्या : सामाजिक स्तर पर हस्तक्षेप की आवश्यकता और कानूनी उपाय

5. लॉन्गिट्यूडिनल एजिंग स्टडी ऑफ इंडिया (LASI)

6. अर्चना कौशिक, (2008), बुजुर्ग महिलाओं में सुरक्षा की भावना को प्रभावित करने वाले कारक, इंडियन जर्नल ऑफ।

7. जेरोन्टोलॉजी, खंड 22, संख्या 2. पृ. 175–195

8. रहमतुल्लाह, (2011), वृद्धावस्था चाले व्यक्तियों के लिए चुनौतियों बेली डॉन, अक्टूबर 4, पृ. 30

9. शिवमूर्ति और चटकन्नवर (2001), भारत में बुजुर्ग आबादी के लिए देखभाल और सहायता : ग्रामीण उत्तर कर्नाटक, भारत में वृद्धावस्था वाले व्यक्तियों के सर्वेक्षण के परिणाम, उपलब्ध http:@@www&silverinnings&com@docs@Ageing Indian&pdf

10. स्ट्रेंड, एम. (2000), बेरोजगारी से बाहर निकलने के विभिन्न गार्ग और गानसिक कल्याण पर उनका प्रमाद : आर्थिक स्थिति की भूमिका और और जीवन पाठ्यक्रम की भविष्यवाणी, कार्य रोजगार सोसायटी, 14(3), पीपी. 459–479

11. फिलिप्सन, सी. और बार्स. जे. (2007), चौ. 4– सामाजिक सिन्दांत और सामाजिक उम्र बढ़ना, समाज में बुढ़ापा तीसरा संस्करण), सेन, पीपी. 68–84.

12. वर्गस्ट्रॉन, एम.जे, होम्स, एम.ई, और पेविचओगी, एल. (2000), जीवनसाथी की मृत्यु के बाद सफल उम्र बढ़ने के सिद्धांत, शोक सलाह का एक नेटवर्क पाठ विश्लेषण, स्वास्थ्य संचार, 12(4), पीपी 377–406

13. हेज. जे. (1972), समाजशास्त्र में सिद्धांत निर्माण की तकनीके और समस्याएँ, न्यूयॉकर्स विली इंटर विज्ञान

14. चौधरी, ए. (2012), भारत में बुढ़ापा, चुनौतियों और अवरार डी. पाउलाराव

15. बुजुर्ग महिलाओं का उत्पीड़न : सामुदायिक हिंसा के मामले, मंगलम प्रकाशन नई दिल्ली

16. हेल्पएज इंडिया की रिपोर्ट, "भारत में वृद्धावस्था– देखभाल चुनौतियों के लिए तैयारी और प्रतिक्रिया की खोज", हाल ही में 15 जून, 2024 को 'विश्व बुजुर्ग दुर्व्यवहार जागरूकता दिवस (WEAAD) के उपलक्ष्य में जारी की गई।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 74-77

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

तिलक के स्वराज की धारणा और समकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इसकी महत्ता का अध्ययन

*मोना कुमारी**

सारांश : बाल गंगाधर तिलक की स्वराज की अवधारणा भारत के स्वतंत्रता संग्राम की आधारशिला थी और व्यापक रूप से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के साथ गहराई से जुड़ी हुई थी। तिलक ने स्वराज को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के रूप में नहीं बल्कि भारतीय मूल्य संस्कृति और परंपराओं में निहित स्वशासन के रूप में परिभाषित किया। उनका मानना था कि सच्ची स्वतंत्रता में आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वायत्त सम्मिलित है, जो की जमीनी स्तर पर सशक्तिकरण की आवश्यकता पर बलदेती है। तिलक की दृष्टि जनता की सक्रिय भागीदारी की वकालत करती थी, जिसका लक्ष्य शासन की विकेंद्रीकृत प्रणाली बनाना था। आधुनिक राजनीतिक परिदृश्य में तिलक के स्वराज का विचार अत्यधिक प्रासंगिक बना हुआ है, विशेष रूप से विकेंद्रीकरण की मांग और स्थानीय शासन के लिए के संदर्भ में। वर्तमान में दुनिया भर में लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ, सत्ता के केंद्रीकरण और नागरिकों के बीच मोहभंग से जूझ रही है। तिलक की अवधारणा स्थानीय निकायों को सशक्त बनाने नागरिक भागीदारी को बढ़ावा देने देने और जवाबदेही को बढ़ावा देने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त स्वराज में निहित आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक गौरव के सिद्धांत समकालीन आंदोलन से मेल खाते हैं, जो की स्वदेशी अधिकारों, सतत विकास, पर्यावरणीय मूल्य व सांस्कृतिक संरक्षण पर जोर देते हैं। इस प्रकार यह शोध पत्र तिलक के विचारों पर दोबारा गौर करने से शासन, सांस्कृतिक पहचान, विकेंद्रीकरण व पर्यावरण समस्याओं से संबंधित आधुनिक चुनौतियों का समाधान करने में अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा।

मुख्य शब्द– स्वराज, स्वतंत्रता, सशक्तिकरण, भारतीय राष्ट्रवाद, विकेंद्रीकरण, नागरिक भागीदारी, आत्मनिर्भरता।

प्रस्तावना : बाल गंगाधर तिलक, जो लोकमान्य तिलक के नाम से सुविख्यात है, एक महानतम राष्ट्र निर्माता एवं स्वाधीनता सेनानी थे। श्री अरविंदो ने उन्हें 'राष्ट्रीय साधना का अवतार' कहा। उनकी महानता उनकी वास्तविक उपलब्धियाँ में नहीं, किंतु उसमें है जो उन्होंने संभव बनाया। तिलक आधुनिक भारत के महानतम कर्मयोगियों में से एक हैं। वैदिक व दार्शनिक शोध के रूप में चिरस्थाई रचनाओं के द्वारा उन्होंने भारत के साहित्यिक तथा संस्कृति के इतिहास में अपूर्व यश प्राप्त कर ली थीं। तिलक भारत के राजनीतिक इतिहास में ही नहीं बल्कि इस देश की पुनर्जागरण के इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वह एक राष्ट्रवादी सेनानी थे। उनका राष्ट्रवाद स्वामी विवेकानंद की तरह पुनरुत्थानवादी था। वह मानते थे, कि भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में संगठित हो।

तिलक के स्वराज की अवधारणा तिलक के लिए स्वराज केवल ब्रिटिश शासन से मुक्ति नहीं था, बल्कि यह आत्मनिर्भरता, भारतीय संस्कृति की पुनर्स्थापना और भारतीय जनमानस की जागरूकता का भी प्रतीक था। उनका मानना था कि 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार' है और इसका मतलब था कि भारतीयों को खुद अपने देश की सरकार बनाने का हक है।

मांडलेजेल से बाहर आने पर तिलक ने स्वराज की मांग को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से होम रूल लीग की स्थापना की। सन 1906 में कोलकाता में हुए कांग्रेस अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वराज की मांग की। परंतु तिलक की धारणा का स्वराज दादा भाई नौरोजी व अन्य उदारवादियों की परिकल्पना के स्वराज से बहुत भिन्न था। स्वराज से तिलक का तात्पर्य था, जनता को सत्ता का तुरंत हस्तांतरण करना जबकि उदारवादी ऐसे छोटे–छोटे सुधारो से संतुष्ट हो जाते जैसे विधान मंडलों का विस्तार एवं उनमें निर्वाचित भारतीयों

* *शोध छात्रा, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया*

की संख्या में वृद्धि इत्यादि। दूसरे तिलक ने स्वराज की मांग को एक ऊंचे नैतिक स्तर पर रखा। उनके लिए स्वराज एक राजनीतिक आवश्यकता नहीं, अपितु एक नैतिक अनिवार्यता था। यह मनुष्य के नैतिक स्वभाव की एक अदम्य मांग थी, अतः एक संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का आधार था। तिलक ने स्वराज की मांग को धर्म की राष्ट्रीय परंपरा के साथ संयुक्त कर दिया था। उनके लिए स्वराज राष्ट्र का जन्म सिद्ध अधिकार था।[1] उदारवादी नेताओं के साथ तिलक का मतभेद केवल स्वराज के स्वरूप के विषय में नहीं, अपितु उसे प्राप्त करने के साधनों के संबंध में भी था। जबकि उदारवादी प्रार्थना याचिका व विरोध प्रदर्शन जैसे संवैधानिक साधनों में विश्वास करते थे, तिलक एक अधिक स्वावलंबी साधन को अपनाना चाहते थे। उनका मानना था कि स्वतंत्रता किसी राष्ट्र के पास नहीं आती अपित उसे अनुपयुक्त हाथों से छीनना पड़ता है। संवैधानिक साधनों की निष्फलता को अनुभव करते हुए उन्होंने जन जागरण और जन आंदोलन का मार्ग अपनाया। उन्होंने इतिहास से सीखा था की निरंकुश शासकों को जनमत की शक्ति के समक्ष झुकना पड़ता है। अतः उन्होंने कांग्रेस को एक जन आंदोलन बनाने का प्रयास किया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने साहित्य का सहारा लिया। तिलक एक सिद्धांत के रूप में अहिंसा में विश्वास नहीं करते थे, जैसा कि गांधी जी मानते हैं जैसा कि गांधी जी करते थे। वह भविष्य में सशस्त्र क्रांति की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं करते थे। अतः उन्होंने क्रांतिकारियों को सदैव तैयार रहने की सलाह देते थे। तिलक की इस संबंध में नीति व्यवहार प्रधान व यथार्थवादी थी।[2] यद्यपि तिलक को प्रार्थना और याचिका की पद्धति में कोई विश्वास नहीं था। तब भी वह किन्हीं स्थितियों में इसकी आवश्यकता स्वीकार करते थे। वह अपने आप को किसी एक पद्धति विशेष में बांधना नहीं चाहते थे।

सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण : तिलक ने भारतीय समाज के भीतर एकजुटता और जागरूकता लाने के लिए धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का उपयोग किया। गणेश उत्सव जैसे कार्यक्रमों का आयोजन कर उन्होंने भारतीयों को एकत्र किया और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। तिलक के स्वराज का एक और महत्वपूर्ण पहलू आत्मनिर्भरता था। वे चाहते थे कि भारत विदेशी वस्त्रों, सामानों और उत्पादन पर निर्भर न रहे। इसके लिए उन्होंने स्वदेशी आंदोलन को बढ़ावा दिया और खादी को प्रोत्साहित किया। तिलक ने यह भी महसूस किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शिक्षा और जागरूकता जरूरी है। उन्होंने भारत में शिक्षा के प्रसार पर बल दिया और प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धतियों की पुनर्स्थापना की वकालत की।

स्वराज प्राप्त करने के साधन : तिलक के अनुसार स्वराज एक नैतिक कर्तव्य है और एक धर्म भी है उनके अनुसार स्वराज प्राप्ति के साधन भी स्वराज की धारणा के समान ही शाश्वत सत्य पर आधारित है। उनका मानना था की स्वराज दिया नहीं जाता, बल्कि प्राप्त किया जाता हैं। उनका कहना था की स्वराज किसी विदेशी सत्ता द्वारा किसी अधीन राज्य को नहीं दिया गया, जितने राष्ट्रों ने भी स्वराज प्राप्त किया है उन्होंने अपने प्रयत्नों से ही प्राप्त किया है। अपने धर्म इच्छा शक्ति के बल पर ही प्राप्त किया।[3] याचिका की पद्धति को संघर्ष की पद्धति में बदलकर ही किसी राष्ट्र को आगे बढ़ने का अवसर मिल सकता है। यदि किसी राष्ट्र में संघर्ष करने की क्षमता नहीं है तो वह निश्चित ही अत्यंत पिछड़ा हुआ है। स्वराज के लिए तिलक क्रियात्मक उपाय को अपनाने पर बल देते हैं। उनके प्रमुख साधन निम्नवत हैं–

1. राष्ट्रीय शिक्षा : राष्ट्रीय शिक्षा तिलक के स्वराज प्राप्त का मुख्य अंग था। उन्होंने पुणे में न्यू इंग्लिश स्कूल व फर्ग्यूसन कॉलेज की स्थापना की। तत्कालीन शिक्षा आयोग के अध्यक्ष डब्ल्यू डब्ल्यू हैंटर ने न्यू इंग्लिश स्कूल के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था, कि समस्त भारत में मैं इस प्रकार की एक भी संस्था अभी तक नहीं देखी जिसकी इसके साथ तुलना की जा सके। इस संस्था को सरकार की तरफ से कोई सहायता नहीं मिलती हैं। तब भी यह न केवल सरकारी हाई स्कूलों से प्रतिद्वंद्विता कर सकती है, अपितु अन्य देशों के स्कूलों से भी आगे बढ़ सकती है। तिलक ने शिक्षा के प्रसार के लिए 'डेक्कन एजुकेशनल सोसाइटी' की स्थापना की।[4]

2. स्वदेशी आंदोलन : स्वदेशी का तात्पर्य 'देश में बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग किया जाना' है। उन्होंने स्वदेशी शिक्षा, स्वदेशी विचार और स्वदेशी जीवन पद्धति आदि सभी क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया। तिलक ने स्वदेशी आंदोलन में विदेशी बहिष्कार भी जोड़ दिया। स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग किया जाए और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाए यह नारा तिलक ने दिया। इसके साथ ही तिलक ने कहा कि हमें अपने धर्म संस्कृति, भाषा और सभ्यता को पश्चिम से श्रेष्ठ समझना चाहिए और संस्कृति को अधिक महत्व देना चाहिए। उदारवादी जहां पाश्चात्य भाषा व संस्कृति को अपनाने के पक्षधर थे, वही तिलक ने इसका घोर विरोध किया। तिलक बहिश्कार द्वारा ब्रिटिश शासन पर दबाव डालकर जनता की मांगे मनवाने के पक्ष के समर्थक थे। तिलक स्वदेशी को अपनाने

व विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने, विदेशी सभ्यता का बहिष्कार करने का एक सशक्त हथियार मानते थे। तिलक के विदेशी बहिष्कार को अपनाकर गांधी जी ने असहयोग आंदोलन चलाया।[5] यह असहयोग तिलक के बहिष्कार को ही एक परिष्कृत स्वरूप कहा जा सकता हैं।

तिलक की अवधारणा की प्रासंगिकता आज के राजनीतिक संदर्भ में : वर्तमान के भारत में तिलक की स्वराज की अवधारणा भारतीय राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक पहचान के मुद्दों पर प्रासंगिक है। राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक विविधता के बीच संतुलन बनाए रखना तिलक की सोच की तरह महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति की रक्षा और उसका पुनर्निर्माण अब भी कई राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों का हिस्सा है। तिलक ने स्वदेशी उत्पादों को अपनाने और ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वदेशी आंदोलन को प्रोत्साहित किया। उन्होंने भारतीय उद्योगों और उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए कई अभियान चलाए। आज के भारत में, जहाँ 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना को प्रमुखता दी जा रही है, तिलक के विचारों की प्रासंगिकता अत्यधिक है। उनकी विचारधारा हमें प्रेरित कर सकती है कि हम अपनी स्वदेशी क्षमताओं को पहचानें और उनका पूर्ण उपयोग करें। इस प्रकार, आर्थिक राष्ट्रवाद के पुनरुद्धार में तिलक की दृष्टि को शामिल किया जा सकता है, जिससे भारत न केवल आर्थिक रूप से सशक्त होगा बल्कि देशवासियों की आत्म–निर्भरता भी बढ़ेगा।[6]

तिलक ने कांग्रेस की स्थानीय बैठकों में मातृभाषा के उपयोग की वकालत की थी, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि मातृभाषा के माध्यम से आम लोगों तक सन्देश और विचार पहुँचाना अधिक प्रभावी होगा। हाल ही में भारत सरकार ने 'नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति' (2020) के माध्यम से संस्कृत और स्थानीय और मातृ भाषाओं को अपनाने पर जोर दिया है। इस नीति के तहत, भारतीय भाषाओं को शिक्षा और प्रशासन में अधिक महत्व दिया जा रहा है। तिलक की यह दृष्टि कि मातृभाषा का प्रयोग लोगों के साथ सच्चा संवाद स्थापित करने के लिए आवश्यक है, आज भी प्रासंगिक है और वर्तमान में भारत सरकार द्वारा 'नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति' (2020) नीति के माध्यम से इसे साकार किया जा रहा है।

तिलक जातिवाद और अस्पृश्यता के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने समाज में जातियों और संप्रदायों के बीच विभाजन को समाप्त करने के लिए व्यापक आंदोलन चलाया। उनके समय में समाज में जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ लड़ाई ने महत्वपूर्ण सामाजिक बदलावों की नींव रखी। आज भी भारतीय समाज में जातिवाद और सामाजिक असमानताएँ एक चुनौती बनी हुई हैं। तिलक के दृष्टिकोण की इस संदर्भ में प्रासंगिकता है कि हमें समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट करने और समानता की दिशा में काम करना चाहिए। उनके विचार हमें यह याद दिलाते हैं कि सामाजिक समरसता और एकता के लिए लगातार प्रयास करना अत्यंत आवश्यक हैं। तिलक के आत्मनिर्भरता का विचार आज के 'आत्मनिर्भर भारत' की नीति में गहराई से झलकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रोत्साहित किया गया 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान तिलक के स्वराज के विचारों से प्रेरित प्रतीत होता है, जिसमें भारत को अपनी अर्थव्यवस्था और उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने की बात की जाती है।[7]

तिलक ने जो लोकतांत्रिक मूल्यों की वकालत की थी, वे आज भी भारत के संविधान और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने भारतीयों को यह सिखाया कि उनको अधिकार है कि वे अपने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक फैसलों में भाग लें। यह विचार आज भी भारत में चुनावी प्रक्रिया, नागरिक अधिकारों और सशक्त लोकतंत्र के रूप में जीवित है।

तिलक का शिक्षा पर जोर आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि भारत में शिक्षा की कमी और असमानता एक बड़ी चुनौती है। उनकी यह अवधारणा कि स्वराज तभी संभव है जब लोग शिक्षित हों आज भी हमारे शिक्षा और सामाजिक सशक्तिकरण कार्यक्रमों में समाहित है। उनका संदेश निम्न शब्दों में वर्णित है 'एक पराधीन राष्ट्र के समक्ष स्वयं को स्वाधीन करने हेतु संघर्श करने की अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है' क्योंकि स्वतंत्रता ही सामाजिक सांस्कृतिक और भौतिक स्वतंत्रता के द्वार खोलती है धीरे–धीरे प्रगति के द्वारा कोई राष्ट्र स्वतंत्रता के लिए तैयार नहीं होता, स्वतंत्रता तीव्र मार्ग के लिए मार्ग प्रशस्त करती देशभक्ति सुंदर व्याख्यान देने में नहीं। अपितु मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने के लिए तत्पर रहने में है। तिलक का यह संदेश आज भी उतना ही सत्य है जितना तत्कालीन समय में था।[8]

निष्कर्ष : लोकमान्य तिलक आधुनिक भारत के महानतम निर्माता, और केवल महाराष्ट्र की नहीं अभी संपूर्ण भारत के बिना मुकुट के राजा थे। वह एक धर्म प्रधान नहीं अपितु धर्म, देशभक्ति और बलिदान के धर्मगुरु थे।

देशभक्ति उनका धर्म था और भारत माता की इष्ट देवी थी। लोकमान्य तिलक की स्वराज की अवधारणा भारतीय राजनीति और समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनका विचार केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक समग्र दृष्टिकोण था, जिसमें समाज, संस्कृति, शिक्षा और आत्मनिर्भरता के तत्व जुड़े हुए थे। आज भी उनके विचार भारतीय राजनीति और समाज के विकास के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के भारतीय समाज और राजनीति में कई महत्वपूर्ण विचार विशेष रूप से स्वदेशी आंदोलन, मातृभाषा के महत्व और जातिवाद के खिलाफ उनके दृष्टिकोण आज भी हमारे समाज को मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का जीवन और कार्य भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति उनके दृढ़ समर्पण और राष्ट्रीयता की गहरी भावना को दर्शाता है। तिलक के विचारों और कार्यों द्वारा राष्ट्रीय पुनर्जागरण व राष्ट्रीय आंदोलन का एक नवीन मार्ग नवीन ऊर्जा, नवीन चेतना का संरक्षण प्राप्त हुआ। उन्होंने कांग्रेस को अभिजात वर्ग के दल से जनसाधारण का दल बनाने तथा कांग्रेस की याचना पद्धति और प्रार्थना वाली आंदोलन को उग्रवादी, निर्भीक, व जनआंदोलन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वराज के सैद्धांतिक विचार को उन्होंने सनातन धर्म से संयुक्त कर जनप्रिय बनाया और लोगों के मध्य प्रसिद्धि प्राप्त की। तिलक के वैचारिक कार्यक्रम स्वराज, स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा ब्रिटिश सरकार को कम्पित किया। देश को अवज्ञा का दर्शन प्रदान कर गांधी जी के आगामी आंदोलन के लिए धरातल तैयार किया। निष्क्रिय प्रतिरोध को उन्होंने संवैधानिक आंदोलन का स्वरूप दिया। तिलक भारत में आधुनिक लोकतंत्र के प्रणेता है, उन्होंने स्वयं को किसी आदर्शवादी दर्शन तक सीमित नहीं रखा, अपितु अपने दर्शन में यथार्थवाद व प्रायोगिक विचारों को अपनाया। तिलक को आधुनिक भारत के राष्ट्र निर्माता कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी इस प्रकार, तिलक के विचार आज भी भारतीय समाज और राजनीति में अत्यधिक प्रासंगिक हैं। उनकी दृष्टि हमें यह सिखाती है कि स्वदेशी उत्पादों को अपनाना, मातृभाषा का सम्मान करना और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष करना, भारतीय समाज की प्रगति और एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है। इन विचारों को अपनाकर हम एक समृद्ध और सशक्त भारत बनाने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. देसाई, ए. आर., भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली
2. ग्रोवर बी. एल, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन, एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली
3. वर्मा, वी. पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 4. वर्मा, दीनानाथ– आधुनिक भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली
5. नागर, पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
6. गाबा, ओ. पी., भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपर बैक्स
7. सूद, ज्योति प्रसाद–भारतीय राजनीतिक विचारक, के नाथ एंड कंपनी, मेरठ
8. कर्वे, डी. डी., द डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी, द जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 78-81

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

*कु. नीतू** *डॉ. सोमेश नारायण सिंह***

सारांश : ***शोध–समस्या के अन्तर्गत ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन'' किया गया है।*** *प्रस्तुत अध्ययन कार्य में आँकड़ों के संकलन हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। समष्टि का आशय प्रयागराज जनपद के सभी माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी है। न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद के 10 माध्यमिक विद्यालयों में से कुल 400 विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के मापन के लिए अरुण कुमार सिंह एवं अल्पना सेन गुप्ता द्वारा निर्मित मेंटल हेल्थ बैटरी (एम.एच. बी.) एवं विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर को मापने के लिए सुनील कुमार उपाध्याय एवं अल्का सक्सेना द्वारा निर्मित 'उपाध्याय– सक्सेना सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स स्केल' का प्रयोग किया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अध्ययनकर्त्री द्वारा टी–अनुपात एवं प्रसरण विधि (एनोवा) सांख्यिकी प्रविधि का उपयोग किया गया है। अध्ययनोपरान्त निष्कर्ष– माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव पाया गया।।*

की–वर्ड : *माध्यमिक स्तर, छात्र–छात्राएँ, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक–आर्थिक स्तर, प्रभाव, एनोवा*

प्रस्तावना–मानव एक मनो–शारीरिक प्राणी है। उसका व्यवहार शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के अनेक कारकों पर निर्भर करता है। इसलिए स्वास्थ्य से अभिप्राय केवल शारीरिक स्वास्थ्य से नहीं होता है वरन् शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के स्वास्थ्य से होता है दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जब शरीर तथा मना दोनों प्रभावशाली तथा समन्वित ढंग से कार्य करते है तब ही व्यक्ति को पूर्णरूपेण स्वस्थ कहा जा सकता है। जैसा कि शब्दों से स्पष्ट है, मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति की उस मनोस्थिति से है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों से सामाजिक तथा व्यक्तिगत समायोजन करने में समर्थ होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य सामान्य व्यवहार का प्रतिफल है एवं सामान्य व्यवहार से तात्पर्य अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा किये जाने वाले औसत व्यवहार से है। यदि किसी व्यक्ति का व्यवहार अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा किये जाने वाले औसत व्यवहार से अत्यधिक भिन्न नहीं होता है। उस व्यक्ति को सामान्य के साथ–साथ मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति कहा जा सकता है। यहाँ पर इंगित करना उचित ही होगा कि औसत सामान्य व्यवहार समाज, धर्म व संस्कृति के सापेक्ष होता है। किसी एक समाज या धर्म या संस्कृति में स्वीकृत व्यवहार दूसरे समाज, धर्म, संस्कृति में अस्वीकृत या असामान्य व्यवहार भी हो सकता है।

हैडफील्ड के अनुसार,''सामान्य भाषा में हम कह सकते है कि मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्त्वि की समन्वित क्रियाशीलता है।

लैडेल के अनुसार, ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ वास्तविकता के धरातल पर वातावरण के साथ उचित समायोजन करने की योग्यता है।''

* *शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)*

** *एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, हण्डिया पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज (उ.प्र.)*

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के द्वारा समायोजन करने की योग्यता का परिणाम होता है। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, आदर्शों को जीवन की वास्तविकताओं के अनुरूप ढालकर अपने तथा वातावरण के मध्य एक संतोषजनक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तब उसे समायोजित व्यक्ति कहा जा सकता है। समायोजन सदैव ही व्यक्ति के लिये सुखदायी होता है। समायोजन से व्यक्ति को मानसिक संघर्षों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए स्वस्थ्य शरीर के साथ स्वस्थ्य मस्तिष्क का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः यह देखा जाता है कि संसार में शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ्य व्यक्ति ही उच्च सफलता प्राप्त करते हैं। जैसा कि शब्द से स्पष्ट है, मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करते है। जैसा कि शब्द से स्पष्ट है, मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति की उस मनोस्थिति से है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक तथा व्यक्तिगत समायोजन करने में समर्थ होता है।

छात्र के मानसिक स्वास्थ्य पर समाज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। सामाजिक वातावरण दोषपूर्ण होने पर छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर उनका विपरीत प्रभाव पड़ता है। समाज के आन्तरिक झगड़े, जातीय संघर्ष, धार्मिक उन्माद, राजनैतिक दावपेंच, अमीरी–गरीबी की भावना, स्वतंत्रता व सुरक्षा का अभाव जैसी बातें छात्रों में मानसिक तनाव उत्पन्न कर सकती है। जो उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। जब छात्र दोषपूर्ण सामाजिक वातावरण में रहता है तो जो वह देखता है, सुनता है उसका विपरीत प्रभाव उसके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। छात्रों की तुलना ईश्वर से की जाती है। उनमें किसी भी प्रकार की बुराई न होने के कारण वे बिना किसी कारण के सभी के साथ अच्छे व्यवहार का प्रदर्शन करते है। परन्तु आज के इस वातावरण में क्षेत्रवाद, आतंकवाद, सम्पत्ति के कारण विवाद, चोरी–बेईमानी, झूठ बोलने की प्रवृत्ति लोगों में बढ़ती जा रही है। जिससे सामाजिक वातावरण दोषपूर्ण होता जा रहा है। जब बालक इस प्रकार के वातावरण में आता है तो उसमें तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

शोध–समस्या–''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन।''

अध्ययन के उद्देश्य–प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

2. माध्यमिक स्तर के छात्रों की मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

3. माध्यमिक स्तर के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

1. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

2. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

3. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–प्रविधि : प्रस्तुत अध्ययन कार्य में आँकड़ों के संकलन हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। समष्टि का आषय प्रयागराज जनपद के सभी माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी है। न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद के 10 माध्यमिक विद्यालयों में से कुल 400 विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के मापन के लिए अरुण कुमार सिंह एवं अल्पना सेन गुप्ता द्वारा निर्मित मेंटल हेल्थ बैटरी (एम एच बी) एवं विद्यार्थियों के सामाजिक– आर्थिक स्तर को मापने के लिए सुनील कुमार उपाध्याय एवं अल्का सक्सेना द्वारा निर्मित 'उपाध्याय– सक्सेना सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स स्केल' का प्रयोग किया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अध्ययनकर्त्री द्वारा टी–अनुपात एवं प्रसरण विधि (एनोवा) सांख्यिकी प्रविधि का उपयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

व्यावसायिक अभिरुचि		उच्च सा.–आ. स्तर	मध्यम सा.–आ. स्तर	निम्न सा.–आ. स्तर	F	स्तर	प्रभाव
		N=169	N=280	N=151			
मानसिक स्वास्थ्य	Σx	15788	23385	10678	62.52*	.01	सार्थक
	Σx^2	1497792	2027775	854272			
	M	93.42	83.52	70.72			

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के मध्य एफ–मान 62.52 है जो .01 पर सार्थक है। परिणामतः माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक–आर्थिक स्तर मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है अर्थात् तीनों के मानसिक स्वास्थ्य में भिन्नता है। माध्यमिक स्तर के उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान (93.42) मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान (क्रमषः 83.52 एवं 70.72) से अधिक है।

2. माध्यमिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

व्यावसायिक अभिरुचि		उच्च सा.–आ. स्तर	मध्यम सा.–आ. स्तर	निम्न सा.–आ. स्तर	F	स्तर	प्रभाव
		N=91	N=128	N=81			
मानसिक स्वास्थ्य	Σx	8836	11274	6768	13.78*	.01	सार्थक
	Σx^2	864614	1022418	619692			
	M	97.10	88.08	83.56			

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के मध्य एफ–मान 13.78 है जो .01 पर सार्थक है। परिणामतः माध्यमिक स्तर के छात्रों की सामाजिक–आर्थिक स्तर मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है अर्थात् तीनों के मानसिक स्वास्थ्य में भिन्नता है। माध्यमिक स्तर के उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान (97.10) मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान (क्रमशः 88.08 एवं 83.56) से अधिक है।

3. माध्यमिक स्तर के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

व्यावसायिक अभिरुचि		उच्च सा.–आ. स्तर	मध्यम सा.–आ. स्तर	निम्न सा.–आ. स्तर	F	स्तर	प्रभाव
		N=78	N=141	N=81			
मानसिक स्वास्थ्य	Σx	6952	10908	5113	40.10	.01	सार्थक
	Σx^2	633178	879392	360545			
	M	89.13	77.36	63.12			

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य के मध्य एफ–मान 40.10 है जो .01 पर सार्थक है। परिणामतः माध्यमिक स्तर के छात्राओं की सामाजिक–आर्थिक स्तर मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है अर्थात् तीनों के मानसिक स्वास्थ्य में भिन्नता है। माध्यमिक स्तर के उच्च

सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान (89.13) मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान (क्रमशः 77.36 एवं 63.12) से अधिक है।

● माध्यमिक स्तर के उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की मानसिक स्वास्थ्य मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है अर्थात् तीनों की मानसिक स्वास्थ्य में अन्तर है।

● माध्यमिक स्तर के उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की मानसिक स्वास्थ्य मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की अपेक्षा उच्च है अर्थात् तीनों की मानसिक स्वास्थ्य में अन्तर है।

● माध्यमिक स्तर के उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्राओं की मानसिक स्वास्थ्य मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्राओं की अपेक्षा उच्च है अर्थात् तीनों की मानसिक स्वास्थ्य में अन्तर है।

निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव पाया गया।

सन्दर्भ–सूची

1. कनौजिया, शालिनी (1998), विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियों के नामांकन की प्रवृत्ति का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

2. कौर, नवदीप (2015), स्टडी ऑफ इमोशनल मैचुरिटी ऑफ सीनियर सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू देयर सोशियो–इकोनॉमिक स्टे्टस, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेण्ट एण्ड सोशल साइंस,* वॉल्यूम–03, इश्शू–02, पृ. 870–879

3. गैरेट हेनरी ई (1989), शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

4. गुप्ता, एस.पी. (2007), आधुनिक शिक्षा ओर मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

5. पाण्डेय, अभिषेक (2011), माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं की व्यावसायिक अभिरूचि का तुलनात्मक, लघु शोध प्रबन्ध, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

6. भारद्वाज, एकता (2011), ए स्टडी ऑफ ऐकेडमी मोटिवेशन, वोकेशनल च्वाइस एण्ड लर्निंग स्टाइल ऑफ मनार्टी कम्यूनिटी स्टूडेन्ट्स (एस कान्स्टीट्यूशनली डिफाइन्ड). पी.एच–डी. थीसिस, चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ (उ.प्र.)

7. शुक्ला, अनुपूर्णा (2010), मुक्त विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की व्यावसायिक जागरूकता का अध्ययन, लघु शोध –प्रबन्ध, इलाहाबाद : इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

8. सिंह, राजेन्द्र, (1994), +2 स्तर पर विद्यार्थियों की व्यावसायिक जागरूकता का अध्ययन, लघु शोध–प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

9. सिंह, सत्येन्द्र (2015), माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यावसायिक अभिरूचि एवं मानसिक स्वास्थ्य पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन, इलाहाबाद : एम.एड. लघुशोध, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 82-88

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता का उदय और विकास : एक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

*प्रो. हेमन्त मालवीय** *सुभाष चन्द्र दुबे***

सारांश : *न्यायिक सक्रियता भारतीय लोकतंत्र में एक महत्वपूर्ण संवैधानिक अवधारणा रही है, जिसने विधायिका और कार्यपालिका की शक्ति को संतुलित करने में प्रमुख भूमिका निभाई है। 1980 के दशक के बाद से, न्यायपालिका ने जनहित याचिका और मौलिक अधिकारों की व्याख्या के माध्यम से नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की है। इस शोध पत्र में भारत में न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक विकास, राजनीतिक प्रभाव, विधायिका और कार्यपालिका के साथ इसके संबंध, तथा अवसरों और चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। न्यायिक सक्रियता ने प्रशासनिक जवाबदेही को बढ़ावा दिया है और लोकतंत्र को मजबूत किया है, लेकिन न्यायिक अतिक्रमण के रूप में इसकी आलोचना भी की जाती रही है। इस शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि न्यायिक सक्रियता लोकतंत्र की रक्षा और संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है, लेकिन इसे संतुलित रूप से लागू किया जाना चाहिए ताकि विधायिका और कार्यपालिका के संवैधानिक अधिकारों का हनन न हो।*

मुख्य शब्द : *न्यायिक सक्रियता, भारतीय लोकतंत्र, विधायिका, कार्यपालिका, लोकहित याचिका, न्यायिक अतिक्रमण, संवैधानिक अधिकार, सुप्रीम कोर्ट, प्रशासनिक जवाबदेही, मौलिक अधिकार।*

प्रस्तावना : भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका को एक स्वतंत्र और निष्पक्ष संस्था के रूप में देखा जाता है, जिसका उद्देश्य संविधान की रक्षा और विधायिका एवं कार्यपालिका की न्यायिक समीक्षा करना है। 1980 के बाद, भारत में न्यायिक सक्रियता का दौर शुरू हुआ, जिसमें न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या करते हुए कई ऐतिहासिक निर्णय दिए। यह शोध पत्र न्यायिक सक्रियता के विकास और उसके राजनीतिक प्रभावों पर प्रकाश डालता है।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ और परिभाषा : न्यायिक सक्रियता एक महत्वपूर्ण संवैधानिक अवधारणा है, जिसके अंतर्गत न्यायपालिका अपनी परंपरागत भूमिका से आगे बढ़कर विधायिका और कार्यपालिका द्वारा लिए गए निर्णयों की समीक्षा करती है। यह अवधारणा विशेष रूप से उन मामलों में लागू होती है जहाँ सरकार के किसी भी अंग द्वारा संविधान का उल्लंघन किया जाता है या नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन होता है। न्यायिक सक्रियता का उदय भारत में 1980 के दशक में हुआ और इसने कई महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों को जन्म दिया।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ : न्यायिक सक्रियता का तात्पर्य उस प्रवृत्ति से है, जिसमें न्यायपालिका न केवल कानूनी मुद्दों का समाधान करती है, बल्कि सरकार के नीति–निर्धारण और प्रशासनिक कार्यों पर भी प्रभाव डालती है। यह अवधारणा न्यायालयों द्वारा संविधान की प्रगतिशील व्याख्या के माध्यम से विकसित की गई है। न्यायपालिका तब सक्रिय होती है, जब विधायिका या कार्यपालिका अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहती है, जिससे नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन होता है। डॉ. डी. डी. बसु (2015) के अनुसार, 'न्यायिक सक्रियता का अर्थ न्यायपालिका द्वारा संवैधानिक मूल्यों की रक्षा के लिए उन निर्णयों में हस्तक्षेप करना है, जिनमें विधायिका या कार्यपालिका असंवैधानिक कार्यवाही करती है या अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहती

* *आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, बनारस (उ.प्र.)*

** *शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, बनारस (उ.प्र.)*

है।'[1] वहीं, जस्टिस वी. आर. कृष्णा अय्यर ने न्यायिक सक्रियता को लोकतंत्र का आवश्यक घटक बताते हुए कहा कि 'न्यायिक सक्रियता वह संवैधानिक प्रवृत्ति है, जिसके अंतर्गत न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका पर संवैधानिक सीमाओं के भीतर निगरानी रखती है तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करती है।'[2]

न्यायिक सक्रियता की परिभाषा : न्यायिक सक्रियता की विभिन्न विद्वानों और न्यायविदों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार, 'न्यायिक सक्रियता वह प्रक्रिया है जिसमें न्यायालय कानूनी सिद्धांतों को सक्रिय रूप से पुनर्परिभाषित करता है और व्यापक जनहित को ध्यान में रखते हुए न्यायिक निर्णय करता है।'[3]

हार्वर्ड लॉ रिव्यू (1996) के अनुसार, 'न्यायिक सक्रियता तब होती है जब न्यायालय संविधान की व्याख्या करते हुए सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए परंपरागत न्यायिक सीमाओं से आगे जाता है।'[4]

जस्टिस पी. एन. भगवती, जो लोकहित याचिका के प्रवर्तकों में से एक थे, ने कहा कि 'न्यायिक सक्रियता नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा का एक प्रभावी माध्यम है और यह लोकतांत्रिक व्यवस्था को अधिक उत्तरदायी बनाती है।'[5]

न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक आत्मसंयम : न्यायिक सक्रियता को न्यायिक आत्मसंयम के विपरीत माना जाता है। न्यायिक सक्रियता का अर्थ है कि न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तारित करता है और सरकारी कार्यों में हस्तक्षेप करता है। न्यायिक आत्मसंयम का अर्थ है कि न्यायालय केवल उन्हीं मामलों पर निर्णय करता है, जिनमें विधायिका और कार्यपालिका की स्पष्ट रूप से संवैधानिक सीमा का उल्लंघन हुआ हो।

उदाहरण के लिए, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने 'संविधान के मूल ढांचे' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिससे यह सुनिश्चित किया गया कि संसद संविधान के मूल सिद्धांतों को बदल नहीं सकती। यह न्यायिक सक्रियता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।[6]

भारत में न्यायिक सक्रियता का ऐतिहासिक विकास : भारत में न्यायिक सक्रियता का विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया रही है, जिसने समय के साथ कई महत्वपूर्ण चरणों को पार किया है। स्वतंत्रता के बाद न्यायपालिका का मुख्य कार्य संविधान की व्याख्या करना और विधायिका तथा कार्यपालिका द्वारा बनाए गए कानूनों की न्यायिक समीक्षा करना था। लेकिन 1980 के दशक से, न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय, मौलिक अधिकारों की रक्षा, और विधायिका तथा कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एक सक्रिय भूमिका निभानी शुरू की। यह विकास कई ऐतिहासिक घटनाओं और निर्णयों से प्रेरित था, जिनका इस खंड में विस्तार से अध्ययन किया गया है।

प्रारंभिक दौर (1950–1979) : संविधान लागू होने के बाद, भारतीय न्यायपालिका ने न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) के माध्यम से विधायिका और कार्यपालिका के निर्णयों की जांच की, लेकिन उस समय इसे न्यायिक सक्रियता नहीं कहा जाता था। इस अवधि के दौरान, न्यायपालिका ने मुख्य रूप से संविधान की व्याख्या करने और नागरिक अधिकारों की रक्षा करने पर ध्यान केंद्रित किया।

- शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ (1951) और सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1965) मामलों में, सुप्रीम कोर्ट ने संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की।
- लेकिन, गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) में न्यायालय ने मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की संसद की शक्ति को सीमित कर दिया, जिससे न्यायिक सक्रियता का बीजारोपण हुआ।
- केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने 'संविधान के मूल ढांचे' की अवधारणा विकसित की, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि संसद संविधान के मूल सिद्धांतों को नहीं बदल सकती। यह निर्णय न्यायिक सक्रियता का पहला प्रमुख संकेत था।[7]

इस अवधि में न्यायपालिका संतुलित भूमिका निभा रही थी, लेकिन 1975 में लगाए गए आपातकाल ने न्यायपालिका को निष्क्रिय कर दिया। ADM जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला (1976)[8] मामले में सुप्रीम कोर्ट ने सरकार के आपातकालीन आदेशों को बरकरार रखा, जिसे न्यायिक सक्रियता की कमी का उदाहरण माना जाता है।

न्यायिक सक्रियता का उदय (1980–1990) : 1980 के दशक में, भारत में न्यायिक सक्रियता का वास्तविक उदय हुआ। इस दौर में न्यायपालिका ने विधायिका और कार्यपालिका की निष्क्रियता को देखते हुए कई सामाजिक और राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप किया।

● इस परिवर्तन के पीछे एक महत्वपूर्ण कारक लोकहित याचिका थी। यह प्रक्रिया न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्ण अय्यर और न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती द्वारा लोकप्रिय बनाई गई।[9]

● हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य (1979) मामले में, न्यायालय ने जेलों में कैदियों के मानवाधिकारों की रक्षा की।

● एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ (1986) में, सुप्रीम कोर्ट ने पर्यावरण संरक्षण के लिए कठोर आदेश जारी किए, जो न्यायिक सक्रियता का एक बड़ा उदाहरण था।[10]

● इस अवधि में न्यायपालिका ने मानवाधिकारों की रक्षा, पर्यावरणीय न्याय, भ्रष्टाचार विरोधी उपायों, और सरकारी जवाबदेही बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

न्यायिक सक्रियता का विस्तार (1991–2010) : 1991 में आर्थिक उदारीकरण के बाद, न्यायिक सक्रियता और अधिक प्रभावशाली हो गई। न्यायालय ने न केवल नागरिक अधिकारों की रक्षा की, बल्कि सरकारी नीतियों और प्रशासनिक फैसलों की भी समीक्षा शुरू कर दी।

● विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1996) मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने सीबीआई को स्वतंत्र रूप से भ्रष्टाचार की जाँच करने के निर्देश दिए, जिससे राजनीतिक जवाबदेही में सुधार हुआ।[11]

● विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) मामले में, न्यायालय ने कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए दिशानिर्देश जारी किए।[12]

इस अवधि में न्यायालय ने नीतिगत मामलों में भी हस्तक्षेप किया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि न्यायपालिका केवल संवैधानिक मामलों तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक स्तर पर प्रशासनिक और सामाजिक न्याय में भी भूमिका निभा रही है।

समकालीन दौर (2010–2022) : हाल के वर्षों में, न्यायपालिका ने कई महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय देकर न्यायिक सक्रियता को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया।

● **राइट टू प्राइवेसी (2017) :** सुप्रीम कोर्ट ने निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया।[13]

● **धारा 377 पर ऐतिहासिक निर्णय (2018) :** सुप्रीम कोर्ट ने समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया।[14]

● **अयोध्या विवाद (2019) :** सुप्रीम कोर्ट ने राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद विवाद पर निर्णय देते हुए भूमि का अधिकार राम मंदिर के पक्ष में दिया।[15]

इस अवधि में न्यायिक सक्रियता ने समाज में ऐतिहासिक सुधारों को बढ़ावा दिया और संवैधानिक अधिकारों को मजबूत किया।

न्यायिक सक्रियता और भारतीय राजनीति : भारतीय राजनीति और न्यायिक सक्रियता का आपसी संबंध अत्यंत गहरा और जटिल है। न्यायिक सक्रियता ने समय–समय पर न केवल संवैधानिक मूल्यों की रक्षा की है, बल्कि राजनीतिक तंत्र पर भी व्यापक प्रभाव डाला है। लोकतंत्र में न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका के संतुलनकारी शक्ति के रूप में देखा जाता है। परंतु, जब न्यायपालिका अपनी पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़कर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णयों में हस्तक्षेप करती है, तो यह राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने लगती है। भारत में न्यायिक सक्रियता का प्रभाव राजनीतिक स्थिरता, नीति–निर्माण, प्रशासनिक जवाबदेही, और नागरिक अधिकारों की सुरक्षा के संदर्भ में देखा गया है।

न्यायिक सक्रियता का विधायिका पर प्रभाव : भारतीय विधायिका (संसद और राज्य विधानसभाएँ) लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत कानून बनाती हैं, लेकिन कई बार न्यायपालिका द्वारा इन कानूनों को असंवैधानिक घोषित किया जाता है, जिससे विधायिका की शक्ति प्रभावित होती है।

गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने संसद के मौलिक अधिकारों में संशोधन करने के अधिकार को सीमित कर दिया।[16]

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामले में 'मूल संरचना सिद्धांत' को लागू करते हुए न्यायालय ने संसद के अधिकारों पर सीमाएँ तय कर दीं।[17]

नेशनल ज्यूडिशियल अपॉइंटमेंट्स कमीशन मामला (2015) में, सुप्रीम कोर्ट ने संसद द्वारा पारित NJAC अधिनियम को असंवैधानिक करार दिया, जिससे न्यायपालिका और विधायिका के बीच तनाव बढ़ गया।[18]

इस प्रकार, न्यायिक सक्रियता के कारण विधायिका के अधिकार सीमित होते गए, जिससे न्यायपालिका और विधायिका के बीच टकराव की स्थिति बनी।

न्यायिक सक्रियता का कार्यपालिका पर प्रभाव : भारतीय कार्यपालिका का प्रमुख कार्य प्रशासनिक निर्णय लेना और सरकार की नीतियों को लागू करना है। लेकिन जब कार्यपालिका अपने दायित्वों को सही ढंग से निभाने में असफल होती है, तो न्यायपालिका हस्तक्षेप करके प्रशासनिक जवाबदेही सुनिश्चित करती है।

विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1996) में सुप्रीम कोर्ट ने सीबीआई को स्वतंत्र रूप से भ्रष्टाचार की जाँच करने का निर्देश दिया, जिससे राजनीतिक और प्रशासनिक सुधार हुए।[19]

स्पेक्ट्रम घोटाला मामला (2012) में, सुप्रीम कोर्ट ने सरकार द्वारा जारी किए गए 122 दूरसंचार लाइसेंसों को रद्द कर दिया।[20]

कोयला खदान आवंटन घोटाला (2014) में, न्यायालय ने सरकार द्वारा किए गए 214 कोयला ब्लॉकों के आवंटन को रद्द कर दिया।[21]

इन निर्णयों से स्पष्ट होता है कि न्यायिक सक्रियता ने सरकार को जवाबदेह बनाया और प्रशासन में पारदर्शिता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

न्यायिक सक्रियता का नागरिक अधिकारों पर प्रभाव : न्यायिक सक्रियता का सबसे सकारात्मक प्रभाव नागरिक अधिकारों की रक्षा के रूप में देखा गया है। न्यायपालिका ने कई ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से मौलिक अधिकारों को मजबूत किया है।

मानवाधिकार संरक्षण–

- हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य (1979) में सुप्रीम कोर्ट ने कैदियों के अधिकारों की रक्षा की।[22]
- शीलबाला देवी बनाम भारत संघ (1996) में महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित किया गया।

सामाजिक सुधार–विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) में महिलाओं के कार्यस्थल पर उत्पीड़न के खिलाफ दिशानिर्देश जारी किए गए।[23]

निजता का अधिकार–जस्टिस के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017) में सुप्रीम कोर्ट ने निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया।[24]

इन निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि न्यायिक सक्रियता नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने का एक प्रभावी माध्यम रही है।

न्यायिक सक्रियता और राजनीतिक संतुलन : न्यायिक सक्रियता ने राजनीतिक संतुलन बनाए रखने में भी भूमिका निभाई है। जब राजनीतिक दल अपने स्वार्थों के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों से समझौता करते हैं, तो न्यायपालिका हस्तक्षेप कर इसे रोकती है।

अयोध्या विवाद (2019)–सुप्रीम कोर्ट ने संवैधानिक सिद्धांतों के आधार पर ऐतिहासिक निर्णय दिया, जिससे देश में शांति बनाए रखने में मदद मिली।[25]

केंद्र–राज्य संबंधों पर प्रभाव : कई राज्यों में न्यायालय ने राज्यपालों और सरकारों के बीच सत्ता संतुलन स्थापित करने में हस्तक्षेप किया।

- हालांकि, न्यायिक सक्रियता के अधिक उपयोग से न्यायिक अतिक्रमण की समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिससे लोकतांत्रिक संस्थानों के बीच संघर्ष बढ़ सकता है।

न्यायिक सक्रियता की आलोचना : यद्यपि न्यायिक सक्रियता लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण रही है, लेकिन इसकी कुछ आलोचनाएँ भी हैं–

न्यायालय के अधिक हस्तक्षेप से न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

- कुछ निर्णय विधायिका और कार्यपालिका की शक्ति को कमजोर करते हैं।
- न्यायिक सक्रियता के कारण न्यायपालिका पर राजनीतिक दबाव बढ़ता है।

जस्टिस जे. एस. वर्मा ने कहा था, 'न्यायिक सक्रियता एक आवश्यक औजार है, लेकिन इसे विधायिका और कार्यपालिका के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।'[26]

न्यायिक सक्रियता : अवसर और चुनौतियाँ–

न्यायिक सक्रियता भारत में लोकतंत्र को सुदृढ़ करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम रही है। इसके द्वारा नागरिक अधिकारों की रक्षा, शासन में पारदर्शिता, और संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखने का कार्य किया गया है। न्यायिक सक्रियता की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की न्यायिक समीक्षा करते हुए समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में मदद की है। विशेष रूप से, यह भ्रष्टाचार पर नियंत्रण, पर्यावरणीय संरक्षण, मानवाधिकारों की सुरक्षा और समाज के वंचित वर्गों को न्याय दिलाने में सहायक रही है। उदाहरण के लिए, एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ (1986) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने पर्यावरण संरक्षण के लिए कठोर आदेश दिए, जिससे प्रदूषण नियंत्रण और औद्योगिक विनियमन को मजबूती मिली।[27] इसी प्रकार, विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1996) में सुप्रीम कोर्ट ने सीबीआई को स्वतंत्र रूप से भ्रष्टाचार की जाँच करने का निर्देश दिया, जिससे प्रशासनिक सुधारों को बल मिला[28]।

हालांकि, न्यायिक सक्रियता के बढ़ते प्रभाव से कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। सबसे बड़ी समस्या न्यायिक अतिक्रमण की है, जिसमें न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों में अनुचित रूप से हस्तक्षेप करने लगती है। यह संवैधानिक शक्तियों के संतुलन को बाधित कर सकता है, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की स्वायत्तता पर प्रभाव पड़ता है। नेशनल ज्यूडिशियल अपॉइंटमेंट्स कमीशन मामला (2015) इसका प्रमुख उदाहरण है, जहाँ सुप्रीम कोर्ट ने संसद द्वारा पारित कानून को असंवैधानिक घोषित कर दिया, जिससे विधायिका और न्यायपालिका के बीच टकराव बढ़ गया[29]। इसके अतिरिक्त, न्यायिक सक्रियता कभी–कभी नीति–निर्माण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करती है, जो न्यायपालिका के पारंपरिक दायरे से बाहर की बात मानी जाती है।

एक अन्य चुनौती यह है कि न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका की जवाबदेही को भी प्रभावित कर सकती है। न्यायाधीशों द्वारा लिए गए निर्णयों की पारदर्शिता और जवाबदेही को सुनिश्चित करने के लिए कोई स्पष्ट तंत्र नहीं है, जिससे शक्ति के दुरुपयोग की संभावना बनी रहती है। इसके अलावा, न्यायिक प्रणाली में लंबित मामलों की अधिकता के कारण भी न्यायिक सक्रियता के प्रभावी कार्यान्वयन में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। वर्तमान में भारतीय न्यायालयों में लाखों मामले लंबित हैं, जिससे न्यायिक सक्रियता के बावजूद न्याय की प्रक्रिया धीमी हो जाती है।

इन चुनौतियों के बावजूद, न्यायिक सक्रियता ने भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017) मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करना इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है।[30] इस प्रकार, न्यायिक सक्रियता का प्रभावी और संतुलित उपयोग लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत करने, प्रशासनिक जवाबदेही बढ़ाने और नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में सहायक हो सकता है, बशर्ते कि यह संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहे और न्यायिक अतिक्रमण से बचा जाए।

निष्कर्ष : भारत में न्यायिक सक्रियता लोकतंत्र की रक्षा और संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखने का एक प्रभावी माध्यम रही है। यह विधायिका और कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करने, मौलिक अधिकारों की रक्षा करने, और नागरिकों को न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। 1980 के दशक के बाद से, लोकहित याचिका के माध्यम से न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय सुधार, भ्रष्टाचार नियंत्रण और प्रशासनिक पारदर्शिता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर हस्तक्षेप किया है। एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ (1986) और विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1996) जैसे ऐतिहासिक मामलों में लिए गए फैसले यह दर्शाते हैं कि न्यायपालिका किस प्रकार कार्यपालिका और विधायिका की सीमाओं को परिभाषित करते हुए लोकतंत्र को मजबूत करने में योगदान देती रही है हालांकि, न्यायिक सक्रियता की अति से न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach) का खतरा भी उत्पन्न हो जाता है, जिससे विधायिका और कार्यपालिका के संवैधानिक अधिकार बाधित हो सकते हैं। नेशनल ज्यूडिशियल अपॉइंटमेंट्स कमीशन मामला (2015) और 2G स्पेक्ट्रम घोटाला मामला (2012) इस बात का उदाहरण हैं कि जब न्यायपालिका सरकारी नीतियों और विधायी प्रक्रियाओं में गहराई से हस्तक्षेप करती है, तो यह लोकतांत्रिक संतुलन को प्रभावित कर सकती है

इन सबके बावजूद, न्यायिक सक्रियता ने नागरिक अधिकारों की सुरक्षा में एक मजबूत आधार प्रदान किया है। के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017) मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करना इस दिशा में एक ऐतिहासिक कदम था इसके अलावा, विशाखा बनाम राजस्थान राज्य

(1997) जैसे मामलों ने महिलाओं के अधिकारों को मज़बूत किया और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ सुरक्षा उपाय सुनिश्चित किए।

इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि न्यायिक सक्रियता भारतीय लोकतंत्र में शक्ति संतुलन स्थापित करने और संवैधानिक मूल्यों को सशक्त बनाने का एक आवश्यक उपकरण रही है। हालांकि, इसे विधायिका और कार्यपालिका की संवैधानिक शक्तियों को कमजोर करने से बचना चाहिए और केवल उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिए, जहाँ मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो या संवैधानिक संकट उत्पन्न हो। इस प्रकार, एक संतुलित न्यायिक सक्रियता ही लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में सहायक हो सकती है, जिससे भारतीय लोकतांत्रिक संस्थानों की निष्पक्षता और प्रभावशीलता बनी रह सके।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

- Basu, D. D. (2015), *Introduction to the Constitution of India,* LexisNexis.
- Krishna Iyer, V. R. (1987), *Judicial Activism in India,* Eastern Book Company.
- Bhagwati, P. N. (1985), *Judicial Activism and Public Interest Litigation in India.*
- Granville, A. (2014), *Working a Democratic Constitution : A History of the Indian Experience.* Oxford University Press.
- Harvard Law Review (1996), *Judicial Activism and the Role of Courts,* Vol. 109.
- Verma, J. S. (1998), *Judicial Review and Constitutional Balance.* Indian Journal of Constitutional Law.
- Garner, Bryan A. (2014), *Black's Law Dictionary,* 10th Edition.
- Pathak, R. S. (1998), *Judicial Review and Indian Democracy,* Indian Journal of Public Policy.
- Keshavananda Bharati v. State of Kerala, AIR 1973 SC 1461.
- Golaknath v. State of Punjab, AIR 1967 SC 1643.
- ADM Jabalpur v. Shivkant Shukla, AIR 1976 SC 1207.
- M.C. Mehta v. Union of India, AIR 1986 SC 1086.
- Vineet Narain v. Union of India, AIR 1996 SC 3386.
- Vishaka v. State of Rajasthan, AIR 1997 SC 3011.
- Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India, AIR 2017 SC 4161.
- Centre for Public Interest Litigation v. Union of India, AIR 2012 SC 1503.
- Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India, AIR 2015 SC 545.
- Navtej Singh Johar v. Union of India, AIR 2018 SC 4321.
- M. Siddiq v. Mahant Suresh Das, AIR 2019 SC 4641.
- Hussainara Khatoon v. State of Bihar, AIR 1979 SC 1369.

संदर्भ–सूची

1. Basu, D. D. *Introduction to the Constitution of India*, LexisNexis, 2015
2. Krishna Iyer, V. R., *Judicial Activism in India*, 1987
3. Garner, Bryan A. *Black's Law Dictionary*, 10th Edition, 2014
4. Harvard Law Review, Vol. 109, 1996
5. Bhagwati, P. N., *Judicial Activism and Public Interest Litigation in India*, 1985
6. Keshavananda Bharati v. State of Kerala, AIR 1973 SC 1461
7. Ibid
8. ADM Jabalpur v. Shivkant Shukla, AIR 1976 SC 1207

9. Bhagwati, P. N., *Judicial Activism and Public Interest Litigation in India*, 1985
10. M.C. Mehta v. Union of India, AIR 1986 SC 1086
11. Vineet Narain v. Union of India, AIR 1996 SC 3386
12. Vishaka v. State of Rajasthan, AIR 1997 SC 3011
13. Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, AIR 2017 SC 4161
14. Navtej Singh Johar v. Union of India, AIR 2018 SC 4321
15. M. Siddiq v. Mahant Suresh Das, AIR 2019 SC 4641
16. Golaknath v. State of Punjab, AIR 1967 SC 1643
17. Keshavananda Bharati v. State of Kerala, AIR 1973 SC 1461
18. Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India, AIR 2015 SC 545
19. Vineet Narain v. Union of India, AIR 1996 SC 3386
20. Centre for Public Interest Litigation v. Union of India, AIR 2012 SC 1503
21. Manohar Lal Sharma v. Union of India, AIR 2014 SC 3001
22. Hussainara Khatoon v. State of Bihar, AIR 1979 SC 1369)
23Vishaka v. State of Rajasthan, AIR 1997 SC 3011
24. Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India, AIR 2017 SC 4161
25. M. Siddiq v. Mahant Suresh Das, AIR 2019 SC 4641
26. Verma, J. S., *Judicial Review and Constitutional Balance*, 1998
27. M.C. Mehta v. Union of India, AIR 1986 SC 1086
28. Vineet Narain v. Union of India, AIR 1996 SC 3386
29. Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India, AIR 2015 SC 545
30. Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India, AIR 2017 SC 4161

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 89-92

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

क्षेत्र के आधार पर सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

*डॉ. अंगद प्रसाद मौर्य**

सारांश : *प्रस्तुत समस्या कथन के अन्तर्गत* ***''क्षेत्र के आधार पर सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन'' किया गया है।*** *प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनकर्त्ता ने वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षक–शिक्षिकाओं को जनसंख्या माना गया है। अध्ययनकर्त्ता द्वारा प्रयागराज जिले में स्थापित माध्यमिक स्तर के 5 सरकारी एवं 5 गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का चयन उद्देश्यपरक विधि से किया गया तत्पश्चात् शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा कर उक्त विद्यालयों में अध्यापनरत् 100 शिक्षक–शिक्षिकाओं (50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों) से चयन किया गया है जिसमें 50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी शिक्षकों को लिया गया है। शिक्षकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि को मापने के लिए डॉ. मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित व्यवसायिक सन्तुष्टि मापनी (**Job Satisfaction Scale**) का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययनोपरान्त निष्कर्ष में प्राप्त हुआ कि– सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में अन्तर है अर्थात् सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा उच्च है।*

मुख्य शब्द–*शहरी, ग्रामीण, सरकारी, गैर सरकारी, माध्यमिक विद्यालय, व्यावसायिक संतुष्टि*

प्रस्तावना–वास्तव में शिक्षक ही किसी राष्ट्र के भाग्य के निर्णायक होते हैं। वे राष्ट्र के वास्तविक शिल्पकार होते हैं। किसी राष्ट्र की महानता उसकी ऊँची–ऊँची इमारतों, विशाल परियोजनाओं तथा विशाल सेनाओं पर निर्भर नहीं करती है बल्कि किसी राश्ट्र की महानता का स्वतः परीक्षण उसके नागरिकों की गुणवत्ता से होती है। यदि एक राष्ट्र अपने नवयुवकों को चरित्रवान बनाकर और उनके अन्दर दोषरहित राष्ट्रप्रेम उत्पन्न कर सके तो वह सभी क्षेत्रों में तेजी से प्रगति करने में सफल हो जायगा। शिक्षण व्यवसाय को नवयुवकों के संरक्षण में सौंप दिया जाय और यदि ऐसा करना है तो उसके लिए शिक्षकों का यह परम व पवित्र कर्त्तव्य है कि छात्रों को अच्छा नागरिक बनाने के लिए उन्हें अच्छी प्रकार की शिक्षा प्रदान करें। इस प्रकार शिक्षक अपनी देखभाल में सौंपे गये बालकों पर ध्यान देकर, भारत के भविष्य का निर्माण करने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

शिक्षा किसी देश की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक उन्नयन तथा सांस्कृतिक स्थानान्तरण में परिवर्तन लाने का एक अतिप्रभावशाली उपकरण है। हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से शिक्षा का विकास एवं विस्तार अद्भुत रहा है और यह देश के भविष्य के लिए एक अच्छा संकेत है। शिक्षा का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब शिक्षण व्यवसाय में जाने वाले लोग सुयोग्य, प्रतियोगी, सरकारी तथा षिक्षण व्यवसाय में अत्यधिक रुचि लेने वाले हों। दुर्भाग्यवश इस तेजी से बदलते विश्व में इस तरह के शिक्षकों का मिलना, बहुत कठिन है। नये वैज्ञानिक युग की चुनौतियों तथा सामाजिक आवश्यकताओं के लिए अप–टू–डेट शिक्षकों की आवश्यकता होती है।

* ***असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड. विभाग, पंचशील पी.जी. कॉलेज, अशोक नगर, इटौरा बुजुर्ग, ऊँचाहार, रायबरेली (उ.प्र.) सम्बद्ध-लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ***

वर्तमान पाठ्य–पुस्तकों का जो निर्माण हो रहा है उसमें विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक एवं मूल्यों से सम्बन्धित तथा वैज्ञानिक एवं संचार प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित है। अतः सरकारी शिक्षकों की शिक्षण कौशल अधिक कारगर साबित होती है। जहाँ गैर सरकारी शिक्षक इन पाठ्य–पुस्तकों को समझने में नकामयाब है वहीं उनके समायोजन एवं व्यावसायिक संतुष्टि में अभाव देखने को मिल रहा है।

समायोजन एवं व्यावसायिक संतुष्टि एक–दूसरे के पूरक होते है। जिन शिक्षकों में समायोजन अच्छा होगा उनमें व्यावसायिक संतुष्टि अच्छी पायी जायेगी।

सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, जहाँ शिक्षक संतुष्टि रहेगा उसकी शिक्षणशीलता अधिक प्रभावित होगी। सरकारी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में असंतुष्टि का प्रभाव देखने को मिलता है जहाँ उन्हें अच्छा वेतन, सारी सुख–सुविधाएँ मिल रही है वहीं विद्यालय का वातावरण, प्रधानाचार्य का मानवीय व्यवहार न होना, पढ़ाने के लिए विद्यालय में सारी सुविधाएँ उपलब्ध न होना, विद्यार्थियों का सहयोग न मिलना, अन्य शिक्षकों से अच्छा सम्बन्ध न होना आदि ऐसे कई कारक है जिनका सरकारी एवं सरकारी शिक्षकों के समायोजन के साथ–साथ व्यावसायिक संतुष्टि को प्रभावित करता है।

वहीं सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाने वाले शिक्षकों का तो वेतन कम होता ही है, उन्हें घर से अधिक दूर जाकर पढ़ाना, देर समय तक विद्यालय में रहकर कार्यों को समाप्त करना, अन्य शिक्षकों का रवैया अच्छा न होना, पाठ्यक्रम को अपने मन–माफिक न पढ़ाने को मिलना, विद्यार्थियों का सहयोग न प्राप्त होना आदि ऐसे कारक है जिनका गैर सरकारी शिक्षकों के समायोजन के साथ–साथ व्यावसायिक संतुष्टि को प्रभावित करता है।

समस्या कथन–''क्षेत्र के आधार पर सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।''

अध्ययन का उद्देश्य–अध्ययनकर्त्ता द्वारा अपने अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का परीक्षण किया गया है–

1. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना–उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनकर्त्ता ने वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–अध्ययन में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षक–शिक्षिकाओं को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श–अध्ययनकर्त्ता द्वारा प्रयागराज जिले में स्थापित माध्यमिक स्तर के 5 सरकारी एवं 5 गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का चयन उद्देश्यपरक विधि से किया गया तत्पश्चात् शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा कर उक्त विद्यालयों में अध्यापनरत् 100 शिक्षक–शिक्षिकाओं (50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों) से चयन किया गया है जिसमें 50 सरकारी एवं 50 गैर सरकारी शिक्षकों को लिया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण का चयन–शिक्षकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि को मापने के लिए डॉ. मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित व्यवसायिक सन्तुष्टि मापनी (**Job Satisfaction Scale**) का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधियाँ–प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–

1. क्षेत्र के आधार पर सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका–1

सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

क्र. सं.	न्यादर्श		N	M	S.D.	$D=(M_1 \sim M_2)$	σ_D	t-value	सारणी मान
1.	सरकारी	शहरी	25	165.28	20.98	7.48	4.57	1.63	2.01 df=48
2.	गैर सरकारी	शहरी	25	157.80	9.12				
1.	सरकारी	ग्रामीण	25	171.72	15.79	16.32	4.21	3.87*	2.01 df=48
2.	गैर सरकारी	ग्रामीण	25	155.40	13.95				

**0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक*

ध्यातव्य है कि तालिका–1 प्रदर्शित करती है कि उपरोक्त दोनों समूहों के आधार पर आगणित टी–अनुपात का मान क्रमशः 1.63 एवं 3.87 है। परिकल्पना परीक्षण हेतु निर्धारित सार्थकता स्तर 0.05 पर स्वतंत्रांश 48 के लिए सारणी मान 2.01 है। स्पष्ट है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों के मध्य प्राप्त टी–अनुपात क्रांतिक मान से अधिक है, जो कि मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता का प्रतिरोध करता है। अतः विश्लेषणोपरान्त स्पष्ट है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में अन्तर है अर्थात् सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयो में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा उच्च है। जबकि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी शिक्षकों के मध्य प्राप्त टी–अनुपात क्रांतिक मान से कम है, जो कि मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता का निषेध करता है। अतः विश्लेषणोपरान्त स्पष्ट है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में अन्तर नहीं है अर्थात् सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि में समानता है।

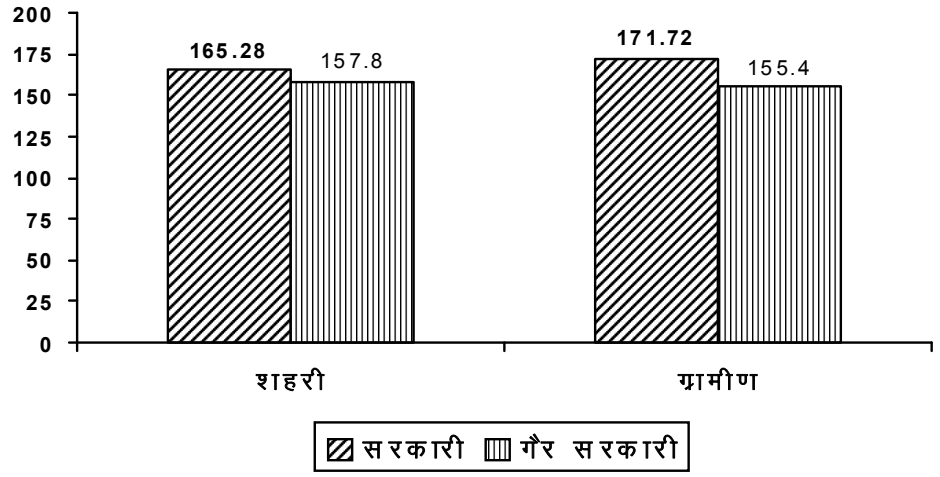

निष्कर्ष–अध्ययनोपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

● सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में अन्तर है अर्थात् सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि गैर सरकारी माध्यमिक

विद्यालयो में कार्यरत ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा उच्च है। जबकि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि में अन्तर नहीं है अर्थात् सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि में समानता है।

सन्दर्भ–सूची

1. एच. शामिना (2014), इम्पैक्ट ऑफ जॉब सेटिसफेक्शनऑन प्रोफेशनल कमिटमेन्ट इन हायर एजूकेशन, *ग्लैक्सी इण्टिमा ओनल इण्टरडिस्पिलनरी रिसर्च जर्नल*, वॉल्यम–2(2). पृ. 1–11

2. एन.एन. प्रहलाद एवं एस. सन्दीप (2015), ए स्टडी ऑन जॉब सेटिसफेक्शन रिलेटेड टू एटीट्यूड टूवर्ड टीचिंग ऑफ प्री–यूनिवर्सिटी टीचर्स, *इण्डियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, वॉल्यूम–5, इश्शू–5, पृ. 19–21।

3. कुमारी, बबिता (2021), वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षणरत् शिक्षकों के तनाव एवं व्यावसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय). प्रयागराज।

4. गुप्ता, शिप्रा एवं शान्ति (2017), शिक्षक–प्रशिक्षकों की कार्य–सन्तुष्टि का उनकी कार्य क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, बियानी गर्ल्स बी.एड. कॉलेज, जयपुर।

5. तिवारी, रंजना (2016), रींवा जिले में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि का समीक्षात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट*, 1(4), पृ. 01–03।

6. रिजवी, हैदर अली (2016), ने कम्बाइनिंग मैरेज एण्ड कैरियर : द प्रोफेशनल एडजेस्टमेन्ट ऑफ मैरिटल टीचर्स, रिसर्च पेपर, जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड प्रैक्टिस, वाल्यूम–7, नं. 7, पृ. 140–143

7. वेकेंटश्वरन एवं अन्य (2015), ए स्टडी ऑन एडजेस्टमेन्ट, जॉब सेटिसफेक्शन, जॉब इन्वाल्बमेन्ट एण्ड जॉब स्ट्रेस ऑफ प्राइवेट स्कूल सेकेण्ड्री टीचर्स, Research Paper, Paripex-Indian Journal of Research, Vol. 4, Issue-1, ISSN 2250-1991, pp. 78-80

8. शेरगिल, सबरजीत सिंह एवं लाल, रोशन (2010), ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ जॉब सेटिसफेक्शन एण्ड एटीट्यूड टूवर्ड एजूकेशन एमंग मेल एण्ड फीमेल टीचर्स ऑफ डिग्री कालेज, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ मार्केटिंग, फाइनेन्स सर्विसेज एण्ड मैनेजमेन्ट रिसर्च, वाल्यूम–1, नं. 1, ISSN 2277-3622, pp. 57-64

9. सलमेट, रियडी (2015), इफेक्ट ऑफ वर्क मोटिवेशन, वर्क स्ट्रेस एण्ड जॉब सैट्सिफैक्शन ऑफ टीचर्स परफार्मेन्स एट सीनियर हाईस्कूल थॉटआउट द स्टेट सेन्ट्रल तापानुलि, सुमात्रा, *जर्नल ऑफ ह्युमिनिस्ट्ज एण्ड सोशल साइंस*, वॉ. 20, इश्शू–2, पृ. 52–57

10. सिंह, दीप्ति (2018), शासकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यवसायिक सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, *रिसर्च मैग्मा एन इण्टरनेशनल मल्टीडिस्पिलनरी जर्नल*, 1(12), 2018, पृ. 01–08

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 93-96

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन

*डॉ. कृष्ण कुमार सिंह**

सारांश : *प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक निम्नवत् है–**''माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।''** अध्ययनकर्त्ता द्वारा अपने शोध कार्य हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जो वर्णनात्मक विधि का ही एक प्रकार है अतः इस विधि का वर्णन करना शोधकर्ता ने उचित समझा। वर्तमान शोध हेतु न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद में स्थित 4 माध्यमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि से करने के पश्चात् वहाँ अध्ययनरत् 200 छात्र–छात्राओं का चयन न्यादर्श हेतु क्षेत्र न्यादर्शन विधि से किया है। **प्रयुक्त उपकरण–**शैक्षिक उपलब्धि– विद्यार्थियों द्वारा पूर्व परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांक एवं संचार माध्यमों– स्वनिर्मित मापनी। अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययनोपरान्त पाया गया कि– माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों का सार्थक प्रभाव पाया गया।*

मुख्य शब्द– *माध्यमिक स्तर, छात्र, शैक्षिक उपलब्धि, संचार माध्यम, टी–अनुपात*

भूमिका : आधुनिक युग को संचार क्रान्ति का युग कहा जाता है। सूचना सम्प्रेषण तकनीकी ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। इसने मानव के लिए जीवनोपयोगी सूचनाओं के सम्प्रेषण में अहम भूमिका का निर्वाह किया है। भारत सरकार ने वर्ष 2009–10 में राष्ट्रीय शिक्षा मिशन सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के अन्तर्गत 602 करोड़ रुपये का आवंटन किया है। आज के युग में सूचनाएँ वाणिज्यिक महत्त्व की वस्तु बनकर उभरी है और सूचना के बिना मानव जीवन शून्य नजर आता है।

संचार माध्यम सूचना एवं संप्रेषण कार्य को वैसे आसान तथा प्रभावशाली बनाने में अपनी भूमिका निभा सकती है जैसी कि अन्य तकनीकियों द्वारा हमारे जीवन के अन्य कार्यकलापों के संपादन में निभाई जाती है। देखा जाय तो संचार माध्यम ने हमारे जीवन के विविध क्षेत्रों जैसे उद्योग, व्यापार, बैकिंग, कृषि, मैडीसन, ट्रासपोर्ट, पोस्टल एवं टेलीकम्यूनिकेशन, सेवा प्रतिष्ठान तथा हमारे दिन प्रतिदिन के जिंदगी को प्रभावित करने वाली बहुत से बातों में एक अजीब सी क्रांति ला दी है। हमारे सोचने विचारने बातचीत करने, एक दूसरे के साथ संपर्क और संप्रेषण करने सभी बातों में एकदम बदलाव ला दिया है। ऐसा कोई क्षेत्र या हमारे जीवन की कोई गतिविधि एकसी नहीं जो इन तकनीकियों के प्रभाव से अछूती रही हो। शिक्षा का क्षेत्र कोई अपवाद नहीं है अतः यहां भी सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी का उपयोग जोर–शोर से होने लगा है। इसके इस प्रकार के उपयोग की चर्चा दो विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत अलग–अलग ढ़ंग से की जा सकती है नीचे हम यही करने जा रहे हैं।

संचार माध्यम के उपयोग से विद्याार्थियों को सूचना के स्रोतों से परिचित होने उनके द्वारा सूचना इकट्ठी करने उन्हें ठीक ढंग से संग्रहित करने, तथा व्यवस्थित कर भविष्य में आवश्यकतानुसार उपयोग में लाने का उचित अवसर और प्रशिक्षण मिलता है। जो कुछ भी उन्हे ज्ञान प्राप्ति, अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन तथा व्यक्तित्व विकास के लिए यथार्थ और विश्वसनीय सूचनाओं तथा संप्रेषण के रूप में चाहिए वह सब कुछ सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के सहयोग से उन्हें प्रभावी ढंग से प्राप्त हो सकता है। सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के द्वारा उन्हें मात्र सूचना या

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड. विभाग, श्यामा देवी कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बाराबंकी (उ.प्र.) सम्बद्ध-डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, (उ.प्र.)*

ज्ञान प्राप्ति का द्वारा ही नहीं खुलता बल्कि समस्या समाधान योग्यता, निर्णय क्षमता आदि का भी प्रशिक्षण मिलता है।

संचार माध्यम शिक्षकों को अपने शिक्षण दायित्वों को निभाने हेतु विभिन्न प्रकार से सहायता कर सकती है। उपयुक्त शिक्षण हेतु उन्हें विभिन्न प्रकार की सूचनाएं ज्ञान तथा आंकड़े चाहिए इन सबको ठीक प्रकार से दिलाने में सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी बहुमूल्य सहयोग दे सकती है। विभिन्न प्रकार के सूचना स्रोतों से परिचित कराना उनसे आवश्यक सूचनाएं प्राप्त करके अपने शिक्षण कार्य हेतु उपयोग में लाने के कार्य में सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी उन्हें भलीभांती सहायता कर सकती है। वे अपने विद्यार्थियों को भी ज्ञान और सूचना के उपलब्ध स्रोतों से परिचित कराकर अपना बहुत कुछ कार्यभार हल्का कर सकते है क्योंकि जिन बातों को उन्हें विद्यार्थियों को बार–बार बताना पड़ सकता है वे सभी बाते उन्हें बहुत ही व्यापक और गहन अर्थों में संचार माध्यम के सहारे आसानी से उपलब्ध हो सकती है। अभिक्रमित पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण मशीन तथा कम्प्यूटर निदेशित स्व अधिगम सामग्री यहां अध्यापकों को अपने शिक्षण कार्यो को बेहतर ढंग से पूरा कर बालकों को ज्यादा से ज्यादा फायदा करने के कार्य में आ सकती है।

स्पष्ट है कि संचार माध्यम एवं शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संचार माध्यम शिक्षा प्रदान करने का एक सशक्त माध्यम है। संचार माध्यम के अनेक साधनों–टी.वी., केबिल, अखबार कम्प्यूटर आदि के द्वारा विद्यार्थियों में मौलिकता प्रवाह, किसी समस्या के प्रति संवेदनशीलता आदि गुणों का विकास किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति पर इसका प्रभाव भिन्न–भिन्न पड़ता है। अतः आवश्यकता यह है कि विभिन्न व्यक्तियों पर संचार माध्यम के प्रभाव की जानकारी प्राप्त की जाये यथानुसार उनकी शिक्षा व्यवस्था की जाये।

समस्या कथन–प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक निम्नवत् है–

''माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।''

अध्ययन का उद्देश्य–

1. माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा–

1. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि–अध्ययनकर्त्ता द्वारा अपने शोध कार्य हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जो वर्णनात्मक विधि का ही एक प्रकार है अतः इस विधि का वर्णन करना शोधकर्ता ने उचित समझा।

जनसंख्या एवं न्यादर्श–वर्तमान अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अध्ययनकर्त्ता ने अध्ययन की जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद में स्थित माध्यमिक स्तर के 200 छात्र–छात्राओं को लिया है, जो कि विषमजातीय सीमित वास्तविक जनसंख्या है।

वर्तमान शोध हेतु न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद में स्थित 4 माध्यमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि से करने के पश्चात् वहाँ अध्ययनरत् 200 छात्र–छात्राओं का चयन न्यादर्श हेतु क्षेत्र न्यादर्शन विधि से किया है।

प्रयुक्त उपकरण–शैक्षिक उपलब्धि– विद्यार्थियों द्वारा पूर्व परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांक

संचार माध्यमों–स्वनिर्मित मापनी

सांख्यिकी विधियाँ–अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

1. माध्यमिक स्तर के छात्रों की षैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन करना।

$\mathbf{H_{01}}$ माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं. : 1

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

क्र. सं.	न्यादर्श	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	D= $(M_1 \sim M_2)$	δ_D	टी–अनुपात	सारणी मान
1.	उच्च	24	356.63	47.11	2.65	11.38	0.23	2.00 df=69
2.	मध्यम	47	353.98	41.72				
1.	उच्च	24	356.63	47.11	32.6	12.74	2.59	2.01 df=51
2.	निम्न	29	324.03	45.03				
1.	मध्यम	47	353.98	41.72	29.95	10.34	2.89	2.00 df=74
2.	निम्न	29	324.03	45.03				

सारणी संख्या 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च एवं मध्यम संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 356.63 एवं 353.98 तथा मानक विचलन क्रमशः 47.11 एवं 41. 72 है। परिगणित टी–अनुपात का मान 0.23 है। मुक्तांश 69 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 2.00 है अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से कम है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च एवं मध्यम संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में समानता पायी गयी।

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 356.63 एवं 324.03 तथा मानक विचलन क्रमशः 47.11 एवं 45. 03 है। परिगणित टी–अनुपात का मान 2.59 है। मुक्तांश 51 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 2.01 है अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया।

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माध्यमिक स्तर के मध्यम एवं निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 353.98 एवं 324.03 तथा मानक विचलन क्रमशः 41.72 एवं 45. 03 है। परिगणित टी–अनुपात का मान 2.89 है। मुक्तांश 74 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 2.00 है अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के मध्यम संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया।

निष्कर्ष–

- माध्यमिक स्तर के उच्च एवं मध्यम संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में समानता पायी गयी।
- माध्यमिक स्तर के उच्च संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया।
- माध्यमिक स्तर के मध्यम संचार माध्यमों वाले छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संचार माध्यमों वाले छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अतः माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर संचार माध्यमों का सार्थक प्रभाव पाया गया।

सन्दर्भ–सूची

1. अग्रवाल, जे.सी. (2007), *एजुकेशनल टेक्नोलॉजी एण्ड मैनेजमेण्ट,* आगरा; विनोद पुस्तक भण्डार, पृ. 345–347

2. साहू, पी.के. एवं मुछाल, एम.के. (2000), *राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय के दूरस्थ शिक्षण अधिगम उपागमों की उपयुक्तता का अध्ययन,* भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 19, अंक 2, अक्टूबर।

3. उपाध्याय, यदुनन्दन प्रसाद (2016), जनसंचार और ग्रामीण जीवन, शब्द–ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल, वाल्यूम–4, ईश्यू–6, ISSN 2320-0871

4. जोशी, वन्दना रानी (2016), जनसंचार और ग्रामीण जीवन, शब्द–ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल, वाल्यूम–4, ईश्यू–6, ISSN 2320-0871

5. जायसवाल, सतीश एवं शर्मा, डॉ. सचिन (2016), जनसंचार के माध्यम से ग्रामीण जीवन स्तर के बदलते आयाम, शब्द–ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल, वाल्यूम–4, ईश्यू–6, ISSN 2320-0871

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 97-99

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Evaluation Systam in Indian History

*Dr. Girja Prasad Mishra**

Abstract : This paper provides an overview of Assessment in education in India. Assessment refers to collecting information on a progress of learners' learning using a variety of procedures, and evaluation refers to making judgments on the basis of the information collected. Primary enrolment rates in India are now close to universal. However, despite progress, attendance and retention rates are not close to universal, secondary enrolment rates and learning achievement levels are not satisfactory. Teaching for successful learning cannot occur without high quality assessment. Assessment, needs to be designed in such a manner that it becomes a powerful means of influencing the quality of what teachers teach and what learners learn.

In the Indian education system, the present trend in evolution lays too much emphasis on scholastic aspects, ignoring co-scholastic ones. Memorization of facts is given precedence over abilities and skills involving higher mental operations such as problem solving and creative thinking. In effect, the real potential of the student is not assessed.

Firstly, the paper traces the development of India's assessment system in education starting from primary to university level. Secondly, it provides a brief statement about the legislation and policies on education. Thirdly, it puts the focus on the new trends for education in India and on 'Sarva Shiksha Mission' (Education For All). Lastly, the paper deals with different International Assessment systems used in Indian schools.

This paper provides an overview of Assessment in education in India. Assessment refers to collecting information on a progress of learners' learning using a variety of procedures, and evaluation refers to making judgments on the basis of the information collected. Primary enrolment rates in India are now close to universal. However, despite progress, attendance and retention rates are not close to universal, secondary enrolment rates and learning achievement levels are not satisfactory. Teaching for successful learning cannot occur without high quality assessment. Assessment, needs to be designed in such a manner that it becomes a powerful means of influencing the quality of what teachers teach and what learners learn.

In the Indian education system, the present trend in evolution lays too much emphasis on scholastic aspects, ignoring co-scholastic ones. Memorization of facts is given precedence over abilities and skills involving higher mental operations such as problem solving and creative thinking. In effect, the real potential of the student is not assessed.

Firstly, the paper traces the development of India's assessment system in education starting from primary to university level. Secondly, it provides a brief statement about the legislation and policies on education. Thirdly, it puts the focus on the new trends for education in India and on 'Sarva Shiksha Mission' (Education For All). Lastly, the paper deals with different International Assessment systems used in Indian schools.

* *Assistant Professor, Teachers Traning Department P.G. Colleg, Patti, Pratapgarh*

Intoduction : The story of India's educational achievement is one of mixed success. On the down side, India has 22 percent of world's population but 46 percent of the world's illiterate and is home to a high proportion of the world's out of school children and youth (Geeta Gandhi kingdon, March 2007).

On the positive side, it has made encouraging recent progress in raising schooling participation. While the base line of India's education pyramid may be weak, it has emerged as an important player in world wide information technology revolution on the back of remarkable numbers of well-educated computing and other graduated.

This paper present a critical overview of the assessment in school and university education sectors in India including the newly released survey of international methods.

Evaluation and Assessment : According to Dr Kirti Kanpur (21jul 08/IST 11:05)[(2)], Evaluation is the systematic determination of merit, worth and significance of something or someone and assessment is the process of gathering and analyzing specific information as part of an evaluation process. In the context of school education, evaluation stands for a structured process of collecting , analyzing and interpreting student's progress and achievement both in curricular and non – curricular areas it involves taking into consideration factors like the content, classroom process and the growth of individuals learners along with appropriateness of the evaluation procedures. Assessment is also means to provides constant feedback to the learner to make the course effective.

The Education System in India : Education in India is provided by the public sector as well as the private sector with control and funding coming from three levels federal, state, and local. Child education is compulsory. The Nalanda University was the oldest university system of education of the world.

India has made progress in terms of increasing primary education attendance rate and expanding literacy to approximately two thirds of population.

As of 2011 there are1522 degree granting engineering colleges in India with annual students in take 582,000 plus 1,244 polytechnics with annuals intake of 265, 000. However these institution face shortage of staff and concerns have been raised over the quality of education.

Present Education in India : India's education system is divided into different levels such as pre-primary levels, primary levels, elementary education, secondary education, undergraduate level and post graduate level.

Overview : The National Council of Educational Research and Training (NCERT)

Is the apex body for curriculum-related matters for school education in India. The NCERT provide support and technical assistance to a number of school in India and oversees many aspects of enforcement of education policies. India the various curriculum bodies governing the school education system are:

- The state government boards, in which the majority of Indian children are enrolled;
- The Central Board of Secondary Education (CBSE) board;
- The Council for the Indian School Certificate Examination (ICSE) board;
- The National Institute of Open Schooling (NIOS) board;
- In addition NUEPA (National University of Educational Planning and Administration) and NCTE (National Council for Teacher Education) are responsible for the management of education system and teacher accreditation.

Legislation and Policies on Education : Right to Education Act, 2009

In line with the goal of nation building, India has been committed to providing free and compulsory education to all children. Towards this end the Indian Parliament has enacted a legislation making free

and compulsory education Right to every children in the age group of 6-14 years which has come to force from 1st April, 2010.

Table-1 : General Details and Literacy in India

General Details	
Primary Languages	Hindi, English, or State languages
System Type	Federal, state, private
Established compulsory education	1-April-2010
Literacy (2011)	
Total	74%
Male	82%
Female	65%

Important Legislations :

- The University Grants Commission Act, 1956
- The Copyright Act, 1957
- The Institute of Technology Act, 1961
- The Apprentices Act, 1961
- The All India Council for Technical Education Act, 1987
- The Nation Council of Teacher Education Act, 1993
- The National Council for Minority Educational Institutions Act, 2004
- National Institute of Technology Act, 2007

Policy Framework :

National Policies on Education (NPE)

- National Policy on Education, 1968
- National Policy on Education, 1986
- National Policy on Education, 1986, as modified in 1992

Salient Features of NPE' 86 :

(1) Important role of education.
(2) National system of education.
(3) Education for equality.
(4) Elementary education and operation black board.
(5) Pace setting or Navodaya Vidyalaya School.
(6) Promoting vocational aspect of education.
(7) Raising the status of the teacher.
(8) Accountability is education.

Bibliography

1. Singh Arun Kumar, Ucchtar Shiksha Manovigyan, Moti Lal Banarasi Das, Varanasi, 2004.
2. Singh Arun Kumar, Shodh evam Anushandhan Vidhiya, Moti Lal Banarasi Das, Varanasi, 2008.
3. Pandey Ram Sakal, Shiksha Manovigyan, Vinod Pustak Mandir, Agra, 2003.
4. Gupta S.P., Shodh Sandarshika, Sharda Pustak Bhavan, Allahabad,2015.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 100-104

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वेद विहित खगोलीय ज्ञान एवं प्रकृति पूजा का अन्तर्सम्बन्ध

*डॉ. सुनील कुमार विश्वकर्मा**

वेद मानव मनीषा की सर्वोकृष्ट उपलब्धियों का अमूल्य अंश है। ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द 'ज्ञानराशि' का वाचक है। मनु ने वेद को सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत माना है।[1] वेदों में धर्म, राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद आदि सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। ज्ञान और विज्ञान में अबिनाभाव सम्बन्ध है, ज्ञान के होने पर विज्ञान की सत्ता अवश्य ही होती है। अतएव ज्ञानराशि वेद में वैज्ञानिक तत्वों की गवेषणा आवश्यक है।

विज्ञान का अभिप्राय है– 'विशिष्ट ज्ञान'। असंदिग्ध एवं निरपेक्ष ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान के व्युत्पत्यात्मक अर्थ की दृष्टि से वेद एवं विज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि वेदों का प्रमुख प्रतिपाद्य पूर्ण एवं विशुद्ध ज्ञान ही है, जो 'ब्रह्मज्ञान' है। 'परमेश्वर का ज्ञान' ही एक ऐसा ज्ञान है जो सभी ज्ञानों की निरातिशयता या ज्ञान की पराकाष्ठा का आधार है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में कहा गया है कि सभी देवगण ब्रह्म के रूप में विज्ञान की ही उपासना करते हैं। विज्ञान को ब्रह्म ही जानो।[2] 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में ब्रह्म को विज्ञान और आनन्द इन दोनों विशेषणों से युक्त बताया गया है।[3] वेद एवं विज्ञान के सम्बन्ध को प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती ने इन शब्दों में प्रतिपादित किया है, ''परीक्षा द्वारा अपरोक्ष ज्ञान पाने में ही विज्ञान का आग्रह है एवं लक्ष्य को स्थिर रखकर पथ को सीधा कर लेने भर से यह वेद व ब्रह्मज्ञान का पथ हो सकता है। वेद व विज्ञान के बीच एक बहुत घनिष्ठ प्रकार की आत्मीयता है।''[4]

वैदिक आर्यों ने इस विशिष्ट अन्तर्दृष्टि से जिस ज्ञान को प्रत्यक्ष किया, वही मंत्रों में अभिव्यक्त हुआ है। सम्प्रति अनेक विद्वज्जन वैदिक ग्रन्थों में विज्ञान की विविध शाखाओं– भौतिकी, रसायन विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जन्तु विज्ञान, कृषि विज्ञान, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र, पर्यावरण एवं भूगर्भविज्ञान से सम्बन्धित सामग्री के अन्वेषण में निरत हैं। वैदिक विज्ञान के चिन्तकों में पं. मधुसूदन ओझा[5], श्री मोती लाल शास्त्री,[6] स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती[7] और पं. गिरीधर शर्मा चतुर्वेदी प्रमुख हैं। स्वामी दयानन्द वेद में ईश्वर–भक्ति को प्रमुख प्रतिपाद्य मानते हुए भी अलौकिक रूप में वेदों में वैज्ञानिक आविष्कारों का उल्लेख स्वीकार करते हैं।

पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र इत्यादि ग्रहों की गणना, कालचक्र, वर्षचक्र का निर्धारण, ऋतु पर्व एवं शुभ–अशुभ मुहूतों के ज्ञान से सम्बद्धित स्वतंत्र विज्ञान को 'ज्योतिष शास्त्र' कहा जाता है। ज्योतिष के लिए यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' और 'छान्दोग्योपनिषद्' में 'नक्षत्र विद्या'[9] शब्द प्रयुक्त हुआ है। नक्षत्रदर्श (ज्योतिष) को 'प्रज्ञान' (प्रकृष्ट ज्ञान अर्थात् विज्ञान) कहा गया है।[10] वेदों में खगोलीय पर्यवेक्षण की सुप्रतिष्ठित परम्परा परिलक्षित होती है।

ज्योतिष मुख्य रूप से 'काल–निर्धारण' से सम्बद्धित शास्त्र है। अथर्ववेद के पन्द्रह मंत्रों में[11] काल की महत्ता का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं कि भूत, भविष्य और वर्तमान सब काल के ही आश्रित हैं।[12] काल ने ही इस संसार की रचना की है। काल के नियमानुसार ही सूर्य विश्व को प्रकाशित करता है। सभी प्राणी काल के अन्तर्गत. हैं।[13] काल सभी का ईश्वर, पिता और प्रजापति है।[14] काल की महिमा यहाँ तक है कि काल ही ब्रह्म होता हुआ परमेष्ठी (परमतत्त्व) को धारण करता है।[15] अथर्ववेद में उदधृत है– ''शत तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः''।"[16] कपिल देव द्विवेदी महोदय[17] ने इस मंत्र को सृष्टि का काल–निर्धारक मंत्र माना है। गणित का नियम है– 'अंकानां वामतो गतिः' अर्थात् अंक दाई ओर से बाईं ओर लिखे जाते हैं। इस आधार पर सौ अयुत के प्रारम्भ में, मंत्र में उल्लिखित दो, तीन और चार को दाई ओर से अर्थात् चार, तीन और दो इस प्रकार लिखकर और उसे सौ अयुत में जोड़कर

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, हंडिया, प्रयागराज*

युग का काल ज्ञात किया जा सकता है। अयुत का अर्थ है– दस हजार। सो अयुत का अर्थ है– दस लाख (100 ×10,000 = 10,00,000)। दस लाख के आगे चार, तीन और दो जोड़ने पर ज्ञात होता है कि एक युग में चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष (4,32,00,00,000) होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में कालचक्र से सम्बद्धित चिन्तन का अन्वेषण किया जा सकता है। यजुर्वेद में काल सम्बन्धी d fr i ; 'kO;kgkjt Is& l aRl j] i fj oRl j] bnkoRl j] b} Rl j] oRl j] fnu&jkf=] v/kZekl vkS _ rq[18] का उल्लेख मिलता है। पाँच सौर वर्षों– 'संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर' का एक युग माना जाता है। संवत्सर (वर्ष) को प्रजापति बताते हुए 'प्रश्नोपनिषद्' में संवत्सर को दो अयन वाला कहा गया है– दक्षिण एवं उत्तर।[19] यहाँ दक्षिणायन वाले पुरुष के द्वारा चन्द्रलोक एवं उत्तरायण वाले पुरुष द्वारा सूर्यलोक को प्राप्त करने का भी उल्लेख किया गया है। इस मन्त्र पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि सूर्य के विषुवत् (मध्यवर्ती) रेखा के दक्षिण से उत्तर की ओर गमन पर घटित होने वाली 'उत्तरायण' एवं उत्तर से दक्षिण की ओर जाने पर घटित होने वाली 'दक्षिणायन' की प्रक्रिया से कुछ–कुछ परिचित अवश्य था। ऋग्वेद में कहा गया है कि सूर्य का बारह अरों से युक्त रथ–चक्र निरन्तर घूमता रहता है।[20] इस मंत्र में एक वर्ष में बारह राशि या मास की गणना का संकेत निहित है। वर्ष की आकृति के ज्ञान के लिए मास को ही आधार माना गया है।[21]

यजुर्वेद में बारह मासों एवं छः ऋतुओं का नामोल्लेख है। मधु (चैत्र) और माधव (वैशाख) माह मिलकर वसन्त ऋतु[22] शुक्र (ज्येष्ठ) और शुचि (आषाढ़) मास मिलकर ग्रीष्म ऋतु[23] होती है। नभस् (सावन) और नभस्य (भाद्रपद) वर्षा ऋतु के[24], इष (अश्विन्) और ऊर्ज (कार्तिक) शरद ऋतु के[25], सहस् (मार्गशीर्ष) और सहस्य (पौष) हेमन्त ऋतु के[26] और तपस् (माघ) और तपस्य (फाल्गुन) शिशिर ऋतु[27] के दो माह हैं। ये सभी प्रकृति के ही बोधक हैं जिनका सूक्ष्म निर्धारण वैदिक ऋषियों के द्वारा किया गया है।

प्रश्नोपनिषद् में माह रूपी प्रजापति के दो अंग– शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष बताये गये हैं। इसमें कृष्णपक्ष को 'रति' कहा गया क्योंकि इस पक्ष में सांसारिक भोगों वाले कर्म किये जाते हैं जबकि शुक्लपक्ष को 'प्राण' बताया गया है क्योंकि इस पक्ष में शुभ कर्म किये जाते हैं।[28] अथर्ववेद में वर्णन है कि विद्वान् ब्राह्मणों ने तीस दिन एवं तीस रात्रि के समूह वाले मास को और तेरहवें मास को बनाया।[29] इससे ज्ञात होता है कि एक माह में तीस दिन और तीस रात माने जाते थे। यहा 'त्रयोदश मास' का तात्पर्य अधिमास या मलमास से है। चान्द्रवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग 11 दिन शेष रह जाता है अतः वर्ष गणना को पूरा करने के लिए प्रति चौथे वर्ष एक तेरहवाँ मास मलमास मानना पड़ता है।

वेदों में वर्ष और मास के समान ही दिन और मुहर्तों की गणना भी की गयी है। ऋग्वेद का कथन है कि कृष्ण वर्ण वाली रात्रि और उज्ज्वल वर्ण वाला दिन सदैव नियमित रूप से बदलते रहते हैं।[30] अर्थात् दिन–रात्रि का चक्र सदैव गतिशील रहता है। एक अहोरात्र में तीस मुहूर्त होते हैं। इस प्रसंग में यह मन्त्र ध्यातव्य है – ''त्रिशद्धाम वि राजति वाक पतंगय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः''।[31] उव्वट और महीधर का मत है कि इस मंत्र में 'धाम' शब्द मुहूर्त के लिए है और 'प्रतिवस्तो' का अर्थ है – प्रतिदिन। इससे यह सूच्य है कि वैदिक ऋषियो द्वारा एक अहोरात्र को तीस मुहूर्त में विभाजित किया गया है।

वैदिक साहित्य में पूर्णिमा के लिए राका,[32] पौर्णमासी,[33] अमावस्या के लिए अमावस्या[34] एवं कुहुँ देवी[35] और घोर अंधकार युक्त रात्रि के लिए सिनीवाली[36] जैसे शब्द अनेक मंत्रों में प्रयुक्त हुए हैं। पूर्णिमा के पश्चात् की अष्टमी के लिए 'एकाष्टक' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[37] किन्तु वैदिक साहित्य में 'प्रतिपदा' आदि तिथियों के नाम उपलब्ध नहीं होते हैं।

वैदिक ऋषि काल का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाजन करने लगे थे। वे न केवल युग, वर्ष, ऋतु मास को अपितु एक दिवस को भी अनेक खण्डों में विभक्त करने में प्रयासरत् थे। अथर्ववेद में ऋषि दिन को पांच भागों में विभाजित करते हुए कहता है, 'उदय के समय सूर्य हिड शब्द करता है। सव (किरणों से युक्त) हुआ सूर्य और मध्यन्दिन के समय का सूर्य प्रशंसा करता है। अपराह्न के समय सूर्य भोजन देता है और अस्त के समय मृत्यु को नष्ट करता है।[38] इस मन्त्र में दिन को उद्यन (प्रातः), सैंव, मध्यान्दिन, अपराह्न और सांय इन पाँच भागों में विभक्त किया गया है। इन संकेतों से स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि खगोलीय ग्रहों, कालगणना एवं ऋतु–परिवर्तन सम्बन्धी विषयों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर चुके थे और इन विषयों पर वैज्ञानिक चिन्तन किया करते थे। जो कि प्रकृति पूजा के द्योतक हैं।

वैदिक नक्षत्रदर्शों ने प्रकृति के प्रमुख अंग सूर्य, चन्द्र इत्यादि ग्रहों के विषय में पर्याप्त खगोलीय ज्ञान अर्जित किया था। अथर्ववेद में ऋषि यह कामना करते हैं कि आकाश में विचरण करने वाले ग्रह हमारे लिए शान्तिदायक हों।[39] एक मन्त्र में चन्द्रमा, सूर्य, राहु और धूमकेतु का उल्लेख करते हुए चन्द्रमण्डल के ग्रह, राहु से ग्रस्त सूर्य, अनिष्टकारी धूमकेतु और तीक्ष्ण सन्ताप देने वाले रुद्र से शान्तिदायक होने की कामना की गयी है।[40] इससे ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि न केवल विभिन्न ग्रहों से परिचित थे अपितु ग्रहों के सम्बन्ध में शुभ–अशुभ की कल्पना भी करने लगे थे।

सौर परिवार का सबसे चमकदार नक्षत्र सूर्य सभी ग्रहों एवं उपग्रहों का केन्द्रबिन्दु है। वेदों में सूर्य विषयक अनेक वैज्ञानिक जानकारी समाहित है। सम्पूर्ण चराचर जगत् की ऊर्जा का स्रोत सूर्य है, इस वैज्ञानिक तथ्य के विज्ञ ऋषियों ने 'सूर्य को संसार की आत्मा' कहा है।[41] सूर्य एवं पृथ्वी के सम्बन्ध के विषय में वैदिक ऋषि का कथन है– 'सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णाद...[42] अर्थात् सूर्य विभिन्न कर्मों द्वारा पृथ्वी को स्थिर किया है। यजुर्वेद में भी कहा गया है– 'विष्णवे ते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः'[43] अर्थात् हे विष्णो, तुमने अपनी किरणों के द्वारा चारों ओर से पृथ्वी को धारण किया है। इस मन्त्र में विष्णु शब्द सूर्य का वाचक माना जाता है। ऋग्वेद में पृथ्वी (क्षाः) के द्वारा सूर्य (शुष्ण) के चारों ओर परिक्रमा का वर्णन है[44] और सूर्य को गतिमान बताया गया है।[45] सूर्य के साथ सम्पूर्ण सौरमण्डल की गतिशीलता पर विचार करने वाले ऋषियों ने पृथ्वी, उषा, सूर्य और सम्पूर्ण जगत् को समावर्तनशील कहा है।[46] जो कि प्रकृति पूजा का उत्कृष्ट उदाहरण है।

सूर्य का न कभी उदय होता है और न अस्त होता है। सूर्य सदैव ज्योतिर्मय है। दिन और रात तो पृथ्वी की परिक्रमा का परिणाम है। पृथ्वी की परिक्रमा के कारण पृथ्वी के जिस भाग पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है वहाँ सूर्योदय या दिन हो जाता है और पृथ्वी के जिस भाग पर प्रकाश नहीं पड़ता वहाँ रात्रि होती है। अतएव सूर्य के प्रकाश/कारण ही दिन और रात होते हैं। इस वैज्ञानिकता की अनुगूंज वेदों में सुनाई देती है। अथर्ववेद में दिन और रात्रि का कारण सूर्य को स्वीकार किया गया है।[47] ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि यह (सूर्य) न तो कभी अस्त और न कभी उदित ही होता है।[48] इसे उपनिषद में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है– 'जो ब्रह्म के रहस्य को जानता है उसके लिए सूर्य न तो कभी उदित होता है और न अस्त। इसके लिए सदैव दिन ही है।'[49]

'चन्द्रमा' सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। उसकी चन्द्रिका सूर्य के प्रकाश का प्रतिबिम्ब है। इस खगोलीय ज्ञान का प्रसार उस यजुष मंत्र में द्रष्टव्य है जिसमें चन्द्रमा को सूर्य की सुषुम्ण नामक रश्मि के प्रकाश वाला गन्धर्व कहा गया है।[50] यास्क ने इसे इस प्रकार निर्वाचित किया है, ''सूर्य की एक प्रकार की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। इससे यह ज्ञेय है कि सूर्य से ही इस (चन्द्रमा) की दीप्ति होती हैं।[51] स्पष्ट है कि चन्द्रमा सूर्य की किरणों को धारण करता अतएव गन्धर्व (गां धरतीति गन्धर्व) कहा जाता है। पृथ्वी और सूर्य के मध्य चन्द्रमा के आने पर घटित होने वाली खगोलीय घटना 'सूर्यग्रहण' है। इस अद्भुत खगोलीय प्रक्रिया का संकेत उन ऋचाओं में प्रस्फुटित हुआ है जिसमें उद्धृत है कि स्वर्भानु (राहु या चन्द्रमा) नामक असुर सूर्य को अंधकार से ढक लेता है।[52] अन्यत्र आदित्य को राहु से युक्त बताया गया है।[53]

मंत्रद्रष्टा ऋषि सूर्य, चन्द्र एवं पृथ्वी के साथ ही नक्षत्रों (तारों) के विज्ञ आचार्य थे। उन्होंने अथर्ववेद में अट्ठाइस नक्षत्रों[54] एवं उनके देवताओं का नामोल्लेख करते हुए उनसे विघ्ननाशिनी कल्याणमयी बुद्धि की इच्छा की है।[55] उन्होंने कृतिका नक्षत्र का देवता अग्नि को, रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजापति को मृगशिरा के सोम, भद्रा के रुद्र, पुनर्वसु के आदित्य, पुष्य के बृहस्पति, अश्लेषा के सर्प, मघा के पितृदेव,[56] पूर्वाफाल्गुनी के अर्यमा, उत्तरा फाल्गुनी के भग, हस्त नक्षत्र के सविता देव, चित्रा के चन्द्र, स्वाति के वायु, अनुराधा के मित्र और इन्द्र, विशाखा के इन्द्राग्नि, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के पितृ,[57] पूर्वाषाढ़ा के जल देवता, उत्तराषाढ़ा के विश्वेदेवा, अभिजित् के ब्रह्म देवता श्रवणा के विष्णु, श्रविष्ठा के वसु,[58] शतभिषज् के इन्द्र, प्रोष्ठपदा (पूर्वा भाद्रपद) के अजैक पाद, प्रोष्ठपदा (उत्तराभाद्रपद) के अहिर्बुधनिय, रेवती के पूषा, अश्वयुजौ के अश्विद्वय और भरणी नक्षत्र के देवता यम[59] को बताया है। मैत्रायणी संहिता (2.13.20) एवं काठक संहिता 1 (39.13) में इन 28 नक्षत्रों तथा तैत्तिरीय संहिता (4.4.10.1–3) में अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर शेष सत्ताइस नक्षत्रों का वर्णन किया गया है।

वेदाध्ययन से आधुनिक छात्र भारतीय विज्ञान की उस गौरवमयी परम्परा से परिचित हो सकेगें जिसके फलस्वरूप आर्यभट्ट, वारहमिहिर, चरक, सुश्रुत आदि महान वैज्ञानिकों का जन्म हुआ। साथ ही वेद आधुनिक वैज्ञानिकों को रचनात्मक एवं सर्वहितैषी बुद्धि प्रदान करने में समर्थ है। इस प्रसंग में प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद महोदय का यह मत ध्यातव्य है, 'विज्ञान मनुष्य के लिए दैवी वरदान न बनकर आसुरी अभिशाप बन रहा

है। श्रेष्ठतम विद्वानों और वैज्ञानिकों की मानसिक शक्ति और तपस्या भीषण से भीषण घातक शस्त्रों और यन्त्रों के अविष्कार में लग रही है और कोई भी आज चौन की नींद से नहीं सो सकता है। मनुष्य ने दैवी शक्ति तो पा ली है, पर उसका सबके उपकार और कल्याण के लिए उपयोग करना नहीं सीखा है।[60] परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रॉन बम इत्यादि विध्वन्सकारी आयुधों के निर्माण में तत्पर वैज्ञानिकों के परिप्रेक्ष में ऋग्वेद के वे मन्त्र आज भी औचित्यपूर्ण हैं जिनमें यह कामना की गयी है कि विष्णु देवता हमें विश्वहितकारी (विश्वजन्यां) और निर्दोष (अप्रयुतां) सद्बुद्धि प्रदान करे।[61] कल्याणकारी वैज्ञानिक प्रगति के लिए वैदिक विज्ञान गवेषणा एवं वैदिक मूल्यों के समायोजन की आवश्यकता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि वैदिक ऋषियों ने खगोलीय के सूक्ष्म विश्लेषण के द्वारा सम्पूर्ण प्रकृति के प्रति आस्था एवं श्रद्धा व्यक्त की है। जो कि वर्तमान में इसी प्रकृति पूजा की प्रासंगिकता है। क्योंकि खगोलीय ज्ञानरूपी प्रकृति माहात्म्य को जानकर ही हम सम्पूर्ण मानव जीवन को सुरक्षित बचा सकते हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. मनु. 2.7, सर्वज्ञानमयो हि सः।
2. तै.उ. 2.5, विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चद्वेद।
3. तै.उ. 3.5, विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् ।
4. बृ.उ. 3.9.28, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।
5. स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती, वेद व विज्ञान, पृ.सं.–4
6. मधुसूदन ओझा, वेद विज्ञान व अन्य निबन्ध
7. मोती लाल शास्त्री, वेद का स्वरूप विचार।

7 स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती, वेद व विज्ञान।

8. दयानन्द, ऋग्वेद भाष्य।
9. छा.उ., 7.1.2
10. यजु 30.10, प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्।
11. अ.वे..., 19.53–54
12. अ.वे. 19.53.5, काले ह भूतं भव्यं चेशितं ह वि तिष्ठते।
13. अ.वे. 19.53.6, कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः। काले ह विश्वा भूतानि।
14. अ.वे., 19.53.8, कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः।
15. अवे. 19.53.9, कालो ह ब्रह्म भूत्वा विभर्ति परमेष्ठिनम्।
16. अ.वे. 8.2.21
17. कपिल देव द्विवेदी, वेदों में विज्ञान, पृ. 208
18. यजु 27.45 संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वसरोऽसि वत्सरोऽसि। उपसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते...।
19. प्रश्न 1.9, संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च।
20. ऋ.वे 1.164.11, द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्र परि द्यामृतस्य।
21. ऋ.वे., 10.85.5, रक्षिता समानां मास आकृतिः।
22. यजु., 13.25, मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू।
23. यजु., 14.6, शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू।
24. यजु., 14.15, नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू।
25. यजु., 14.16, इषश्चोर्जश्च शारदावृतू।
26. यजु. 14.27, सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू।
27. यजु., 15.57, तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।

28. प्रश्नो., 1.12, मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्।
29. अ.वे., 13.3.8, अहोरात्रैर्विमितं त्रिशर्दै त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते।
30. ऋ.वे. 6.9.1, अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः।
31. ऋ.वे., 10.189.3, यजु. 3.8
32. ऋ.वे., 2.32.4, अ.वे.,7.48.1, राकामहं सुहवा सुष्टुती..
33. अ. वे., 7.80. 1–2–4
34. अ.वे., 7.79.1
35. अ.वे. 7.47. 1–2
36. ऋ.वे 2.32.6–7–8, अ.वे., 7.46.1–2
37. अ.वे. 3.10.5–8–12
38. अ.वे. 9.6(5).4, तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ कृणोति सैंवः प्र स्तीति।।
    तदैव 9.6 (5).5, मध्यन्दिन उद्गायत्यपराणः प्रति हरत्यस्तयन् निधनम्।
39. अ.वे., 19.9.7, शं नो दिविचरा ग्रहाः।
40. अ.वे. 19.9.10, शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शभादित्यश्च राहुणा। शं नो मृत्युर्धूमकेतुः श रुद्रास्तिग्मतेजसः।।
41. अ.वे., 1.115,1, सूर्य आत्मा जगतरतरणुप्रश्न।।
    यजु. 7.42, अ.वे. 1.32.35
42. 10.149.1
43. यजु. 5.16
44. ऋ.वे. 10.22.14 क्षाः कृ शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नयाः।
45. ऋ.वे., आवर्तयत् सूर्यो न वक्र।
46. यजु. 20.23, रामानवर्ति पृथिवी समुशाः रामु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत।
47. अ.वे. 13.2.32, अहोरात्रे परि सूर्य वसाने।
48. ऐ.ब्रा. 14.6, स वा एष न कदाचनारतमेति नोदेति।
49. छा.उ. 3.11.3, न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिदचा हैवारगे
50. यजु. 18.40, सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः।
51. निरुक्त 26, अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते। तदेतेनोपेक्षितव्यम्, आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति। पृ. 160
52. ऋ.वे. 5.40.5, यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
53. अ.वे. 19.9.10, आदित्यश्च राहुणा।
54. अ.वे. 19.8.2, अश्टाविंशानि शिवानि।
55. अ.वे. 19.7.1–5
56. अ.वे. 19.7.2
57. अ.वे. 19.7.3
58. अ.वे. 19.7.4
59. अ.वे. 19.7.5
60. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, भारतीय शिक्षा, पृ. 71
61. ऋ.वे. 7.100.2 त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावी मतिं दाः।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 105-108

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उत्तर भारत में औरंगजेब की असहिष्णु धार्मिक नीति एवं गोकुलाजाट

*डॉ. सुरेन्द्र सिंह**

जब औरंगजेब के समय पूरा भारत त्राहि–त्राहि कर रहा था। उसके आक्रमण, उसकी नौतियाँ, उसकी गतिविधियाँ जो पूरे हिंदू समाज के लिए एक ऐसे फोड़े के रूप में उभर रही थीं, यदि उसका समय पर इलाज न किया जाता तो शायद पूरे शरीर की तरह हिंदू समाज खत्म हो जाता। पूरे भारत में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं थी जो उसका सामना कर सके। उसकी आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक नीतियों के कारण जब सब खून के आँसू रो रहे थे तब उसके आतंक के साम्राज्य को खत्म करने के लिए उसके ही नाक के नीचे एक वीर योद्धा उठ खड़ा हुआ–गोकुला। उसने मुगल साम्राज्य के विनाश के लिए एक ऐसा मार्ग खोल दिया जो आगे चलकर मुगल साम्राज्य के लिए नासूर बन गया और उसके पतन का कारण बना।

औरंगजेब जब मुगल, साम्राज्य की गद्दी पर बैठा तो उसने कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण अपने सामाज्य में हिंदू विरोधी नीतियों को लागू किया। उसकी कुछ नीतियाँ थीं–

1. हिंदू मंदिरों को ध्वस्त करना औरंगजेब एक सुन्नी मुसलमान था जिसे कुरान वशरीयत से बहुत ज्यादा लगाव था। वह अपने कई अग्रगामी आक्रमणकारियों की तरह भारत में मूर्ति पूजा के विरुद्ध था। इसके लिए उसने अनेक हिंदू मंदिरों को तोड़ने के आदेश दिए थे तथा पुराने मंदिरों की मरम्मत पर रोक लगा दी थी। जगह–जगह पर मंदिरों व मूर्तियों को तोड़ने के साथ ही हिंदू देवी–देवताओं का मजाक उड़ाया गया। ऐसी स्थिति में कोई भी उसको रोकने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। उदाहरण के तौर पर केशवराय मंदिर तथा काशी विश्वनाथ मंदिर को तोड़ा गया था।[1]

2. जजिया कर पुनः लागू करना–जजिया कर के अंतर्गत किसी मुस्लिम साम्राज्य में दूसरे धर्मों के लोगों को रहने के लिए उनसे उनकी सुरक्षा के एवज में धन लिया जाता है। अकबर ने धार्मिक सौहार्द की नीति अपनाते हुए इसे बंद कर दिया था लेकिन औरंगजेब ने धार्मिक कट्टरता अपनाते हुए इसे पुनः लागू कर दिया था। इस कर को बड़ी कठोरता व निर्दयता के साथ वसूल किया जाता था।[2] जिससे हिंदू अपने ही देश में पराए बन गए थे और बड़ी जलीलता के साथ इस को अदा कर रहे थे।

3. किसानों पर अत्याचार औरंगजेब ने समस्त भारत पर विजय प्राप्त करने व समस्त जनता को मुस्लिम बनाने के लिए सेना एकत्रित की थी। इस सेना के वेतन एवं प्रशिक्षण के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता थी। जागीरदार धन प्राप्ति के लिए किसानों पर अधिक कर लाद देते थे। जिस कारण किसान इतना अनाज नहीं बचा पाता था कि वह अपने पेट की आग शांत कर सके। इसके लिए किसान भी इसके विरुद्ध आवाज उठा रहे थे और विद्रोह की तरफ अग्रसर हो रहे थे।[3]

4. हिंदुओं पर अन्य धार्मिक प्रतिबंध औरंगजेब के साम्राज्य में अधिकतर जनता हिंदू थी। फिर भी उसने धार्मिक कट्टरता की नीति का पालन करते हुए कट्टर सुन्नी शासक की तरह हिंदू वर्ग पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए, जैसे राजपूतों को छोड़कर कोई भी हिंदू हाथी की सवारी नहीं करेगा, न ही घोड़े की सवारी करेगा तथा न अपने पास कोई हथियार रखेगा। उसने तीर्थयात्रा पर जाने वाले यात्रियों पर तीर्थयात्रा कर लागू कर दिया।

ऐसे अनेक प्रतिबंध थे जो मुगलिया सल्तनत के द्वारा लोगों पर लाद दिए गए थे। लोग खून के आँसू पीकर रह जाते थे लेकिन कुछ कर नहीं पाते थे। एक जाति जो कभी भारत की शान की प्रतीक समझी जाती थी, वह मुगलों के आगे घुटने टेक चुकी थी। औरंगजेब के समय उसके फौजदार/सूबेदार आदि हिंदू महिलाओं को उठा

* *एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, मथुरा प्रसाद महाविद्यालय, कोंच, जालौन*

ले जाते थे। मथुरा का एक फौजदार मुर्शिद कुली खाँ इतना अय्याश व हरामी था जो हिंदू का रूप धारण कर मेले में जाता था और सुंदर लड़कियों एवं स्त्रियों को उठा ले जाता था। वह हर कुँवारी कन्या पर अपना अधिकार समझता था।[4] इतना सब होते हुए भी लोग विष का घूंट पीकर रह जाते थे। वह स्त्रियों के कौमार्य की कीमत एक तुच्छ चीज समझता था।

मुस्लिम शासनकर्ता सुंदर हिंदू स्त्रियों को अपने हरम में एक रखैल की भाँति रखते थे और उनका शीलभंग करना अपना अधिकार समझते थे। इतना सब होने के बाद भी लोग मानो एक जड़ की भाँति चुपचाप बैठे देखते रहते थे। खून लावे की भाँति खौलता था, लेकिन कुछ कर नहीं पाते थे। लेकिन कहते हैं समय सदा एक सा नहीं रहता। जो राजा को रंक और रंक को राजा बना सकता है। जब–जब किसी चीज को दबाया जाता है या तो अपना अस्तित्व खो बैठती है या फट पड़ती है। फटती है तब धमाका भी होता है, जो बहुतों के तख्ते पलट देता है। इतना सब होने के बाद लोगों की रूह तो क्या पृथ्वी भी काँप रही थी। इन दरिंदों के अत्याचारों से, उनके कुकर्म से स्वर्ग के सिंहासन भी डोल रहे थे। लेकिन उसी समय एक महात्मा जो शिवाजी जैसे वीर का गुरु था, मथुरा के क्षेत्र में आया और उसने कहा– 'मैंने मुगल साम्राज्य के विनाश के लिए पूरे भारत में बारूद तो डाल दिया है। मुगलों को सत्ता से उखाड़ फेंकने के लिए मुझे जाटों की जरूरत है, क्योंकि बहादुर व लड़ाका कौम कहलाने वाली राजपूत जाति ने अपनी बेटियों को इनके डोले में बैठाकर अपने आपको मृतप्रायः बना लिया है। अब उनमें इतना साहस नहीं कि वे मुगलों से लोहा ले सकें। अपने धर्म व अपनी लड़कियों की आबरू के लिए आगे आओ और इस सत्ता को उखाड़ फेंको।'[5] उसकी बातें सुनकर एक भोली जाति कहे जाने वाली और सदियों से फौलाद पैदा करने वाली जाट जाति और किसानी करने वाली कौम में अपने अत्याचारों का बदला लेने के लिए तूफान उठ खड़ा हुआ, उस यौद्धा का नाम था 'गोकुला'। उसके साथ उठ खड़े हुए उसी की किसानी कौम के वो महान यौद्धा जिनका नाम मुगलों को धूल चटाने वालों में सबसे शिखरतम पर लिखा जाएगा।

इस महान यौद्धा का नाम ओला था। गोकुल से तिलपत जाकर बस जाने के कारण इनको 'गोकुला' कहने लगे। सरदार बनने के बाद उसने लोगों से कर न देने की अपील की। उसने दिल्ली से आगरा के बीच शाही सेनाओं की लूटपाट की व छापामार युद्ध जारी रखा। वह अपने 5000 योद्धाओं के साथ मथुरा पहुँचा और वहाँ के कसाईघरों के 221 बूचड़खानों तथा 250 मांस बेचने वालों को यमराज के दर्शन करवा दिए और जैसे वे गाय को काटते थे उनको भी काट डाला गया।

उसका नाम अब धीरे–धीरे दिल्ली की गद्दी पर बैठे शहंशाह औरंगजेब के कानों में एक कर्कश आवाज की तरह गूंजने लगा। गोकुला द्वारा मथुरा के फौजदार अब्दुल नवी जो हिंदु स्त्रियों की शील भंग करके बड़ा आनंद लेता और अपने–आपको बड़ा बहादुर समझता था, को उसके ही गढ़ में घेरकर मार डाला गया। आगरा, मथुरा किसान क्रांति के केंद्र बन गए।[6]

तिलपत का युद्ध–जैसे–जैसे गोकुला अपनी शक्ति बढ़ा रहा था, सम्राट की नींद उठती जारही थी। उसके सब हथियार और सैनिक जो भारत के बड़े–बड़े योद्धाओं को धूल चटा चुके थे, लाचार होते जा रहे थे और गोकुला के नाम का आंतक सम्राट के कदमों (दिल्ली) के पास ही बढ़ता जा रहा था। गोकुला मुगलिया सैनिकों को लूटता जा रहा था और उनका नका कत्लेआम करता जा रहा था। मुगल फौजदार और उनकी फौज सब उस किसान के आगे बौने पड़ते जा रहे थे। जिस सम्राट का नाम सुनकर अच्छे–अच्छे राजाओं, आदि को पसीने आ जाते थे, उसकी नाक के नीचे ही एक छोटा–सा किसान अपने बाहुबल से प्रलय मचाए हुए था। बादशाह के सैनिक खेत होते जा रहे थे। सभी फौजदार व अधिकारी भी सकते में थे। सम्राट के नाम और इज्जत पर कलंक लगता जा रहा था।

अब समय था या तो भारत का सम्राट स्वयं अपने दुश्मन से युद्ध के मैदान में में। दो–दो हाथ करे या उसकी स्वयं की सेना और कोई साहसी सेनापति युद्ध के लिए निकले। औरंगजेब स्वयं जो किसी विद्रोह को दबाने या मंदिर को खंडित करने या राजाओं का सिर झुकाने के लिए नहीं निकला था। अब एक छोटे से किसान (गोकुला) के कारण अपनी फौज के साथ दो–दो हाथ करने निकला था। भारत के इतिहास या अन्य विश्व के किसी भी देश के इतिहास में नहीं हुआ था, कि एक छोटे से किसान नेता से डरकर कोई सम्राट उसके दमन के लिए निकला हो। लेकिन भारत के सम्राट औरंगजेब को स्वयं उस फौलाद को रोकने के लिए निकलना पड़ा। भारत के सम्राट जिसके आगे सारा मुल्क सिर झुकाता था, स्वयं बेबस होकर दिल्ली से मधुरा पहुंचा और सेनापतियों का मार्गदर्शन करने लगा।[7] दिसंबर 1669 ई० में हसनअली एक बड़ी सेना लेकर गोकुला पर आक्रमण करने के लिए निकला

और दोनों पक्षों में भयंकर मारकाट हुई। किसान योद्धा भूखे शेरों की तरह मुगल सेना पर टूट पड़े और देखते–ही–देखते धरती का रंग लाल होने लगा।

हसनअली खाँ विशाल सेना लेकर गोकुला का पीछा करते हुए आगे बढ़ा। गोकुला ने तिलपत गाँव (गढ़) से युद्ध की घोषणा कर दी। एक तरफ भारत को झुका देने वाली मुगल फौज थी और एक तरफ था एक किसान नेता गोकुला और उसके कुछ साथी, जो गोकुला के इशारे पर स्वयं यमराज से भी टकराने को तैयार रहते थे। युद्ध के शंखनाद के साथ ही दोनों तरफ से भयंकर मारकाट शुरू हो गई। मुगल सेना की तोपें गढ़ी पर ऐसे आग बरसा रही थीं मानो सूर्य अपनी क्रोध की अग्नि से सब कुछ भस्म करने पर तुला हो। गोलियों की गड़गड़ाहट वातावरण को और भी भयानक रूप दे रही थी। गोकुला व उसके साथी ऐसे भयानक और रक्तपिपासु वातावरण में ऐसे लड़ रहे थे मानो कि उनका पालन–पोषण युद्ध के मैदान में ही हुआ हो।

जिस मुगल सेना ने बहुत से राजाओं, राणाओं जैसे महारथी जिनके पास भारी मात्रा में गोला–बारूद, हथियार आदि उपलब्ध थे मात्र कुछ समय में ही धूल चटा दी थी। जिनके पास एक से एक वीर योद्धा, हथियारों की खेप थी, दुर्गम अजेय किले थे जिन को फतेह करना बड़ी से बड़ी फौज के लिए दुर्गम था वे भी मुगलों से नहीं जीत सके थे। लेकिन उसी धरती पर एक ऐसा फौलादी व्यक्ति गोकुला, जिसके पास संसाधनों का अभाव था, न उनके जैसी प्रशिक्षित फौज थी, न दुर्गम अजेय किले थे, न उनके जितना गोला–बारूद, बंदूकें थीं, एक छोटी सी गढ़ी से दुश्मनों कोललकार रहा था।

बड़े–बड़े पोड़ाओं, राणाओं, सरदारों आदि का घमंड चूर–चूर कर देने वाली फौज को एक छोटे से किसान नेता को शिकस्त देने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी। इन सब संसायनों के होते हुए भी मुगल सैनिक तीन दिन तक गढ़ी में नहीं घुस सके। यह घटना पूरे भारत क्या विश्व को हैरान करने वाली थी। जय किसान सैनिकों की बंदूकों की गोलियाँ आदि खत्म हो गए तो उनके पास बचा था तो सिर्फ उनका एक ऐसा हौंसला, जो बड़े से बड़े योद्धाओं को धूल चटाने को काफी था। सब खत्म होने के बाद उनके सामने एक ही रास्ता बचा था, यह था–या तो हथियार डालकर मुगलों के सामने झुक जाएँ या जिस उद्देश्य को लेकर विधर्मियों के खिलाफ लड़ रहे थे उस उद्देश्य को त्यागकर तलवार के डर से अपना धर्म परिवर्तन कर अपना अस्तित्व समाप्त कर लें अथवा एक ऐसा खेल खेलें जो भावी पीढ़ियों के लिए एक आदर्श बन जाए। उन्होंने जो रास्ता चुना था वह एक तरफ मृत्यु की ओर जाता था जिससे वे शहीद कहलाते, एक माफी की तरफ जाता था जिसमें शायद उनके प्राण बख्श दिए जाते। उन्होंने अपने जीवन की परवाह न करते हुए जो रास्ता चुना, वह था सीधा यमराज से टकराकर मृत्यु का वरण करना। उन किसान सैनिकों ने अपना नाम अमर करने व भावी पीढ़ी के मार्गदर्शन के लिए स्वयं अपने परिवार को बलि देकर वे आँखों में प्रतिशोध की ज्वाला लिए, भूखे शेरों की तरह व निर्दयी गिद्धों की तरह जो बोटी–बोटी नोंच डालते हैं और एक उफनते हुए प्रतिशोध के लावे को दिल व दिमाग में लेकर मुगल सेना पर टूट पड़े। उन्होंने अपने बाहुबल से अपनी ली गई प्रतिज्ञा से, अपनी फौलादी भुजाओं से तिलपत को खून के रंग में रंग दिया।

बलिदान–राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, योद्धा हो या शांति का पुजारी, मृत्यु एक दिन सबको अपने आगोश में समेट लेती है। मुत्यु अटल व निश्चित है। तिलपत में धरती को खून में रैगने वाली किसानी फौज भी मृत्यु को प्राप्त हुई। गोकुला जिंदा पकड़ा गया तथा उसे आगरे ले जाया गया। सम्राट ने उस जख्मी शेर को जंजीरों में कैद कर लिया क्योंकि उसे भय था कि यदि यह आजाद हो गया तो मुगल साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंकेगा।

गोकुला के सामने दो शर्तें रखी गई–**1.** यदि वह इस्लाम कबूल कर लेगा तो उसे क्षमा कर दिया जायेगा। **2.** यदि इस्लाम कबूल नहीं करेगा तो मृत्यु दंड दिया जाएगा।

जो स्वयं मृत्यु से टकराने वाला हो, बिना किसी की परवाह किए स्वयं यमराज से भी भिड़ने वाला हो और जो स्वयं दूसरों की भलाई व धर्म का रक्षक हो, उसे मृत्यु या किसी अन्य सजा का कोई भय नहीं होता। गोकुला ने एक वीर योद्धा की तरह सिर झुकाना कबूल न कर मौत कबूल की क्योंकि योद्धा मरकर भी लोगों के दिलों में अमर हो जाते हैं। उसने इस्लाम को अपनाने से इनकार कर दिया।

हिंदुओं के खून की प्यासी बादशाहत और पूरे मुल्क को मुस्लिम बनाने का सपना देखने वाले बादशाह औरंगजेब ने उसे मृत्यु दंड दे दिया। उसके जल्लादों ने शरीर को चीरकर उस योद्धा को मार डाला।[8] लेकिन वह योद्धा अपने नाम, शान व जाति व धर्म के नाम पर शहीद हो गया। आज भी गोकुला का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है।

संदर्भ–सूची

1. हरिश्चंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग–2, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 24वाँ संस्करण, 2011, पृ. 146
2. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा, मध्यकालीन भारत का इतिहास, कल्पना प्रकाशन दिल्ली, 2014, पृ. 414
3. वही, पृ. 669
4. प्रो. कालिका रंजन कानूनगो (लेखक), डॉ. वीरसिंह (संपादक), जाटों का इतिहास, ओरिजिनल्स पब्लिकेशन, दिल्ली, 1925, पृ. 21
5. डॉ. गिरीशचंद्र द्विवेदी (लेखक), डॉ. वीरसिंह (संपादक), जाट और मुगल साम्राज्य ओरिजिनल्स दिल्ली, 2002, पृ. 12
6. वही, पृ. 15
7. हरिश्चंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग–2, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 24वाँ संस्करण, 2011, पृ. 668
8. डॉ. गिरीशचंद्र द्विवेदी (लेखक), डॉ वीरसिंह (संपादक), जाट और मुगल साम्राज्य ओरिजिनल्स दिल्ली, 2002, पृ. 16

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology: Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 109-114

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Childhood Autism Spectrum Disorder : A Review Study

*Mrityunjay Kumar Bhagat** *Dr. Lakshmi Pandey***

Abstract : *Autism Spectrum Disorder (ASD) is a complex neurodevelopmental condition characterized by challenges in social interaction, communication, and repetitive behaviours. This review study explores the various aspects of childhood ASD, including its types, symptoms, prevalence, etiology, diagnostic criteria, and intervention strategies. The paper also discusses recent research findings and their implications for clinical practice and future research directions.*

Keywords : *Autism Spectrum Disorder, types, symptoms, diagnosis, intervention&etiology.*

Introduction : Autism Spectrum Disorder (ASD) is a significant public health concern worldwide. It is a developmental disorder that affects individuals' ability to communicate and interact socially. The prevalence of ASD has increased over the past decades, necessitating a deeper understanding of its causes, early diagnosis, and effective intervention strategies (American Psychiatric Association [APA], 2013). This paper reviews existing literature on childhood ASD, focusing on its etiology, diagnostic criteria, treatment approaches, and future research directions.

1. Types : ASD is now recognized as a broad category rather than being classified into distinct subtypes. However, before the DSM-5 (2013) consolidated the diagnosis under a single spectrum, ASD was divided into several subtypes, including:

(i) Autistic Disorder (Classic Autism) : Characterized by significant impairments in social interaction, communication, and repetitive behaviours, often with intellectual disability.

(ii) Asperger's Syndrome : Milder symptoms, particularly in social interactions and restricted interests, but with relatively intact language and cognitive abilities. **Pervasive Developmental Disorder-Not Otherwise Specified (PDD-NOS)** – Used for individuals who exhibited some but not all features of classic autism or Asperger's, making diagnosis less clear-cut.

(iii) Childhood Disintegrative Disorder (CDD) : A rare condition where children develop normally for the first few years and then regress significantly in multiple areas, including language, motor skills, and social abilities.

Since DSM-5, these categories have been replaced by a single **ASD** diagnosis, categorized by severity levels :

- **Level 1 (Requiring Support)**
- **Level 2 (Requiring Substantial Support)**
- **Level 3 (Requiring Very Substantial Support)**

2. Prevalence and Epidemiology : ASD affects children globally, with variations in prevalence due to differences in diagnostic practices and awareness levels. According to the Centers for Disease

* ***Research Scholar, Dept. of Psychology, T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar***

** ***Associate Professor, Univ. Dept. of Psychology, T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar***

Control and Prevention (CDC, 2020), approximately 1 in 54 children in the United States is diagnosed with ASD. The global prevalence of ASD has risen in recent decades due to increased awareness and improved diagnostic criteria. According to Baxter et al. (2015), ASD affects approximately 1% of the global population. The World Health Organization (WHO, 2021) estimates that one in 100 children worldwide is diagnosed with ASD, though this number varies significantly by country and diagnostic methods. In high-income countries like the United States, ASD prevalence is reported at 1 in 36 children, based on recent CDC data (Maenner et al., 2023). In contrast, prevalence rates in lower-income nations tend to be lower, largely due to reduced diagnostic capacity and awareness (Elsabbagh et al., 2012).

Regional studies highlight significant differences in ASD prevalence. In Europe, studies have reported prevalence rates ranging from 0.6% to 1.5%, with countries like Sweden and the United Kingdom having higher reported cases due to robust screening programs (Lai et al., 2014). In Asia, studies from China, South Korea, and Japan suggest prevalence rates between 0.2% and 1%, though these numbers may be underestimated due to cultural stigma and lack of standardized diagnostic tools (Sun et al., 2019). In Africa and Latin America, ASD prevalence data is scarce, with limited resources for early diagnosis and intervention contributing to lower reported cases (Salomone et al., 2016).

Studies in India and other developing nations report lower prevalence rates, which may be attributed to underdiagnosis and lack of resources (Baxter et al., 2015). Autism Spectrum Disorder (ASD) prevalence in India has been the subject of various studies, yielding a range of estimates due to factors such as diagnostic criteria, study populations, and regional differences. A systematic review indicated that approximately 1 in 65 children between the ages of two and nine are affected by ASD, suggesting that up to 1.8 to 2 million children in India may have the disorder (Uke et al., 2024).

Another study reported a prevalence of 1 in 68 children, with a higher occurrence in boys, reflecting a male-to-female ratio of approximately 3:1 (IAC, 2025). Regional studies have also contributed to the understanding of ASD prevalence in India. For instance, research conducted in Chandigarh found a prevalence rate of 2.25 per 1,000 children aged 1.5 to 10 years, equating to about 1 in 450 children (Arun and Chavan, 2021). Additionally, a study across rural, urban, and tribal areas reported a prevalence of 0.15% among children aged 1 to 10 years (Raina et al, 2017).

These varying figures highlight the challenges in accurately determining ASD prevalence in India, often due to underdiagnosis, lack of awareness, and limited access to diagnostic services. Consequently, many cases may remain unreported, emphasizing the need for comprehensive epidemiological research to inform public health strategies and support services for individuals with ASD.

3. Symptoms of Autism Spectrum Disorder : ASD manifests through a wide range of symptoms that can vary in severity. The primary symptoms of ASD are categorized into three main domains: social communication deficits, restrictive and repetitive behaviours, and sensory sensitivities.

A. Social Communication Deficits :

- Difficulty with social reciprocity, such as reduced ability to engage in back-and-forth conversations or respond appropriately to social cues (APA, 2013).
- Challenges in making and maintaining eye contact, which can make interactions appear distant or unengaged (Lord et al., 2018).
- Delayed or absent speech development in some children, while others may have highly developed vocabularies but struggle with the pragmatic use of language (Paul et al., 2018).
- Difficulty understanding non-verbal communication, such as gestures, facial expressions, and tone of voice (Kanner, 1943).

B. Restrictive and Repetitive Behaviours :

• Engaging in repetitive movements, such as hand-flapping, rocking, or spinning objects (Lovaas, 1987).

• Insistence on sameness and resistance to change, leading to distress when routines are disrupted (Simonoff et al., 2008).

• Intense and narrow interests, often focusing obsessively on specific topics, objects, or activities (Lord et al., 2020).

• Repetitive speech patterns, including echolalia (repeating words or phrases without understanding their meaning) (McCracken et al., 2002).

C. Sensory Sensitivities :

• Hyper- or hypo-reactivity to sensory stimuli, such as being overly sensitive to loud noises, bright lights, or certain textures (Tomchek & Dunn, 2007).

• Unusual responses to pain, temperature, or other physical sensations (Volk et al., 2014).

• Preference for specific sensory experiences, such as staring at spinning objects or touching certain materials repeatedly (Simonoff et al., 2008).

D. Behavioural and Psychological Characteristics : Children with ASD exhibit diverse behavioural and cognitive characteristics, including difficulties with eye contact, social reciprocity, and sensory sensitivities (Kanner, 1943). Many individuals also experience co-occurring conditions such as anxiety, attention-deficit/hyperactivity disorder (ADHD), and intellectual disabilities (Simonoff et al., 2008).

4. Etiology and Risk Factors : The exact cause of ASD remains unknown, but it is believed to result from a combination of genetic, neurological, and environmental factors. Research suggests the following key causes:

(a) Genetic Factors :

• Studies indicate that ASD has a strong genetic basis, with heritability estimates ranging from 50% to 90% (Sandin et al., 2017).

• Mutations in genes such as SHANK3, CHD8, and FMR1 have been linked to ASD susceptibility (De Rubeis et al., 2014).

• Family studies show that siblings of individuals with ASD have a higher likelihood of being diagnosed with the disorder.

(b) Neurological Factors

• Structural and functional abnormalities in the brain, particularly in the prefrontal cortex, amygdala, and cerebellum, are associated with ASD (Amaral et al., 2008).

• Differences in brain connectivity, such as hyperconnectivity in local circuits and hypoconnectivity between distant brain regions, have been observed in individuals with ASD (Kennedy & Courchesne, 2008).

• Imbalances in neurotransmitters like serotonin, dopamine, and gamma-aminobutyric acid (GABA) may contribute to ASD symptoms (Fatemi et al., 2009).

(c) Environmental Factors :

• Prenatal exposure to toxins such as air pollutants, pesticides, and heavy metals has been linked to an increased risk of ASD (Volk et al., 2014).

• Maternal infections, immune system dysregulation, and complications during pregnancy and birth (e.g., low birth weight, premature birth) are potential risk factors (Atladóttir et al., 2010).

• Advanced parental age, particularly paternal age, has been associated with a higher likelihood of ASD diagnosis (Hultman et al., 2011).

(d) Epigenetic Mechanisms :

• Epigenetic modifications, such as DNA methylation and histone modifications, may alter gene expression and contribute to ASD development (Ladd-Acosta et al., 2014).

• Interactions between genetic predisposition and environmental influences may shape neurodevelopmental outcomes.

5. Diagnosis and Assessment : The diagnosis of ASD is based on criteria outlined in the DSM-5 (APA, 2013). It includes deficits in social communication, restricted and repetitive behaviours, and symptoms present in early development. Standardized tools such as the Autism Diagnostic Observation Schedule (ADOS) and Autism Diagnostic Interview-Revised (ADI-R) are widely used for clinical assessment (Lord et al., 2018).

6. Interventions and Treatment Approaches : Intervention strategies for ASD focus on improving communication, social skills, and adaptive behaviours. The most effective approaches include:

(i) Behavioural Interventions Applied Behaviour Analysis (ABA) is one of the most widely used behavioural interventions for ASD, emphasizing reinforcement techniques to enhance learning and reduce problematic behaviours (Lovaas, 1987).

(ii) Speech and Language Therapy : Children with ASD often struggle with verbal and non-verbal communication. Speech and language therapy aims to improve these skills through structured interventions (Paul et al., 2018).

(iii) Occupational Therapy : Occupational therapy focuses on enhancing motor skills, sensory integration, and daily living activities to improve overall functioning (Tomchek & Dunn, 2007).

(iv) Pharmacological Interventions : Medications such as selective serotonin reuptake inhibitors (SSRIs) and antipsychotics are sometimes prescribed to manage symptoms like aggression, anxiety, and hyperactivity (McCracken et al., 2002).

7. Challenges and Future Directions : Despite significant advancements in ASD research, challenges remain in early diagnosis, access to intervention, and long-term outcomes. Future research should focus on personalized treatment approaches, understanding the neurobiological mechanisms of ASD, and addressing disparities in healthcare access (Lord et al., 2020).

Conclusion : ASD is a complex disorder requiring multidisciplinary approaches for diagnosis and intervention. Continued research and policy initiatives are essential to improving outcomes for children with ASD and their families.

References

1. American Psychiatric Association. (2013), *Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (5th ed.),* Washington, DC : APA.

2. Amaral, D. G., Schumann, C. M., & Nordahl, C. W. (2008), Neuroanatomy of Autism, *Trends in Neurosciences,31*(3), 137-145.

3. Arun, P., Chavan, B. S. (2021), Survey of Autism Spectrum Disorder in Chandigarh, India, Indian Journal of Medical Research, 154(3) : p 476-482, DOI : 10.4103/ijmr.IJMR_930_19

4. Atladóttir, H.O., Thorsen, P., Ostergaard, L., Schendel, D. E., Lemcke, S., Abdallah, M., & Parner, E. T. (2010), Maternal Infection Requiring Hospitalization During Pregnancy and Autism Spectrum Disorders, *Journal of Autism and Developmental Disorders, 40*(12), 1423-1430.

5. Baxter, A. J., Brugha, T. S., Erskine, H. E., Scheurer, R. W., Vos, T., & Scott, J. G. (2015), The Epidemiology and Global Burden of Autism Spectrum Disorders, *Psychological Medicine, 45*(3), 601–613. https://doi.org/10.1017/S003329171400172X

6. Centers for Disease Control and Prevention (2020), Prevalence of Autism Spectrum Disorder Among Children Aged 8 years, *Morbidity and Mortality Weekly Report, 69*(4), 1–12.

7. De Rubeis, S., He, X., Goldberg, A. P., Poultney, C. S., Samocha, K., Cicek, A. E., ... & Buxbaum, J. D. (2014), Synaptic, Transcriptional, and Chromatin Genes Disrupted in Autism, *Nature, 515*(7526), 209-215.

8. Elsabbagh, M., Divan, G., Koh, Y. J., Kim, Y. S., Kauchali, S., Marcín, C., Montiel-Nava, C., Patel, V., Paula, C. S., Wang, C., Yasamy, M. T., & Fombonne, E. (2012), Global Prevalence of Autism and Other Pervasive Developmental Disorders, Autism Research, 5(3), 160–179.

9. Fatemi, S. H., Folsom, T. D., Reutiman, T. J., & Thuras, P. D. (2009), Deficits in GABA Ergic and Glutamatergic Components in Autism : Research Findings and Clinical Implications, *Translational Psychiatry, 9(*1), 1-10.

10. Hultman, C. M., Sandin, S., Levine, S. Z., Lichtenstein, P., & Reichenberg, A. (2011), Advancing Paternal Age and Risk of Autism : New Evidence from A Population-based Study and a Meta-analysis of Epidemiological Studies, *Molecular Psychiatry, 16*(12), 1203-1212.

11. India Autism Centre (2025), Early Detection and Diagnosis of Autism in India : Importance and Challenges, Downloaded from https://www.indiaautismcenter.org/early

12. Kanner, L. (1943), Autistic Disturbances of Affective Contact, *Nervous Child, 2*(3), 217–250.

13. Kennedy, D. P., & Courchesne, E. (2008), Functional Abnormalities of the Default Network During Self- and Other-reflection in Autism, *Social Cognitive and Affective Neuroscience, 3*(2), 177-190.

14. Ladd-Acosta, C., Hansen, K. D., Briem, E., Fallin, M. D., Kaufmann, W. E., & Feinberg, A. P. (2014), Common DNA Methylation Alterations in Multiple Brain Regions in Autism, *Molecular Psychiatry, 19*(8), 862-871.

15. Lai, M.C., Lombardo, M. V., & Baron-Cohen, S. (2014), Autism, *The Lancet,* 383(9920), 896–910

16. Lord, C., Brugha, T. S., Charman, T., Cusack, J., Dumas, G., Frazier, T., ... & Veenstra-VanderWeele, J. (2020), Autism Spectrum Disorder, *Nature Reviews Disease Primers, 6*(1), 1–23.

17. Lord, C., Elsabbagh, M., Baird, G., & Veenstra-Vanderweele, J. (2018), Autism Spectrum Disorder, *The Lancet,392*(10146), 508-520.

18. Lord, C., Risi, S., Lambrecht, L., Cook, E. H., Leventhal, B. L., DiLavore, P. C., ... & Rutter, M. (2018), The Autism Diagnostic Observation Schedule-Generic : A Standard Measure of Social and Communication Deficits Associated with Autism, *Journal of Autism and Developmental Disorders, 30*(3), 205–223.

19. Lovaas, O. I. (1987), Behavioral Treatment and Normal Educational and Intellectual Functioning in Young Autistic Children, *Journal of Consulting and Clinical Psychology, 55*(1), 3–9.

20. Maenner, M. J., Warren, Z., Williams, A. R., Amoakohene, E., Bakian, A. V., Bilder, D. A., Durkin, M. S., Esler, A., Furnier, S. M., Hughes, M. M., Patrick, M., Pierce, K., Salinas, A., Van Naarden Braun, K., & Shaw, K. A. (2023), Prevalence and Characteristics of Autism Spectrum Disorder Among Children Aged 8 Years—Autism and Developmental Disabilities Monitoring Network, 11 Sites, United States, 2020, *Morbidity and Mortality Weekly Report (MMWR) Surveillance Summaries,* 72(2), 1–14.

21. McCracken, J. T., McGough, J., Shah, B., Cronin, P., Hong, D., Aman, M. G., ... & McMahon, W. (2002), Risperidone in Children with Autism and Serious Behavioral Problems, *New England Journal of Medicine, 347*(5), 314–321.

22. Paul, R., Norbury, C., & Gosse, C. (2018), *Language Disorders from Infancy Through Adolescence : Listening, Speaking, Reading, Writing, and Communicating,* Elsevier Health Sciences.

23. Raina, S. K., Chander, V., Bhardwaj, A. K., Kumar, D., Sharma, S., Kashyap, V., Singh, M., & Bhardwaj, A. (2017), Prevalence of Autism Spectrum Disorder among Rural, Urban, and Tribal Children (1-10 Years of Age), Journal of Neurosciences in Rural Practice, 8(3), 368–374. https://doi.org/10.4103/jnrp.jnrp_329_16

24. Sandin, S., Lichtenstein, P., Kuja-Halkola, R., Larsson, H., Hultman, C. M., & Reichenberg, A. (2017), The Heritability of Autism Spectrum Disorder, *JAMA, 318*(12), 1182–1184.

25. Simonoff, E., Pickles, A., Charman, T., Chandler, S., Loucas, T., & Baird, G. (2008), Psychiatric Disorders in Children with Autism Spectrum Disorders : Prevalence, Comorbidity, and Associated Factors in a Population-derived Sample, *Journal of the American Academy of Child & Adolescent Psychiatry, 47(*8), 921–929.

26. Salomone, E., Charman, T., McConachie, H., & Warreyn, P. (2016), Prevalence and Correlates of Autism Spectrum Disorder in Europe : A Systematic Review.

27. Sun, X., & Allison, C. (2010), A Review of the Prevalence of Autism Spectrum Disorder in Asia, *Research in Autism Spectrum Disorders*, 4(2), 156-167.

28. Tomchek, S. D., & Dunn, W. (2007), Sensory Processing in Children with and Without Autism : A Comparative Study Using the Short Sensory Profile, *American Journal of Occupational Therapy, 61(*2), 190–200.

29. Uke, P., Gaikwad, S., Vagha, K., & Wandile, S. (2024), Unraveling the Spectrum : A Comprehensive Review of Autism Spectrum Disorder in India. Cureus, 16(6), e62753. https://doi.org/10.7759/cureus.62753

30. Volk, H. E., Hertz-Picciotto, I., Delwiche, L., Lurmann, F., & McConnell, R. (2014), Residential Proximity to Freeways and Autism in the CHARGE Study, *Environmental Health Perspectives, 119*(6), 873–877.

31. World Health Organization, (2021), Autism Spectrum Disorders, *WHO Fact Sheets*.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 115-119

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Effect of Regular Yogic Practices on the Mental Health of Higher Secondary School Students : A Cross-sectional Study

*Dr. Rakesh Kumar**

Abstract : *The higher secondary school stage is the most critical stage of any individual's life, where students are facing mental, physical, academic, social and personal problems. Intense academic pressure, competition, and family and social expectations affect them greatly, leading to stress, anxiety, and depression, which is a part of mental health.Yoga is considered to be an ancient Indian science that helps to improve the physical, mental, social and spiritual health of an individual.The main objective of this study was to assess the effect of regular yoga practice on the mental health of higher secondary school students.A total of 60 higher secondary school students (30 male and 30 female) aged 14 to 18 years were selected as a sample through a simple random sampling technique from various government higher secondary schools in the Madhepura district of Bihar. A cross-sectional survey was conducted.The pre-mental test was conducted before yoga practice, and the post-mental test was conducted on the same respondents after 30 days of regular yoga practice. Data was collected using the "Mental Health Battery (MHB)" constructed and standardized by Singh and Sengupta (2000). The results obtained showed that (i) the level of mental health of female respondents was better than that of male respondents before and after yoga practice, and (ii) regular yoga practice had a direct positive effect on the mental health of higher secondary school students. There was a positive correlation (r=0.781) between regular yoga practice and the level of mental health of adolescents.*

Key Words : Higher Secondary School Students,Mental Health, Yogic Practices.

Background : The higher secondary school level in the Indian education system is also known as +2 or Higher Secondary. Higher secondary school consists of classes 11 and 12, where students aged around 16–18 years choose a stream and prepare to pursue higher education. At the higher secondary school level, students go through what can be called adolescence, the most critical formative period of a person's life. Adolescence is understood as a period of "storm and stress". During adolescence, an individual experiences rapid changes in his / her physical, mental, emotional, moral, familial, and social context.According to Jersield (1963), adolescence is the period of years during which an individual progresses rapidly from childhood to adulthood mentally, physically, emotionally, and socially. During this time, many types of external and internal changes keep happening in the body of adolescents. During this time, some hormones are also secreted inside their body which bring physical and emotional changes inside the person. Such physical and emotional changes have a negative impact on the family, social, institutional relations etc. of adolescents and create stress in them. Apart from this, due to the increasing population and limited opportunities in the country, adolescents have to face tough competition in the field of education and job among their peers as well as at the family and social level. High aspirations and tough competition sometimes make them very depressed. Stress about a bright and

* *Assistant Professor, Department of Psychology, Thakur Prasad College (B. N. Mandal University), Madhepura (Bihar)*

good future, worry about scoring good marks in exams, worry about passing competitive exams, *etc*. create more stress and depression in adolescents.

Mental health includes emotional, psychological, and social well-being. It is very important at every stage of life, from childhood to adolescence, adolescence to adulthood, and adulthood to old age. A person's good mental health helps him avoid bad habits, be flexible, make good decisions, solve problems, and adjust well in various difficult situations.

The word Yoga literally means "unity" which is derived from the Sanskrit word "Yuj" which literally means to join or unite. Yoga is the science of living a person's life in the right way, which is aimed to be incorporated in daily life.According to Saraswathi (2002), from a spiritual perspective, yoga is described as the union of individual consciousness and universal consciousness. On a more practical level, yoga is a means of achieving balance and harmony in the body, mind and emotions. According to Saraswati (2000) and Saraswati (2006), yoga works on almost all aspects of a person such as physical, mental, emotional, spiritual etc.Poor mental health can have immense negative impact on the overall development of higher secondary school students, thereby, leading to the development of various social evils such as alcohol and tobacco addiction, delinquent behaviour, etc.In yoga science it is believed that a person is a mental, physical and spiritual being and yoga helps a lot in the balanced development of these three. Regular yoga can prove to be very beneficial for higher secondary school students as well. It can contribute significantly to their mental, physical and spiritual development. Some techniques to deal with unique issues such as excessive pressure to fit into stressful schedules and uncertainty about the future, regular yoga can play an important role in dealing with insecurities about changes in the body. According to Sarason and Agnihotri (1982) and Sushil (2019), regular yoga practice balances the human body and removes toxins from inside the body and promotes healthy living. Most studies in this area show the beneficial effects of meditation and yoga practice in managing anxiety (Sarason and Agnihotri, 1982; Sushil, 2019), depression and other types of neurotic disorders (Talles et al., 1994; Kumar, 1993). Richard and Patricia (2005) based on the findings of their study stated that regular yoga practice is beneficial in managing bad habits like drug addiction, alcohol addiction, etc. It is also capable of reducing aggressive behavior and negative thoughts in a person and helps in calming the mind.

The higher secondary school stage is the most critical stage of any individual's life, where students are facing mental, physical, academic, social and personal problems. Intense academic pressure, competition, and family and social expectations affect them greatly, leading to stress, anxiety, and depression, which is a part of mental health.Yoga is considered to be an ancient Indian science that helps to improve the physical, mental, social and spiritual health of an individual.Therefore, this study was designed to explore the effect of regular yoga practice on the mental health of higher secondary school students.

Objective of the Study : The main objective of this study was to assess the effect of regular yoga practice on the mental health of higher secondary school students.

Hypothesis of the Study :

(i) The level of mental health of female respondents of higher secondary school will be better than that of male respondents before regular yoga practice.

(ii) The level of mental health of female respondents of higher secondary school will be better than that of male respondents after 30 days of regular yoga practice, and

(iii) Regular yoga practice will have a positive impact on the mental health of higher secondary school students.

Method of the Study :

Sample and Universe : A total of 60 higher secondary school students (30 male and 30 female) aged 14 to 18 years were selected as a sample through a simple random sampling technique from

various government higher secondary schools in the Madhepura district of Bihar. A cross-sectional survey was conducted. The pre-mental test was conducted before yoga practice, and the post-mental test was conducted on the same respondents after 30 days of regular yoga practice.

Tools of Data Collection : Data was collected using the "Mental Health Battery (MHB)" constructed and standardized by Singh and Sengupta (2000). This scale has 130 items having six groups (emotional stability, overall adjustment, autonomy, security and insecurity, self-concept and intelligence). Low score indicates "very poor mental health", and high score indicates "excellent mental health". It has been found to be very suitable, appropriate, valid and reliable for measuring the level of mental health in the Indian-cultural context. Reliability: The split half (odd-even) reliability coefficient using Guttman formula was found to be 0.725 to 0.792 (domain wise) significant at <.01 level, and criterion validity coefficient was found to be 0.681 to 0.601 significant at <.01 level of this scale.

Results and Discussions : It was found that the level of mental health of female respondents before the yoga practices had the highest mean score (89.2) at the level of the mental health measure compared to the male respondents (87.6). The obtained lower-upper 95% confidence limits for the mean (for males 85.48-89.32, and for females 87.64-91.76) were found significant at <.05 level of confidence (Table-1). It means that there is a 95% chance that if we collect and analyze the data again using the same scale on the same respondent, the mean value of both males and females on the mental health scale will fall in the same range. If we compare the mean of both, then it will be clear that before yoga practices then the mean score of the female respondent is high compared to the male respondent. It can be said that the level of mental health of female respondents before yoga practice was better than that of male respondents. It means that 1st hypothesis is accepted.

Further, it found that the level of mental health of female respondents after 30 days of the yoga practices had the highest mean score (113.36) also at the level of the mental health measure compared to the male respondents (111.53). The obtained lower-upper 95% confidence limits for the mean (for males 109.24-114.84, and for females 111.17-115.55) were found significant at <.05 level of confidence (Table-1). If we compare the mean of both, then it will be clear that after 30 days of yoga practice then the mean score of the female respondent is high compared to the male respondent. But there is very little difference in the mean score of both male and female respondents. It can be said that the level of mental health of female respondents after yoga practice was better than that of male respondents. It means that 2nd hypothesis is also accepted.

Now, if we discuss the relationship between yoga practice and the level of mental health of higher secondary school students, it was found that the level of mental health of both the respondents (male and female) before yoga practice had the lowest mean score (male 87.6, and female 89.2) at the level of the mental health measure compared to them after 30 days of yoga practices (male 111.53, and female 113.36). It means that the practice of yoga had a direct positive effect on the mental health of adolescents (Table-1 and Graph-1). We can say that there was a positive association between yoga practice and the level of mental health of adolescents. It means that 3rd hypothesis is also accepted.

Further, if we look at table-2, it will be clear that there is a positive association between both the variables - pre-test and post-test.It's indicated that regular yoga practice had a positive effect on the overall mental health of higher secondary school students.In other words, it can be said that as a person practices yoga regularly, their overall mental health will be good.Based on 60 observations, the correlation between "pre-test scores" and "post-test scores" was found to be 0.781. Both variables were statistically significant (p<.01), had a linear relationship, and the direction of the relationship was positive. Its indicates that regular yoga practices are associated with the overall mental health of higher secondary school students.Thus, it can be said that there was a positive relationship between regular yoga practice and mental health of higher secondary school students. It means that 3rd hypothesis is accepted.

Table-1

Gender	N	Level of Mental Health					
		Before Practices of Yoga			After Practices of Yoga		
		Mean	SD	Lower- Upper 95% CL for Mean	Mean	SD	Lower- Upper 95% CL for Mean
Male	30	87.6	10.26	(85.48-89.32)	111.53	7.07	(109.24-114.84)
Female	30	89.2	11.30	(87.64-91.76)	113.36	8.71	(111.17-115.55)
Total	**60**						

Table-2

Correlation between Pre-Test Score (Before Yoga Practices) and Post-Test Score (After Yoga Practices) of senior secondary school students			
Correlation between Pre-Test Score (Before Yoga Practices) and Post-Test Score (After Yoga Practices) of overall Mental Health		**Pre-Test Score**	**Post-Test Score**
Pre-Test Score	Pearson Correlation	1	**0.781****
	Sig. (2-tailed)		<.0001
	N	60	60
Post-Test Score	Pearson Correlation	**0.781****	1
	Sig. (2-tailed)	<.0001	
	N	60	60
**** Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).***			

Graph-1

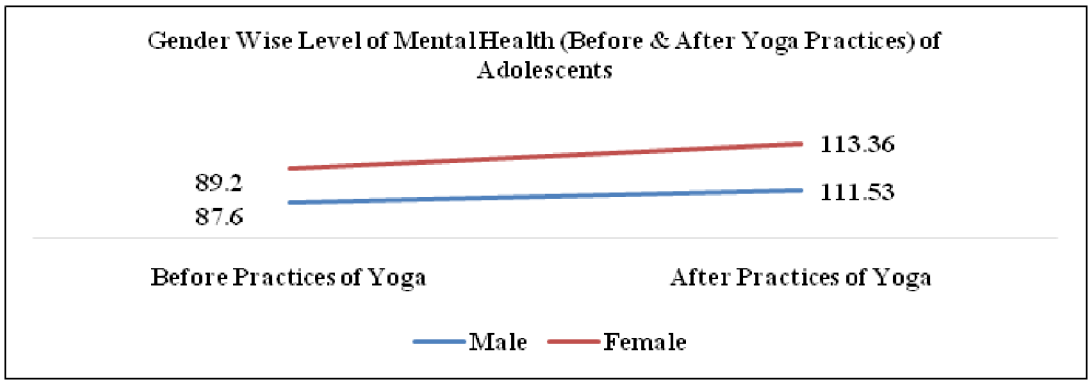

Conclusions : To conclude it may be said that:

(i) The level of mental health of female respondents before and after yoga practice was better than that of male respondents, and

(ii) The practice of yoga had a direct positive effect on the mental health of higher secondary school students. There was a positive association between yoga practice and the level of mental health of higher secondary school students.

References

1. Jersield, A.T. (1963), *"Psychology of Adolescence",* Health and physical education, Book, (P:103), Saraswati House Pvt. Ltd.

2. Kumar, H. K. (1993),*"Yoga and Drug Addiction",* eBook, Publisher- B.R. Pub. Corporation, Delhi, Pp. 94-101.

3. Richard, P., & Patricia, L. G. (2005), *"Sudarshan Kriya Yogic Breathing in the Treatment of Stress, Anxiety, and Depression : Part I-Neurophysiologic Model"*, Journal of alternative and complementary medicine (New York, N.Y.) 11(1), 189-201, PMID : 16131297**,** DOI : 10.1089/acm.2005.11.711, Source PubMed.

4. Saraswati, S. (2002), *"Asana Pranayama Mudra Bandha",* 3rd revised Edition, Yoga Publication Trust, Munger, Bihar.

5. Saraswati, S. (2000), *"Four Chapters of Freedom : Commentary on the Yoga Sutras of Patanjali"*, Yoga Publication Trust, Munger, Bihar.

6. Saraswati, S. (2006), *"Dynamics of Yoga : The Foundation of Bihar Yoga"*, 2nd Edition, Yoga Publication Trust, Munger, Bihar.

7. Sarason, A., & Agnihotri, R. K. (1982), *"Beneficial Effects of Meditation and Yoga Practices in Managing Anxiety",* Yoga Publication Trust, Munger, Bihar.

8. Singh, A. K., & Sengupta, A. (2000), *"Mental Health Battery (MHB)"*, National Psychological Corporation, Bhargava Bhawan, 4/230, Kacheri Ghat, Agra

9. Sushil, K. J. (2019), *"The Effectiveness of Yoga in Alcohol De-Addiction and Rehabilitation"*, Publisher- IJERT, Paper ID : IJERTV8IS100097, Vol. 08, Issue 10, Pp. 56-80.

10. Telles, S., Nagarathna, R., & Nagendra, H.R. (1994), *"Breathing Through a Particular Nostril can Alter Metabolism and Autonomic Activities",* Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 38 : 1337.

11. https://www.worldcat.org/title/yoga-and-drug-addiction/oclc/622724178

12. https://www.researchgate.net/publication/7984597_Sudarshan_Kriya_Yogic_Breathing_in_the_Treatment_of_Stress_Anxiety_and_Depression_Part_I-Neurophysiologic_Model

13. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/16131297

14. https://www.ijert.org/the-effectiveness-of-yoga-in-alcohol-de-addiction-and-rehabilitation

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 120-123

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Internet Addiction and Depression, Anxiety, and Stress in Adolescents : A Psychological Study

*Vijay Kumar** *Dr. Rajiv Ranjan***

Internet addiction is a globally prevalent phenomenon. Internet usage has grown rapidly every year around the world, especially among youth, making it important to assess and understand the various factors associated with it.Depression, anxiety and stress are psychological disorders that can seriously impact a person's feelings, thoughts, behaviour and sense of wellbeing.The main objective of this study was to understand the role of Internet addiction on psychological disorders such as depression, anxiety and stress among adolescents.For this, a total of 100 adolescents (50 with internet addiction and 50 without addiction) were selected as a sample using a purposive sampling method from Barh town of Patna district, Bihar.The "Anxiety, Depression and Stress Scale (ADSS-BSPSA-2021)" developed and standardized by Pallavi, Megha, Manoj, Sandhya, and Amitabh (2021) to understand the level of anxiety, depression, and stress were used.The data obtained was analyzed using various statistical tools such as mean, SD, t-value, and p-value. to get meaningful results.The results showed that adolescents with Internet addiction had lower levels of depression, anxiety, and stress than adolescents who did not suffer from Internet addiction.Several studies have shown that adolescents with higher Internet addiction scores are more likely to experience these mental health challenges. Conversely, adolescents struggling with depression, anxiety, and stress may adopt Internet use as a coping mechanism, potentially leading to a cycle of addiction.

Key Words : *Adolescents, Internet Addiction, Depression, Anxiety and Stress.*

Background : Adolescence is the most critical formative period in a person's life. Adolescence has been described as a period of 'storm and stress' during which the individual experiences rapid changes in his physical, mental, moral, emotional and social context. Jersild (1963) in his book *'Psychology of Adolescence'* has defined adolescence as the period of the year during which boys and girls move mentally, emotionally, socially and physically from childhood to adulthood. Adolescence is usually characterised by rebellious behaviour, lying, cheating, performance problems in school, sibling rivalry, drug and alcohol abuse, depression and sexuality problems. Children between the ages of 12 and 18 are the main victims of the problem of maladjustment. During this period, they experience various internal and external changes in their bodies. Certain types of hormones are secreted during this period which cause physical and emotional changes within individuals. Such physical and emotional changes also affect the adolescents' relationship with society and family. Such factors cause stress in the lives of adolescents. Moreover, due to increasing population and limited opportunities, adolescents face tough competition with their peers in the field of education, as well as at the family, social and economic level. High aspirations and tough competition sometimes make them depressed. Stress about

* ***Sr. Assistant Professor, Department of Psychology, ANS College Barh (PPU), Patna (Bihar)***

** ***Associate Professor, Department of Psychology, S. M. D. College, Punpun (PPU), Patna***

a good future, anxiety about scoring good marks in examinations, anxiety about passing competitive examinations, etc. cause more stress and depression in adolescents.

Internet addiction refers to excessive or poorly controlled behavior to access the Internet. According to Young (2013), Internet addiction involves compulsive behaviors related to any online activity that disrupt normal daily life and cause strain on social relationships. It makes adolescents more preoccupied with the Internet, causing them to use it day and night without caring about its side effects.According to Valkenburg and Peter (2009), the trend of Internet use among adolescents is increasing day by day. Adolescents spend a lot of time on the Internet and use it extensively for social interaction.Further, according to Basu (2015), Internet addiction can be considered as serious as drug addiction and can be a major challenge for our society.According to Dong, et al (2020), during the COVID-19 pandemic and the subsequent lockdown, adolescents in particular have spent more time on the internet for their studies, playing online games, using social media, and watching movies. This has led to an increase in internet addiction among adolescents.Similarly, Lin (2020) states that the risk of Internet addiction appears to be more problematic among adolescents, as they have a natural tendency to study online and use the Internet, which has been shown to increase associated psychopathology, academic decline, and inappropriate behavior patterns.

According to Griffith (1998) the enormous growth of the Internet has had a huge impact on psychological research in understanding its role in emotional conditions and has increased interest in the possibility of Internet addiction. According to Kandel (1998) there are many emotional factors that may be related to college students' Internet addiction. The most notable of these factors are depression, anxiety, and stress. Research on Internet addiction and depression demonstrated that excessive Internet use, which results in a disruption of the normal life of the individual and those around him. People who suffer from anxiety and stress often have great difficulty communicating and interacting with others in a healthy, positive, and meaningful way. These human characteristics are seen as important determinants of Internet addiction.

Objective of the Study : The main objective of this study was to understand the role of Internet addiction on psychological disorders such as depression, anxiety and stress among adolescents.

Hypothesis of the Study : Adolescents with Internet addiction will have lower levels of depression, anxiety, and stress than adolescents who do not suffer from Internet addiction.

Methods of the Study : A total of 100 adolescents (50 with internet addiction and 50 without addiction) were selected as a sample using a purposive sampling method from Barh town of Patna district, Bihar. The data collection was done using the "Anxiety, Depression and Stress Scale (ADSS-BSPSA-2021)". Pallavi, Megha, Manoj,Sandhya and Amitabh constructed and standardized this scale in 2021. The scale comprises of 48 items divided into three subscales which are: (i) Anxiety Subscale: It comprises of 19 items covering various symptoms that are manifestations of anxiety. (ii) Depression Subscale: It consists of 15 items representing the different symptoms of depression, and (iii) Stress Subscale: It is a scale having 14 items, and they are covering the symptoms that people experience in the state of stress. Each item is scored 1 if endorsed 'yes' and '0' if endorsed'no'. The range of the score is 0 to 19 for the anxiety subscale, 0 to 15 for the depression subscale, and 0 to 14 for the stress subscale. A higher score indicates experiencing greater anxiety, depression, and stress, and vice versa.

Analysis of Data : The data obtained was analyzed using various statistical tools such as mean, SD, t-value, and p-value. to get meaningful results.

Results and Discussions : Keeping in mind the main objective of this study, the sample of this study was divided into two parts: one who used the Internet regularly and the other who used the Internet occasionally. If we look at Table 1, we find that the adolescents who used the Internet regularly

had a mean score on the depression, anxiety and stress scale of 0.44 and SD 0.72; -0.12 and SD 0.52; and -2.72 and 0.70, while the adolescents who used the Internet occasionally had a mean score on the depression, anxiety and stress scale of 0.67 and SD 0.42; 0.32 and SD 0.23; and 0.99 and 2.10, respectively. If the mean scores on the depression, anxiety and stress scale of the two are compared, it is found that the adolescents who used the Internet regularly had lower mean scores on the above three dimensions than the adolescents who used the Internet occasionally. If we look at Table 1 again, it is found that the t-values on the above three dimensions are -1.78, -1.57, and -12.18, and the significance level is 0.01 (two-sided) at 0.0001. This means that adolescents with internet addiction had lower levels of depression, anxiety, and stress than adolescents who did not suffer from internet addiction.It means that the hypothesis formulated by this study was accepted. The study hypothesized that adolescents with Internet addiction would have lower levels of depression, anxiety, and stress than adolescents who do not suffer from Internet addiction.

Table-1 : Internet Addiction and Depression, Anxiety, and Stress in Adolescents

Adolescents	N	Depression				Anxiety				Stress			
		Mean	SD	t-value	Sig. (2-tailed)/ p-value	Mean	SD	t-value	Sig. (2-tailed)/p-value	Mean	SD	t-value	Sig. (2-tailed)/ p-value
With Internet Addiction	50	0.44	0.72	-1.78	<.0001	-0.12	0.52	-1.57	<.0001	-2.72	0.70	-12.18	<.0001
Without Internet Addiction	50	0.67	0.42			0.32	0.23			0.99	2.10		
Total	**100**												
Significance Level at 0.01 (2-sided)													

Conclusions : Overall, it can be concluded from this study that adolescents with regular Internet addiction had lower levels of depression, anxiety, and stress than adolescents who used the Internet occasionally. Findings from several studies have shown that adolescents with high Internet addiction are more likely to experience mental health challenges. Conversely, adolescents suffering from depression, anxiety, and stress may adopt Internet use as a coping mechanism, potentially leading to a cycle of addiction.

References

1. Basu, T.J. (2015),*"You Play Games a Lot, Are You an Addict? The WHO Recognized Gaming Addiction as a Mental Illness, but is it Real?",* Addict Behav, Vol-IX, Pp. 41-49.

2. Dong, H., Yang, F., Lu, X. (2020),*"Wei H Internet Addiction and Related Psychological Factors Among Children and Adolescents in China During the Coronavirus Disease 2019 Epidemic",* Front Psychiatry, Vol. IV, Pp. 87-96, doi:10.3389/fpsyt. 2020.00751.

3. Griffiths, M. D. (1998), *"Internet Addiction : Does it Really Exist? In : Gackenbach, J. (Ed.), Psychology and the Internet : Intrapersonal, Interpersonal, and Transpersonal Applications",* Academic Press, New York, Pp. 61-75.

4. Jersield, A.T. (1963), *"Psychology of Adolescence"* Health and Physical Education, Book, (P:103), Saraswati House Pvt. Ltd.

5. Kandell, J. J. (1998), *"Internet Addiction on Campus : The Vulnerability of College Students",* Cyber Psychology & Behavior, Vol. 1, Pp. 11–17.

6. Lin, M.P. (2020),*"Prevalence of Internet Addiction During the COVID-19 Outbreak and Its Risk Factors Among Junior High School Students in Taiwan",* Int J. Environ Res Public Health, Vol. VII, Pp. 112-121.

7. Pallavi, B., Megha, S., Manoj, P., Sandhya, & Amitabh (2021), *"Anxiety, Depression and Stress Scale (ADSS-BSPSA)"*, National Psychological Corporation, Agra.

8. Valkenburg, P.M. & Peter, J. (2009),*"Social Consequences of the Internet for Adolescents :A Decade of Research",* Curr Dir Psychol Sci, Vol. XVIII, Pp. 1–5.

9. Young, K.S. (2013),*"Treatment Outcomes Using CBT-IA with Internet Addicted Patients",* J Behav Addict, Vol. V, Pp. 209–215.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 124-126

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Credit Risk Management Practices and NPA Performance in Rural Branches : A Case Study of Siwan District

*Vijay Kumar Sharma**

Abstract : *This study explores the effectiveness of credit risk management practices in mitigating non-performing assets (NPAs) in rural branches of public sector banks, focusing specifically on Punjab National Bank (PNB) and Central Bank of India (CBI) in the Siwan district of Bihar. The research identifies procedural gaps, borrower-level defaults, and structural issues that influence loan performance. Siwan, being a predominantly agricultural district, poses unique challenges such as seasonal income cycles, low financial literacy, and informal borrowing behavior. These factors impact both credit disbursement and repayment. The paper further notes that despite policy-level reforms and technological interventions, rural branches continue to struggle with high NPA levels due to weak appraisal systems, inadequate post-disbursement monitoring, and political influences. The study uses field data and qualitative interviews to recommend improvements in credit processes and borrower engagement mechanisms.*

Keywords : *Credit Risk Management, Non-Performing Assets, Rural Banking, Siwan District, Public Sector Banks, Recovery Practices*

1. Introduction : Non-performing assets (NPAs) continue to be one of the most critical challenges affecting the financial health of public sector banks in India. The situation is more complex in rural branches, where loan recovery is often impeded by social, economic, and administrative barriers. With the goal of inclusive lending and rural development, public sector banks have extended credit facilities under various schemes like Kisan Credit Cards, PMEGP, SHG loans, and MSME funding. However, such efforts have frequently resulted in rising NPAs due to weak credit monitoring and inefficient risk management.

Siwan district, situated in Bihar, is primarily an agrarian region with widespread financial inclusion efforts underway. However, challenges such as informal income patterns, political influences, and lack of financial awareness have affected the overall loan recovery environment. This study evaluates the credit risk management frameworks of rural branches of Punjab National Bank and Central Bank of India and correlates them with the NPA trends from 2020 to 2023.

2. Objectives of the Study :

1. To evaluate the credit appraisal and monitoring practices in rural bank branches.

2. To examine the trends in NPAs in Punjab National Bank and Central Bank of India branches of Siwan district.

3. To identify major causes of loan defaults at the rural level.

* ***Research Scholar, Faculty of Commerce, Jai Prakash University, Chapra***

4. To provide practical recommendations for strengthening credit risk management systems in rural banking.

3. Research Methodology : This is a descriptive and empirical study based on both primary and secondary data.

- **Sample :** 6 rural branches – 3 each from PNB and CBI in Siwan district.
- **Primary Data :** Interviews with branch managers and loan officers.
- **Secondary Data :** NPA reports, RBI bulletins, bank annual reports (2020–2023).

Key Indicators :

- Gross NPA Ratio = (Gross NPAs / Gross Advances) × 100
- Recovery Rate = (Recoveries / Total Overdues) × 100
- **Tools Used :** Trend analysis, comparative graphs, and qualitative observations.

4. Credit Risk Management Practices in Rural Branches : Rural branches primarily follow standard procedures for credit appraisal but often lack comprehensive risk-scoring mechanisms. Credit decisions are sometimes influenced by local recommendations or political pressure. Many branches do not have dedicated credit officers and rely on general staff for processing and monitoring loans.

There is minimal use of technology in post-disbursement follow-ups. Periodic inspections, income verification, and repayment behavior checks are either delayed or not conducted. Staff shortages, high workloads, and limited training in risk management exacerbate the problem. SHG loans, KCCs, and small business loans are the most vulnerable categories due to inadequate borrower education.

5. NPA Performance: Trends and Issues The following table presents a summary of NPA ratios and recovery rates in rural branches (illustrative data):

Year	Bank	NPA Ratio (%)	Recovery Rate (%)
2020	PNB	9.2	45.6
2021	PNB	8.5	49.3
2022	CBI	10.1	41.7
2023	CBI	9.3	46.0

Observations :

- CBI has consistently shown higher NPA ratios than PNB in rural branches.
- Recovery rates have improved slightly but remain under 50%.
- The bulk of NPAs originate from agriculture, SHG, and small enterprise loans.
- In some cases, borrower migration and misuse of funds have made recovery difficult.

6. Key Challenges Identified :

- Inadequate documentation and weak Know Your Customer (KYC) practices.
- Political and social pressure on branch staff to sanction loans.
- Technological backwardness and delayed detection of delinquency.
- Absence of trained personnel for continuous monitoring and follow-up.
- Borrower illiteracy leading to poor utilization of loan amounts.
- Poor legal recovery infrastructure in rural areas (e.g., slow DRT/Lok Adalat processes).

- High seasonal default due to monsoon failure or market fluctuations in agricultural prices.

7. Suggestions and Recommendations

- **Strengthen Pre-sanction Checks :** Use Aadhaar-linked analytics and alternative data scoring.
- **Improve Borrower Education :** Regular financial literacy workshops, especially for SHGs and farmers.
- **Technology Deployment :** Digital credit monitoring tools, mobile apps, and SMS reminders.
- **Decentralized Recovery Mechanisms :** Local-level recovery officers with community coordination.
- **Incentivize staff :** Link employee appraisals and incentives with loan recovery performance.
- **Policy support :** Faster legal action on willful defaults and better support from district authorities.
- **Post-loan monitoring :** Regular verification visits and utilization checks to prevent fund diversion.

8. Conclusion : The study highlights that rural branches continue to face persistent challenges in managing NPAs due to inadequate risk assessment frameworks and weak monitoring systems. Despite the rollout of various credit schemes and inclusion efforts, sustainable credit growth in rural areas is possible only when robust credit risk practices are embedded into daily operations. A combination of better-trained staff, smarter analytics, and borrower engagement can help reduce NPAs and ensure financial inclusion goals are achieved without compromising asset quality.

References

1. Reserve Bank of India (2021–2023), Reports on Trend and Progress of Banking in India
2. Annual Reports of Punjab National Bank and Central Bank of India (2020–2023)
3. BIS Guidelines on Credit Risk Management
4. Field Interviews Conducted in Rural Branches of Siwan District
5. Government of India (2022), Financial Inclusion Dashboard

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 127-128

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Awareness and Perception of Digital Marketing in Saran District, Bihar : A Theoretical Perspective

*Sunny Kumar**

Abstract *: This conceptual paper explores the current state of awareness and perception of digital marketing among consumers in Saran District, Bihar. In an era of increasing internet penetration and smartphone usage, even traditionally underserved regions like rural Bihar are gradually integrating with the digital economy. The paper delves into the theoretical underpinnings of digital marketing's influence, drawing on behavioural, sociocultural, and technological perspectives. Through a review of relevant literature, the study identifies the key factors that influence awareness and perception in the region. It highlights the significance of regional language content, trust-building mechanisms, infrastructural support, and digital literacy as pivotal components in shaping consumer attitudes toward digital platforms. This study aims to provide a foundational understanding that can be expanded through empirical research in the future.*

Key words : *Digital Marketing, Consumer Awareness, Rural Bihar, Saran District, Perception, Digital Literacy, Regional Language Content, Theoretical Perspective*

1. Introduction : The rapid digitalisation of India's economy has ushered in a new era for marketing practices. While urban consumers are already well-acquainted with online marketing channels, rural districts like Saran in Bihar are now experiencing this digital shift. As internet services and smartphone access continue to grow, so does the importance of understanding how these changes affect consumer behaviour in semi-urban and rural settings. This paper focuses on the theoretical dimensions of awareness and perception of digital marketing among consumers in Saran District. It seeks to explore the socioeconomic, cultural, and technological factors that shape consumer attitudes towards digital media and advertising.

2. Concept of Digital Marketing : Digital marketing refers to promotional activities conducted through electronic platforms, especially the internet. It encompasses a range of tools such as social media marketing, email marketing, search engine optimisation (SEO), influencer marketing, and online advertising. Unlike traditional forms of marketing that rely on physical presence or interpersonal contact, digital marketing allows for instantaneous communication, broad outreach, and data-driven targeting. For rural regions like Saran District, digital marketing represents an opportunity to bridge the information gap and expand consumer access to diverse products and services.

3. Theoretical Foundation : The foundation of this study is built on several interrelated theories : **(i)** the Technology Acceptance Model (TAM), which suggests that perceived usefulness and ease of use determine users' adoption of new technology; **(ii)** the Diffusion of Innovations theory, which explains how new ideas and technologies spread through communities; and **(iii)** consumer perception theory, which describes how individuals interpret marketing stimuli based on cultural, social, and psychological factors. These models help explain how rural consumers in Saran District may become

* ***Research Scholar, Faculty of Commerce, Jai Prakash University, Chapra***

aware of and develop perceptions about digital marketing based on exposure, community influence, and accessibility.

4. Factors Influencing Awareness : Awareness of digital marketing in Saran District is influenced by a combination of technological, demographic, and media-related factors. Firstly, mobile phone ownership and internet connectivity serve as basic enablers of digital access. Secondly, age and education levels determine familiarity with online tools. Younger consumers and those with higher education levels are typically more digitally aware. Thirdly, exposure to digital content through YouTube, WhatsApp, and Facebook, especially in Bhojpuri or Hindi, plays a vital role in capturing attention. Government campaigns like Digital India and NGO-led digital literacy drives also contribute to enhancing awareness.

5. Perception Towards Digital Marketing : Perception is shaped by a consumer's experience, cultural values, and the trustworthiness of the marketing channel. In Saran District, many rural consumers view digital platforms with curiosity but also with caution. Concerns over fraud, privacy, misleading advertisements, and lack of physical verification often hinder positive perception. However, when digital marketing incorporates local language content, showcases community influencers, and offers options like cash on delivery, trust levels tend to rise. Perception also improves when peers or family members endorse a digital product or service, blending traditional and modern trust systems.

6. Challenges and Opportunities : Digital marketing in rural Bihar faces challenges such as poor network infrastructure, low digital literacy, limited device availability, and language barriers. Many potential users are either unaware of how to access digital services or mistrust them due to previous negative experiences. However, opportunities abound. Regional content creation, integration with traditional channels (e.g., local radio), and simple, user-friendly mobile interfaces can significantly increase reach. Moreover, government and private initiatives aimed at improving digital access and financial literacy are gradually paving the way for a more inclusive digital economy in places like Saran.

7. Conclusion : The rapid growth of digital marketing presents both opportunities and challenges for rural districts like Saran in Bihar. This theoretical study reveals that while awareness of digital platforms is gradually increasing—especially among younger and semi-urban populations—overall perception remains varied due to infrastructural, educational, and cultural limitations. Factors such as local language usage, community influence, and trust in digital platforms significantly shape how digital marketing is received in rural areas. For digital marketing to be truly effective in regions like Saran, it must be tailored to the local context. Regional language content, trust-building initiatives, mobile-friendly platforms, and digital literacy programs are critical to enhancing both awareness and positive perception. Marketers and policymakers must consider these socio-cultural realities to design inclusive, accessible, and sustainable digital strategies. Future research can build on this theoretical foundation with empirical studies to further explore consumer behavior, trust, and adoption patterns in rural Bihar.

References

1. Davis, F. D. (1989), Perceived Usefulness, Perceived Ease of Use, and User Acceptance of Information Technology, MIS Quarterly, 13(3), 319–340. https://doi.org/10.2307/249008

2. Kotler, P., & Keller, K. L. (2016), Marketing Management (15th ed.). Pearson Education.

3. Rogers, E. M. (2003), Diffusion of Innovations (5th ed.). Free Press.

4. Solomon, M. R. (2017). Consumer Behavior : Buying, Having, and Being (12th ed.), Pearson.

5. Chatterjee, S., & Kumar, A. (2020), Digital Marketing and Rural India : Challenges and Prospects, Journal of Rural Development Studies, 36(2), 45–52.

6. Sharma, R., & Gupta, A. (2021), Understanding Digital Marketing Adoption in Rural India, International Journal of Marketing and Technology, 11(4), 25–39.

7. Singh, V., Yadav, A., & Patel, R. (2022), Role of Vernacular Content in Digital Marketing Adoption : A Study of Rural Consumers in Bihar. Indian Journal of Consumer Research, 8(3), 112–123.

8. Kumar, P., & Pandey, N. (2021), Influence of Digital Awareness on Rural Consumer Behaviour : A Study in Saran District, Bihar. Bihar Journal of Rural Economics and Development, 19(1), 67–74.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 129-137

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

जनपद जौनपुर में कृषि भूमि उपयोग का सामाजिक आर्थिक विकास पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन

*डॉ. रमाशंकर यादव**

सारांश–*कृषि भूमि उपयोग मानवीय आवश्यताओ के अनुसार परिवर्तनशील होते है। जिसमे कृषि भूमि का बदलता स्वरूप स्थान एवं काल के सन्दर्भ में सदैनव परिवर्तन शील रहा है। जो मानवीय समुदाय के आर्थिक स्रोतों एवं व्यवसायिक क्रियाओं में परिवर्तन से प्रभावित होती है। प्रस्तुत शोध–पत्र विगत दो (1995–2020) दशकों में कृषि भूमि उपयोग परिवर्तन का उसके जनपद जौनपुर के सामाजिक आर्थिक विकास पर प्रभाव जैसे– आय में वृद्धि, आत्मनिर्भरता, औद्योगिक विकास, सन्तुलित आहार शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर, आवास की उपलब्धता, इत्यादि, पर केन्द्रित है।*

भूमिका–कृषि भूमि एक सीमित एवं बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। जिसका उपयोग मानव, मानव सभ्यता कें विकास के आरम्भिक चरणों में खाद्य आपूर्ति एवं आवास के रूप में भूमि उपयोग करना प्रारम्भ किया किन्तु सीमित मानव एवं उसकी आवश्यताओं के कारण कृषि भूमि उपयोग को अधिक प्रभावित नहीं कर सकी।

वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या तथा उसकी आधारभूत माँग रहने के लिए आवासीय भूमि खाद्य आपूर्ति के लिए कृषि भूमि उपयोग के परिवर्तन में तीव्रता आई है। समय के अनुरूप मानव के विकासीय प्रवृत्ति नें उसके सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ ही, प्रोद्योगिकी प्रवृत्ति का बन गया है इन सभी प्रकार के परिवर्तनों में आर्थिक क्रियाओं की बदलती प्रवृत्ति एवं उनका तीव्र विस्तार कृषि भूमि उपयोग को सर्वाधिक प्रभावित किया है और परिवर्तित कृषि भूमि उपयोग स्वयं उस स्थान के मानव की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को परिवर्तित किया है।

भूमि उपयोग तथा उसके अध्ययनों से सम्बंधित श्री गणेश जी. पी. मार्क्स (1864), फिंच (1925) कार्ल सावर (1919) जैसे विद्वानों ने किया है किन्तु भूमि उपयोग के वास्तविक रहस्यों का उद्घाटन स्टाम्प द्वारा (1931) एवं बक जैसे विद्वानों ने किया। प्रो. बाल्केन वर्ग की अध्यक्षता में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ (1949) में गठन के बाद विश्व के देशों में भूमि उपयोग सम्बन्धित कार्यों का प्रारम्भ हुआ।

1964 में कोयाक द्वारा प्रकाशित "कृषि मानचित्रावली" भूमि उपयोग की महत्वपूर्ण श्रृंखला थी। भारतीय सन्दर्भ में भूमि उपयोग सर्वेक्षण एवं शोध कार्य का सूत्रपात (1945–52) में एस. पी चटर्जी द्वारा 24 परगना एवं हावड़ा जिले में प्रो. बी.ली.एल. प्रकाश राव, (1947–56) गोदावरी नदी क्षेत्र में, पो ओ.पी. भारद्वाज ने व्यास एवं सतलज नदी के दोआब क्षेत्र में।

भाटिया–"सामाजिक आर्थिक, तकनीकी एवं संघटनात्मक कारकों के पारस्परिक क्रिया एवं निरंतरता के परिणाम स्वरूप भूमि उपयोग का रूपरूप परिवर्तित होता रहता है।"

अध्ययन क्षेत्र–गंगा की सहायक नदी गोमती के तट पर बसा ऐतिहासिक शहर जौनपुर जिसे पूर्व का सिराज कहा जाता है इसका भौगोलिक अक्षांशीय विस्तार 2526 में $26^0$11 उत्तरी अक्षांश एवं देशांतर विस्तार 52°.8 पूर्व से, $83^0$51 पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है। यह गंगा नदी घाटी के उत्तर एवं वाराणसी मंडल पश्चिमोत्तर भाग (पूर्वांचल) मे अवस्थित है।

जनपद के पूर्व में वाराणसी, गाजीपुर, उत्तर में आजमगढ़, अम्बेडकर नगर, उत्तर पश्चिम में सुल्तानपुर दक्षिण संतरविदास नगर दक्षिण पश्चिम में प्रयागराज पश्चिम में प्रतापगढ़ जनपद की सीमा अध्ययन क्षेत्र में संलग्न है। जनपद जौनपुर का भौगोलिक क्षेत्रफल 40389 वर्ग किलोमीटर है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यहां की

* *पूर्व शोध छात्र, भूगोल, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर, बरेली, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उ.प्र.*

कुल जनसंख्या 4497204 है। जिनमे 92.29% जनसख्या ग्रामीण है। उच्चावच की दृष्टि से जनपद के सम्पूर्ण भू–भाग में सामान्यतया समतल एवं न्यूनतम दाल वाल क्षेत्र है। जनपद की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 92 मीटर से कम है। जनपद जौनपुर प्रशासनिक दृष्टि से 6 तहसीलों एवं 21 विकास खण्डों में विभाजित है।

अध्ययन क्षेत्र के उद्देश्य–प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र में विगत 24 वर्षों में (1996–2020) विकास खण्डवार कृषि भूमि उपयोग में हुए परिवर्तन के परिणामस्वरूप जनपद के सामाजिक, आर्थिक विकास पर प्रभाव का अध्ययन कर उसका विश्लेषण करना है।

आँकड़ों का संग्रह एवं विधि तंत्र–प्रस्तुत शोध–पत्र द्वितीयक आँकडों पर आधारित है। आँकडों का संकलन थेसिस सांख्यिकीय पत्रिका, भू–लेख विभाग, सांख्यिकीय विभाग द्वारा प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोत तथा पूर्व में किए गए अनुसंधान से प्राप्त किये गये हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में सर्वप्रथम समस्याओं पहचान कर साहित्यिक पुनरावलोकन किया गया है।

सामाजिक आर्थिक विकास का वितरण प्रतिरूप–अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक आर्थिक विकास सभी विकासखण्डों व में एक समान न होकर अलग अलग है ।

अध्ययन क्षेत्र के जिस विकास में नगदी फसलों का उत्पोदन बढ़ा है साथ ही साथ सिंचाई एवं मृदा की गुणवत्ता अच्छी होने के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई है। उन विकासखण्ड में सामाजिक आर्थिक विकास होने से उन क्षेत्रों में निवास कर रहे लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। सामाजिक आर्थिक विकास के मापक चरों का विकासखण्डवार वितरण के स्वरूप का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है कि सामाजिक आर्थिक विकास के अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्डवार असमान रूप से वितरित है जो जौनपुर जनपद के समकालीन सामाजिक आर्थिक विकास में बाधक है। अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक आर्थिक विकास के आँकडों के वितरण स्वरूप के आधार पर क्रमवार विकासखण्डों के विकास की स्थिंति व सामाजिक आर्थिक विकास स्थितियों के सम्पूर्ण योग के आलोक में अध्ययन क्षेत्र के विकासखण्डवार सामाजिक आर्थिक विकास स्तर का निरूपण यहां किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास का यह वर्गीकरण जौनपुर जनपद के सामाजिक आर्थिक विकास से सबंधित योजनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है। जौनपुर जनपद में सामाजिक आर्थिक विकास की विकासखण्डवार स्थिति के आधार पर क्षेत्र विशेष की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए योजनाओं को लागू कर सभी विकासखण्डों को सामाजिक आर्थिक विकास को लगभग समान स्तर पर लाया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक आर्थिक विकास विकासखण्डवार स्तर निर्धारण हेतु लीनियर मॉडल पर आधारित अक्षरों के आधार पर स्कोर परिकलन करते हुए विकासखण्डरवार परिकलन स्तर का योग कर कुल स्कोर के आधार पर सामाजिक आर्थिक विकास का पदानुक्रम निर्धारण किया गया है।

Z स्कोर =X

sd

Mean=Σx

N

Sd=$\frac{\sqrt{(x-x)2}}{N}$

सामाजिक आर्थिक विकास पर कृषि भूमि उपयोग का प्रभाव–किसी भी क्षेत्र विशेष के सामाजिक आर्थिक विकास में कृषि की भूमि का अति महत्वपूर्ण होती है। अध्ययन क्षेत्र में उक्त प्रभाव का अध्ययन परिभावात्मक रूप में किया जा चुका है। कृषि भूमि का उपयोग एवं सामाजिक आर्थिक विकास में सहसंबंध पाया जाता है। पूर्ववर्ती आंकड़ों से स्पष्ट है कि जिन क्षेत्रों में कृषि भूमि उपयोग में संरचनात्माक परिवर्तन हुआ है और क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक विकास का स्तर अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा उच्च है। जिन क्षेत्रों एवं विकासखण्डों में उर्वर भूमि सिंचाई के अद्यतन साधन बीज भण्डार की उपलब्धता, उर्वरक, नगदी फसलों की ओर अत्यधिक रूझान इत्यादि कारक हैं। उन विकासखण्डों में सामाजिक आर्थिक विकास का स्तर उच्च होने के कारण लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में विकासखण्डवार कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में विभिन्नता होने के कारण सामाजिक आर्थिक विकास में भी भिन्नता पायी जाती है। कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन से शिक्षा, स्वास्थ्य है, उच्च आय एवं वित्तीय समावेशन तेजी से हुआ है। जिससे अध्ययन क्षेत्र में कृषि की उत्पादकता में भी तेजी से सुधार हुआ है। सामाजिक आर्थिक विकास का प्रभाव भी कृषि क्षेत्र पर पड़ा है क्योंकि सामाजिक आर्थिक विकास का संचयी प्रभाव भी कृषि क्षेत्र पर पड़ा है जिससे अध्ययन क्षेत्र में कृषि के ढंग में एक तरफ परिवर्तन हुआ

है वहीं उच्च आय की प्राप्ति होने के कारण कृषि में आधुनिक यंत्रों जैसे– ट्रैक्टर, टरबाइन, डिपलर, हारवेस्टर, वेलन, इत्यादि यंत्रों का तेजी से उपयोग बढ़ा है। अध्ययन क्षेत्र में कृषि में आधुनिक यंत्रों का बढ़ने का सबसे बड़ा और प्रमुख कारण मजदूर की उपलब्धता भी है। इसके साथ–साथ समय की बचत एवं कम लागत के कारण अध्ययन क्षेत्र के कृषक आधुनिक यंत्रों का प्रयोग तेजी से कर रहे हैं।

रोजगार सृजन–कृषि भूमि उपयोग सामाजिक आर्थिक विकास प्रकिया को प्रभावित करता है। रोजगार सृजन सामाजिक आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। यदि किसी भी क्षेत्र में रोजगार का सृजन अधिक होगा तो उस क्षेत्र में लोगों को रोजगार की प्राप्ति होती है जिससे आय में वृद्धि होने से जीवन स्तर में भी सुधार होता है। प्रतिवष ग्रामों के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि कृषि भूमि उपयोग के अन्तर्गत कृषि से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष लघु एवं सीमान्त कृषकों तथा भूमिहीनों को रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में सब्जी दुग्ध उत्पादन जैसे कार्य मूल्यतः लघु एवं सीमान्त कृषकों द्वारा ही किये जा रहे है। सब्जी तथा दुग्ध का उत्पादन पर्याप्त् गहन श्रम एवं लाभ युक्त कृषिगत कार्य है इससे कृषक वर्ष भर उक्त कार्यों में व्यस्त रहते हैं। रोजगार मिलने के कारण आय की प्राप्ति होती है तथा जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। अध्ययन क्षेत्र में भूमिहीन कृषक भी बँटाई का खेत लेकर सब्जी का उत्पादन करते हुए रोजगार के साथ आय प्राप्त कर रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत गेहूं, चावल, दूध, सब्जियाँ, फल, गन्ना, पिपरमेंट, तम्बाकू, तथा अन्य कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण, परिवहन एवं विपणन में भी कई लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त हुआ है। कृषि भूमि उपयोग के साथ रोजगार सृजन का सहसंबंध अति उच्च सम्बन्ध है। इसे निम्न रूप में देखा जा सकता है–

रोजगार सृजन की दृष्टि से कृषि से संबंधित कृषिगत क्रियाकलापों में गहन कार्य होने से सब्जी की कृषि में वर्ष भर कार्य रहता है। सब्जियों से संबंधित कृषिगत क्रिया कलापों मशीनों का उपयोग कम एवं मानव श्रम का उपयोग अधिक होता है जिससे वर्षभर कृषक भी सब्जियों का उत्पादन करते है। उक्त उत्पादन भी भूमिहीन या सीमान्त कृषकों के श्रम पर निर्भर है। अध्ययन क्षेत्र के प्रतिदर्श ग्रामों सहित दर्जनों ग्रामों में विविध प्रकार के खाद्यान्न फसलों एवं सब्जियों व फलों की गहन कृषि से लघु मध्याम एवं भूमिहीन कृषकों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए हैं। उल्लेखनीय है कि अध्ययन क्षेत्र के जिन ग्रामों में शाक सब्जियों की खेती बड़े पैमाने पर हो रही है उन ग्राम से शहरों की ओर पलायन कम हो रहा है क्योंकि ग्राम में ही रोजगार प्राप्त हो रहे हैं अन्य भूमि पर पारिवारिक श्रम का उपयोग करते हुए साक सब्जियों की गहन खेती करके परिवार को पालने की स्थिति में हो गये हैं गये है साथ ही कुछ बचत करके अन्य घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में रोजगार सृजन होने से गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

प्रतिदर्श ग्राम दशराम में खाद्यान्न उत्पादन की प्रमुखता के कारण रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं हो पा रही है जिसके परिणामस्वरूप रोजगार की तलाश में लोगों का गांवों से शहरों की ओर पलायन जैसे– पंजाब, दिल्ली, लुधियाना, अहमदाबाद, मुम्बई इत्यादि में हो रहा है। यद्यपि कृषि भूमि उपयोग में अंतर तथा परिवर्तन होने के कारण अध्ययन में विकासखण्डवार शहरों की ओर गांवों से पलायन असमान है। अध्ययन के विकासखण्ड के ग्राम खानपुर, घनघुआ, उमरपुर, काजीपुर, इत्यादि खाद्यान्न फसलों की प्रधानता होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र के लोग रोजगार की तलाश में राज्य से बाहर बड़े शहरों में पलायन कर रहें हैं जिससे एक तरफ शहरों पर बोझ बढ़ रहा है। शहरी जीवन गुणवत्ता को प्रभावित कर रहा है। उक्त से स्पष्ट है की किसी भी ग्राम पंचायत श्रम प्रधान कृषिगत एवं कषि अनुशंगी क्रियाओं का स्तर निम्न होने के कारण अध्ययन क्षेत्र में बेरोजगारी और विशेषकर प्रछन्न बेरोजगारी का स्तर अपेक्षाकृत अधिक है।

कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत शाक सब्जी एवं दुग्ध उत्पादन एवं मुर्गी पालन वाले ग्रामों में यह अध्ययन किया गया की कृषक वर्ष में विविध प्रकार कि कृषि करते हैं और पूरे साल कृषिगत कार्यों में लगे रहने के कारण व्यस्त रहते हैं। अध्ययन क्षेत्र के प्रायः सभी ग्रामों में अधिकांश कृषक हैं जो अपनी सीमित भूमि पर व्यावसायिक खेती करके सम्पूर्ण परिवार का भरण–पोषण कर रहे हैं। जिससे ग्राम पंचायतों में कृषि में कार्य करने वाले श्रमिक को साल भर अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी के साथ कार्य मिलता रहता है जिससे परिवार का जीवन–यापन आसानी से हो जाता है।

विकासखण्ड के अन्तर्गत ग्रामों में भूमिहीन परिवार स्वयं सब्जी की खेती नहीं करते हैं परन्तु सब्जी उत्पादों के खेतो से ही थोक भाव में शाक सब्जी खरीदकर बाजार में बेचकर लाभ प्राप्त करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में अवस्थिति सब्जी मंडियों तक रिक्शा, ठेला, पिकअप, आदि से सब्जियों को मंडी तक पहुँचाने वाले रोजगार कर जीवन–यापन कर रहे हैं। इसी प्रकार प्रतिवर्ष कुछ ग्राम पंचायतों में देखा गया कि कम भूमि वाले कृषक रेहन पर खेत लेकर कृषि कार्य करते हैं। जिसमें मानव श्रम का उपयोग हो रहा है जो रोजगार बढ़ाने वाला है। अध्यंयन क्षेत्र के कुछ

ग्रामों में व्यापक पैमाने पर तम्बाकू, पिपरमेंट, केला एवं आलू की खेती की जा रही है जिससे इस क्षेत्र प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसरो में काफी वृद्धि हुई है। केला यद्यपि वार्षिक फसल है जिसके रोपण का उपयुक्त समय जून जुलाई है तथापि कई नई प्रजातियों के आ जाने कारण अध्ययन क्षेत्र में वर्ष भर इनके लगाने एवं काटने का समय चलता है। लगभग सालभर उत्पादन प्राप्त होता रहता है। केला के रोपण हेतु जुताई, खुदाई, सिंचाई, कटाई एवं परिवहन तथा विक्रय में वर्षभर कृषक लगा रहता है। इसी प्रकार अध्ययन क्षेत्र में पिपरमेंट एवं तम्बाकू की खेती यद्यपि कम अवधि की होती है परन्तु निरन्तंर श्रमिकों की आवश्यकता बने रहने के कारण लोगों को पर्याप्त रोजगार प्राप्त होता रहता है। उक्त फसलों के साथ अध्ययन क्षेत्र के कुछ क्षेत्रों में रबी, खरीफ, तथा ज्वार सभी ऋतुओं में किसी न किसी फसल धान, गेहूं, सरसों, आलू, मटर, धनियां, मसूर, अरहर, बाजरा, सब्जी के उत्पादन किया जाता है। केले के पौधों को काटकर वेकार तनों को खेत से बाहर करना और उनसे खाद बनाना श्रम साध्य है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में केला एवं अन्य व्यापारिक कृषि से रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है साथ ही साथ कृषि उत्पाद के परिवहन एवं विपणन द्वारा भी रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है। अध्ययन क्षेत्र में विगत वर्षों में कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन होने से कुछ गन्ना प्रधान क्षेत्रों में शीत एवं ग्रीष्मकालीन मक्का कृषि को गन्ना के विकल्प के रूप में बुआई की प्रवृत्ति धीरे–धीरे बढ़ रही है। मक्का की खेती खासकर बाजार के निकटवाले क्षेत्रों में अधिक की जा रही है। जिससे ग्रामों में मक्का की कृषि से नये रोजगार के अवसरों की उपलब्धता बढ़ी है। मक्के की बालियों को तोड़ने, बालियों से दानों को अलग करने तथा मक्का के दानों को मुर्गी दाना, परमल, पशु आहार इत्यादि बनाने में ग्रामीण क्षेत्रों में नये रोजगार का सृजन हुआ है। प्रायः अध्ययन क्षेत्र में अवस्थिति प्रायः सभी नगरीय केन्द्रों जैसे खानपुर, घनघुआ, उमरपुर, काजीपुर, इत्यादि केन्द्रों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लगने वाले छोटे छोटे बाजार केन्द्रोंपर भुटटा बेचने वाले कुछ गरीब परिवार के लोगों को रोजगार सुलभ हुआ। अध्ययन क्षेत्र में गन्ने की कृषि एवं मक्के की खेती के साथ ही आलू, गोभी, भिण्डी, मटर, धनिया, मेथी की खेती बड़े पैमाने पर होने के कारण यहां के लोगों को सुलभ हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में विगत दो दशकों में कृषि भूमि उपयोग में परिवर्तन होने से रोजगार सृजन में वृद्धि हुआ है जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्र में लोगों की आय में वृद्धि हुई है।

अध्ययन क्षेत्र के प्रतिचयनित कुछ ग्राम जैसे– खानपुर, घनघुआ, उमरपुर, काजीपुर, में है। उत्पादन के साथ साथ दुग्ध उत्पादन भी किया जा रहा है। दुग्ध उत्पादन भी किया जा रहा है। दुग्ध पशुपालन से परिवार के सभी सदस्यों का पशुपालन में योगदान करते हैं जिससे अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अध्ययन क्षेत्र के ग्राम पंचायतों में खेती के साथ–साथ मुर्गीपालन का व्यवसाय करते हैं जिससे खेती के आय के अतिरिक्त लाभ प्राप्त होने से परिवार में शिक्षा स्वास्थ्य की उपलब्धता सुनिश्चित करने में मदद मिलती है।

अध्ययन क्षेत्र के कर्तव्यत ग्राम पंचायतों तथा खानपुर, घनघुआ, उमरपुर, काजीपुर, में ग्राम समाज के तालाब अथवा स्वयं की जमीन पर तलाब खुदवाकर मत्स्य पालन का कार्य किया जा रहा ळें मतस्य पालन खेती के अतिरिक्ता कुछ लोगों के आय का एक महत्वसपूर्ण साधन है। मछलियों को पकड़ने तथा उनकों परिवहन एवं विपणन से लोगों को रोजगार की प्राप्ति होती है। भारत सरकार तथा उत्तनर प्रदेश सरकार ने भी मतस्य पालन को भी बढ़ावा देने हेतु कई योजनाओं को लागू किया है। जिससे अध्ययन क्षेत्र में मतस्यह पालन को बढ़ावा मिला है। सरकार मत्स्य पालन हेतु सस्ते ब्याज दर ऋण प्रदान कर रही है। मतस्य पालन से अध्ययन क्षेत्र के मत्स्य में लगें लोगों की आय में वृद्धि हुई है जिससे शिक्षा स्वापस्स्त में सुधार हुआ है। उपयुक्तं से स्पष्ट है कि कृषि भूमि उपयोग के अन्तेर्गत खाद्यान्न, केला, पिपरमेंट, गन्नाज, तम्बोकू, सब्जी् के उत्पुादन एवं मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, एवं डेयरी इत्याटदि से रोजगार का सृजन हुआ है जिससे सामाजिक आर्थिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। लघु सामान्तया एवं भूमिहीनों के जीवनस्तार में सुधार हुआ है।

आय में वृद्धि–किसी क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास एवं आय में अनुलोम संबंध होता है। यदि क्षेत्र की आय में वृद्धि होती है तो क्षेत्र विशेष के सामाजिक आर्थिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन होता है जिससे लोगो के जीवन स्तर में भी सुधार होता है। आय में वृद्धि से कृषि में आवश्यक आदानों का समय से आवश्यक मात्रा में प्रयोग होता हैं परिणामस्वरुप फसलें अच्छी होती है और उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है जिससे अधिक आय की प्राप्ति और अधिक बचत का चक्र स्थापित हो जाता है। अध्ययन क्षेत्र में भी विगत कुछ दशकों में लोगो की आय में वृद्धि होने से क्रय शक्ति क्षमता में वृद्धि हुई है जिससे लोगों के सन्तुलित भोजन, वस्त्र, पक्के आवास, बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, मनोरंजन की आवश्यकताएँ पूरी होती रहती है। प्रतिदर्श ग्रामों के अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषक विविध प्रकार की फसलों, सब्जियों, फूलों, औषधीय पौधों, नगरी फसलों, गन्ना, तम्बाकू, केला, पिपरमेंट की कृषि तथा दुग्ध उत्पादन, मत्स्य पालन, पशुपालन आदि कार्यों में संलग्न है जिसके

परिणामस्वरूप परम्परागत फसलों उत्पादन की तुलना में कई गुना आधिक आय में वृद्धि हुई है। वर्ष भर अध्ययन क्षेत्र में सब्जी, मक्का, दुग्ध उत्पादन मुर्गीपालन इत्यादि से कुछ आय प्राप्त होती रहती है जिससें कृषकों की आय में वृद्धि एवं बचत होने से कृषकों की ऋण भी समाप्त हो गये है। साथ ही सरकार द्वारा वित्तीय समावेशन एवं किसान क्रेडिट कार्ड योजना के माध्यम से क्षेत्र के किसानों को अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। अध्ययन क्षेत्र में कृषक कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप करते हुए विगत कुछ दशकों में व्यापारिक कृषि एवं मत्स्य पालन, दुग्ध उत्पादन, मुर्गी पालन करने से कृषकों की आय में वृद्धि परम्परागत कृषि करने वाले कृषकों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हुआ है।

(क) खानपुर, घनघुआ, उमरपुर, काजीपुर, में खाद्यान्न फसलों के स्थान परगन्ना और आलू की खेती करके कुछ कृषकों की आय में 5 गुना अधिक लाभ प्राप्त कर रहे हैं। दशहरामऊ में देवकुमार ने विगतवर्ष (2020–2021) में एक एकड़ गन्ना तथा एक एकड़ आलू की खेती करके 67,500 रुपये गन्ना एवं 40,000 रुपये का आलू बेचकर लाभ प्राप्त किया। सरकार ने गन्ना की खेती का बढ़ावा देने एवं कृषकों को लाभ हेतु पर्याप्त प्रयास कर रही है। वर्तमान में गन्ना किसानों का भुगतान एक माह के अन्दर कृषकों के खाते में करके अध्ययन क्षेत्र में किसानों का अध्ययन गन्ना की ओर आकर्षित किया है। जिससे विगत कुछ दशकों में अध्ययन क्षेत्र में गन्ना के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। ग्राम विचला में अरविन्द कुमार ने एवं सभी जाति के किसान पिपरमेंट एवं तम्बाकू की खेती कर रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में गन्ना, पिपरमेंट, आलू की खेती से अपने परिवार का भरण–पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य, पक्का मकान बनवाना, तथा खेत खरीदना बहुत आसान कार्य हो गया है।

(ख) वरुणा नदी के किनारे वाले ग्राम पंचायतों में धान, अरहर, तथा परवल की खेती अधिक लाभदायक सिद्ध हो रही है जिसके परिणामस्वरूप ग्रामों से शहरों की ओर पलायन कम हो गया हैं। अध्ययन क्षेत्र में किनारें स्थित ग्राम पंचायतों में प्रति एकड़ 5 हजार रुपये लगाकर 25–30 हजार तक मुनाफा कृषकों को हो रहा है। तरबूज, खरबूज, मक्का, ककडी, करैले की खेती से भी कृषकों को अच्छी आय प्राप्त हो रही है। घाघरा के किनारे डंकल परवल की खेती करने वाले किसानों को प्रति एकड़ 50 हजार रुपये की आमदनी कर रहे है। भूमिहीन किसान बँटाई पर 10 से 15 हजार रुपये प्रति एकड़ खेत लेकर परवल की खेती कर लाभ कमा रहे है। अयोध्या व बाराबंकी की सीमा पर स्थित ग्राम जलालपुर के किसान राजा राम ने बताया कि घाघरा नदी के जल स्तर में कमी होने से गांव के किसानों ने घाघरा नदी की घाटी में सैकडों एकड़ खरबूज व तरबूज आदि फसले लगा दी जाती है जो प्रतिदिन ट्रकों से मण्डियो में ले जाया जाता है। खानपुर गांव के ही किसान शंकर दयाल ने बताया कि माझा में 2 एकड़ में अरहर की खेती से उन्हे विगत वर्ष 40 हजार रुपये की आय हुई उक्त अतिरिक्त सब्जियों से लगभग 40 हजार की आय हुई। जिससे वह अपने बच्चों को पढ़ा रहे है तथा घर में टेलीविजन, मोटर साईकिल दो साल पहले 3 कमरों का पक्का मकान बनवाया गया है।

आय में निरन्तरता–अध्ययन क्षेत्र के सभी विकासखण्डों में कृषि भूमि उपयोग के अन्तर्गत विभिन्न भागों में परम्परागत कृषि जैसे– धान, गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर के साथ ही नगरी फसलों के रुप में किसी न किसी फसल जैसे– गन्ना, पिपरमेंट, केला, तम्बाकू की खेती होती है। साथ ही साथ अधिकांश ग्रामों में सब्जी की खेती तथा दुग्ध उत्पादन, मूर्गीपालन, मत्स्यपालन भी किया जाता है जिसके कारण कृषकों को प्रतिदिन या एक–दिन के अन्तराल पर नगद आय की प्राप्ति होती है। उक्त नगद आय से घरेलू खर्च, बच्चों की शिक्षा, कपड़ा, स्वास्थ्य खर्च जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जिससे उक्त आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर नही रहना पड़ता है। कृषि में प्रयोग हेतु उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार दवाए, सिचाई, बिजली का बिल, डीजल का खर्च भी निकलता रहता है। इसी प्रकार अध्ययन क्षेत्र में मुर्गीपालन दो माह में मुर्गियों का विक्रय हेतु तैयार किया जाता है। मुर्गियों के विक्रय से भी अच्छी आय की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार कृषि भूमि के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न भागों में मुद्रा दायिनी सब्जियों तथा दुग्ध उत्पादन से कृषकों को भी निरन्तर आय की आय प्राप्त होती रहती है जिससे अध्ययन क्षेत्र के कृषकों एवं असंगठित लोगों को आय प्राप्त होती रहती है। अनुकूल एवं प्रतिकूल मौसम में भी किसी न किसी कार्य से आय की प्राप्ति होती रहती है। इससे शस्य उत्पादन में ऋण लेने की समस्या से भी छुटकारा मिलता है। वर्षभर कार्य लगा रहने के कारण एक तरफ जहाँ कृषकों को आय की प्राप्ति होती है वही दूसरी तरफ कृषि में कार्य करने वाले मजदूर को भी रोजगार मिलने से खाद्य संकट का सामना नही करना पड़ता है। विविध शस्य उत्पादन के साथ कृषि से सम्बद्ध अन्य अनुशंगी क्रियाओं को समन्वित करने से आय में निरन्तरता और ही मजबूत होती है। अध्ययन क्षेत्र में आय निरन्तरता के परिणामस्वरूप रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है जिससे किसानों एवं कृषि में कार्य करने वाले मजदूरों के जीवन स्तर में सुधार होता है।

आत्मनिर्भरता–अध्ययन क्षेत्र के प्रतिदर्श गावों के अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि भूमि उपयोग का उचित ढ़ग उपयोग से कृषक लाभदायक शस्यों की कृषि पर बहुत हद तक आत्मनिर्भरता को प्राप्त कर लिया है। उमापुर, कबीरपुर, खानपुर, घनघुआ, उमरपुर, काजीपुर, कछरा, कठार इत्यादि ग्रामो में अनेक परिवारो के पास कृषि भूमि की उपलब्धता बहुत कम है। इन लोगो का कहना है कि यदि वे अपने अल्प कृषि भूमि पर यदि परम्परागत ढ़ग से कृषि कार्य करें तो परिवार का भरण–पोषण सम्भव नहीं है तथा उनके पास दूसरों के यहाँ मजदूरी करने के सिवाय कोई अन्य उपाय नही होता। इन लोगों न अल्प कृषि भूमि पर अपने पारिवारिक श्रम की सहायता से वर्ष भर नगरी फसलों की गहन कृषि कर के निरन्तर और अधिक आय प्राप्त कर रहे है। प्राप्त आय से वे 1 सिर्फ खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गये है अपितु अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दूसरों पर निर्भर नही रहते है।

व्यापारिक फसलों, पशुपालन, मत्स्यपालन एवं मुर्गीपालन जैसे लाभप्रद व्यवसायों से प्राप्त लाभ के द्वारा ही शिक्षा हेतु शुल्क, किताब, और कॉपिया तथा गणवेष पर होने वाले खर्च की पूर्ति करते है।

औद्योगिक विकास–अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग प्रतिरुप के अन्तर्गत बोयी जाने वाली फसलें जैसे धान, गेहूँ, तिलहन जैसे परम्परागत फसलें तथा वणिज्यिक फसलों की कृषि से कृषि पर आधारित उद्योगों का विलयन हुआ है।

गुड़ व्यापारियों की मांग अधिक होने के कारण गुड़ के विक्रय में कोई समस्या नहीं है। यद्यपि क्रेशरों परगन्ना का मूल्य कम होता है परन्तु किसानों के लिए सुविधाजनक होने एवं पैसे की भुगतान तुरन्त होने के कारण कृषक गन्ना को क्रेसरों पर अधिक विक्रय करते है। अध्ययन क्षेत्र में ग्रामों में चावल मिल, आटा मिल, तिलमिल भी स्थापित है जिससें प्रसंस्कृत उत्पाद बाहर भेजा जा रहा है। इसी प्रकार पिपरमेंट प्लाण्ट स्थापित कर अध्ययन क्षेत्रों में तेल निकाला जा रहा है। पिपरमेंट के तेल का प्रयोग विविध उत्पादों जैसे ठण्डा तेल, दवा इत्यादि में होने के कारण मांग अधिक रहती है जिससे पिपरमेंट के तेल के विक्रय के संबंध में अध्ययन क्षेत्र में कोई समस्या नहीं रहती है।

इसी प्रकार तम्बाकू उद्योग से एक तरफ रोजगार का सृजन होता है वही दूसरी तरफ तम्बाकू उद्योग से जुड़ों लोगों के आय में वृद्धि होती है। उक्त से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में कृषि में व्यापारिक फसलों के बढ़ने से कृषि आधारित उद्योगो का विकास तेजी से हुआ है जिससे जौनपुर में नवीन रोजगार का सृजन होने एवं किसानों की आमदनी में वृद्धि से अध्ययन क्षेत्र का सामाजिक–आर्थिक विकास प्रभावित हुआ है जिससे जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

कृषि जन्य आय में वृद्धि का सामाजिक–आर्थिक विकास पर प्रभाव–अध्ययन क्षेत्र के कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में विगत कुछ दशकों में परिवर्तन होने से एवं कृषि के विविध धारकों को अलग–अलग अथवा समन्वित रूप में उपयोग करने से परम्परागत कृषि की तुलना में कई गुनी अधिक आय की प्राप्ति हो रही है जिससे कृषकों की क्रय क्षमता में कई गुना की वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप कृषक पुनः अधिक मात्रा में विनियोग कर अधिक आय प्राप्त कर जीवन स्तर को उच्च बनाने में समर्थ हो रहे है। आय में वृद्धि का सीधा सम्बंध ग्रामीणों के जीवन स्तर में उन्नयन अथवा जीवन की गुणवत्ता में अभिवृद्धि से है। अध्ययन क्षेत्र में विगत दशकों में कृषकों की आय में वृद्धि होने से जीवन गुणवत्ता मे भी वृद्धि हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में कृषि जन्य आय में वृद्धि का सामाजिक–आर्थिक विकास पर प्रभाव का मूल्यांकन करने हेतु प्रश्नावली की सहायता से कृषकों के उत्तर प्राप्त किये गये हैं। विभिन्न ग्रामों में उत्तरदाताओं का प्रतिशत एक समान नहीं है। यहां यह उल्लेख करना है कि यह आँकड़ा केवल उन उत्तरदाताओं से प्राप्त किया गया है जिन्होंने कृषि के किसी लाभदायक घटकों को अपनाकर अपना सामाजिक–आर्थिक विकास कर रहे है। सामाजिक–आर्थिक विकास के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले गरीबों एवं जन सामान्य की मौलिक आवश्यकताओं तथा पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन को आवश्यकतानुसार वस्त्र, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य, मनोरंजन के साथ ही अन्य सामाजिक एवं दक्षता वर्द्धक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही साथ बेहतर व उत्प्रेरक प्राकृतिक, आर्थिक विकास हेतु प्रति व्यक्ति आय की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अध्ययन क्षेत्र में कृषि आय में वृद्धि के द्वारा ग्रामीणों की जीवन स्तर ऊँचा हुआ है।

पर्याप्त व संतुलित भोजन–भोजन किसी भी व्यक्ति की प्राथमिक मौलिक आवश्यकता है सन्तुलित भोजन के द्वारा व्यक्ति का संन्तुलित विकास होता है। क्षेत्र में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़ते जनसंख्या दबाव ही उत्पादकता के निम्न स्तर एक प्रबल समस्या है। अध्ययन क्षेत्र अधिकांश गांव के 80 प्रतिशत लोग भूमिहीन एवं सीमान्त और लघ ुजोत आकार वाले वर्ग में आते है। जोतों का लघु आकार होने के कारण परम्परागत कृषि पद्धति से परिवार का भरण–पोषण करना एक प्रबल समस्या है। ऐसी स्थिति में कृषिगत उत्पादकता एवं आय में वृद्धि के द्वारा ही अध्ययन क्षेत्र खाद्यान्न संकट की समस्या को दूर किया जा सकता है और पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन

जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। प्रतिदर्श ग्रामों में अध्ययन के समय लगभग 65–44 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्पष्ट कहा कि कृषि विशेष कर सब्जी एवं व्यापारिक खेती में पिपरमेंट और दुग्ध उत्पादन से होने वाली आय के द्वारा ही परिवार को पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन की आपूर्ति सुनिश्चित हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में जोतो का आकार कम होने के कारण यहां के अधिकांश कृषक गहन कृषि भूमि का उपयोग करते है। कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में विगत दो दशकों में परिवर्तन होने के कारण तथा कृषि में वैज्ञानिक विधियों का निवेश होने के कारण अध्ययन क्षेत्र में कृषि उत्पादकता एवं उत्पादन की वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्न उत्पादन अधिशेष की स्थिति है। खाद्यान्न का निर्यात अन्य क्षेत्रों की ओर हो रहा है जहां पर खाद्यान्न का उत्पादन निम्न है। जिससे यहां क लोगों को आय की प्राप्ति हो रही है जिससे क्षेत्र का सामाजिक–आर्थिक विकास हो रहा है। अध्ययन क्षेत्र में खाद्यान्न के आवश्यकताओं की पूर्ति होने के साथ ही साथ भोजन में अन्य पोषक तत्वों एवं खनिजों का भी न्यूनाधिक उपयोग कर रहे हैं। जो कृषक सब्जी एवं दुग्ध का उत्पादन करते हैं या शाक–सब्जी एवं दुग्ध के क्रय–विक्रय से जुडें है वे इन पदार्थों का न्यूनाधिक मात्रा में उपयोग अवश्य ही करते है। दुग्ध उत्पादन एवं विक्रय से प्राप्त लाभ से अन्य प्रोटीन युक्त पदार्थ जैसे दाल, मछली, अण्डा इत्यादि का भी सेवन करते है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र मे जहां एक तरफ कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन करते हुए कृषि उत्पादकता एवं उत्पादन को बढ़ावा दिया है दूसरी तरफ लोगों को सन्तुलित भोजन की भी आवश्यकताएँ की पूर्ति हो गयी है।

आवश्यकतानुसार वस्त्र–आय में वृद्धि एवं उस क्षेत्र में निवास वाले लोगों के वस्त्रो के उपयोग में अनुलोभ संबंध होता है। अध्ययन क्षेत्र में विगत कुछ दशकों में कृषक एवं भूमिहीन किसानों की आय में वृद्धि होने से वस्त्र पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 68 प्रतिशत उत्ततदाताओं ने बताया है कि कृषि जन्य आय में वृद्धि के कारण परिवार के लिए आवश्यकतानुसार वस्त्र खरीदने मे समय हुए है। अध्ययन क्षेत्र में कृषकों एवं भूमिहीन किसानों को जाड़े के लिए स्वेटर, मफलर जैसे ऊनी वस्त्रों के अलावा कम्बल, रजाई इत्यादि खरीदने के लिए पैसा आड़े नहीं आता है। अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक अवसरों पर बच्चों, पुरुषों एवं महिलाओं को वस्त्र खरीदने हेतु किसी से उधार नहीं लेना पड़ता है बल्कि कृषिगत आय एवं दुग्ध उत्पादन, मत्स्यपालन एव मुर्गीपालन से पर्याप्त आय प्राप्त होती है जिसका उपयोग परिवार के भरण–पोषण हेतु करते हैं।

शिक्षा व्यवस्था में सुधार एवं शिक्षा की सुगमता–कृषि भूमि उपयोग में परिवर्तन एवं इसके परिणामस्वरूप कृषि जन्य आय में वृद्धि के प्रभाव अध्ययन क्षेत्र के शिक्षा व्यवस्था में सुधार एवं शिक्षा तक लोगों की पहुँचता सुगमता के साथ सुनिश्चित किया है। आय में वृद्धि एवं शिक्षा की सुविधा में पर्याप्त अनुकून संबंध है। शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु सरकार ने भी कई योजनाएँ जैसे– सर्वशिक्षा अभियान, मिड्डेमील योजना, इत्यादि के माध्यम से शिक्षा में सुधार हेतु प्रयास कर रही है। शिक्षा को मौलिक अधिकार के अन्तर्गत शामिल कर सरकार शिक्षा के प्रसार हेतु प्रयास कर रही है। अध्ययन क्षेत्र में प्रतिदर्श ग्रामों में लगभग 75 प्रतिशत परिवारों ने बताया कि खाद्यान्न, पशुपालन, सब्जी इत्यादि से प्राप्त होने वाली आय के उपयोग बच्चों की शिक्षा पर करना चाहिए। जिससे अध्ययन क्षेत्र में शिक्षा सुगम हो गयी है। यहां के कृषक अपने बच्चों को ज्ञानार्जन हेतु विद्यालय भेजते हैं उसके लिए बच्चों को शुल्क, किताब, कॉपी आदि को बोझ दुग्ध उत्पादन, सब्जी उत्पादन से, ग्रामों में प्राप्त किया जा रहा है ठाठ ग्राम पंचायत से खर्च आसानी से किया जा रहा परन्तु जल की अनुपलब्धता इत्यादि से लोगों के शिक्षा की अपूर्ति का बोझ बढ़ रहा है जिसकी आवश्यकताओं की पूर्ति अध्ययन क्षेत्र में की जाने वाली सब्जी तथा दुग्धपालन से प्राप्त आय से की जा रही है। शिक्षा की सुविधा सामाजिक–आर्थिक विकास का एक अच्छा संकेतक है। जिस क्षेत्र में शिक्षा का विकास नहीं होता है उस क्षेत्र में सामाजिक–आर्थिक विकास के अन्य संकेत को में भी विकास नही होता है। अध्ययन क्षेत्र में विगत दशकों में कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन होने से तथा कृषि में ज्ञान–विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग से अध्ययन क्षेत्र में कतिपय क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई है जिसका सीधा प्रभाव कृषक की आय पर पड़ा है। आय में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप अध्ययन क्षेत्र के शिक्षा की सुगमता बढ़ी है। यहाँ के लोग अपने बच्चों को कान्वेन्ट स्कूल में भेज रहे हैं।

आवास की उपलब्धता–भोजन, कपड़ा के बाद आवास मानव की तीसरी मौलिक आवश्यकता है। आवास के इसी महत्व को देखते हुए भारत सरकार एवं राज्य सरकार ने प्रधानमंत्री आवास योजना एवं मुख्यमंत्री आवास योजना को लागू किया है जिसमें 2022 तक सभी को जो गरीबी रेखा से नीचे है को पक्का आवास उपलब्ध कराने की योजना है। अध्ययन क्षेत्र में प्रतिदर्श ग्रामों में कुल 40 प्रतिशत परिवार कृषि से प्राप्त आय से पक्के आवास बनाने का स्वप्नपूर्ण कर लिया है। से बहुत बड़े आवास तो नहीं बनाये है परन्तु छोट–छोटे पक्के आवास अवश्य बनवा लिए है। अध्ययन क्षेत्र में प्रायः ऐस कृषकों ने आवास कृषि से प्राप्त आय से बनवाया है जो खाद्यान्न उत्पादन

से लेकर बिक्री तक सम्पूर्ण कार्य परिवार की सहायता से करते है जिससें कृषि में मजदूर की सहायता नहीं लेनी पड़ती परिणामस्वरूप कृषि से प्राप्त आय अधिक होती है साथ ही उवर्रक के प्रयोग, निजी सिंचाई सुविधा एवं मजदूर न लगने से कृषि से प्राप्त आय में बचत की मात्रा अधिक होती है जिससें पक्के आवास को बनवाये जाने मे सहायता मिली है। अध्ययन क्षेत्र में कुछ कृषक ऐसे भी है जो बाह्य श्रम का उपयोग कर अपेक्षा कृत अधिक भूमि परधान की कृषि करते हैं और अधिक लाभ प्राप्त कर परिवार का भरण–पोषण करने के साथ ही पक्के मकान बनवा लिए है।

अध्ययन क्षेत्र में किसी भी स्रोत से अधिक आय होने एवं अधिक बचत होने की स्थिति में कृषकों की पहली प्राथमिकता कृषि भूमि खरादने की होती है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से उक्त विचारधाराओं में परिवर्तन हुआ है लोग कृषि भूमि का खरीदने के स्थान पर अपने बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु बाहर भेजने पर ज्यादा ध्यान दे रहे है। शिक्षा में लगने वाले व्यय के बाद बचा लाभ से ही कृषि योग्य भूमि खरीदने पर ध्यान दे रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में कृषि से होने वाली आय का बचत कर 25–50 प्रतिशत कृषकों ने कृषि भूमि का क्रय किया है। अतिरिक्त भूमि उपलब्ध होने पर उसी विधि से कृषि कार्य करके और अधिक आय अर्जित कर परिवार का भरण–पोषण कर रहे है।

किसी भी क्षेत्र का कृषक धन के अभाव में जुताई, बुआई, सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, उन्नतबीज, कृषि उपकरण एवं अन्य आगतों का प्रयोग कर पाने से उत्पादन कम प्राप्त होता है फलतः कम आय की प्राप्ति होती है जिससे बचत की मात्रा कम होती है और कृषक परिवार का भरण–पोषण नहीं कर पाता है।

अध्ययन क्षेत्र में लाभकारी धान एवं गेहूँ की कृषि से लाभ की स्थिति में कई परिवारों के लि ववि‍ध कार्यों जैसें बोरिंग, पम्पसेट, ट्रैक्टर आदि उपकरण खरीदना एवं कृषि विनियोग, जमीन खरीदना, मकान बनवाना वाहन खरीदना, शादी विवाह या अन्य व्ययसाध्य कार्यों हेतु लिये गये ऋण का भुगतान करना आसान हुआ है। ऐसे परिवार का जिन्होने कृषि से प्राप्त लाभ से ही पुराने कर्ज को चुका सके है का प्रतिशत 30 है। अध्ययन क्षेत्र में विगत कुछ दशकों में कृषि में ज्ञान–विज्ञान एवं नवाचार को तेजी से अपनाने जाने के परिणामस्वरूप कृषि में बचत अधिक होने के कारण अधिक लाभ की प्राप्ति होती है जिससे परिवार का भरण–पोषण आसानी से हो रहा है और साथ ही साथ अध्ययन क्षेत्र का सामाजिक–आर्थिक विकास तेजी से हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में विगत दो दशकों में कृषि भूमि उपयोग में परिवर्तन हुआ है। अध्ययन क्षेत्र में फसलों के विविधीकरण, व्यापारिक कृषि का प्रयोग अध्ययन क्षेत्र में तेजी से बढ़ने के कारण क्षेत्र के कृषकों को अधिक आय की प्राप्ति हो रही है जिससे कृषकों की क्रय क्षमता में वृद्धि हुई है। क्रय क्षमता में वृद्धि होने से शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पेयजल आदि संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता मिली है जिससे क्षेत्र का सामाजिक–आर्थिक विकास तेजी से बढ़ा है एवं यहां के लोगों के जीवनस्तर में सुधार हुआ है।

निष्कर्ष–(1) अध्ययन क्षेत्र की सघन और तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति का प्रमुख स्रोत कृषि है जो वृद्धि की महत्तम सीमा प्राप्त कर चुकी है तथा अब विकास की ओर उन्मुख है। अध्ययन क्षेत्र में कृषि भविष्य में और ह्रास होने की संभावना है।

(2) विगत कुछ दशकों में कृषि भूमि उपयोग के अन्तर्गत वन, बाग–बगीचा तथा झाड़ी क्षेत्र में कमी आयी है जो पारिस्थिति की दृष्टिकोण से उपयुक्त नही है। उक्त भूमि का अंश अध्ययन क्षेत्र के सम्पूर्ण क्षेत्रफल से बहुत कम है।

(3) अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान कृषि पद्धति पूर्णतः रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, सिंचाई, संकरबीज एवं जीवाश्म ईंधन यन्त्रीकरण पर ही आधारित है, जसस प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष विभिन्न आर्थिक, सामाजिक एवं विनाशकारी पारिस्थितिकी समस्याएँ प्रकट हो रही हैं। उत्पादकता में वृद्धि उच्च रासायनिक कृषि निवेशों तथा अधिक लागत वृद्धि के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमें भी वर्तमान में स्थिरता परिलक्षित होने लगी है।

(4) कृषि यंत्रीकरण के कारण पशुपालन की स्थिति बहुत कमजोर हुई है। बैलों का उपयोग अब बहुत कम हो गया है। दुग्ध उत्पादन भी उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। कृषि स्थायित्व एवं मृदा उर्वरता संरक्षण की दृष्टि से चिंतनीय है। अध्ययन क्षेत्र में कृषि से संम्बद्ध अन्य कार्यों को भी स्थिति लाभप्रद नहीं कही जा सकती है।

(5) कृषि योग्य भूमि में गहन कृषि फसलोत्पादन, उचित शस्य चक्र एवं शस्य विविधता को न अपनाने कृषि अपशिष्टों एवं जैविक उर्वरकों के कम प्रयोग के साथ ही बिना परीक्षण के रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों तथा खरपतवार नाशकों के अवैज्ञानिक प्रयोग से अध्ययन क्षेत्र के कृषि भूमि मे बृहद पोषकतत्वों में कमी के साथ ही सूक्ष्म पोषक तत्वों मे भी कमी की प्रवृत्ति होने लगी है।

(6) अध्ययन क्षेत्र में छोटे कृषकों द्वारा शाक–सब्जियों का उत्पादन किया जा रहा है तथा व्यवसायिक दृष्टि से सब्जी उत्पादकता में वृद्धि तथा नगद आय की प्राप्ति हेतु सब्जियों की खेती में विविध प्रकार की रासायनिक दवाओं एव कीटनाशकों का उपयोग किया जा रहा है जिससे एक तरफ जहाँ उत्पादित पदार्थों में विश की मात्रा

बढ़ रही है वही दूसरी तरफ उक्त रसायनों का अधिकांश भाग पर्यावरण के विभिन्न घटकों जैसे–जल, वायु, मृदा को भी प्रदूशित कर रहा है।

(7) जनपद जौनपुर के प्रत्येक गांव में कृषि गहनता में वृद्धि हुई है और यह वृद्धि प्रायः एक शस्यीय क्षेत्र को द्विशस्यीय क्षेत्र में परिणत होने से हुई है। अध्ययन क्षेत्र में अनुकूल प्राकृतिक आर्थिक सामाजिक एवं अवस्थापनागत अनुकूलताओं वाले कुछ भागों में फसल चक्र में कम अवधि में उगने वाले नगदी फसलों यथा– आलू, मूँगफली, सब्जियां, मूंग, पिपरमेंट, एवं मक्का आदि का समावेष होने से कृषि गहनता में वृद्धि हुई है।

(8) अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप के अन्तर्गत बाग–बगीचे के अन्तर्गत भूमि में शस्योत्पादन के अतिरिक्त पशुपालन एव अन्य कृषि से सम्बद्ध कार्य जैसे– दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन, मधुमक्खीपालन, फलोत्पादन, पुष्प उत्पादन इत्यादि द्वारा कृषि एवं कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है परन्तु उक्त क्रिया–कलापों से सामाजिक–आर्थिक विकास में वांछित परिणाम देखने को नहीं मिलता है। दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, पुष्प एवं फलोत्पादन, मत्स्यपालन अध्ययन क्षेत्र में कुछ ग्रामों के कुछ मध्यम एवं बडे किसान तक ही सीमित है। विगत कुछ दशकों में अध्ययन क्षेत्र में ग्राम समाज की भूमि पर तालाब सुखने के कारण सभी विकास खण्डों में सरकारी तालाबों की संख्या बहुत कम हो गयी है। निजी स्वामित्व के तालाबों में मछली पालन की क्षमता सीमान्त एवं लघु कृषकों मे नही है। कुछ ग्रामों में ग्राम समाज की जमीन को पट्टें पर लेकर उसमें मत्स्यपालन किया जा रहा है परन्तु वैज्ञानिक एवं आधुनिक विधि तथा प्रशिक्षण के अभाव में मत्स्यपालकों को आपेक्षिक लाभ नहीं मिल पा रहा है जिसमें क्षेत्र में समावेशी विकास प्राप्त नही हा पा रहा है साथ ही सामाजिक–आर्थिक विकास में भी गुणात्मक परिवर्तन नहीं हो पा रहा है।

सन्दर्भ–सूची

1. वारलो, आर. एण्ड जॉनसन, बी. डब्ल्यू. (1954), लैण्ड प्रॉबलम एण्ड पॉलिसिज, मैक्ग्रा हिल बुक कम्पनी, आई. एन.सी., न्यूयार्क, पृ. 99

2. तिवारी, आर.सी. एवं सिंह, बी. (1994), कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 35

3. तिवारी, आर.सी. एवं सिंह, बी. (2009), भारत का भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद

4. पाण्डेय जे.एन. (2008), कृषि भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, पृ. 83–90

5. Bhatia S.S. (1965), Patterns of Crop Combination and Diversification in India; Economic Geography Vol- 41. pp- 39-56

6. Chandel R.S. (1991), Agricultureal Change in Bundelkhand Region, Star Distributors Publication Division, Varanasi

7. Chatterjee (1952), Land Utilçation Survey of Howrah Districts, Geographical Review of India, Vol.14. No.13

8. D. Chakraborty K.H. Kamal and other (2013), Research Paper, Land Use and Agri & Production A Case Study in Western Uttar Pradesh Recent Reseach in Science and Technology, Vol. 2(9), Pp 11-17

9. Shafi] M. (1972), Measurement of Agricultural Productvity of the Great Indian Plain; The Geographer, Vol. 19, No- 1, pp. 4 & 13

10. Singh.R.P. and IslZam Ubairul (2010), Research Paper, Land Use Planning in Western Uttar Pradesh, Issue and Challenges, Journal of Environment and Nanotechnology, Vol.2 pp. 70 & 73

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 138-141

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास : जनपद गोण्डा का प्रतीक अध्ययन

*श्याम किशोर वर्मा**

सारांश : *मानव संसाधन अर्थात् जनसंख्या राष्ट्र का एक प्रमुख तत्व है। मानव संसाधन को दो स्वरूपों में देखा जा सकता है, एक साधन सेवा के रूप में और दूसरा, उपभोग इकाई के रूप में। मानव पूँजी को जनसंख्या द्वारा प्राप्त ज्ञान तथा उसे प्रभावशाली तरीके से उपयोग करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। 1950 के दशक तक अर्थशास्त्री एवं सामाजिक वैज्ञानिक मानव को आर्थिक विकास के मुख्य तत्व के रूप में नहीं देखते थे। मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा का विकास 1960 में प्रो. टी. डब्लू. शुल्ज द्वारा अमेरिकी आर्थिक संघ में अध्यक्षीय भाषण से हुआ, इसके साथ ही मानव संसाधन विकास एवं आर्थिक विकास की चक्रीय व्यवस्था के अध्ययन की शुरूआत हुई। आर्थिक विकास से बेहतर स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं का सृजन होता है, इन बुनियादी सुविधाओं की सुनिश्चितता से आर्थिक वृद्धि को गति प्राप्त होती है। आर्थिक विकास उस प्रक्रिया को कहा जाता है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र के सभी उत्पादन संसाधनों का कुशलतापूर्ण उपयोग होता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अनुसार ''विकास मानवीय प्रयास का परिणाम है, आर्थिक विकास एक सतत प्रक्रिया है जिससे राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।'' मानव संसाधन का उचित प्रबंधन कर राष्ट्र के अन्य संसाधनों का सृजन किया जा सकता है जो आर्थिक प्रक्रिया में योगदान देकर राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि को गति प्रदान कर सकते है।*

मुख्य शब्द– *मानव संसाधन, आर्थिक विकास, राष्ट्रीय आय, मानव पूँजी, संसाधन सृजन।*

प्रस्तावना–मानव संसाधन और आर्थिक विकास परस्पर घनिष्ट रूप से संबन्धित हैं। आर्थिक विकास का संदर्भ मानवीय भावना से है। जहाँ आर्थिक वृद्धि अर्थव्यवस्था की गणितीय वृद्धि को दर्शाती है, जिसमें मानवीय आवश्यकता के तत्व षून्य होते है, वहीं आर्थिक विकास अर्थव्यवस्था में गुणात्मक स्वरूप को प्रदर्शित करता है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामाजिक समरसता जैसे मानवीय तत्व भी सम्मिलित होते है। आर्थिक विकास को तब तक आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता जब तककि उसमें 'संपोषणीयता' की भावना विद्यमान न हो। मानव का आरम्भिक जीवन 'संपोषण' की भावना से परिपूर्ण था जिससे प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का अनुचित दोहन नहीं होता था। जैसे–जैसे मानव अपनी तकनीकी ज्ञान का विस्तार करता गया, वह प्राकृतिक मानव से आर्थिक मानव के रूप में परिवर्तित हो गया। वर्तमान युग तकनीकी ज्ञान का आर्थिक युग है। सभी देशों में आर्थिक क्षेत्र में वृद्धि और अर्थव्यवस्था का आकार वर्तमान में शक्ति के केन्द्र के रूप में दिखाई देता है।

राष्ट्र का विकास करना हो या किसी सार्वजनिक या व्यक्तिगत संगठन का केवल भौतिक साधनों या आर्थिक पूँजी पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता है मानव पूँजी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रो. फ्रेड्रिक हरबोसन के अनुसार, 'राष्ट्र के धन का अन्तिम आधार मानव संसाधान है।' मानव संसाधन विकास की अवधारणा 1970 के दशक में जन्मी तथा 1980–90 के दशक में लोकप्रिय हुई। मानव संसाधन को उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों इकाई के रूप में देखा जाता है। उत्पादक के रूप में मानव श्रम के रूप में योगदान देता है, कृषि में पूँजी का निर्माण करता है, व्यापार एवं सेवाओं में विशिष्टीकरण से अधिक आय का उपार्जन करता है, तकनीकी कुशलता में वृद्धि कर आर्थिक गतिविधि को तीव्र करता है इत्यादि। उपभोक्ता के रूप में मानव राष्ट्रीय उत्पाद की मांग को उत्पन्न करता है, इससें वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है, जो अन्ततः राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में योगदान देते है।

* *शोध छात्र, भूगोल विभाग, नागरिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंघई, जौनपुर, (उ.प्र.)*

'विकास' की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। एडम स्मिथ नें वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को आर्थिक विकास माना है। जे. एस. मिल ने कहा कि उत्पादन साधनों का प्रतिफल ही आर्थिक विकास है, इन साधनों में श्रम व भूमि दो महत्वपूर्ण कारक है। विकास की मानव संबंधी अवधारण अर्थात् मानव विकास 1990 में महबूब–उल–हक द्वारा प्रस्तुत की गयी। मानव पूंजी आर्थिक विकास में सहायक एवं आर्थिक विकास में वाहक दोनों रूपों को प्रदर्शित करता है। मानव पूंजी को आर्थिक विकास में सहायक मानने वाले विद्वानों में क्लार्क, अल्फ्रेड बोन तथा पेनरोज का नाम उल्लेखनीय है। प्रो. हैन्सन ने तो जनसंख्या वृद्धि को आर्थिक विकास की एक पूर्व शर्त के रूप मे माना है। प्रो. विलार्ड मायर, हार्वे आदि विद्वान जनसंख्या वृद्धि को एक आर्थिक बाधा के रूप में स्वीकार करते हैं। इनका मानना है कि जनसंख्या वृद्धि पूंजी निर्माण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

वर्तमान युग तकनीकी प्रधान है हालांकि इससे मानव श्रम की महत्ता कम नहीं होती है। कई विकसित देशों की मानव श्रम शक्ति कम हो रही है, कारण उत्पादक वर्ग (20–59 वर्ष) की संख्या का कम होना है। भारत में उत्पादक वर्ग अर्थात् जनांकिकी लाभांश की हिस्सेदारी लगभग 60 प्रतिशत है। विश्व जनसंख्या परिप्रेक्ष्य 2022 के अनुसार वर्ष 2041 तक भारत के पास विश्व स्तर पर सर्वाधिक कार्यबल होगा। इस कार्यकाल को उचित रूप से कौशल प्रदान कर उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है और इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि एक आर्थिक बाधा न बनकर आर्थिक विकास का पूरक बनेगी।

अध्ययन क्षेत्र–जनपद गोण्डा उ.प्र. के देवीपाटन मण्डल में अवस्थित है। यह जिला मुख्यालय के साथ–साथ मण्डल मुख्यालय भी है जो $26^0$47′ से $27^0$20′ उत्तरी अक्षांश तथा $81^0$30′ पू0 से $82^0$46′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 4003 वर्ग किमी0 है। यहां की जलवायु उष्णकटिबंधीय है तथा स्पष्ट रूप से तीन ऋतुएँ पायी जाती है, शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु। इसके अधिकांश क्षेत्र पर जलोढ़क मृदा का विस्तार है। जनपद गोण्डा की कुल जनसंख्या 3405376 है इसकी साक्षरता दर 58.7 प्रतिशत है। जनपद की लगभग 94 प्रतिशत आबादी ग्रामीण है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. मानव संसाधन के स्वरूप और आर्थिक विकास में उसके योगदान का अध्ययन।
2. मानव संसाधन विकास की प्रमुख चुनौतियों का अध्ययन।

विधितंत्र एवं विश्लेषण–प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकडों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आंकडों के रूप में क्षेत्र सर्वेक्षण से प्रश्नावलियों के आधार पर प्राप्त आंकडों और निष्कर्षों का उपयोग किया गया है। द्वितीय आंकडों के रूप में जिला सांख्यिकी पत्रिका, जिला जनगणना हस्तपुस्तिका 2011, अर्थ एवं संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्थान उ.प्र. द्वारा प्रकाशित आंकडों को उपयोग किया गया है। साथ ही साथ विवेचानात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधितंत्रों का प्रयोग करते हुए निष्कर्ष प्राप्त किया गया है।

तालिका–1

जनसंख्या का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत रूप (%)		
		कुल	ग्रामीण	नगरीय
कुल जनसंख्या	34,33,919	100	93.4	6.6
दशकीय वृद्धि (2001–11)	6,68,333	24.2	24.8	15.8
साक्षरता	16,79,994	58.7	57.4	76.7
कुल श्रमिक	11,70,552	34.1	34.4	29.5
मुख्य श्रमिक (कुल श्रमिक में)	7,39,663	63.2	62.3	78.3
सीमान्त श्रमिक (कुल श्रमिक में)	4,30,889	36.8	37.7	21.7
गैर–श्रमिक	22,63,367	65.6	65.9	70.5

श्रमिक श्रेणी (कुल श्रमिक के प्रतिशत के रूप में)

कुल कृषक	4,40,340	37.6	39.7	3.4
कुल कृषि श्रमिक	4,31,532	36.9	38.4	11.9
कुल कुटीर उद्योग श्रमिक	65,229	5.6	5.3	9.8
कुल अन्य श्रमिक	2,33,381	19.9	16.6	74.8

तालिका सं–1 का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि जनपद गोण्डा की लगभग 94 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। मानव संसाधन के संदर्भ में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत् है। कुल जनसंख्या के संदर्भ में मात्र 34 प्रतिशत ही श्रमिक के रूप में उपलब्ध हैं अर्थात् लगभग 66 प्रतिशत जनसंख्या अकार्यशील है। श्रमिकों के श्रेणीवार विवरण से स्पष्ट है कि कुल श्रमिकों का लगभग 37 प्रतिशत कृषक है, लगभग 37 प्रतिशत कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत् है, वहीं मात्र 5.6 प्रतिशत श्रमिक कुटीर उद्योगों में संलग्न है तथा लगभग 20 प्रतिशत श्रमिकों एक बड़ा भाग अन्य श्रेणी के अन्तर्गत कार्यरत् हैं जिसमें मुख्य रूप से सेवा क्षेत्र में अपनी सेवायें दे रहे है। बड़ा भाग (लगभग 66 प्रतिशत) आर्थिक विकास में अपना योगदान नहीं दे रहा है।

तलिका–2 : जिला सकल घरेलू उत्पाद में विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों का योगदान प्रतिशत (2020–21) आधार वर्ष– 2011–12

	जनपद गोण्डा	उत्तर प्रदेश	भारत
प्राथमिक (कृषि) क्षेत्र	37.16	27.00	21.79
द्वितीयक क्षेत्र	11.53	23.80	25.10
तृतीयक क्षेत्र	51.30	49.2	53.11

स्रोत : जिला घरेलू अनुमान उ.प्र.

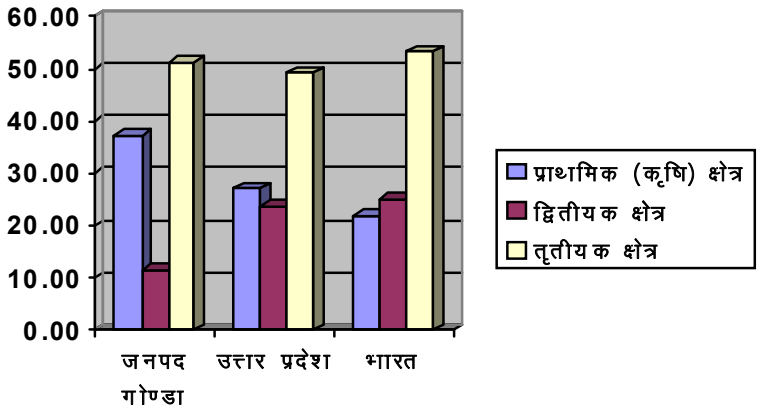

तालिका सं. 1 और 2 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनपद गोण्डा की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है जबकि जनपद के आर्थिक विकास में सर्वाधिक भागीदारी (लगभग 52 प्रतिशत) तृतीयक अर्थात् सेवा क्षेत्र की है, वहीं प्राथमिक क्षेत्र अर्थात् मुख्य रूप से कृषि की भागीदारी लगभग 37 प्रतिशत है। स्वतंत्रता के समय सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र की भागीदारी 50 प्रतिशत से भी अधिक थी वहीं पिछले कुछ वर्षों मे यह घटकर 20 प्रतिशत के आस–पास रह गयी है। इस गिरावट के कारणों मे रूप में औद्योगीकरण और तीव्र शहरीकरण को उत्तरदायी माना जा सकता है। जैसे–जैसे आर्थिक विकास में कृषि की हिस्सेदारी घटती है,

शहरी–ग्रामीण अन्तर बढ़ता जाता है। इस प्रकार आर्थिक विकास असंतुलित हो जाता है जो आर्थिक विषमता को बढ़ावा देता है।

विश्व में आर्थिक विकास एक विशेष अनुक्रम का अनुसरण करता है, जो विकास को स्थायित्व प्रदान करता है। यह अनुक्रम है क्रमशः प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र और तृतीयक क्षेत्र का। भारत में इस अनुक्रम का उल्लंघन हुआ और भारत के आर्थिक विकास का अनुक्रम क्रमशः प्राथमिक क्षेत्र तृतीयक क्षेत्र और द्वितीयक क्षेत्र हो गया। इसका कारण अधिकांश जनसंख्या को पर्याप्त शिक्षा न मिल पाना जिससे उनका कौशल विकास अवरूद्ध हो गया और जिन्होनें कौशल प्राप्त किया वे सेवा क्षेत्र से जुड़ गये। भारत में इस अनुक्रम को सुधारने और संतुलित आर्थिक विकास को गति प्रदान करने लिए मानव संसाधन को कौशल प्रदान करने की आवश्यकता है। सुस्त कृषि विकास के साथ मजबूत आर्थिक विकास दर के विरोधाभास को तत्काल दूर करने की आवश्यकता है। कृषि क्षेत्र में अपार संभावनाएं विद्यमान है, जरूरत है उन्हें नये रूप में स्वीकारने की। कृषि कार्यबल को आधुनिक कौशल प्रदान करना अनिवार्य हो गया है।

कृषि उत्पादों के मूल्यवर्द्धन के लिए खाद्य प्रसंस्करण को बढावा देने की आवश्यकता है इसके लिए मानव संसाधन को कौशल प्रदान करना अनिवार्य है। जनपद गोण्डा के आर्थिक विकास का मुख्य आधार कृषि है, परन्तु उसका उचित रूप से प्रबंधन के अभाव में, आर्थिक विकास में योगदान कम होता जा रहा है। जनपद की लगभग 66 प्रतिशत जनसंख्या अकार्यशील श्रेणी की है, इसका कौशल विकास कर, उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

कृषि आपूर्ति श्रृंखला में आधारभूत ढांचे की कमियों को दूर करना आवश्यक है, भण्डारण सुविधा, परिवहन सुविधा, सिंचाई सुविधा में निवेश से कृषि क्षेत्र की उत्पादकता का बढ़ाया जा सकता है।

कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी के समावेश और मानव संसाधन को उस तकनीकी के संचालन में दक्ष करने से वैकल्पिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे, जिससे निर्भरता अनुपात में कमी आयेगी और अधिक से अधिक जनसंख्या आर्थिक विकास में अपना योगदान सुनिश्चित कर सकेगी। इस प्रकार प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) के विकास के साथ द्वितीयक (मुख्य रूप से कृषि से जुड़े कुटीर उद्योग) क्षेत्र का विकास भी सुनिश्चित होगा जो आर्थिक विषमता को कम करने में सहायक होगा।

निष्कर्ष–जनपद गोण्डा में जनसांख्यिकीय लाभांश की स्थिति मौजूद है जो आर्थिक विकास के लिए एक अच्छा संकेत है। मानव संसाधन का उचित प्रबंधन कर, उसकी कौशल क्षमता का उचित विकास कर, उत्पादन क्षमता में वृद्धि से आर्थिक विकास को तीव्र गति प्रदान किया जा सकता है। जनपद गोण्डा में मानव संसाधन विकास की अपार संभावनाएं विद्यमान है। विकास के सभी आर्थिक क्षेत्रों में संतुलन स्थापित होने आर्थिक विषमता में कमी आयेगी। संतुलित आर्थिक विकास में मानव संसाधन प्रबंधन एक अनिवार्य तत्व है।

संदर्भ–सूची

1. सिंह, कतार एवं शिशोदिया, अनिल (2018); ''ग्रामीण विकास सिद्धान्त नीतियां एवं प्रबंधन, सेग पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 10–25
2. हुसैन, माजिद (2018), ''कृषि भूगोल'', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 23 एवं 41
3. जिला घरेलू अनुमान, उ.प्र. (2019–20)
4. जिला सांख्यिकी पत्रिका– 2020
5. Alagh, Y.K. (2013), 'The Future of Indian Agriculture", National Book Trust, New Delhi.
6. District Cense Handbook Gonda, Series-10 Part- XII A&B. (2011)

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 142-146

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी का स्थान : प्राचीन भारत के विशेष संदर्भ में

*कु. प्रियंका सिंह** *प्रो. प्रदीप कुमार सिंह***

सारांश : *भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध बौद्धिक परम्पराओं में से एक है, जिसमें मानव जीवन के हर पहलू को दार्शनिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से परखा गया है। इस परम्परा में नारी का स्थान केवल एक सामाजिक इकाई तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह ज्ञान, धर्म, नैतिकता और संस्कृति की संरक्षिका के रूप में प्रतिष्ठित रही है। इस शोध–पत्र में नारी की भूमिका को प्राचीन भारत के विशेष ऐतिहासिक और दार्शनिक संदर्भ में देखा गया है। वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने और वैदिक ज्ञान में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। लोपामुद्रा, घोषा, गार्गी और मैत्रेयी जैसी ऋषिकाओं ने न केवल ऋचाएँ रचीं, बल्कि दार्शनिक संवादों में भी भाग लिया। विशेष रूप से गार्गी और मैत्रेयी के ब्रह्मवाद संबंधी संवाद दर्शाते हैं कि नारी को उस युग में बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों, और समाज के निर्णयों में भी स्त्रियाँ सक्रिय थीं। विवाह जैसे सामाजिक अनुबंध में भी उनकी सहमति अनिवार्य मानी जाती थी, जिससे उनके सामाजिक अधिकारों का संकेत मिलता है।*

उपनिषदिक काल में भी स्त्रियों की ज्ञान परम्परा में सहभागिता बनी रही। आत्मा, मोक्ष और ब्रह्म के विषय में स्त्रियाँ दार्शनिक विचार प्रस्तुत करती थीं, जो उन्हें आध्यात्मिक विमर्श का भागीदार बनाता है। इस युग में स्त्रियों का स्थान केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वे तत्त्वमीमांसा जैसी गहन विषयवस्तु में भी भाग लेती थीं। महाकाव्य युग (रामायण और महाभारत) में स्त्रियों की बहुआयामी छवि सामने आती है। सीता, द्रौपदी, कुंती और गांधारी जैसी स्त्रियाँ केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने राजनीतिक, नैतिक और सामाजिक दिशा–निर्देश देने का भी कार्य किया। विशेष रूप से द्रौपदी का चरित्र न्याय, अधिकार और धर्म के प्रश्नों को केंद्र में लाता है। स्मृति ग्रंथों और धर्मशास्त्रों में स्त्री की स्थिति में कुछ हद तक प्रतिबंधात्मक बदलाव आए, परंतु उन्हें शिक्षा, संपत्ति पर अधिकार और सामाजिक सुरक्षा देने की बात भी कही गई। मनुस्मृति में जहाँ एक ओर स्त्री के लिए मर्यादा और अनुशासन की बात है, वहीं दूसरी ओर उसके संरक्षण और सम्मान की भी वकालत की गई है। प्राचीन भारत की विश्वविद्यालयीय परंपराओं में भी स्त्रियों की उपस्थिति के संकेत मिलते हैं। न केवल धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्रों में, बल्कि कला, संगीत, चिकित्सा और साहित्य में भी स्त्रियाँ सक्रिय थीं।

अंततः, यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी का स्थान गरिमापूर्ण, सशक्त और बौद्धिक रूप से स्वतंत्र रहा है, विशेषकर वैदिक और उपनिषदिक युगों में। यह परम्परा आधुनिक स्त्री सशक्तिकरण आंदोलनों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकती है, जहाँ प्राचीन संस्कृति में समता और सम्मान की भावना विद्यमान थी। यह शोध इस बात को रेखांकित करता है कि भारतीय समाज की जड़ें स्त्री को सशक्त रूप में देखने की परंपरा में ही निहित हैं।

मुख्य शब्द *: सहधर्मिणी, ब्रह्मवादिनी, ज्ञान परम्परा, ऋषिकाएँ, उपनिषद, आत्मज्ञान, समता और स्वतंत्रता।*

प्रस्तावना : भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है इसकी दीर्घकालीन और समृद्ध ज्ञान परम्परा। यह परम्परा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन के हर पहलू–धर्म, दर्शन, नीति, चिकित्सा, संगीत, गणित, सामाजिक व्यवस्था, और मानव–कल्याण–में उसकी गहराई देखने को मिलती है। इस परम्परा का मूल स्रोत वैदिक साहित्य, उपनिषद, पुराण, महाकाव्य और स्मृति ग्रंथों में निहित है। इस व्यापक ज्ञान–विकास की प्रक्रिया में स्त्रियों की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि इतिहास के कुछ कालखंडों

* *शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश*

** *प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश*

में नारी की स्थिति में ह्रास देखा गया, तथापि प्राचीन भारत में नारी को सामाजिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त था।

वर्तमान समाज में स्त्री सशक्तिकरण और लैंगिक समानता के प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक हैं। अक्सर यह समझा जाता है कि भारत में स्त्रियों को पारंपरिक रूप से दबाया गया है या उन्हें सीमित भूमिकाओं में रखा गया है। लेकिन जब हम प्राचीन भारतीय ग्रंथों और ज्ञान परम्परा की ओर दृष्टि डालते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ न केवल स्वतंत्र रूप से जीवन जीती थीं, बल्कि ज्ञान, धर्म और दर्शन के क्षेत्रों में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान भी दिया था। यह शोध–पत्र इसी पक्ष को उजागर करने का प्रयास है।

वैदिक युग में स्त्रियाँ वेद पढ़ने, यज्ञ करने, ऋचाएँ रचने और स्वतंत्र रूप से विचार रखने के लिए जानी जाती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा और लोपामुद्रा जैसी विदुषी स्त्रियों ने तत्कालीन बौद्धिक विमर्श में सक्रिय भागीदारी की। उपनिषदों में गार्गी के प्रश्न ब्रह्मज्ञान की गहराई तक पहुँचते हैं, और मैत्रेयी आत्मा की अमरता पर विमर्श करती हैं। इन उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि स्त्रियाँ उस समय केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे दार्शनिक और आध्यात्मिक विमर्श का अभिन्न हिस्सा थीं। महाकाव्यों जैसे रामायण और महाभारत में भी स्त्रियों की उपस्थिति केवल सहायक पात्र के रूप में नहीं है। सीता की गरिमा और द्रौपदी का धर्म के प्रश्नों पर अडिग रहना यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ न्याय, धर्म और नीति के जटिल प्रश्नों में भी सजग थीं। कुंती, गांधारी और तारा जैसे पात्रों ने राजनीतिक और पारिवारिक निर्णयों को दिशा दी। धर्मशास्त्रों में यद्यपि कुछ स्थानों पर स्त्रियों पर सामाजिक मर्यादाओं का वर्णन मिलता है, फिर भी उन्हें शिक्षा, संपत्ति, संरक्षण और सम्मान प्रदान करने के निर्देश भी स्पष्ट रूप से मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी को एक संरक्षित, परंतु गरिमामयी स्थान प्राप्त था।

इस शोध–पत्र का उद्देश्य है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी की भूमिका और स्थान को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से स्पष्ट किया जाए, जिससे आधुनिक स्त्री विमर्श को एक परंपरागत और सांस्कृतिक आधार भी मिल सके। यह अध्ययन न केवल इतिहास की पुनर्व्याख्या है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक विचारोत्तेजक संदर्भ भी प्रस्तुत करता है।

शोध–पत्र का उद्देश्य : इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी की स्थिति और भूमिका का समग्र रूप से विश्लेषण करना है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि भारतीय बौद्धिक एवं दार्शनिक परम्परा में स्त्रियाँ केवल सहायक या अनुयायी नहीं थीं, बल्कि वे ज्ञान–रचना, तत्त्वचिंतन, सामाजिक दिशा–निर्धारण और सांस्कृतिक निर्माण की सक्रिय प्रतिभागी थीं। शोध का प्राथमिक उद्देश्य यह स्थापित करना है कि वैदिक, उपनिषदिक, महाकाव्य तथा स्मृति साहित्य में स्त्रियों को किस प्रकार से चित्रित किया गया है और उनका वास्तविक स्थान क्या था। इसके अंतर्गत गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, सीता, द्रौपदी, कुंती आदि जैसे प्रमुख स्त्री पात्रों के विचारों, कृतित्व और सामाजिक योगदान का विश्लेषण किया गया है।

साथ ही, यह शोध वर्तमान स्त्री–सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय परम्पराएँ आज के समाज को लैंगिक समानता और नारी गरिमा के संदर्भ में प्रेरणा प्रदान कर सकती हैं।

शोध पद्धति : इस शोध–पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। शोध हेतु प्राथमिक स्रोतों में ऋग्वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति जैसे प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया गया। द्वितीयक स्रोतों के रूप में आधुनिक विद्वानों के शोध–पत्र, इतिहास ग्रंथ, आलोचनात्मक लेख तथा प्रामाणिक प्रकाशनों से सहायता ली गई। विभिन्न पात्रों और स्त्री चिंतन से संबंधित संवादों एवं प्रसंगों का तुलनात्मक अध्ययन कर नारी की भूमिका एवं स्थिति का निष्पक्ष मूल्यांकन किया गया है। इससे ऐतिहासिक तथ्यों की गहराई से विवेचना संभव हो सकी।

वैदिक काल में नारी का स्थान : प्राचीन भारतीय संस्कृति में वैदिक काल वह स्वर्णिम युग माना जाता है जिसमें नारी को उच्चतम सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक स्थान प्राप्त था। वैदिक साहित्य में नारी को 'सहधर्मिणी', 'ब्रह्मवादिनी', 'सहगामिनी' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। स्त्री केवल एक परिवार की धुरी ही नहीं, बल्कि समाज की ज्ञानपरंपरा की संवाहिका भी थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ न केवल धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं, बल्कि वे वेदों के अध्ययन, पाठ, रचना तथा ब्रह्मविद्या में भी निपुण थीं। ऋग्वेद में घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, रोमशा, उर्वशी, आदिति, इन्द्राणी, सावित्री, सुभद्रा आदि विदुषियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने वैदिक मंत्रों की रचना की। घोषा ने दो सूक्तों की रचना की जो ऋग्वेद के दसवें मंडल में संगृहीत हैं। मैत्रेयी और गार्गी जैसे नाम वैदिक चिंतन और उपनिषदों के गहन दार्शनिक विमर्शों में प्रमुखता से उपस्थित हैं। गार्गी ने बृहदारण्यकोपनिषद में

याज्ञवल्क्य से ब्रह्मज्ञान पर प्रश्न किए और दार्शनिक संवाद में भाग लिया, जिससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ उच्च ज्ञान–चिंतन में समान रूप से सहभागी थीं। स्त्रियों को शिक्षा के सभी क्षेत्रों में समान अवसर प्राप्त थे। वे वैदिक संस्कारों में भाग लेती थीं और ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्ययन करती थीं। 'ब्रह्मवादिनी' उन स्त्रियों को कहा जाता था जो विवाह न करके आजीवन वेदाध्ययन और अध्यापन में लगी रहती थीं। 'सद्योवधू' वे स्त्रियाँ थीं जो विवाहोपरांत शिक्षा त्याग देती थीं, परंतु विवाह पूर्व उन्हें भी वेदों और दर्शन का अध्ययन कराया जाता था। यह उस समय की सामाजिक संरचना का प्रतिबिंब है जिसमें नारी को स्वतंत्र विचार और कर्म करने की छूट थी।

वैदिक काल में नारी केवल गृहस्थ धर्म निभाने तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह वैदिक यज्ञों, संवादों, शिक्षण कार्यों और सामाजिक निर्णयों में भी सक्रिय थी। पति–पत्नी दोनों को यज्ञकर्ता माना जाता था और बिना पत्नी के कोई भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता था। इस काल की नारी स्वतंत्र, शिक्षित, आत्मनिर्भर और समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखने वाली थी। यह स्पष्ट करता है कि वैदिक काल भारतीय नारी के गरिमामय स्थान का प्रतीक है, जिसमें उसे 'शक्ति' और 'प्रज्ञा' दोनों रूपों में आदर प्राप्त था।

उपनिषद एवं दर्शनों में स्त्री का बौद्धिक योगदान : उपनिषद एवं दर्शनों में स्त्री का बौद्धिक योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणास्पद रहा है। उपनिषदों में स्त्रियाँ केवल धार्मिक आस्था की प्रतीक नहीं थीं, बल्कि वे दार्शनिक विचारों की सशक्त वाहक और वैचारिक संवाद की निर्णायक प्रतिभागी रही हैं। वे न केवल गूढ़ प्रश्न पूछने का साहस रखती थीं, बल्कि उन प्रश्नों के उत्तर पाने की तीव्र जिज्ञासा और तर्कशक्ति भी उनमें विद्यमान थी। विशेष रूप से बृहदारण्यकोपनिषद, छांदोग्योपनिषद आदि में स्त्रियों की बौद्धिक उपस्थिति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। गार्गी और मैत्रेयी दो ऐसी प्रमुख स्त्रियाँ हैं जो उपनिषदों में बौद्धिक विमर्श की नायक के रूप में सामने आती हैं। गार्गी वैदिक युग की एक महान दार्शनिक थीं, जिन्होंने बृहदारण्यकोपनिषद में याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान से ब्रह्म विषयक गूढ़ प्रश्न पूछे। गार्गी ने ब्रह्म को 'आकाश' के रूप में प्रश्नांकित करते हुए पूछारू "जिस पर यह आकाश स्थित है, वह कौन है?" इस प्रकार के प्रश्नों ने तत्कालीन दार्शनिक विमर्श को नई दिशा दी। याज्ञवल्क्य ने गार्गी के तर्क और ज्ञान की प्रशंसा करते हुए उन्हें सम्मानित किया, जिससे यह प्रमाणित होता है कि उस काल में स्त्रियाँ बौद्धिक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी करती थीं।

मैत्रेयी, याज्ञवल्क्य की पत्नी, एक अन्य अद्भुत उदाहरण हैं, जिन्होंने आत्मा, ब्रह्म और अमरत्व के गूढ़ प्रश्न पूछे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "यदि सम्पत्ति से अमरत्व प्राप्त होता हो तो मुझे वह चाहिए, अन्यथा मुझे केवल वह ज्ञान दो जिससे आत्मा का साक्षात्कार हो।" याज्ञवल्क्य ने उन्हें अद्वैत वेदान्त का गहन ज्ञान प्रदान किया, जो आज भी उपनिषदों की अमूल्य धरोहर है। मैत्रेयी का यह कथन कि "स्त्री की मुक्ति केवल धन या भोग से नहीं, बल्कि आत्मज्ञान से होती है" उनकी बौद्धिक गहराई को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त दर्शन के अन्य क्षेत्रों में भी स्त्रियों की उपस्थिति रही है। सांख्य दर्शन, योग दर्शन और वैदिक मीमांसा में भी स्त्रियों के योगदान के संकेत मिलते हैं, यद्यपि उनके नाम कम ज्ञात हैं। तथापि, यह निर्विवाद है कि स्त्रियाँ न केवल उपनिषदों की ज्ञान–परंपरा की सहभागी थीं, बल्कि उन्होंने वैचारिक निर्भीकता, तार्किकता और दर्शन की गंभीरता के साथ उसमें सक्रिय भूमिका निभाई। इस प्रकार उपनिषद एवं दर्शनों में स्त्री का बौद्धिक योगदान भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी की उच्चतम स्थिति और उसके स्वतंत्र चिंतन की परंपरा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह दिखाता है कि स्त्रियाँ मात्र धार्मिक अनुष्ठान की वस्तु नहीं, बल्कि ज्ञान की खोज की सहचर और विचार–यात्रा की अग्रदूत रही हैं।

धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में नारी : धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में नारी की स्थिति जटिल एवं द्वैध स्वरूप लिए हुए है। एक ओर इन ग्रंथों में नारी को देवी, माता और पूज्या माना गया है, तो दूसरी ओर उसके जीवन पर कठोर सामाजिक प्रतिबंध भी लगाए गए हैं। मनुस्मृति में कहा गया है–"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता वास करते हैं। यह वाक्य नारी के उच्च सामाजिक स्थान को दर्शाता है। परंतु उसी ग्रंथ में यह भी कहा गया है– "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।" यानी स्त्री को कभी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए; बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना चाहिए। यह दृष्टिकोण उसकी स्वतंत्र सत्ता को नकारता है। याज्ञवल्क्य स्मृति और नारद स्मृति में नारी को कुछ हद तक अधिक अधिकार प्राप्त थे। विधवा स्त्रियों को दान, उपासना और कभी–कभी अध्ययन का अधिकार था। नारद स्मृति में नारी को न्यायिक मामलों में साक्षी के रूप में मान्यता दी गई।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में नारी का स्थान आदरपूर्ण तो है, पर उसकी स्वतंत्रता सीमित और पुरुष अधीनता में परिभाषित की गई है, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का द्योतक है।

स्त्री और शिक्षा : तक्षशिला, नालंदा एवं अन्य गुरुकुलों में भागीदारी : प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली में स्त्रियों की भागीदारी को लेकर ऐतिहासिक साक्ष्य मिश्रित रूप में प्राप्त होते हैं। वैदिक काल में स्त्रियों को वेदाध्ययन, दर्शन, और धर्मशास्त्रों के अध्ययन की स्वतंत्रता प्राप्त थी। 'ब्रह्मवादिनी' स्त्रियाँ गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त करती थीं और कई बार आचार्य की भूमिका भी निभाती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा आदि इसका जीवंत प्रमाण हैं।

तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों में मुख्यतः पुरुष छात्र अध्ययन करते थे, परंतु यह कहना गलत होगा कि स्त्रियाँ पूर्णतः अनुपस्थित थीं। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रारंभिक काल में तक्षशिला में उच्च वर्ग की स्त्रियाँ विशेषाधिकार के रूप में शिक्षा ग्रहण करती थीं। हालाँकि यह संख्या सीमित थी, फिर भी ज्ञान की खोज में स्त्रियाँ सक्रिय थीं। नालंदा, जो एक बौद्ध शिक्षा संस्थान था, वहाँ भिक्षुणियों को तर्कशास्त्र, दर्शन और व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध विहारों में स्त्री शिक्षार्थियों के लिए विशेष आश्रय और अनुशासन प्रणाली थी, जिससे यह सिद्ध होता है कि महिलाओं को भी ज्ञान के क्षेत्र में स्थान प्राप्त था। अन्य गुरुकुलों, जैसे उज्जैन, वल्लभी, और विदर्भ के विद्यापीठों में भी स्त्रियाँ सीमित संख्या में विद्या–अर्जन करती थीं, विशेषतः वे जिनका संबंध ब्राह्मण या बौद्ध परिवारों से होता था। समाज में पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के बावजूद, प्राचीन भारत में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध थे, विशेषकर यदि वे विद्वान कुल या परंपरा से जुड़ी होती थीं। इस भागीदारी ने भारतीय बौद्धिक परंपरा में स्त्री की भूमिका को मजबूत किया और यह दर्शाया कि नारी केवल गृहस्थ धर्म तक सीमित नहीं थी, बल्कि ज्ञान के क्षेत्र में भी उसकी सक्रिय उपस्थिति थी।

स्त्री और आयुर्वेद, खगोल एवं अन्य विज्ञान : प्राचीन भारत में स्त्रियाँ केवल धार्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान की ही वाहक नहीं थीं, बल्कि चिकित्सा, खगोलशास्त्र और अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी उनकी उल्लेखनीय भागीदारी रही है। आयुर्वेद, जो कि भारतीय चिकित्सा पद्धति का मूल है, उसमें स्त्रियाँ कुशल वैद्य के रूप में जानी जाती थीं। वे घरेलू चिकित्सा, औषधियों की पहचान, संतान–उपचार, प्रसूति विज्ञान (स्त्रीरोग), और जीवनशैली से संबंधित अनेक विधाओं में पारंगत थीं। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथों में महिला वैद्यों और धात्री (दाइयों) की चर्चा मिलती है जो विभिन्न रोगों का उपचार करती थीं। खगोल और गणित के क्षेत्र में भी स्त्रियों की भागीदारी के प्रमाण हैं। वैदिक युग में ऋषिकाओं ने नक्षत्रों, ग्रहों और ऋतुओं की गणना में योगदान दिया। समय की गणना, पंचांग निर्माण और धार्मिक अनुष्ठानों के खगोलीय पक्ष में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी रही। उदाहरण के लिए, अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया को खगोलीय ज्ञान में पारंगत बताया गया है।

अन्य विज्ञान जैसे धातुकर्म, वास्तु, रसायन और संगीतशास्त्र में भी स्त्रियाँ पारिवारिक प्रशिक्षण के माध्यम से ज्ञान अर्जित करती थीं। विशेष रूप से रसायन और सौंदर्य विज्ञान में नारी का योगदान महत्वपूर्ण रहा, जहाँ वे जड़ी–बूटियों, इत्र, उबटन, और त्वचा–रक्षण से संबंधित विधाओं में निपुण थीं। इन सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी यह सिद्ध करती है कि प्राचीन भारत में नारी केवल भावनात्मक या सामाजिक भूमिका तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसका बौद्धिक और वैज्ञानिक योगदान भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। यह भारतीय ज्ञान परंपरा में उसकी सशक्त और बहुआयामी उपस्थिति को दर्शाता है।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण : स्त्री की स्थिति का परिवर्तन–प्राचीन भारत में स्त्री की स्थिति समय के साथ गहरे परिवर्तन से गुज़री है। वैदिक युग मं जहाँ नारी को शिक्षा, धर्म और ज्ञान में पुरुषों के समकक्ष स्थान प्राप्त था, वहीं उत्तर वैदिक और शास्त्रीय युग में उसकी स्थिति क्रमशः सीमित और पराधीन होती गई। आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह परिवर्तन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संरचनाओं के परिवर्तन का परिणाम था। वेदों में नारी ब्रह्मवादिनी और ऋषिका के रूप में सम्मानित थी, परंतु मनुस्मृति और अन्य धर्मशास्त्रों में उसे पुरुषों के अधीन बताया गया। स्त्री की स्वतंत्रता पर नियंत्रण, शिक्षा से वंचित करना, पर्दा प्रथा, बालविवाह और सती जैसी प्रथाओं का उदय स्त्री की सामाजिक गिरावट के प्रमाण हैं। यह परिवर्तन उस पितृसत्तात्मक सोच को दर्शाता है जो स्त्री को केवल गृहस्थी और वंशवृद्धि तक सीमित करना चाहता था।

बौद्ध और जैन धर्म ने कुछ हद तक स्त्रियों को पुनः आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्रदान की, किंतु ब्राह्मणवादी व्यवस्था में उनकी स्थिति अधिकाधिक सीमित होती गई। मध्यकाल में मुस्लिम शासन के दौरान पर्दा प्रथा और स्त्री पर सामाजिक नियंत्रण और भी बढ़ा। शिक्षा, संपत्ति और स्वतंत्र विचार पर स्त्रियों का अधिकार लगभग समाप्त हो गया। यह गिरावट केवल सामाजिक या धार्मिक कारणों से नहीं, बल्कि सत्ता और संस्कृति के मेल से बनी उस संरचना का परिणाम थी, जिसने स्त्री को गौण बना दिया। आलोचनात्मक दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन गौरवशाली परंपरा धीरे–धीरे स्त्री–विरोधी संरचना में बदल गई। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया की पहचान करना

आवश्यक है, ताकि आधुनिक समाज में स्त्री की गरिमा को पुनर्स्थापित किया जा सके।

निष्कर्ष : भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण, गरिमापूर्ण और बहुआयामी रहा है। वैदिक युग से लेकर उत्तरवैदिक, उपनिषद, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नारी की बौद्धिक, धार्मिक और सामाजिक भागीदारी ने यह सिद्ध किया है कि वह केवल पारिवारिक जीवन की धुरी नहीं थी, बल्कि समस्त ज्ञान–परंपरा की समान रूप से सहभागी और संवाहक रही है। वैदिक काल को यदि "नारी गरिमा का स्वर्ण युग" कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस काल में नारी को वेदाध्ययन, यज्ञ, दर्शन, संगीत, खगोल और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा जैसी ऋषिकाएँ न केवल वेदों के मंत्रों की रचयिता थीं, बल्कि उन्होंने ब्रह्मविद्या और तत्त्वचिंतन में पुरुष विद्वानों को भी चुनौती दी। इस युग में नारी को 'ब्रह्मवादिनी' की संज्ञा दी गई, जो उनके स्वतंत्र बौद्धिक अस्तित्व को दर्शाती है।

उपनिषद और दर्शन के क्षेत्र में भी स्त्रियों का योगदान प्रशंसनीय रहा है। गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने आत्मा और ब्रह्म जैसे गूढ़ विषयों पर दार्शनिक संवादों में भाग लेकर यह सिद्ध किया कि स्त्री केवल अनुयायी नहीं, अपितु विचार–निर्माता भी रही है। उन्होंने उस युग की दार्शनिक गहराई में अपनी उपस्थिति से स्त्री–बौद्धिकता का प्रमाण प्रस्तुत किया। आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, गणित, वास्तु, रसायन और संगीत जैसे विज्ञानों में भी स्त्रियों ने अपनी भूमिका निभाई। विशेष रूप से आयुर्वेद और स्त्रीरोग चिकित्सा में उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही है। अनुसूया, सुलभा और अन्य स्त्रियाँ आयुर्वेदिक विधाओं में दक्ष थीं। खगोल और ज्योतिष शास्त्र में भी स्त्रियाँ नक्षत्रों और कालगणना में योगदान करती थीं।

किन्तु, उत्तरवैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक जैसे–जैसे समाज में पितृसत्ता मज़बूत होती गई, स्त्री की स्थिति में गिरावट आती गई। धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में एक ओर जहाँ स्त्री को पूज्य बताया गया, वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता को नियंत्रित किया गया। शिक्षा, संपत्ति, विवाह, धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक भागीदारी में उसकी भूमिका सीमित कर दी गई। मध्यकाल में सामाजिक कुरीतियों जैसे बालविवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि ने उसकी स्वतंत्रता को और संकुचित कर दिया। आलोचनात्मक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति समय के साथ बदलती रही है। कभी वह ज्ञान और धर्म की सहभागी रही, तो कभी एक सीमित, पराश्रित और वंचित जीवन जीने को बाध्य हुई। परंतु यह भी सत्य है कि भारतीय ज्ञान परंपरा ने प्रारंभ में नारी को जो सम्मान, अधिकार और ज्ञान की स्वतंत्रता दी थी, वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है।

आज के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि हम इस गौरवशाली परंपरा को पुनः स्मरण करते हुए, स्त्रियों को समान शिक्षा, अवसर और सम्मान प्रदान करें। भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी का जो आदर्श स्वरूप था– वह पुनः आधुनिक भारत की सामाजिक और शैक्षणिक संरचना में प्रतिष्ठित हो, यही इस विमर्श का सार है। स्त्री की गरिमा, बौद्धिकता और स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित करना केवल नारी का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के उत्थान का मार्ग है।

संदर्भ–सूची

1. अग्रवाल, वी.एस. (2018), भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी का इतिहास और योगदान, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली
2. भूषण, एस. (2021), भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान : एक सामाजिक अध्ययन, सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, पटना
3. Mohan, R. (2019), Ancient Indian Education and Role of Women, Academic Press, New Delhi
4. सिंह, के. (2017), भारतीय दर्शन में नारी की भूमिका, दर्शन पब्लिशर्स, जयपुर
5. Pattanaik, D. (2016), Indian Women and the Vedic Tradition, Penguin Random House, Mumbai.
6. Sharma, P. (2023), Women in Ancient Indian Sciences and Medicine, Sage Publications, New Delhi
7. Gupta, R. (2022), Gender and Knowledge Systems in Ancient India, Routledge India, Delhi
8. सिंह, आर. (2020), प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा और सामाजिक स्थिति, आर्य साहित्य समिति, लखनऊ
9. मिश्रा, आर. (2015), भारतीय इतिहास में स्त्री की स्थिति, इतिहास अकादमी, कानपुर
10. Forbes, G. (2018), Women in Indian Society : Historical Perspectives, Oxford University Press, New York

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 147-154

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गरीबी, शिक्षा, असमानता और मानवाधिकार जैसे आधुनिक मुद्दों के संदर्भ में गांधीवादी सिद्धान्त

*अभय कान्त त्रिपाठी** *डॉ. उत्कर्ष उपाध्याय***

सारांश : *महात्मा गांधी ने अपने वैचारिकी के माध्यम से समाज के कई प्रमुख मुद्दों पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किए, जिनमें गरीबी, शिक्षा, असमानता और मानवाधिकार शामिल हैं। गांधीवादी सिद्धांत इन मुद्दों का समासान ढूंढने का एक मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। गांधीजी ने गरीबी को केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक समस्या के रूप में देखा। उनका मानना था कि समग्रं विकास तब संभव है जब गरीबों की स्थिति में सुधार किया जाए। उन्होंने 'स्वदेशी आंदोलन' के माध्यम से स्थानीय उद्योगों को प्रोत्साहित कर आत्मनिर्भरता का संदेश दिया। गांधी जी का मानना था कि गरीबों के उत्थान के लिए न केवल आर्थिक सहायता जरूरी है, बल्कि सामाजिक न्याय और समग्र विकास भी अनिवार्य है। उन्होंने कहा, 'जो कोई गरीबों के लिए काम नहीं करता, वह स्वयं को मानव नहीं समझता।' गांधीजी के शिक्षा के सिद्धांत में 'नैतिक शिक्षा' और 'स्वालंबन' का विशेष महत्व था। उन्होंने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे चरित्र निर्माण का माध्यम माना। गांधीजी का नेशनल स्कूल सिस्टम' बच्चों की पूरी व्यक्तित्व विकास की ओर इंगित करता था, जिसमें कला, शिल्प और खेल का ध्यान रखा गया। उनका मानना था कि जब तक शिक्षा सभी वर्गों के लिए सुलभ नहीं होगी, जब तक समाज में असमानता बनी रहेगी। गांधी जी ने समाज में जाति, पंथ और लिंग के आध ाार पर फैली असमानता का कड़ा विरोध किया। उन्होंने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया, जिसका अर्थ था कि 'भगवान के लोग', और उनका उद्देश्य यह था कि समाज के उन वर्गों को मान्यता और अधिकार मिले, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर माना गया। उन्होंने समाज में भेदभाव के विरोध कर नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया और सभी लोगों के लिए समानता की बात की। उनका सिद्धांत था कि असमानता से भारतीय समाज की एकता को क्षति पहुँचती है। गांधीजी का जीवन और उनके कार्य मानवाधिकारों के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों का उपयोग किया। उन्होंने कहा, 'आपका अधिकार तभी मान्य है जब आप दूसरों के अधिकारों का सम्मान करते हैं।' उनका मानना था कि हर व्यक्ति का सम्मान और अधिकार होना आवश्यक है, और इन अधिकारों की रक्षा करना समाज की प्राथमिकता होनी चाहिए। गाँधीवादी सिद्धांत इन मुद्दों पर एक अखिल मानवता के दृष्टिकोण पर जोर देता है। गांधी जी की सोच यह थी कि हमें केवल अधिकारों की मांग नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपनी जिम्मेदारियों को भी समझना चाहिए। उनकी दृष्टि आज भी समाज के आधुनिक मुद्दों को समाधान प्रदान करने में प्रासंगिक है। उनका आदर्श हमें यह सिखाता है कि जब हम एक समतावाद और समानता की दिशा में कदम उठाएँगे, तभी हम एक सशक्त और न्यायपूर्ण समाज बना पाएंगे।*

कीवर्ड–*गरीबी, शिक्षा, असमानता, मानवाधिकार, भारतीय समाज, नागरिक, अधिकार, गाँधीवादी*

प्रस्तावना : ''मेरे अनुसार भारत और विश्व का आर्थिक संविधान ऐसा होना चाहिए कि उसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति भोजन और वस्त्र के अभाव से पीड़ित न हो।''

महात्मा गांधी भारतवर्ष को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे उन्होंने माना था कि भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। इसलिए उनका दृष्टिकोण था कि भारत को विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए ग्राम विकास प्राथमिक

* *शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

** *सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

आवश्यकता है। इस बात में ध्यान रखते हुए उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सर्वोपरि स्थान दिया था। उनकी दृष्टि में इस अर्थव्यवस्था का आधार ग्रामीण जीवन का उत्थान था इसलिए गांधी जी ने बड़े उद्योगों को नहीं वरन छोटे उद्योगों को महत्व प्रदान किया था। यद्यपि स्वयं गांधी जी ने निर्धनता के जीवन का आलिंगन किया था, तथापि उनकी सदैव यही मनोकामना रहती थी कि उनके देशवासियों को निर्धनता के चंगुल से छुटकारा मिले। यही करण था कि उन्होंने वर्तमान भारतीय समाज में धन एवं संपत्ति के असामान वितरण पर क्षोभ प्रकट किया और उस सामाजिक रोग एवं अपराध कहने में संकोच नहीं किया। गांधी जी के शब्दों में किसी स्वस्थ समाज में थोड़े से व्यक्तियों के पास धन का एकत्र हो जाना और लाखों व्यक्तियों का बेरोजगार रहना, एक महान रोग अथवा अपराध है, जिसका उपचार किया जाना आवश्यक है।

गांधी जी के अनुसार, उपचार समाज के समस्त व्यक्तियों में आर्थिक समानता की स्थापना है। गांधी जी का विचार था कि आर्थिक समानता का अर्थ है जिन मुट्ठी भर लोगों के हाथों में राष्ट्रीय संपत्ति का अधिकांश भाग एकत्र हो गया है वो नीचे उतरें और जो करोड़ों नंगे और भूखे व्यक्ति हैं, वे ऊपर उठें। जब तक धनी और निर्धन व्यक्तियों के बीच में चौड़ी खाई है, अहिंसात्मक राज्य की स्थापना सर्वथा असंभव है। यदि संपत्ति और संपत्ति प्राप्त होने वाले सत्ता का स्वेच्छा से त्याग नहीं किया जाएगा और और सार्वजनिक हित के लिए उसके संकुचित भाग का प्रयोग नहीं किया जाएगा तो क्रांति एवं रक्तपात होना आवश्यक है।

गांधी जी लघु उद्योग, कुटीर उद्योग से हटकर ग्राम स्वराज का विचार प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि हर व्यक्ति स्वयं में एक उद्योग बने। वह स्वालंबन की बात करते थे। बड़े उद्योग की बजाय हर व्यक्ति को अपना काम करते हुए कुछ न कुछ उत्पादन करने की बात करते थे, उनका मानना था कि इससे कोई भी बेरोजगार नहीं रहेगा सभी के आवश्यकता की पूर्ति होगी और सब लोग काम करेंगे। वह मानते थे कि सब में कुछ न कुछ कौशल है और उसको अपने इस कौशल का उपयोग करना चाहिए।

महात्मा गांधी जी का आर्थिक दर्शन देश की अर्थव्यवस्था की समस्याओं (गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी) तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास को सूचित करता है और वह बताता है कि अपने संसाधनों के बल पर इन समस्याओं को किस प्रकार समाधान किया जाए वह ग्रामीण क्षेत्र हो, शहर या राष्ट्र सभी में व्याप्त आर्थिक समस्याओं का समाधान उन्होंने उचित रूप से प्रस्तुत करके एक सच्चे देशभक्त तथा मानवतावादी का परिचय दिया। गांधी जी ने जहां एक तरफ देश के ग्रामीण क्षेत्रों को अहम बताते हुए ग्राम स्वराज का उल्लेख किया है जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता का प्रदान करने हेतु लघु और कुटीर उद्योगों पर दृष्टि डाली वहीं दूसरी तरफ स्वदेशी शब्द का उपयोग करके एक राष्ट्रवादी भावना प्रस्तुत की है।

महात्मा गांधी का शैक्षिक दर्शन और समकालीन भारत में इसकी प्रासंगिकता। ऋग्वेद और अरस्तू से प्रेरणा देते हुए, यह शिक्षा को आत्मनिर्भरता, निस्वार्थता और समग्र विकास को बढ़ावा देने के साधन के रूप में परिभाषित करता है। गांधी द्वारा औपनिवेशिक शिक्षा को अस्वीकार करने के कारण उन्हें बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव मिला, जिसका उद्देश्य समाज के सभी वर्गों को सशक्त बनाना और सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देना था। व्यावहारिक शिक्षा और चरित्र विकास पर जोर देते हुए, गांधी ने राष्ट्रीय आकांक्षाओं और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप एक शिक्षा प्रणाली की कल्पना की। हालाँकि, गांधी की दूरदर्शी अंतर्दृष्टि के बावजूद, भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बेरोजगारी, व्यावहारिकता की कमी, नैतिक पतन और शारीरिक श्रम के प्रति अनादर जैसी विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यह शोध गांधीवादी शैक्षिक सिद्धांतों की जाँच करके और सुधारों का प्रस्ताव करके इन मुद्दों को संबोधित करना चाहता है। नैतिक शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा और शारीरिक श्रम के प्रति प्रशंसा को एकीकृत करके, इसका उद्देश्य एक मजबूत शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना है जो मानव संसाधनों का पोषण करने और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने में सक्षम हो। अंततः, अध्ययन समकालीन भारत की जरूरतों और आकांक्षाओं के साथ संरेखित एक प्रगतिशील और समावेशी शिक्षा प्रणाली को आकार देने के लिए गांधी के शैक्षिक आदर्शों के अनुप्रयोग की वकालत करता है। समकालीन शिक्षा प्रणालियों में, केवल साक्षरता पर जोर अक्सर व्यक्तियों के समग्र विकास को उपेक्षित कर देता है। महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन, शरीर, मन और आत्मा के व्यापक पोषण पर आधारित है, जो एक आकर्षक विकल्प प्रदान करता है। यह अध्ययन आधुनिक शिक्षा को प्रभावित करने वाले दबाव वाले मुद्दों के समाधान में गांधीवादी सिद्धांतों की प्रासंगिकता की खोज करता है। वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य सीखने और वास्तविक दुनिया के अनुप्रयोग के बीच एक वियोग द्वारा चिह्नित है, गांधी की दृष्टि ऐसी शिक्षा की वकालत करती है जो रटने की शिक्षा से परे हो, और इसके बजाय समस्या–समाधान, संचार और सहानुभूति जैसे

कौशल विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करे। गांधी के दर्शन के केंद्र में 'नई तालीम' या बुनियादी शिक्षा की अवधारणा है, जो बौद्धिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास को एकीकृत करती है। व्यावहारिक शिक्षा और उत्पादक शिल्प के माध्यम से, छात्र न केवल व्यावहारिक कौशल प्राप्त करते हैं, बल्कि आत्मनिर्भरता और श्रम की गरिमा जैसे मूल्यों को भी आत्मसात करते हैं। यह दृष्टिकोण चरित्र की गहरी समझ को बढ़ावा देता है, विनम्रता, सेवा और राष्ट्रीय चेतना पर जोर देता है। वह शिक्षा को वैश्विक सद्भाव और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देने, आपसी सहयोग और समझ को बढ़ावा देने के साधन के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त वे सत्य और अहिंसा की खोज पर बल देते हुए शैक्षिक ढांचे में नैतिकता और नैतिकता के एकीकरण की वकालत करते हैं।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिष्ठित नेता महात्मा गांधी को शायद अहिंसा, सामाजिक न्याय और नैतिक नेतृत्व के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता के लिए सबसे ज्यादा याद किया जाता है। उनका जीवन और शिक्षाएँ समय और सीमाओं के पार गूंजती रहती हैं, जो दुनिया भर में अनगिनत व्यक्तियों और आंदोलनों को प्रेरित करती हैं। राजनीतिक संघर्षों और पर्यावरणीय संकटों से लेकर सामाजिक अन्याय और नैतिक दुविधाओं तक वैश्विक चुनौतियों से चिह्नित एक युग में, गांधी की विचारधारा का अध्ययन नए सिरे से महत्व प्राप्त करता है। यह आज की बहुआयामी चुनौतियों के संदर्भ में अहिंसा, आत्मनिर्भरता, सामाजिक समानता और नैतिक शासन के उनके सिद्धांतों के गहन निहितार्थों का विश्लेषण करना चाहता है। गांधी की विरासत भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष से कहीं विस्तृत है। अहिंसा या सत्याग्रह का उनका दर्शन, हिंसा और संघर्ष से ग्रस्त दुनिया में आशा की किरण बना हुआ है। उनके विचारों की प्रतिध्वनि नागरिक अधिकार आंदोलनों, पर्यावरण अभियानों और दुनिया भर में सामाजिक न्याय के लिए विरोध प्रदर्शनों में देखी जाती है। परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में शांतिपूर्ण प्रतिरोध की शक्ति में उनका अटूट विश्वास व्यक्तियों और समाजों दोनों को अधिक न्यायसंगत और सामंजस्यपूर्ण दुनिया के लिए प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है।

महात्मा गांधी की अहिंसा या सत्याग्रह के प्रति अटूट प्रतिबद्धता, शांतिपूर्ण प्रतिरोध की शक्ति में गहन विश्वास का प्रमाण है। उनके दर्शन ने दुनिया पर एक अमिट छाप छोड़ी है, जो समकालीन समाज में संघर्षों और तनावों से जूझ रहे व्यक्तियों और आंदोलनों के लिए एक मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य करता है। गांधी की विचारधारा के केंद्र में सत्याग्रह की अवधारणा थी, जिसका अनुवाद 'सत्य बल' या 'आत्मा बल' होता है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण था जो अहिंसक साधनों के माध्यम से सत्य और न्याय की खोज की वकालत करता था। सत्याग्रह में सिद्धांतों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता, अडिग संकल्प और शारीरिक हिंसा का सहारा लिए बिना उत्पीड़न का सामना करने का साहस चाहिए। ऐसी दुनिया में जहाँ संघर्ष अक्सर हिंसा में बदल जाते हैं, परिवर्तन के लिए शक्तिशाली उपकरण के रूप में सत्य और अहिंसा पर गांधी जी आज भी प्रासंगिक है। समकालीन समय में अहिंसक आंदोलन गांधी की विरासत हाल के दशकों में उभरे विभिन्न अहिंसक आंदोलनों में सबसे प्रमुख रूप से परिलक्षित होती है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर जैसे लोगों के नेतृत्व में संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन ने गांधी के तरीकों से प्रेरणा ली। अहिंसक विरोध और सविनय अवज्ञा का। इसी तरह, अरब स्प्रिंग, ऑक्युपाई मूवमेंट और दुनिया भर में लोकतंत्र के लिए विरोध ने जनता को संगठित करने और सामाजिक और राजनीतिक बदलाव लाने में अहिंसा की प्रभावशीलता को प्रदर्शित किया है। गांधी द्वारा परिकल्पित अहिंसा में हिंसा के चक्र को तोड़ने और सबसे जटिल संघर्षों में भी समझ के पुल बनाने की शक्ति है। यह टकराव और रक्तपात का विकल्प प्रदान करता है, संवाद, सहानुभूति और नैतिक उच्च आधार पर बल देता है। जबकि समकालीन दुनिया की चुनौतियाँ जटिल और बहुआयामी हैं, गांधी का दर्शन एक कालातीत अनुस्मारक प्रदान करता है कि अहिंसा संघर्ष समाधान और सामाजिक परिवर्तन के लिए एक व्यवहार्य मार्ग है।

21वीं सदी में नैतिक नेतृत्व महात्मा गांधी की विरासत एक राजनीतिक नेता के रूप में उनकी भूमिका से परे है, वे नैतिक नेतृत्व के आदर्श के रूप में भी काम करते हैं जटिल चुनौतियों वाले युग में, नैतिक नेतृत्व कभी इतना महत्वपूर्ण नहीं रहा है, और गांधी का दर्शन 21वीं सदी के नेताओं के लिए स्थायी सबक प्रदान करता था। सत्य या 'सत्य'के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता नेतृत्व में पारदर्शिता और ईमानदारी के महत्व को रेखांकित करती है। गांधी से प्रेरित नैतिक नेता अपने कार्यों और निर्णयों के आधार के रूप में सत्य को प्राथमिकता देते हैं। 21वीं सदी के नैतिक नेता व्यक्तियों, समुदायों और पर्यावरण पर अपने निर्णयों के गहन प्रभाव को पहचानते हैं और अपने विकल्पों और नीतियों के माध्यम से नुकसान को कम करने का प्रयास करते हैं। पर्यावरणीय स्थिरता, सामाजिक न्याय और कॉर्पोरेट जिम्मेदारी को प्राथमिकता देने वाले नेता अक्सर गांधी को प्रेरणा के स्रोत के रूप में उद्धृत करते

हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरण के प्रति जागरूक कंपनियों के प्रमुख संधारणीय प्रथाओं को अपनाते हैं और भविष्य की पीढ़ियों की भलाई को प्राथमिकता देते हैं, जो पर्यावरण और भविष्य की पीढ़ियों के लिए गांधी की चिंता को दर्शाता है। पर्यावरणीय स्थिरता और गांधी का दृष्टिकोण पर्यावरणीय गिरावट और जलवायु परिवर्तन द्वारा परिभाषित इस युग में, महात्मा गांधी का दर्शन संधारणीय जीवन और पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्राप्त करता है। गांधी की सादगी, आत्मनिर्भरता और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध की दृष्टि 21वीं सदी की दबावपूर्ण पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक आकर्षक रूपरेखा प्रदान करती है।

गांधी जी अतिसूक्ष्मवाद के कट्टर समर्थक थे, जो उपभोक्तावाद की प्रचलित संस्कृति के बिल्कुल विपरीत है जो अक्सर अति उपभोग और पर्यावरणीय गिरावट को बढ़ावा देती है। व्यक्तियों से कम में जीने, अपनी भौतिक इच्छाओं को कम करने और संयम का अभ्यास करने का उनका आह्वान हमारे पारिस्थितिक पदचिह्न को कम करने की आधुनिक अनिवार्यता के साथ संरेखित है। गांधी जी का मानना था कि सच्ची संपत्ति भौतिक संपत्तियों में नहीं बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक कल्याण में निहित है, एक ऐसा दृष्टिकोण जो सचेत उपभोग और संधारणीय जीवन शैली को बढ़ावा देने वाले समकालीन आंदोलनों के साथ प्रतिध्वनित होता है। गांधी की आत्मनिर्भरता या 'स्वदेशी' की अवधारणा ने समुदायों को स्थानीय उत्पादन और संधारणीय प्रथाओं के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह अवधारणा संधारणीय कृषि, नवीकरणीय ऊर्जा और स्थानीय सोर्सिंग के आधुनिक संदर्भ में अच्छी तरह से अनुवादित होती है। पर्यावरणीय स्थिरता पर ध्यान केंद्रित करने वाले नेता और समुदाय गांधी के दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर, लचीली प्रणालियाँ बनाने के लिए प्रेरित होते हैं जो संसाधन–गहन, पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली प्रथाओं पर निर्भरता को कम करती हैं। गांधी जी के दर्षन ने दुनिया भर में विभिन्न पर्यावरण आंदोलनों और प्रथाओं पर एक अमिट छाप छोड़ी है। अहिंसा और शांतिपूर्ण प्रतिरोध पर उनके जोर ने पर्यावरण के प्रति जागरूक कार्यकर्ताओं और संगठनों को संवाद, शिक्षा और जमीनी स्तर की पहल के माध्यम से बदलाव लाने के लिए प्रेरित किया है। इसके अलावा, प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध की उनकी दृश्टि भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करती है। जिस प्रकार पृथ्वी पर बढ़ते वैश्विक तापमान से लेकर जैव विविधता के नुकसान तक पर्यावरणीय गिरावट के भयानक परिणामों से जूझ रही है, गांधी के सिद्धांत इन चुनौतियों को कम करने के लिए एक नैतिक दिशा और व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

स्वदेशी और स्वराज सामाजिक न्याय और समानता के दो स्तंभ हैं। गांधीजी का जीवन अहिंसक प्रतिरोध के गहन प्रभाव और आत्मनिर्भरता और स्वशासन पर उनकी शिक्षाओं का उदाहरण है। सामाजिक न्याय और समानता ऐसे मूलभूत सिद्धांत हैं जो न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के लिए प्रयास करने वाले वैश्विक आंदोलनों को प्रेरित करते हैं। यह खंड गांधीजी द्वारा अपनाए गए सिद्धांतों पर गहराई से चर्चा करता है, सामाजिक न्याय और समतापूर्ण शासन के व्यापक दायरे में उनके महत्व की खोज करता है। स्वदेशी, स्वराज, सामाजिक न्याय और समानता का उनका दर्शन केवल एक राजनीतिक सिद्धांत नहीं था। यह एक नैतिक दिशा–निर्देश था जो समाजों को आत्मनिर्भरता, स्वशासन, समानता और निष्पक्षता की ओर ले जाता था। उनकी शिक्षाएँ वैश्विक स्तर पर व्यक्तियों और आंदोलनों को प्रेरित करने में सहायक हैं, जो एक अधिक न्यायपूर्ण और समतापूर्ण दुनिया को आकार देने में उनके सिद्धांतों की स्थायी प्रासंगिकता और सार्वभौमिक अपील को दर्शाती हैं। गांधी ने औपनिवेशिक भारत की चर्चाओं में स्वराज (स्व–शासन) और स्वदेशी (आत्मनिर्भरता) की अवधारणाओं को लोकप्रिय बनाया। यद्यपि कुछ विद्वानों और अधिवक्ताओं ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर चर्चा करते समय इस शब्दावली को अपनाया, लेकिन उनके अर्थ पर आम सहमति बनाना चुनौतीपूर्ण साबित हुआ। गांधीवादी पद्धति वैश्विक विकास के लिए प्रारंभिक 'बुनियादी जरूरतों' की अवधारणा के साथ संरेखित होती है।

महात्मा गांधी की चिरस्थायी विरासत इतिहास के पन्नों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह दुनिया भर में समकालीन आंदोलनों और पहलों को आकार देती रहती है। वर्तमान युग में तात्कालिक मुद्दों को संबोधित करने में गांधी के दर्शन के प्रभाव को उजागर करती हैं।

अरब स्प्रिंग और अहिंसक प्रतिरोध–अरब स्प्रिंग, लोकतंत्र समर्थक विद्रोहों की एक श्रृंखला जो 2010 के दशक की शुरुआत में मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका में फैल गई, समकालीन आंदोलनों पर गांधी के प्रभाव का एक शक्तिशाली चित्रण प्रस्तुत करती है। ट्यूनीशिया और मिस्र जैसे देशों में प्रदर्शनकारियों ने गांधी के शांतिपूर्ण प्रतिरोध के सिद्धांतों से प्रेरित होकर सामूहिक प्रदर्शन, सविनय अवज्ञा और धरना सहित अहिंसक तरीके अपनाए। इन

आंदोलनों ने राजनीतिक परिवर्तन की वकालत करने में अहिंसा की प्रभावशीलता को रेखांकित किया और वैश्विक ध्यान आकर्षित किया।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नागरिक अधिकार आंदोलन–डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर के नेतृत्व में संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन ने गांधी के अहिंसा के दर्शन से गहन प्रेरणा ली। किंग द्वारा गांधी जी के विधियों को अपनाना, जैसे बहिष्कार, मार्च और शांतिपूर्ण विरोध, नागरिक अधिकारों को आगे बढ़ाने और नस्लीय अलगाव और भेदभाव का मुकाबला करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका नेतृत्व और अहिंसा के प्रति प्रतिबद्धता सामाजिक न्याय के लिए आंदोलनों पर गांधी के स्थायी प्रभाव का प्रमाण है।

भारत में सतत विकास– भारत में, गांधी जी की सतत जीवन और आत्मनिर्भरता की दृष्टि ग्रामीण विकास और सतत कृषि पर केंद्रित पहलों को आकार देती है। विभिन्न संगठनों और समुदायों ने पर्यावरण के अनुकूल खेती, नवीकरणीय ऊर्जा और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए गांधीवादी सिद्धांतों को अपनाया है। ये प्रयास भूमि और संसाधनों के जिम्मेदार प्रबंधन के लिए गांधी के आह्वान के अनुरूप हैं।

स्वदेशी आंदोलन और भूमि अधिकार–दुनिया भर के स्वदेशी समुदायों ने अपने भूमि अधिकारों का दावा करने और अपनी संस्कृतियों की रक्षा करने के लिए गांधी के अहिंसा और सविनय अवज्ञा के सिद्धांतों से प्रेरणा ली है। उदाहरणों में संयुक्त राज्य अमेरिका में डकोटा एक्सेस पाइपलाइन के खिलाफ स्टैंडिंग रॉक विरोध और भारत में चिपको आंदोलन शामिल हैं, जहां ग्रामीणों ने वनों की कटाई को रोकने के लिए पेड़ों को गले लगाया। ये आंदोलन भूमि और प्राकृतिक संसाधनों की पवित्रता में गांधी के विश्वास को दर्शाते हैं।

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) और नैतिक व्यावसायिक व्यवहार–कॉर्पोरेट जगत में, नैतिक आचरण और सामाजिक उत्तरदायित्व पर गांधी के जोर ने सीएसआर पहलों को प्रभावित किया है। नैतिक व्यावसायिक व्यवहार, स्थिरता और सामुदायिक जुड़ाव को प्राथमिकता देने वाली कंपनियाँ अक्सर अपने प्रयासों के लिए प्रेरणा के स्रोत के रूप में गांधी के सिद्धांतों का हवाला देती हैं। यह दर्शाता है कि गांधी का दृष्टिकोण सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों से आगे बढ़कर व्यापार और उद्योग में नैतिक नेतृत्व तक कैसे फैला हुआ है।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के बाद भी मानवाधिकारों के लिए संघर्ष जारी है। आज हम विभिन्न स्तरों पर मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले देख रहे हैं। इनमें प्रमुख हैं बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक विषमता, कारखानों में काम की अमानवीय स्थिति, महिलाओं और बच्चों की तस्करी, कामकाजी महिलाओं का यौन और मानसिक उत्पीड़न, लैंगिक भेदभाव, आतंकवाद आदि। ये पूरी दुनिया के सामने मानवाधिकारों के लिए प्रमुख चुनौतियां हैं। इसके अलावा धार्मिक कट्टरपंथियों और उग्रवादी समूहों द्वारा हिंसक संघर्ष हर व्यक्ति और राष्ट्र के सामने मौजूद गंभीर तनावों में से एक है। अफगानिस्तान में अल–कायदा, तालिबान जैसे कट्टरपंथी इसके प्रमुख उदाहरण हैं, जो अपने कट्टर लक्ष्यों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए खुलेआम हिंसा में लिप्त हैं। न्यूयॉर्क ट्रेड टॉवर और पेंटागन पर 9/11 के हमले, लंदन पर हमला, 26/11 के मुंबई आतंकी हमले से यह स्पष्ट है, जिसने पूरी दुनिया को खतरे में डाल दिया है और मानव जाति में व्यापक हिंसा और असुरक्षा की भावना पैदा कर दी है। इसके अलावा वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भी मानवाधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। वैश्वीकरण की तीव्र प्रणाली के कारण बड़े पैमाने पर गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक विषमता का जन्म होता है जो मानव अधिकारों के उल्लंघन का प्रमुख कारक हैं। यहां **लास्की** को उद्धृत करना उचित होगा **'जहाँ आर्थिक असमानताएं स्पष्ट रूप से अधिक हैं, नागरिकों के बीच संबंध स्वामी और दास में बदल जाएंगे।'** औद्योगीकरण के उद्भव विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रगति के बावजूद भी आधुनिक दुनिया से हिंसा, गरीबी, बेरोजगारी की समस्याओं को समाप्त करने में विफल रही है, जिसने पूरी मानवता के लिए एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत की है। यद्यपि प्रत्येक स्तरों पर विकास हुआ है, लेकिन एक तरफ अमीर और गरीब के बीच असमानता बढ़ रही है और दूसरी तरफ हिंसा। ऐसी गंभीर स्थिति में मानवता को सुरक्षित करने के लिए गांधीवादी विचार प्रासंगिक हो गया है। इस हिंसा का उचित और प्रभावी उपाय हिंसा का विरोध नहीं बल्कि अहिंसा है। जैसा कि **मार्टिन लूथर किंग** कहते हैं कि **''आज, चुनाव हिंसा और अहिंसा के बीच नहीं है, यह या तो अहिंसा है या अस्तित्वहीनता।''**

गांधीवादी परिप्रेक्ष्य में मानव होने का सार महात्मा गांधी के जीवन और कार्य में स्पश्ट रूप से व्यक्त किया गया है। अपने पूरे जीवन में उन्होंने दूसरों के लिए व्यक्तिगत बलिदान दिया और वे हमें मानवता की ईमानदारी और प्रेम सिखाते हैं। हम सभी ने देखा कि उनका पूरा दर्शन पूरी मानव जाति के कल्याण पर आधारित है। वह सभी मनुश्यों का उत्थान चाहते थे और गांधीजी विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक बुराइयों से बचाने का

प्रयास करते हैं। उनका सर्वोदय का विचार, जिसका अर्थ है सभी का कल्याण, आधुनिक मानवाधिकारों और मानवता से बहुत जुड़ा हुआ है। कमोडिटी बाजारों का वैश्वीकरण मानवता को शांति और न्याय से दूर नहीं करता है, बल्कि इसके परिणामस्वरूप शत्रुतापूर्ण प्रतिस्पर्धा हो सकती है जो हिंसा को जन्म देगी। गांधीजी संरचनात्मक हिंसा से अवगत थे, जिसके तहत दुनिया भर में बड़े पैमाने पर गरीबों पर अत्याचार हो रहे हैं। एक बार गांधीजी ने पंडित नेहरू को लिखा था कि, 'मुझे डरना नहीं चाहिए कि आज दुनिया गलत रास्ते पर जा रही है, हो सकता है कि भारत भी उसी रास्ते पर चले और पतंगे की तरह अंततः उस आग में जल जाए जिसके चारों ओर वह अधिक से अधिक उग्र रूप से नाचता है। लेकिन मेरा अंतिम सांस तक यह कर्तव्य है कि मैं भारत और भारत के माध्यम से पूरे विश्व को ऐसे विनाश से बचाने का प्रयास करूं।' मैंने जो कहा है उसका सार यह है कि मनुष्य को अपनी वास्तविक आवश्यकताओं से संतुष्ट रहना चाहिए और आत्मनिर्भर बनना चाहिए। यदि उसके पास यह नियंत्रण नहीं है तो वह खुद को नहीं बचा सकता। आखिरकार दुनिया व्यक्तियों से बनी है, जैसे कि बूंदें मिलकर सागर बनाती हैं. उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि गांधीजी मानवता को हिंसा और अन्याय से बचाने के लिए बहुत चिंतित थे।

हमें शांतिपूर्ण समाधान के लिए गांधीवादी तरीकों की आवश्यकता है। उनकी अहिंसा की पद्धति मानवता को बचाने के लिए अनमोल उपहार है। उनके अनुसार, मनुष्य होने के लिए अहिंसक होना जरूरी है। हम जानते हैं कि मानवता के लिए सबसे बड़ा खतरा हिंसा है, चाहे वह धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा बनाई गई हो या परमाणु हथियारों द्वारा। ऐसी नाजुक स्थिति में गांधीवादी अहिंसा मानवता की रक्षा के लिए सबसे अच्छा समाधान है। गांधी हमेशा बिना हथियारों के लड़े और वे विभिन्न क्षेत्रों में जीत हासिल करने में सक्षम थे। उनके लिए अहिंसा सक्रिय प्रेम और सत्य की शक्ति है जो हर इंसान के लिए न्याय और शांति चाहती है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गांधीजी ने लिखा कि 'यदि हथियारों की पागल दौड़ जारी रही तो इसका परिणाम ऐसा नरसंहार होगा जैसा इतिहास में कभी नहीं हुआ। यदि कोई विजेता बच जाता है तो जीत ही विजयी राष्ट्र के लिए जीवित मृत्यु होगी।' जिस युद्ध की गांधी जी चर्चा करते हैं, वह आगे चलकर लाखों पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की मृत्यु का कारण बनता है, इसका प्रमुख उदाहरण जापान में अमेरिका द्वारा परमाणु बम का विस्फोट है, जिसमें निर्दोष लोग अभी भी पीड़ित हैं। हम जानते हैं कि आज की प्रत्यक्ष आवश्यकता वैश्विक शांति स्थापित करना है और यह केवल गांधीवादी अहिंसा के माध्यम से ही संभव होगा। उनके अनुसार अहिंसा दुनिया के किसी भी हथियार से अधिक शक्तिशाली है। इराक में अमेरिकी आक्रमण मानव अधिकारों के बड़े पैमाने पर उल्लंघन को दर्शाता है। निर्दोष लोगों को बहुत पीड़ा हुई लेकिन मुख्य चिंता केवल तेल के लिए है, मानव अधिकारों और मानवता को बचाने की नहीं। उनका तर्क है कि लक्ष्य और साधन हमेशा एक ही होने चाहिए। इसके अलावा, गांधीजी ने गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक संकट से मानव अधिकारों को बचाने के लिए कई तरीके बताए हैं। विकेंद्रीकरण, ग्रामोद्योग और चरखा जैसी असमानताएँ। आज दुनिया ने वैश्वीकरण और औद्योगिकीकरण की व्यवस्था के तहत सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव डाले हैं। जहाँ तक नकारात्मक प्रभाव की बात है तो इससे बहुत गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता पैदा होती है। गांधी जमीनी स्तर पर विकेंद्रीकरण के बहुत बड़े समर्थक थे। उनके अनुसार गाँवों को अपना स्वतंत्र उत्पादन और प्रशासन करना चाहिए। वे गाँव में रहने वाले गरीब लोगों का उत्थान करना चाहते थे, इसलिए भारत में पंचायती राज की चर्चा करते है। गरीब लोगों के प्रति उनकी गहरी चिंता के कारण उन्होंने चरखा, खादी आदि जैसे ग्रामोद्योग पर अधिक बल दिया जिससे ग्रामीण लोग अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकें। औद्योगीकरण के तेज प्रवाह के कारण ग्रामोद्योग नष्ट हुए बेरोजगारी का प्रसार हुआ जिससे अमीर और गरीब के मध्य आर्थिक असमानता का प्रसार हुआ। गांधी जी ने कहा था कि, जो कुछ भी लाखों लोग मिलकर कर सकते हैं, वह अद्वितीय शक्ति से भर जाता है। उनके लिए चरखा विकास के साधन का प्रतीक था। हालाँकि, वे मशीनरी के विरुद्ध नहीं थे, बल्कि मशीनों के प्रति पागलपन के विरुद्ध थे।

महात्मा गांधी अपने निडर, निःस्वार्थ और शांतिपूर्ण दर्शन के साथ–साथ सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन लाने के अपने प्रयासों के लिए महात्मा के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्हें एक संत, राजनेता, क्रांतिकारी, लेखक, समाज सुधारक और कई अन्य लोगों के रूप में सम्मानित किया जाता है। एक व्यक्ति जिसके पास एक साथ इतनी सारी जटिल विशेषताएँ हों, वह वास्तव में अद्भुत है। गांधी, जिन्होंने भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करने में मदद की, दुनिया भर में अहिंसक नागरिक अधिकारों और सामाजिक सुधार संगठनों के लिए प्रेरणा के रूप में कार्य किया। उन्होंने अपना जीवन सत्य की खोज में जिया। गांधी अपने विचारों के लिए जाने जाते हैं, जिन्होंने नागरिक अधिकारों

और स्वतंत्रता के लिए वैश्विक अभियानों को गति दी। 15 दिसंबर, 2022 को संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में गांधी की प्रतिमा का अनावरण किया गया। इस स्मारक की उपस्थिति गांधी द्वारा समर्थित सिद्धांतों की निरंतर याद दिलाती रहेगी और जिनके प्रति हमें प्रतिबद्ध रहना चाहिए। गांधीवादी विचारधारा ने ऐतिहासिक रूप से शैक्षणिक, बौद्धिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक मोर्चों पर ध्यान आकर्षित किया है। उनके प्रकाशन 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' और 'हिंद स्वराज', जो अविश्वसनीय रूप से गहन पाठ्य और प्रासंगिक शोध का विषय भी रहे हैं, उनके बारे में गहन समझ प्रदान करते हैं। गांधी दूसरों से अलग हैं क्योंकि वे सिद्धांत और व्यवहार के बीच अंतर नहीं करते हैं। हालाँकि, उनके सिद्धांतों और संघर्ष के अहिंसक तरीके को तैयार करने में वे कई लोगों से बहुत प्रभावित थे, जिसने अंततः उन्हें शांति और अहिंसा का प्रतीक बनने में मदद की।

जहाँ दुनिया आतंकवाद और हिंसा के अनन्य रूपों से जूझ रही है वहाँ महात्मा गांधी का अहिंसा दर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण है। गांधी के दर्शन का उपयोग आज की वैश्विक चिंताओं को संबोधित करने के लिए किया जा सकता है, जिसमें मानवाधिकार, सतत विकास, जलवायु परिवर्तन, सामाजिक–राजनीतिक अस्थिरता, युद्ध और शांति, आतंकवाद, राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार से जुड़ी चिंताएँ शामिल हैं। वर्तमान में इस दर्शन को व्यवहार में लाने की आवश्यकता है क्योंकि हिंसा का सहारा लिए बिना सत्य के लिए खड़ा होना सत्याग्रह का एक महत्वपूर्ण घटक है। वर्तमान में भारत सरकार भारत को आत्मनिर्भर बनने की दिशा में अग्रसरित है वहीं गांधी की स्वदेशी की अवधारणा अभी भी व्यापक रूप से प्रचलित है। स्वदेशी का दूसरा संस्करण प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कोविड के समय में पेश किया था, जब भारत हीं नही सर्म्पूण विश्व एक भयानक वैश्विक संकट से गुजर रहा था, उसी समय तत्कालीन भारत सरकार ने भारत के एक स्वर्णिम स्वप्न को साकार करने की दिशा में अग्रसर हुआ जिसे 'आत्मनिर्भर भारत' से सम्बोधित किया गया है। गांधी ने लगातार अंतर–सामुदायिक एकता को बढ़ावा दिया है जिसकी तात्कालिक समय में अति आवश्यकता है। 73वें और 74वें संशोधन, जिसने स्थानीय स्वशासन को अधिक शक्ति दी, ने भारत को विकेंद्रीकरण के गांधीवादी सिद्धांत को लागू करने में मदद की। निचली जातियों के लोगों को सम्मान देने और जाति व्यवस्था के विरोध में, गांधीजी ने 'हरिजन' शब्द से सम्बोधित किया। गांधी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जहाँ कोई भूख न हो, कोई बेरोजगारी न हो, कोई गरीबी न हो, एक स्वस्थ वातावरण हो और सभी को शिक्षा और अच्छे स्वास्थ्य की सुविधाएँ उपलब्ध हों। समाजवाद के बारे में गांधी का दृष्टिकोण राजनीतिक से ज्यादा सामाजिक था। ये गांधीवादी दर्शन भारतीय नीति निर्माताओं को प्रभावित करते रहेंगे। जैसा कि हम देख सकते हैं, उनके विचारों का 'गरीबी उन्मूलन' से लेकर 'सर्व शिक्षा अभियान' और 'आयुष्मान भारत' से लेकर 'कौशल भारत' तक प्रत्येक क्षेत्र पर प्रभाव पड़ा है। गांधी श्स्वच्छताश के प्रबल समर्थक थे, स्वच्छ भारत के उनके सपने को हाल ही में शुरू किए गए 'स्वच्छ भारत अभियान' ने साकार किया है। गांधी आवश्यकताओं को कम करने की वकालत करते थे क्योंकि मानव लालच पर्यावरण को नष्ट कर रहा है। उनके अनुसार, ''पृथ्वी पर मानव की जरूरतों के लिए पर्याप्त है लेकिन मानव लालच के लिए पर्याप्त नहीं है।'' ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन और संसाधनों की कमी आज दुनिया के सामने तीन मुख्य मुद्दे हैं। गांधी के विचारों को सभी पर्यावरण समझौतों और सतत विकास पहलों में शामिल किया जाना चाहिए। शांति और सतत विकास के लिए महात्मा गांधी शिक्षा संस्थान की स्थापना 2012 में यूनेस्को के अभिन्न अंग के रूप में नई दिल्ली में की गई थी, जिसका उद्देश्य शांति, सतत विकास और वैश्विक नागरिकता के लिए शिक्षा के माध्यम से शांतिपूर्ण और स्थायी समुदायों को बढ़ावा देना है। गांधी जी ने महिलाओं को उनके घरेलू काम से बाहर निकालकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जो आज भी प्रासंगिक है। इतने वर्षों के पश्चात भी गांधी जी की मान्यताएं भारत और बाकी दुनिया को ज्ञान दे रही हैं। उनकी राजनीतिक उपलब्धियों ने हमें आजादी दिलाई। इसलिए, एक खुशहाल, समृद्ध, स्वस्थ, शांतिपूर्ण और स्थायी जीवन जीने के लिए, हर व्यक्ति को गांधी जी की मूल विचारधाराओं का पालन करना चाहिए।

संदर्भ–सूची

1. अवस्थी, प्रकाश, आनन्द, अग्रवाल, नारायण, लक्ष्मी, भारतीय राजनीतिक विचारक, आगरा द्वितीय संस्करण, 2002
2. अवस्थी, डॉ., अमरेश्वर, अवस्थी, डॉ., रामकुमार, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर–2014
3. नागर, डॉ., पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. त्रिपाठी, शंभूरत्न, गाँधी–धर्म और समाज, समाजशास्त्र संसद, कानपुर
5. प्रभु, आर. के.,राव, आर. यू., वी माइंड ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस

6. दत्ता, धीरेन्द्र, मोहन, महात्मा गाँधी का दर्शन, मैडिसन, डब्ल्यू. आई., विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय प्रेस

7. Manisha, Dr. Sumeshta, Tuijin, Jishu, Journal of Population Technology, Volume 44, no. 4, 2023

8. Jolly, K. James, Shanimol, P. S., Addressing Human Right Issues in the Prespective of Gandhian Philosophy of Social Work, International Journal of Multidisciplinary Research and Developement, Volume 11, Issue 1, 2024, Page no 51-56

9. Kandi, Monas, Political Philosphy of M. K. Gamdhi : Exploring Equity and Social Justice, International Journal of Political Science and Governance, 2024, 6(1): 161-166

10. Gandhi, K, M, My Experiments With Truth

11. Bose, K. N., Studies in Gandhian, Navjivan Trust, 2012

12. https://www.mkgandhi.org/autobio/autobio.php

13. https://sageuniversity.edu.in/blogs/relevance-of-gandhi-in-the-21st-century

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 155-158

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शिक्षकों की सतत और व्यापक मूल्यांकन प्रणाली (CCE) के प्रति दृष्टिकोण : एक तुलनात्मक अध्ययन

*ऋचा सिंह**

सारांश : *शिक्षा में सफलता का मूल्यांकन इस बात से होता है कि निर्धारित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति किस हद तक हुई है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मूल्यांकन आवश्यक है, जिससे यह जाना जा सके कि छात्र किस दिशा में अग्रसर हैं। विद्यालयी स्तर पर मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों के साथ–साथ उनके जीवन कौशल और दृष्टिकोण का भी विकास करना है। इस अध्ययन में प्रयागराज शहर के छह सीबीएसई स्कूलों के 100 शिक्षकों (50 पुरुष, 50 महिला; 50 सरकारी, 50 निजी) को चुना गया। स्वनिर्मित दृष्टिकोण मापदंड द्वारा आंकड़े संकलित किए गए और t–अनुपात सांख्यिकीय विधि से विश्लेषण किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि पुरुष और महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में कोई विशेष अंतर नहीं है, जबकि सरकारी शिक्षक निजी शिक्षकों की तुलना में ब्ब् के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।*

परिचय : भारतीय शिक्षा प्रणाली में परंपरागत रूप से परीक्षा–केन्द्रित मूल्यांकन पद्धति का गहरा प्रभाव रहा है। इस प्रणाली के तहत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का आकलन मुख्यतः वार्षिक या अर्धवार्षिक परीक्षाओं के आधार पर किया जाता है। इन परीक्षाओं में प्रायः वही प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनका उत्तर छात्र पहले से रटकर याद कर लेते हैं। इस वजह से शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान और समझ के विकास की बजाय मात्र अंक अर्जित करना या अगली कक्षा में प्रवेश पाना बन जाता है। बच्चों में रचनात्मक सोच, विश्लेषणात्मक क्षमता और समस्या–समाधान जैसे महत्वपूर्ण कौशलों का विकास सीमित रह जाता है।

परीक्षा–केन्द्रित प्रणाली के चलते शिक्षा व्यवस्था में कई गंभीर समस्याएं भी देखने को मिलती हैं। छात्रों पर अत्यधिक मानसिक दबाव रहता है, जिससे उनमें तनाव, चिंता और अवसाद जैसी समस्याएं बढ़ जाती हैं। इसके अलावा, नकल की प्रवृत्ति, प्रश्नपत्र लीक होना, अंकों में हेरफेर, और अनुचित साधनों का इस्तेमाल जैसी अनैतिक गतिविधियाँ भी बढ़ जाती हैं। कई बार विद्यार्थी केवल परीक्षा के दिनों में पढ़ाई करते हैं और बाद में सीखी हुई चीजें भूल जाते हैं, जिससे उनका दीर्घकालिक ज्ञान और व्यावहारिक समझ कमजोर रह जाती है। इस प्रणाली में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत रुचियों, प्रतिभाओं और बहुआयामी विकास की उपेक्षा होती है, जिससे उनका सर्वांगीण विकास बाधित होता है।

इन चुनौतियों को देखते हुए शिक्षा विशेषज्ञों और नीति–निर्माताओं ने मूल्यांकन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता महसूस की। इसी संदर्भ में सतत और व्यापक मूल्यांकन (CCE) की अवधारणा को अपनाया गया। CCE प्रणाली का उद्देश्य केवल परीक्षा के आधार पर नहीं, बल्कि पूरे शैक्षिक सत्र के दौरान विद्यार्थियों के प्रदर्शन का बहुआयामी आकलन करना है। इसमें शैक्षिक उपलब्धियों के साथ–साथ सह–शैक्षिक गतिविधियों, जैसे खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम, कला, नेतृत्व, सामाजिक व्यवहार, नैतिक मूल्य आदि का भी मूल्यांकन किया जाता है। इससे छात्रों की रचनात्मकता, आत्मविश्वास, सहयोग, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक कौशल का विकास होता है।

CCE प्रणाली के अंतर्गत विद्यार्थियों की निरंतर प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है, जिससे शिक्षकों को समय–समय पर उनकी कमजोरियों और क्षमताओं का पता चलता है। इससे शिक्षक विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन और सहायता प्रदान कर सकते हैं। इस प्रणाली में सुधार के अवसर अधिक होते हैं, क्योंकि विद्यार्थी

* *सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, एस.एन. सेन वी. पी.जी. कॉलेज, कानपुर*

अपनी गलतियों से सीखकर आगे बढ़ सकते हैं। सतत और व्यापक मूल्यांकन से शिक्षा प्रणाली अधिक समावेशी, व्यावहारिक और जीवनोपयोगी बनती है, जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास संभव हो पाता है। इस प्रकार, CCE भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक सकारात्मक और दूरदर्शी परिवर्तन का संकेत है, जो भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए विद्यार्थियों को बेहतर रूप से तैयार करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- पुरुष और महिला शिक्षकों के CCE के प्रति दृष्टिकोण की तुलना करना।
- सरकारी और निजी स्कूलों के शिक्षकों के दृष्टिकोण की तुलना।
- सरकारी और निजी स्कूलों के पुरुष शिक्षकों के दृष्टिकोण की तुलना।
- सरकारी और निजी स्कूलों की महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण की तुलना।

परिकल्पनाएँ

- पुरुष और महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर है।
- सरकारी और निजी स्कूलों के शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर है।
- सरकारी और निजी स्कूलों के पुरुष शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर है।
- सरकारी और निजी स्कूलों की महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर है।

शोध विधि : इस अध्ययन में वर्णनात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया। प्रयागराज के 6 सीबीएसई स्कूलों से 100 शिक्षकों का चयन किया गया है। आंकड़े स्वनिर्मित दृष्टिकोण मापनी द्वारा एकत्र किए गए और t–अनुपात सांख्यिकीय विधि से उनका विश्लेषण किया गया।

परिणाम एवं विश्लेषण

समूह	Mean	t- अनुपात	निष्कर्ष
पुरुष शिक्षक	73.08	0.24	सार्थक अंतर नहीं
महिला शिक्षक	71.96		
सरकारी शिक्षक	75.62	2.65	सार्थक अंतर
निजी शिक्षक	70.98		
सरकारी पुरुष शिक्षक	76.16	2.38	सार्थक अंतर नहीं
निजी पुरुष शिक्षक	70.00		
सरकारी महिला शिक्षक	75.08	1.33	सार्थक अंतर नहीं
निजी महिला शिक्षक	71.96		सार्थक अंतर नहीं

शोध परिणाम एवं व्याख्या

- पुरुष और महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में कोई विशेष अंतर नहीं पाया गया।

व्याख्या : यह दर्शाता है कि लिंग के आधार पर CCE (सतत और व्यापक मूल्यांकन) के प्रति शिक्षकों के नजरिए में कोई बड़ा फर्क नहीं है। दोनों ही समूहों के शिक्षक CCE के लाभ, चुनौतियों और कार्यान्वयन को लगभग एक जैसी दृष्टि से देखते हैं। इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि दोनों ही समूहों को समान प्रकार का प्रशिक्षण, कार्यभार और शैक्षिक वातावरण मिलता है, जिससे उनके दृष्टिकोण में अंतर नहीं आता।

• सरकारी शिक्षक, निजी शिक्षकों की तुलना में CCE के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।

व्याख्या : सरकारी शिक्षकों का CCE के प्रति अधिक सकारात्मक नजरिया इस तथ्य से जुड़ा हो सकता है कि सरकारी स्कूलों में CCE का कार्यान्वयन अपेक्षाकृत अधिक संरचित और अनिवार्य रूप से होता है। सरकारी शिक्षकों को नियमित सेवाकालीन प्रशिक्षण, कार्यशालाओं और सरकारी निर्देशों का लाभ मिलता है, जिससे वे इस प्रणाली को बेहतर समझ पाते हैं और उसमें अपनी भूमिका को सार्थक मानते हैं। वहीं, निजी स्कूलों में अक्सर शिक्षकों पर परिणाम और प्रदर्शन का दबाव अधिक होता है, जिससे वे CCE जैसी प्रक्रिया को अतिरिक्त कार्यभार के रूप में देख सकते हैं।

• सरकारी स्कूलों के पुरुष शिक्षकों का दृष्टिकोण, निजी स्कूलों के पुरुष शिक्षकों से अधिक सकारात्मक है।

व्याख्या : सरकारी स्कूलों के पुरुष शिक्षक, निजी स्कूलों के पुरुष शिक्षकों की तुलना में CCE को अधिक सकारात्मक रूप में देखते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि सरकारी स्कूलों में शिक्षकों की शैक्षिक योग्यता और प्रशिक्षण का स्तर अपेक्षाकृत अधिक होता है। सरकारी स्कूलों में CCE के लिए आवश्यक संसाधन, प्रशिक्षण और प्रशासनिक सहयोग अधिक उपलब्ध होता है, जिससे पुरुष शिक्षक इस प्रणाली को प्रभावशाली मानते हैं।

• महिला शिक्षकों के मामले में, सरकारी और निजी स्कूलों के बीच दृष्टिकोण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

व्याख्या : महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में सरकारी और निजी स्कूलों के बीच कोई बड़ा फर्क नहीं पाया गया। इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि महिला शिक्षक, चाहे वे किसी भी स्कूल में हों, CCE की चुनौतियों और अपेक्षाओं को समान रूप से अनुभव करती हैं। दोनों ही जगहों पर उन्हें छात्रों के सर्वांगीण विकास, मूल्यांकन और रिपोर्टिंग की जिम्मेदारियों का सामना करना पड़ता है, जिससे उनके दृष्टिकोण में कोई विशेष अंतर नहीं बनता।

निष्कर्ष : यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि सतत और व्यापक मूल्यांकन (CCE) प्रणाली के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण उनके लिंग की बजाय उनके स्कूल के प्रकार (सरकारी या निजी) पर अधिक निर्भर करता है। सरकारी स्कूलों के शिक्षक इस प्रणाली को अधिक सकारात्मक रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि निजी स्कूलों के शिक्षकों का दृष्टिकोण तुलनात्मक रूप से कम सकारात्मक है। पुरुष और महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं पाया गया, जिससे यह संकेत मिलता है कि लिंग की अपेक्षा कार्य–परिस्थितियाँ, संसाधन, प्रशिक्षण और प्रशासनिक सहयोग जैसे कारक अधिक प्रभावशाली हैं।

सुझाव

शिक्षकों के लिए नियमित प्रशिक्षण : CCE प्रणाली को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए सभी शिक्षकोंकृ चाहे वे सरकारी हों या निजीकृको समय–समय पर व्यावसायिक विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रमों से जोड़ा जाए। इससे उनकी समझ, कौशल और आत्मविश्वास बढ़ेगा।

प्रशासनिक सहयोग और संसाधन : निजी स्कूलों में CCE के सफल क्रियान्वयन के लिए प्रशासनिक सहयोग, पर्याप्त संसाधन और समय उपलब्ध कराया जाए। इससे शिक्षकों का दृष्टिकोण भी सकारात्मक बनेगा।

सीखने के अंतराल की पहचान और सुधार : CCE का मुख्य उद्देश्य छात्रों की प्रगति का सतत मूल्यांकन और समय रहते उनकी कमजोरियों की पहचान करना है। शिक्षकों को यह सिखाया जाए कि वे किस प्रकार नियमित रूप से बच्चों के सीखने के अंतराल का निदान कर सुधारात्मक उपाय कर सकते हैं।

सह–शैक्षिक गतिविधियों का समावेश : केवल शैक्षिक उपलब्धियों के बजाय सह–शैक्षिक गतिविधियों (जैसे–खेल, कला, नेतृत्व, सामाजिक सेवा) को भी मूल्यांकन का हिस्सा बनाना चाहिए, जिससे छात्रों का समग्र विकास हो सके।

फीडबैक और मार्गदर्शन : छात्रों को नियमित फीडबैक और व्यक्तिगत मार्गदर्शन दिया जाए, ताकि वे अपनी कमियों को समझकर सुधार कर सकें। इससे शिक्षा का उद्देश्य केवल अंक प्राप्ति नहीं, बल्कि वास्तविक ज्ञान और कौशल विकास बन सके।

मूल्यांकन प्रक्रिया में पारदर्शिता : मूल्यांकन के मानकों और प्रक्रियाओं में पारदर्शिता रखी जाए, जिससे सभी शिक्षक और छात्र स्पष्ट रूप से समझ सकें कि किन आधारों पर उनका आकलन किया जा रहा है।

शिक्षकों की भागीदारी और संवाद : नीति–निर्माण और मूल्यांकन प्रणाली के सुधार में शिक्षकों की सक्रिय

भागीदारी सुनिश्चित की जाए। उनके अनुभव और सुझावों को प्राथमिकता दी जाए, जिससे प्रणाली अधिक व्यावहारिक और प्रभावी बन सके।

इन सुझावों के माध्यम से CCE प्रणाली को अधिक प्रभावशाली, समावेशी और शिक्षक–अनुकूल बनाया जा सकता है, जिससे सभी प्रकार के स्कूलों में शिक्षकों का दृष्टिकोण सकारात्मक हो और छात्रों का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित किया जा सके।

संदर्भ–सूची

1. बेस्ट, जे.डब्ल्यू. एवं जे.वी. (2005), शिक्षा में अनुसंधान, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
2. बुच, एम.बी. एवं पटेल, आई.जे. (1961), ट्यूटोरियल्स और वार्षिक परीक्षाओं में अंकों का विश्लेषण, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर।
3. चिल्निस, एस. एवं अल्टबैच, पी.जी. (1993), भारत में उच्च शिक्षा सुधार, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. फॉरग्यूसन, जॉर्ज ए. (1981), मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकीय विश्लेषण, मैक्ग्रॉ हिल पब्लिकेशन, ओकलैंड।
5. गैरेट, एच.ई. (1973), मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी, वाकीज फेफर सिमोंस प्राइवेट लिमिटेड, बॉम्बे।
6. एन.सी.ई.आर.टी. (2000), विद्यालयी शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यक्रम, एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
7. राव, मंजुला (1998), एसओपी प्रशिक्षण कार्यक्रम के कक्षा शिक्षण पर प्रभाव, दक्षिणी राज्यों में अध्ययन, आरआईई, एनसीईआरटी, मैसूर।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 159-162

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में समाज

*डॉ. ममता उपाध्याय**

उपन्यास साहित्य की सर्वाधिक गतिशील एवं रोचक विधा है। जीवन के सतत् विकासमान तथा परिवर्तित स्वरूप को उसके बृहत्तर आयाम में प्रस्तुत करने की जो शक्ति उपन्यास में है, वह अन्य किसी साहित्य विधा में नही।[1] मानव जीवन की समवेत अभिव्यक्ति उपन्यास में होती है। उपन्यास में समाज के गठन, सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया का चित्रण होता है। उपन्यास का अध्ययन करते हुए हम पाते है कि इसमें समाज के विभिन्न क्षेत्रों स्त्री–पुरुषों के सम्बन्धों, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग, राष्ट्र, अर्थदशा, रीति, धर्म–सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण के साथ उनकी समस्याओं का निरूपण भी दिखलाई देता है। उपन्यास के माध्यम से हम समाज, मानवीय सम्बन्धों का वैज्ञानिक एवं सैद्धान्तिक अध्ययन करते हैं। उपन्यास में वर्णित समाज मानव जीवन के अधिक निकट होता है। उपन्यास एक ऐसी विधा है, जिसमे जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों, सामाजिक प्रक्रियाओं, मानव जीवन के विविध प्रारूपों, मानवीय अन्तःक्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, संस्थाओं सामाजिक परिवर्तन आदि का चित्रण पूरी सक्षमता के साथ चित्रित होता है।

उपन्यास आधुनिक युग की महाकाव्यात्मक विधा भी स्वीकृत की गई है। गद्य साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक सशक्त, समृद्ध, युग सापेक्ष और लोकप्रिय विधा बन गई है। उपन्यास में मानव जीवन की आलोचना वर्णित है। आज उसका स्वरूप इतना विस्तृत और व्यापक हो गया है कि उसमें विश्व मानवता का भाव अभिव्यक्त हो रहा है। मूलतः मानव जीवन परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशील जीवन ने हिन्दी उपन्यास विधा को भी काफी प्रभावित किया है। इसीलिए उपन्यास विधा को प्रेमचन्द के बाद भैरव प्रसाद गुप्त, वृन्दावन लाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र जी, अज्ञेय जी, प्रसाद जी, निराला जी, शिवानी, शशिप्रभा शास्त्री, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुगद्ल, मन्नू भण्डारी, कृश्ना रघुवंशी, भीष्म साहनी, संजीव, प्रभा खेतान[2] आदि के साथ **नरेन्द्र कोहली** ने भी अपने लेखन साहित्य का अंग बनाया है।

स्वातन्त्रोत्तर अस्थिर और गतिशील समाज की मानसिकता को हिन्दी उपन्यासों में तीव्रता से उजागर करने वाले उपन्यासकारों में नरेन्द्र कोहली का नाम शीर्षस्थ है। आपने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक अलग, प्रायोगिक नव्यता और विशिष्ट औपन्यासिक शिल्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए अपनी पहचान बनायी है। आपके उपन्यास स्वाधीनता के बाद के आम आदमी की जीवन कथा व्यथा के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। कोहली जी उपन्यासों में सामाजिक अवमूल्यन जनित क्षोभ, निराशा, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों, राजनीतिक–सांस्कृतिक विशिष्टताओं तथा नैतिक मूल्यों और उनकी जिजीविषा का सशक्त और जीवन्त चित्र उपस्थित है। उनके सभी उपन्यासों की संरचना के केन्द्र में समस्त पौर्वात्य परिवेश सन्निहित है।

समाजवादी यथार्थ समाज दर्शन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। यह सर्वथा वैज्ञानिक और उपयुक्त दृष्टि है। किन्तु इसकी जो व्याख्या अन्य आलोचक करते है, वह अमान्य और अयथार्थ कहा जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में इसके उद्धरण तो और भी संकुचित मनोवृत्ति की द्योतक होती है। मैं इतना ही कह सकती हूँ कि कथाकार की दृष्टि पर समाजवादी यथार्थ का चश्मा होना चाहिए। यह चश्मा आदर्शवादियों जैसा रंगीन या ऐसा नहीं होता जिसमें से देखने पर वस्तु का रूप ही बदल जाय या वस्तु दिखाई ही न पड़े, उसकी जगह अपना ही रूप दिखाई पड़ने लगे।

* *सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

नरेन्द्र कोहली के लेखन संस्कारों की अभिवृद्धि करने में उनके बाह्य और अन्तः व्यक्तित्व का प्रमुख हाथ रहा है। नरेन्द्र कोहली ने अपने साहित्य में मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं को साहित्य द्वारा प्रस्तुत किया है। जैसे यांत्रिकता, कुण्ठा, वैमनस्य, अकेलापन, संत्रास, अजनबीपन, अस्थिरता आदि समस्याएँ आम आदमी की हैं, जो यथार्थ रूप में चित्रित पात्र हमारे सहचर चरित्र लगने लगते हैं, जिनकी संवेदना हमसे भिन्न नही हो सकती। नरेन्द्र कोहली के अनुसार 'यदि सभी लोग एक जुट हो जाये और अन्याय सहने से मना कर दे और अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने लगे तो कोई सरकार क्यो न हो। नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार नही कर सकती।'[3]

उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली के चिन्तन–मनन विश्लेषण से मालूम होता है कि आपने अपने उपन्यास साहित्य में वर्तमान समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों और मानवीय मूल्यों में जो बदलाव आये है, उनका आपके उपन्यास साहित्य में वर्णित हैं। नरेन्द्र कोहली ने अपने उपन्यासों में सामाजिक जीवन की उन्नति को राष्ट्र जीवन की उन्नति माना है और पारम्परिक नैतिक मूल्यों के साथ जीवनोपयोगी मूल्यों की स्थापना की है। यह पाठकीय क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि है। आपने राम कथा और महाभारत कथा के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के लगभग बीसों उपन्यासों का सृजन किया है। निश्चित रूप से आपका सृजन संसार बड़ा है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के सशक्त उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली ने अपनी तत्तवान्वेषी प्रज्ञा शक्ति के द्वारा आधुनिक समाज में परिव्याप्त परम्पराओं का पौराणिक कथानकों को आधार बनाकर मूल्यांकन, परीक्षण बड़ा ही गवेषणात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। आपके उपन्यासों में यह दर्शाया गया है कि वर्तमान समाज में जो असत्य, अन्याय, अत्याचार और अमानवीय तत्व गतिशील हैं, वे प्रत्येक युग के थे और प्रत्येक युग में कोई न कोई ऐसा वीर, न्यायी पुरुष हुआ है, जिसने पाप का विनाश किया है। समाज में मर्यादा और संस्कार का अभ्युदय ही रामकथा का उद्देश्य है तथा नीति और व्यवहार तथा न्याय का पथ प्रशस्त करना कृष्ण कथा का उद्देश्य है।

निश्चित रूप से नरेन्द्र कोहली जैसे साहित्यकार समाज में जीवन मूल्यों, आदर्शों और उच्च परम्पराओं की स्थापना का कार्य करते हैं। लोकमंगल की पावन भाव धारा का प्रवाह साहित्यकार की लेखनी से हो, इस निमित वह समाज की स्थापित परम्पराओं की संकरी और अंधेरी गलियों में चक्कर लगता है। जब सारा समाज सुख की गहरी नींद में सो रहा होता है, सब वह रातों रात जागकर चिंतन करता है। समीक्षा करता है। परीक्षण करता है एवं दर्शन करता है। समाज के श्रेष्ठ स्वरूप का, जिसमें मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके। वह समाज के हृदय पक्ष, करुणा, वेदना, आह, पीड़ा एवं संवेदना के साथ जुड़कर सहभागी होता है। वह समाज के टूटन के स्वर से विचलित हो जाता है। जब भी समाज में संस्कृति के स्वरूप में विकृति का प्रवेश होता है, तब एक पुरोधा की भाँति साहित्यकार अपनी कलम रूपी तलवार उठाकर सामाजिक विकृतियों का संहार करने लगता है। संत कबीर ये पक्तियाँ नरेन्द्र कोहली के साहित्य और जीवन पर लागू होती है–

'सुखिया सब संसार, खावै और सौवै।
दुखिया दास कबीर, जागे और रौवै।।'[4]

नरेन्द्र कोहली ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज दर्शन को नवीन दृष्टि दी है। खासतौर पर समाज दर्शन की दिशाओं को विशेष महत्व देकर उन्हें अपना आदर्श बनाया है। समाज के सम्पर्क और सहयोग से ही मनुष्य का जैविक और मानसिक विकास सम्भव है। इसीलिए प्रत्येक युग के श्रेष्ठ साहित्य में उसकी समकालीन युग चेतना अनिवार्य रूप से प्रतिबिंबित होती है। नरेन्द्र कोहली जी ने अपने साहित्य में इसी सांस्कृतिक यथार्थ को व्यंजित करने का प्रयास किया है। संयुक्त परिवार भारतीय समाज और संस्कृति की रीढ़ होती है। प्रेम, दया, सहानुभूति, सहयोग आदि उदात्त भावनाओं का विकास यहीं सम्भव है। पाश्चात् शिक्षा के बढ़ते प्रभाव, भोगवादी सभ्यता, औद्योगिकीकरण एवं विदेशी संस्कृति के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार टूटकर विघटित और नैतिक पतन से भर रहे हैं। नरेन्द्र कोहली जी कहते है–'मुझे लगता है सीते!' राम मंद स्वर में बोले, 'इस कुटुबं में अनेक संदेह, शंकाएँ, आशंकाएँ, विरोध, द्वंद्व, ईर्ष्याएँ, स्वार्थ, द्वेष और न जाने क्या–क्या विषैले जीव जा उठे है। वे परस्पर लड़ेंगे...जन्तुओं के समान मौन सो रहे हैं। आज मेरे युवराज्याभिषेक की चर्चा से वे सारे जीव जन्तु...।'[5] कोहली जी एक प्रगतिशील लेखक हैं। आपने सामाजिक समस्याओं एवं प्रश्नों को व्यापक रूप में अपने उपन्यासों में उठाया है। आपने वर्तमान समाज एवं परिवार के बदलते–टूटते, बनते–बिगड़ते संबंधों के अनेक पहलुओं को चित्रित किया है। अनुभव की प्रमाणिकता और अभिव्यक्ति की क्षमता के कारण ही आप स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी कथा साहित्य में आपका अलग स्थान है। आप एक ऐसे कलावादी साहित्यकार है जिन पर प्रगतिशील या सामाजिक यथार्थ

का लेविल लगा है। सक्षम प्रतिभा के धनी कोहली जी ने यथार्थ को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता है। जीवन का दूसरा मूल आधार अर्थ है। मनुष्य को जीवन–यापन के लिए अर्थ बहुत आवश्यक है। भारत देश बहुत लम्बे समय से आर्थिक दृष्टि से कमजोर रहा है। पराधीनता के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी अज्ञानता और गरीबी के दलदल में रही है। पूंजीवादी व्यवस्था अमीरों को फलने–फूलने में मदद करती है। काले धंधों में लिप्त व्यक्ति भ्रष्ट और रावण बनते जाते है। झोपड़ी वाले भूखों मरते हैं। आर्थिक विसंगति को रोकने के लिए समाज आर्थिक शोषण रूकने चाहिए। नरेन्द्र कोहली जी ने लिखा है कि–'कम वय के बालकों, दुर्बल स्त्रियों, क्षीण वृद्धों तथा रोगियों से भी ऐसा कठिन काम लिया जाता है कि उनके स्वास्थ्य और जीवन दोनों के लिए घातक है।'[6] रचनाकार मानव जीवन से जुड़ा संवेदनशील प्राणी होता है। वह अपने समय के प्रगतिशील तत्वों का समर्थन और प्रतिगामी शक्तियों का विरोध करता है। स्वतंत्रता के बाद भी देशी पूँजीपतियों नेताओं और नौकरशाहों का वर्ग सामान्य जनता के शोषण में लगा है। जियो और मरने दो वाली वृत्ति आज सम्पूर्ण समाज में व्याप्त हो गई है। राम और कृष्ण ही ऐसे पात्र है जिन्होंने जियो और जीने दो का सबक आम आदमी को सिखाया तथा ऐय्याशों के तख्त उलट दिये। नरेन्द्र कोहली जी ने अपने बंधन उपन्यास में इन सत्ता लोलुपो का चित्रण किया है। उन्होंने यह भी संकेत दिये है कि जब दूसरे देष हमारी संस्कृति ग्रहण कर रहे हैं ऐसे में हम यहाँ अपनी ढपली अपना राग अलाप रहे हैं। 'सुगठित संघटना पूर्ण समाज की संरचना के लिए निष्ठापूर्ण कर्तव्य पालन पर नरेन्द्र कोहली जी विशेष बल देते है।'[7]

जीवन को सार्थक बनाने और व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए समाज ही एक ऐसी उपयोगी संस्था है जिसका मानव जीवन से वैविध्यपूर्ण एवं अभिन्न सम्बन्ध है। जिस प्रकार एक बीज को धरती का आधार, जल का प्यार और वायु का दुलार पाकर वृक्ष रूप में परिणत होते हुए देखा जाता है। उसी प्रकार एक मनुष्य समाज का आधार. माता–पिता का प्यार एवं शिक्षा तथा संस्कृति का अवलम्ब ग्रहण कर बड़ा होता है। जन्म से ही मनुष्य सहायता एवं सहयोग पर निर्भर रहता है। बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास तथा प्रेम, त्याग, सेवा, सहिष्णुता आदि की प्राप्ति सामाजिक सहयोग से ही सम्भव है। मानव के विचार और सामाजिक चेतना सदैव कंधा से कंधे मिलाकर चले हैं। मानव के प्रतिभाजन्य प्रयोगों द्वारा ही सामाजिक चेतना को ऊर्जस्व माना गया है। हृदय की उदारता और विशालता का मानक है सद्‌व्यवहार। यह व्यवहार धर्म के व्यावहारिक रूप का नाम है। यह सद्‌व्यवहार ही आचार है।

भारतवर्ष एक धर्मप्राण देश है यहाँ अनेक मतवाद एवं सम्प्रदाय विद्यमान हैं। परन्तु मानवधर्म ही एक ऐसा धर्म है जिससे समाजोत्थान सम्भव है। अनेक मतवाद एक विद्युत तरंग के बल्व हो सकते हैं लेकिन विद्युत तरंग नहीं। समाज में जब विकृति जन्म लेती है तब स्वार्थ के वशीभूत बुद्धिजीवियों में सत्ता के साथ गठजोड़ हो जाता है। किसी भी पद पर आसीन व्यक्ति जो सर्वथा पद के लिए अनुपयुक्त होता है उसके आते ही समाज में अन्याय एवं त्रास स्वतः ही जन्म ले लेता है। उस समय दबा कुचला व्यक्ति और अधिक प्रताड़ित किया जाता है। ऐसे समय में दलित वर्ग का संगठित होकर अन्याय के प्रति विद्रोह एवं नारी मुक्ति भावना का सफल चित्रण नरेन्द्र कोहली के 'संघर्ष की ओर'[8] एवं 'पृष्ठभूमि' उपन्यासों में हुआ है।

नरेन्द्र कोहली ने देश के सभी स्तरों पर उभरी भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था को समकालीनता का बाना पहनाकर रामकथा और कृष्णकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। मानवता के शाश्वत प्रश्नों का साक्षात्कार लेखक अपने गली–मुहल्ले, नगर–देश, समाचार पत्र तथा समकालीन इतिहास में आबद्ध होकर भी करता है और मानव सभ्यता तथा संस्कृति की सम्पूर्ण जातीय स्मृति के सम्मुख बैठकर भी। पौराणिक उपन्यासकार के प्राचीनता में घिरकर प्रगति के प्रति अन्धे हो जाने की संभावना उतनी ही घातक है जितनी समकालीन लेखक की संकीर्ण समकालीन पत्रकारिता में बंदी होकर खण्ड–सत्य को पूर्ण सत्य मानने की मूढ़ता। सर्जक साहित्यकार का सत्य कालखण्ड का अंग होते हुए भी खण्डों के अतिक्रमण का लक्ष्य लेकर चलता है। समकालीन राजनीति के समस्त अस्त–व्यस्त पहलू राम और कृष्णकालीन राजनीति में दिखाने का लेखक का उद्देश्य यही है कि किसी भी युग की राजनीति का अंधापन उस युग की प्रगति के लिए ही नहीं, आने वाले युग–युगान्तरों के लिए भी कितना घातक सिद्ध होता है। राजनीतिक पदलोलुपता, स्वार्थान्धता, अवसरवादिता, अनुशासनहीनता, आत्मरति, दायित्वहीनता, छल–छद्‌म, कूटनीति, षड्‌यंत्र, भ्रष्टाचार, अनीति, अराजकता, गुण्डाराज, चरित्रहीनता, राश्ट्रीय सम्पत्ति का दुरुपयोग, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, युद्ध जैसी अनेक राजनीतिक परिस्थितियाँ समकालीन बोध को उजागर करती हैं। अपने उपन्यासों में नरेन्द्र कोहली जी इन्हीं सारी अव्यवस्थाओं के चित्रण करते है। खासतौर पर समाज दर्शन में आदमी की गरीबी और शोषण की कहानी को विश्वामित्र के माध्यम से राम–लक्ष्मण को बतलाते हैं–'साधारण प्रजा कितनी दुःखी है!

नगरों तक में खाद्य–सामग्री उपलब्ध नहीं है। कही दुर्भिक्ष है, कहीं बाढ़ है। लोक कीड़ो–मकोड़ों के समान भूखे मर रहे हैं और सारा अन्न श्रेष्ठियों के भंडारगृहों में पड़ा है। व्यापारी धन कमाकर शासन को उपहार दे देकर अपने वश में कर लेता है, परिणामतः शासन अत्याचार का समर्थन करने लगता है।'[9]

इस तरह नरेन्द्र कोहली जी ने अपने उपन्यास साहित्य में व्यक्ति की अंर्तमन और बाहरी पीड़ा को यथार्थ रूप में उभारा है। उनकी यह विलक्षण प्रतिभा बड़ी ही धारदार बन पड़ी है। उन्होंने एक पुरौधा की तरह अपने साहित्य में कलम रूपी तलवार से विकर्षतियों का संहार किया है। नरेन्द्र कोहली ने समाज दर्शन द्वारा जीवन मूल्यों स्थापना को आवश्यक माना है जिसमें व्यक्ति का आदर्श उच्च होना चाहिए तभी मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति हो सकती है। इसी से श्रेष्ठ सामाजिक संरचना होगी।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. भारद्वाज, डॉ. हेतु, हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005
2. भारद्वाज, डॉ. एम.एम., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986
3. कोहली, नरेन्द्र, आश्रितों का विद्रोह, डायमंड पाकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2003
4. मिश्र, डॉ. भगवती स्वरूप, कबीर ग्रंथावली, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सं. 1977
5. कोहली, नरेन्द्र, क्षमा करना जीजी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पंचम संस्करण 2006
6. कोहली, नरेन्द्र, संघर्ष की ओर, पराग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1983

संदर्भ–सूची

1. भारद्वाज, डॉ. हेतु, हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास, पृ. 23
2. भारद्वाज, डॉ. एम.एम., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ. 12
3. कोहली, नरेन्द्र, आश्रितों का विद्रोह, पृ. 64
4. मिश्र, डॉ. भगवती स्वरूप, कबीर ग्रंथावली, पृ. 23
5. कोहली, नरेन्द्र, अवसर, पृ. 218
6. कोहली, नरेन्द्र, अवसर, पृ. 104
7. कोहली, नरेन्द्र, क्षमा करना जीजी, पृ. 11
8. कोहली, नरेन्द्र, संघर्ष की ओर, पृ. 22
9. कोहली, नरेन्द्र, संघर्ष की ओर, पृ. 70

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 163-165

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

राजी सेठ के उपन्यासों में स्त्री

*डॉ. वर्षा खरे**

भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी जीवन से सम्बन्धित विषयों पर वैदिक, पौराणिक ग्रंथों में स्त्री को शक्ति का प्रतीक बतलाया गया है। स्त्री रूप में उसे विशेष अधिकारों से सम्पन्न माना गया है। माता शब्द हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक रहा है।[1] व्यवहारिक जीवन में स्त्री की स्थिति पुरुषों से श्रेष्ठ तो छोड़िए पुरुष के समान भी नहीं दिखलाई देती। कन्यादान की परम्परा, पुत्र रत्न की अभिलाषा, पितृतर्पण आदि व्यवस्थाएँ नारी की वास्तविक स्थिति की परिचायक हैं। नारी जीवन की यात्रा पत्नी रूप में शुरू होकर माता रूप में समाप्त हो जाती है। अपनी स्थितियों का लेखा–जोखा स्त्री नियति का लेख समझकर चुपचाप सहती रहती है। यद्यपि वह त्याग और तपस्या, सहनशीलता और आदर्श के चलते अपनी भूमिका का निर्वाह करती रहती है। धर्म की आड़ में घर–परिवार और समाज का स्त्री विरोधी वातावरण, विडम्बना, अन्तर्विरोध, निराशाजनक संवेग उसकी अपनी कहानी निरन्तर साहित्य में चर्चा का विषय बनी हुई है। रूढ़ियों, आडम्बरों और बेड़ियों में जकड़ी स्त्री सदैव ही अपने कष्टों से बाहर आने के लिए छटपटाती रही है। साहित्य में स्त्री के साहस, संघर्ष और शैक्षिक वातावरण से उसे सम्मान देने की पूरी कोशिश की है। आज वह राष्ट्र भक्त, नागरिक दायित्व बोध और मानवीय अस्तित्व बोध की स्वामिनी है। सृष्टि का मेरूदंड नारी है। राष्ट्र की संस्कृति की वाहक नारी है।

साहित्य में नारीवादी आंदोलन के मुख्य उद्देश्यों में स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री अस्मिता को महत्ता की मांग रही है। रूढ़ियों और परंपराओं के नाम पर होने वाले शोषण से मुक्ति की बात की गई है। आर्थिक स्वावलंबन और जीवन के हर क्षेत्र में सहभागिता को मुद्दा बनाया गया है। पुरुष रचनाकारों के साथ–साथ स्त्री रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से इस नारीवादी आंदोलन को महत्वपूर्ण दशा और दिशा देने का प्रयास किया है। सबसे पहली बात जो विश्व स्तर पर समझ में आती है, वह है औरत को इंसान समझा जाए। उसको बराबरी से जीने का अधिकार मिले। हर राष्ट्र, हर समाज में रहने वाली नारी की यही इच्छा है। नारीवाद की धारणा यही है कि नारी को अपने नारीपन का बोध बना रहे। यदि स्त्री अपनी नारीवादी धारणा एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के वशीभूत होकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तरह रूप देने के लिए पुरुषों के मोर्चे के विरोध में खड़ी हो जाए, यह ठीक नहीं। रचनाकार राजी सेठ भी मानती है कि नारीवादी लेखन पुरुष विरोधी लेखन का पर्याय न माना जाए। 'नारी में पारंपारिक मर्यादा और मूल्य की रक्षा करते हुए भी नारी के प्रति पारंपारिक धारणा को खंडित किया'।[2] दरअसल स्त्रियों की दुरावस्था के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही जिम्मेदार रही है, शोषण के लिए पुरुषवादी नजरिया ही कारण बना है। नारी व्यवस्था की व्यथा–कथा की बात जब होती है तो पुरुष विरोध स्वमेव सामने आ जाता है। नारीवादी लेखन को किसी की विचारधारा के समर्थक विरोधक के दृष्टिकोण से मूल्यांकन न करके, आज के समय एवं परिवेश की न्यायिक मांग की दृष्टि से मूल्यांकन होना चाहिए। नारीवादी लेखन कोई नारा नहीं अपितु एक न्यायिक मांग–की–मांग हैं। अच्छा लेखन सदैव समाज सापेक्ष होता है। वह एक सजग एवं सतर्क चिकित्सक की तरह सामाजिक देह की जांच करता है कि रोग कहां है–क्यों है–उपचार क्या है–परहेज क्या है?' आज स्त्री की समस्या यह है कि स्त्री मुक्ति आंदोलन ने स्वतंत्रता दी, शिक्षा का अधिकार दिया, स्त्री अपनी योग्यता, क्षमता को हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी में प्रमाणित भी कर रही है, बल्कि कहीं–कहीं तो वह पुरुषों से भी आगे है, फिर भी वह हाशिये पर क्यों है? मुख्यधारा में क्यों नहीं है? आज भी वह दोयम दर्जे की ही अधिकारिणी बनी हुई है। उसका संघर्ष है–सहअस्तित्व एवं सहभागिता का।

** प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

हिन्दी कथा–साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली राजी सेठ आठवें दशक की एक बहुचर्चित लेखिका हैं। रचनाकार के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए आपने काफी संघर्ष किया है। जीवन के उतार–चढ़ायों में विकट परिस्थितियों से गुजरते हुए आपने अपनी इच्छित मंजिल प्राप्त करने की सफल कोशिश की है। राजी सेठ के लेखनीय व्यक्तित्व के निर्माण में उनके परिवार की भूमिका तथा परिवेशगत संस्कार प्रमुख रहे हैं। रचनाकार के रूप में राजी सेठ की प्रतिष्ठा या पहचान हमें उनके कथा साहित्य में मिलता है। लेखन में धैर्य की जरूरत है। यदि कोई चाहता है कि उसकी पहचान बने, उसकी कही बातों का असर हो तो उसके लिए बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मीडिया में जल्दी पहचान बनती है और मिट जाती है। 'लेखन घाटे का सौदा है पर इससे अंततः जो सुख और ऊर्जा मिलती है उससे मनुष्य को जीने की प्रेरणा और उससे जुड़ी हुई शक्तियाँ प्राप्त होती है।'[3]

हिन्दी की नवोदित लेखिकाओं में राजी सेठ का एक विशिष्ट स्थान है। प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार, 'राजी सेठ ने नारी में पारंपारिक मर्यादा और मूल्य की रक्षा करते हुए भी नारी के प्रति पारंपारिक धारणा को खंडित किया'।[4] 'कथा क्या वही होती है जिसमें बहुत कुछ बहिरंग में घटता रहे? मनुष्य के भीतर कितनी ही दीवारें खड़ी होती हैं और गिर जाती है। सब बे आवाज होता है। उसकी बाह्य प्रतिध्वनियाँ भी मद्धम–मद्धम सुनाई पड़ती है। राजी सेठ के **'तत्सम'**[5] उपन्यास में अंतरंग संसार में चल रही उथल–पुथल को पकड़ने के भाव का संसार है। यह भाव मनोविज्ञान की सुलभ बैशाखी पर नहीं चलता। वे जिंदगी को फलसफाई अंदाज से देखती है। लेकिन फलसफा का घटाघोप नहीं खड़ा करती।''[6] राजी सेठ ने इस उपन्यास में दुनिया के दस्तूरों की बात की है। यहाँ वसुधा के माध्यम से विधवा पुनर्विवाह जैसी समस्या को चित्रित किया गया है। राजी सेठ का मानना है कि अगर हम दुःख को हँसकर झेल लेते हैं तो यह दुःख–दुःख नहीं रहता। सुख के सारे दरवाजे बंद करके अगर दुःख को ही लेकर बैठेंगे तो जीना मुश्किल हो जाएगा। इस तरह इस उपन्यास में जीने की जिजीविषा को व्यक्त किया गया है। 'तत्सम उपन्यास सामाजिक कथा को लेकर चलने वाला उपन्यास है। इसमें आधुनिक नारी की एक सामाजिक मानसिक समस्या का चित्रण किया गया है। यहाँ विधवा विवाह की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास में नारी अपने लिए जमीन ढूँढती हुई और अपनी अस्मिता स्थापित करने के रूप में चित्रित हुई है। भारतीय परम्पराओं, संस्कारों एवं व्यवहारों में दीक्षित संवेदनशील बुद्धिजीवी विधवा नारी का मन और बुद्वि में संतुलन स्थापित करते हुए अपना रास्ता आप खोजने की इस संघर्ष कथा में भावनाओं एवं संवेगों उथल–पुथल को बड़ी खूबी से उजागर किया गया है। तत्सम नारी जीवन में मानसिक ऊहापोह की एक संपूर्ण झाँकी दिखलाई देती है। वसुधा अपने जीवन में आए दोनों पुरुषों, विवेक और आनंद से अपनी भावनाओं का विश्लेषण करती है और बहुत सोच–समझकर इस उहापोह से निकलकर आनंद को चुनती है। वसुधा अपनी शर्तों पर ही जीती है। उसकी इच्छा और उसका चुनाव है। यह निश्चय ही स्त्री जागृति और चेतना सम्पन्न होने के लक्षण है।'[7] राजी सेठ जी ने इस उपन्यास में वसुधा पात्र के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि आत्मनिर्णय यदि असंतुलन से ग्रस्त न हो तो आनंद की उपलब्धि सहज है, चाहे फिर वह वसुधा का प्रेमी आनंद हो या वसुधा के मन का आनंद। सब कुछ सहज रख कर भी आकांक्षित को पाया जा सकता है।

इसी प्रकार **'निष्कवच**[8]**'** उपन्यास में भी राजी सेठ ने स्त्री के अकेलेपन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। यहाँ युवक, युवतियों अपने जीवन को अपनी–अपनी शर्तों के अनुरूप जीना चाहते हैं। यह उपन्यास आज की युवा मानसिकता को प्रकृति–विकृति के विविध आयामों को बतलाता हुआ नवयुवकों के मनोबल का सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित करता है।'[9]

आज जब चारों ओर पुरुष–प्रधान समाज में नारी के प्रति हो रहे अन्याय और अत्याचार को उजागर किया जा रहा है ऐसे समय में इस उपन्यास की कथा टूटते जीवन मूल्यों की धुंध में पनप रही है और उसी स्वार्थ की अधिकता को रेखांकित करती हैं। यहाँ दो युवतियाँ दो होनहार युवकों को उनकी धुरी से हटाकर उनका भरपूर शोषण करती हुई उन्हें हतप्रभ कर देती हैं, पूरी तरह से ध्वस्त कर देती हैं। और अपनी इस करतूत पर इतराती भी हैं। तुलनात्मक मनःस्थिति की तीव्र अनुभूति में पारम्परिक मूल्यों से मुक्ति पाने के लिए युवा पीढ़ी की छटपटाहट को और कोई मुक्ति मार्ग ढूँढ निकालने की हड़बड़ाहट में, किसी के जाल में फँसने की मजबूरी से उपजी खीझ–मिश्रित अकुलाहट को संभालने की चेष्टा यहाँ है। चूंकि इस उपन्यास में दो वृत्तांन हैं इसीलिए क्रमशः अपने को उत्तरदायी मानने वाली पुरानी पीढ़ी पहली रचना में खुले तौर पर और दूसरी में प्रच्छन्न रूप से प्रस्तुत होती है। दोनों वृत्तांतों के नायक स्वदेशी रूप में चित्रित है, जबकि पहले की नायिका स्वदेशी है और दूसरे वृत्तांत की नायिका विदेशी रूप में अंकित है। दोनों कहानियों में चुभन का एहसास भारतीय धरातल पर ही घटित होता है।

दोनों में ही नारी द्वारा पुरुष नवयुवकों के दैहिक शोषण की दास्तान है। यहाँ के पात्रों का जूझना कहीं–न–कहीं मूल्यों के संक्रमण की गवाही देते हैं।'[10] इस तरह पहले वृत्तांत में राजी सेठ ने बासू को नीरा के प्रेम से निष्कवच बना दिया है, तो दूसरे वृत्तांत में नायक खुद ही अपनी स्थिति से निष्कवच बन गया हैं। इन दोनों वृत्तांतों के माध्यम से राजी सेठ नयी पीढ़ी की समस्याओं को सामने लाना चाहती हैं, जिंदगी के फैसले लेना, कुछ बनने की इच्छा आदि समस्याओं को उजागर करना राजी सेठ का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

समकालीन कथा साहित्य में समर्थ और गंभीर कथाकार होने के नाते राजी सेठ का 'तम–सम' उपन्यास विधवा पुनर्विवाह को अंकित करने वाला है। राजी सेठ ने उसकी इस मानसिकता का बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। राजी सेठ का द्वितीय 'निष्कवच' उपन्यास के दोनों वृत्तांतों में मूल्यों को डगमगाहट में अपने मूल से उखड़ी युवा पीढ़ी की मानसिकता में उभरते हुए दो आख्यान है। 'निष्कवच' के दोनों वृत्तांतों के पात्रों का ऐसा जूझना कहीं–न–कहीं मूल्यों के संक्रमण को गवाही देता है। वैश्वीकरण के इस दौर में इस देश की युवा पीढ़ी जब घर आंगन को छोड़ विदेशी जमीन, सभ्यता और संस्कृति के प्रति आकर्षित हो रही है। उसे अपने आस–पास की और वैश्विक हकीकत से परिचित कराने की कोशिश भी इस उपन्यास के दो वृत्तांतों के माध्यम से हुई है। यह भी राजी सेठ का महत्वपूर्ण औपन्यासिक योगदान माना जायेगा।

संदर्भ–ग्रंथ

1. सोनी, डॉ. सुधा, धर्मशास्त्रों में हिन्दू नारी, शेखर प्रकाशन, प्रयागराज, प्रथम सं. 2011
2. सेठ, राजी, सदियों से कहानी संग्रह, बाम्देवी प्रकाशन, युगनिवास, नई दिल्ली, संस्करण, 1996
3. शर्मा, योगेन्द्र दत्त, आजकल (पत्रिका), नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग/सूचना, मार्च 1996
4. संधु, डॉ. मधु, हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकार, निर्मल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम 2006
5. व्यंकटेश्वर, डॉ. एम., हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम 2002
6. सेठ, राजी, तत्सम (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
9. सेठ, राजी, निष्कवच (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997

संदर्भ–सूची

1. सोनी, डॉ. सुधा, धर्मशास्त्रों में हिन्दू नारी, पृ. आमुख
2. राजी सेठ, सदियों से भूमिका से, पृ. 14
3. राजी सेठ के लेख से
4. राजी सेठ, सदियों से भूमिका से, पृ. 14
5. तत्सम (उपन्यास)
6. राजी सेठ, सदियों से भूमिका से, पृ. 14
7. आजकल–मार्च 1996
8. निष्कवच (उपन्यास)
9. संधु, डॉ. मधु, हिन्दी की समकालीन महिला उपन्यासकार, पृ. 65
10. डॉ. एम. व्यंकटेश्वर, हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार, पृ. 253

* * * * *

(Ex. U.G.C. Approved Journal : 41329) Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 166-168

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंध

*डॉ. राकेश कुमार साकेत**

हिन्दी साहित्य में जैनेन्द्र जी साहित्य और विचार के रूप में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपके लेखन ने आपको हिन्दी में मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और विद्रोही साहित्यकार के रूप में स्थापित किया है। उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के कोड़ियागंज में जन्में जैनेन्द्र कुमार काशी विश्वविद्यालय में अध्ययन के उपरान्त असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर राजनीति में आये। वे जीवन में मर्यादा का पालन करते हुए अपने उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रा और वैचारिक साहित्य के माध्यम से साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी कथाकार के रूप में अग्र पंक्ति में खड़े हुए। आपकी साहित्यिक अनुभूति बहुत गहरी है। आपकी संवेदना में आत्मीयता और सहानुभूति है। उदारता के प्रतीक माने–जाने वाले जैनेन्द्र जी सिर्फ वैचारिक धरातल पर ही नही क्रियात्मक रूप में भी विद्रोही रहे हैं। अहंकार और प्रेम, स्पर्धा और समर्पण का संघर्ष आपकी कृतियों में विवेचित है। अपनी आस्तिकता को आपने कलात्मक पद्धति से व्यक्त किया है जिसमें कहीं भी आडम्बर नही है। एक तेजस्विता, प्रखरता, गहनता और सूक्ष्मता के गुणों से पूर आपका जीवन प्रेम और अहिंसा की परिधि में व्यापक है। हिन्दी जगत में आप मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। आपने अपने उपन्यासों मे जीवन जगत के अनेक चित्रों का चित्रण करते हुए स्त्री–पुरुष संबंधों पर अधिक प्रखरता के साथ चित्रण किया है।

स्त्री–पुरुष के बीच परस्पर आकर्षण के कारण जैविकीय सम्बन्ध निर्मित होते हैं। ये सम्बन्ध स्वाभाविक होते हैं। इन संबंधों के मूल में आत्मा की पुकार होती है। इन सम्बन्धों की सुविधा के लिए समाज द्वारा मान्य संस्थाएँ होती हैं। साहित्य में वर्णित प्रेम और विवाह की समस्याओं का सम्बन्ध मनुश्य की जैविक आवष्यकता काम से है। प्रेम व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और विवाह एक सामाजिक संस्था। लेकिन दोनों काम से सम्बद्ध हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में जैनेन्द्र जी लिखते है–'संसार नर–नारीमय है। चराचर सम्पूर्ण जगत इसी द्वैत की परस्परता पर टिका है। गतिमान भी वह इसी परम्पराओं के कारण है। एकांत अद्वैत की स्थिति निरानन्द ही हो सकती है। आनन्दानुभूति द्वैतपूर्वक ही सम्भव हो सकती है। इसी से समस्त ब्रह्माण्ड एक परम आकर्षण और परस्पर आकर्षण के तत्व से भरपूर है। उसी परम तत्व द्वारा अवस्थित एवं संचारित है। वही प्रेम है। स्त्री और पुरुष विपरीत लिंगी प्राणी होने के कारण परस्पर एक दूसरे के अस्तित्व को उत्कटता से अनुभव करते और आकृष्ट होते हैं। स्त्री और पुरुष में विशेष गुण होते हैं। 'स्त्री' में स्त्रीत्व और पुरुष में पुरुषत्व का गुण होता है। स्त्री–पुरुष मे विपरीत लिंगी गुण होता है। इनमें भिन्न–भिन्न भावों को लेकर आकर्षण बना रहता है। इन भावों के आकर्षण में शारीरिक और मानसिक दोनों भावनाओं का समान आकर्षण भाव होता है। शारीरिक आकर्षण से काम भाव का निर्माण होता है जो संभोग से तृप्त होता है। मानसिक आकर्षण में प्रेम भाव का निर्माण होता है। प्रेम स्त्री पुरुष को आत्मिक संतोष देकर उच्च आदर्श तक पहुँचाने का कार्य करता है। इस दृष्टि से विवाह में स्त्री–पुरुष के आकर्षण की दृष्टि नहीं सामाजिक कर्तव्य दिखलाई देता है। वहाँ स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध जैविकीय कम सामाजिक अधिक है, किन्तु दाम्पत्य सम्बन्धों में बंधकर वे परस्पर जुड़ जाते हैं और जैविकीय संबंधों में परिवर्तित हो जाते हैं। जैनेन्द्र जी के विचारों से पति–पत्नी सम्बन्ध वह हैं जिनमें एक दूसरे की उत्कृष्टता ही नहीं बल्कि निकृष्टता भी निवेदित होती है।'[1] पति और पत्नी के बीच उन व्यक्तिगत संबंधों का आदन–प्रदान होता है जिसे किसी अन्य के आगे व्यक्त नही किया जा सकता। अन्य सब संबंधों के लिए समाज में व्यक्ति के लिए द्वार खुले होने चाहिए। इस संबंध में जैनेन्द्र जी का मानना है 'पति के लिए पत्नी बनकर जबकि एक स्त्री नितान्त साधारण अवगणनीय और तुच्छ हो गई है तब वही किसी अन्य पुरुष के लिए अत्यन्त कमनीय बनी हुई है।[2] आपके उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंध दो रूपों में दिखलाई देते

* *पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

है। एक पति–पत्नी का। दूसरा प्रेमी–प्रेमिका का। दोनों सामंजस्य बनाकर चलते हैं। इसे ही जैनेन्द्र जी ने जीवन के दो तट माने हैं। 'प्रत्येक के जीवन में दो तट होते हैं–एक आदर्श और दूसरा यथार्थ। एक प्रेम पात्र और दूसरा भोग पात्र।[3] विवाह का आशय पति का पत्नी को अथवा पत्नी का पति को अपने तक जकड़ कर रखना नहीं है।

परख उपन्यास में जैनेन्द्र जी ने स्त्री–पुरुष के प्रेम संबंधों को जैविक दृष्टि से व्यक्त करते हुए 'सत्यधन के विषय में लिखा हैं–'विवाह संबंधी विचार जब यह रुख पकड़ रहे थे तभी तक लड़की अजीब ढंग से इनके जीवन में ही हिल–मिल जा रही थी।[4] प्रेम में आदर्श भाव को व्यक्त करते हुए कट्टो के विधवाजी सम्बोधन ने ही सत्यधन को कट्टो के और निकट ला दिया और उनका जीवन प्रेम की लहरों में लहराने लगा। इसी उपन्यास के संबंध में डॉ. निर्मला शर्मा, कट्टो के विषय में लिखती है, बिहारी की बहन गरिमा से उसके सत्य का विवाह होगा इसकी सूचना मिलने पर उसके मन में कोई ईर्ष्या नहीं जागती प्रत्युत वह जीजी के स्वागत के प्रति उतावली हो उठती है। वास्तव में कट्टो आदर्श जगत् की अलौकिक सृष्टि है।[5] दाम्पत्य प्रेम का वर्णन परख में नही है सत्यधन और गरिमा के विवाह के पश्चात सत्यधन के जीवन में वह रोमांच की अवस्था कभी नहीं आती जो उसे विवाह पूर्व कट्टो के सम्बन्धों से महसूस हुई थी। पति–पत्नी सम्बन्ध व्यवहारिक अधिक है जैविक कम।

जैनेन्द्र के विचारों से 'प्रेम में अशेष दान अनिवार्य है। किन्तु हममें शेष ऐसा भी है बहुत कुछ पड़ा है जिसे हम ही बुरा कहते है। उस बुराई को हम सहसा अपने से दूसरे में देना नहीं चाहते। पत्नी वह है जिसके प्रति अपने बुरे अंश को देने से बचना हमारे लिए अनिवार्य नहीं रह जाता। इसी से वह सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ देखा जाता है। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में स्त्री पुरुष के प्रेम को लेकर सुनीता और हरिप्रसन्न की तो बहुत चर्चा हुई है किन्तु पति–पत्नी के रूप में सुनीता और श्रीकांत के दाम्पन्त संबंधों की मधुरता पर कम दृष्टि डाली गयी है। यह सच है कि जैनेन्द्र ने पत्नी के लिए प्रेमी और पति के लिए प्रेमिका को स्त्री–पुरुष के जैविकीय सम्बन्धों में अधिक महत्व दिया है क्योंकि उनमें परस्पर तृप्ति के भाव का अभाव है किन्तु पति–पत्नी सम्बन्ध में भी अपना एक जैविकीय महत्व रखते है। पति–पत्नी के बीच सम्बन्धों की घनिष्ठता का कारण हरिप्रसन्न होता है किन्तु इसका अधिकार समाज द्वारा प्राप्त विवाह के बन्धन से होता है। हरिप्रसन्न सुनीता और श्रीकांत के बीच प्रेम भरे संवाद का कारण बनता है जहाँ दोनों के सम्बन्धों की आत्मीयता को जैनेन्द्र जी ने बड़े सुन्दर भावों में व्यक्त किया है। जब सुनीता से श्रीकांत, हरिप्रसन्न की दाढ़ी–मूंछ कटवाकर आने की बात कहते है तो सुनीता मुस्कराते हुए कहती है, 'मूंछ–दाढ़ी के बिना तो विचित्र, लगते होंगे, सिर के बालों का श्राद्ध हुआ? कहकर सुनीता कुछ मुस्कराई, जैसे भरा बादल मुस्कराये।'[6]

त्यागपत्र और कल्याणी में स्त्री–पुरुष के जीवन में जैविक सम्बन्धों का अभाव है जो उनके जीवन की पीड़ा का कारण बनता है। मृणाल, शीला के भाई से और कल्याणी का प्रेमी पर से प्रेम और आकर्षण का उल्लेख हुआ है। कल्याणी अपने भतीजे प्रमोद से भी बहुत प्रेम करती है किन्तु यहां प्रेम आधार स्त्री–पुरुष के बीच का आकर्षण नही। बुआ भतीजे के पारिवारिक सम्बन्धों का परिणाम है। पति और प्रेमी दोनों के ही प्यार का अभाव कल्याणी और मृणाल के जीवन की पीड़ा है। दोनो की विचारधारा अलग–अलग रास्ते पर बंटी है। अपना कहकर कोई उनके जीवन को पोषित करने वाला नहीं है। दोनों के ही जीवन का दर्दमय अन्त ही जीवन की कथा बन जाता है। सुखदा प्रेम के दोनों और भंवर में फंसी किसी को भी अपना नहीं बना पाती। सुखदा के विषय में ज्योतिष जोशी का कथन सच है कि सुखदा प्रेम की मूल्यवत्ता की अवहेलना करती हुई स्वतंत्रता के अतिरेक में मारी जाती है। जिससे न तो वह बाहर जुड़ी रह पाती है ओर न घर से। अन्त में उसकी परिणति एकाकी टूटन में होती है। जैनेन्द्र के स्त्री पात्र प्यार का सागर है। जैनेन्द्र जी ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में स्त्री को प्रेम की ऐसी शक्ति प्रदान की है जो उनमें एक आत्मविश्वास जगाये रखती है। भुवन मोहिनी जितेन के हृदय की कुण्ठा को समझकर विवाह से इन्कार कर देती है। वह जितेन से प्रेम चाहती है किन्तु वह जानती है कि जितेन के मन में उसकी सम्पन्नता का विद्रोह है।

प्रेयसी के सम्बन्धों में सहाय स्वयं के सत्व को पूर्णतया खोया महसूस करते हैं। वे नीलिमा से कहते हैं, 'नीलिमा, तुम हो कि जहाँ मैं अपने पर कोई आवरण नहीं रख सकता, न आवरण ले सकता, आदर्श का न सिद्धान्त का, न धर्म का इसलिए मेरी निकट निजता में से आने दो जो आए। अच्छा–बुरा, स्वार्थ निस्वार्थ, जो भी हो वही ठीक होगा। वही मुझे और तुम्हें मंजूर होना चाहिए। कर्तृत्व जिसमें न मेरा हो न तुम्हारा हो, बस एक ऐसी अनिवार्यता हो जिसमें मैं तुम कुछ रहें ही नहीं।'[7]

परस्पर प्रेम को ही जीवन की सच्चाई मानते हुए जैनेन्द्र जी लिखते हैं, 'व्यक्ति अपने सुख–दुःख को अन्य व्यक्ति के साथ जुड़ा पाता है, इसी परंपरा में से उसमें कर्म की प्रवृत्ति है। इससे उस आपसीपन के तल पर ही धर्म और कर्तव्य के प्रश्न को खोलना होगा, जो मेरे सम्पर्क में आवे उनसे कैसे बरतूं, इस प्रश्न से बाहर जाकर क्या कोई ईश्वर और धर्म की समस्या हो सकती है।'[8] मानवीय मूल्यों की अवहेलना की स्थिति में मनुष्य की स्थिति अत्यन्त

रुग्ण हो जाती है तथा वह कहीं से भी मर्यादित न रहकर लगभग निरर्थक हो जाता है। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का मानसिक द्वन्द्व है। इस आधार पर उनके उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं किन्तु इस मानसिक द्वन्द्व को निर्माण करने में सामाजिक सम्बन्धों का भी बड़ा योगदान है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर उनके उपन्यास एक तरफ तो खुद से लड़ते हैं। दूसरी तरफ समाज से लड़ते हैं। सुखदा में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के आधार पर पति से जोड़ता है।

स्त्री पुरुष सम्बन्धों में सामाजिक मूल्यों के निर्वाह का द्वन्द्व जयवर्धन में व्यक्त हुआ है जो इला और जयवर्धन के साथ–साथ रहने और कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण विवाह न कर सकने पर प्रश्न खड़ा करता है। यह द्वन्द्व दोहरी मानसिकता को लेकर चलता है एक तरफ तो जय और इला का आत्मा का सम्बन्ध और दूसरी तरफ समाज के मूल्य जो प्रश्न खड़े करते हैं कि–'मूल्य कहाँ हैं? उसमें जिसे समाज कहते हैं, या वहाँ जो आत्म है? समाज मानसिक तत्व है, आत्म अनुभूति। मूल्य क्या निरपेक्ष होगा, आत्म निरपेक्ष? बात जरूरी है, क्योंकि इसका सम्बन्ध है निर्णय से कि धन ऊपर हो कि जन।[9] स्त्री–पुरुष के बीच शारीरिक आकर्षण स्वाभाविक है। उसे दोनों पक्ष चाहते हैं किन्तु समाज के बनाये नियम के कारण वे अपने को मर्यादा में रखने के लिए अरुचि का भाव दिखलाते हैं, 'अनन्तर' में अपरा इस सत्य को व्यक्त करते हुए कहती है, "विवाह के कारण समाज की तरफ से मन में डर या दोष नहीं रहता।'[10] इसका तात्पर्य यह नहीं कि विवाह नहीं हुआ है इसलिए शारीरिक भूख नहीं रह सकती। इस भूख में उम्र का बन्धन को भी वह नहीं मानती। जैनेन्द्र जी ने अपरा के द्वारा शारीरिक सम्बन्धों के प्रति अत्यन्त उदार भावों को व्यक्त करते हुए स्त्री–पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों की सच्चाई को व्यक्त किया है। समाज की दृष्टि में इन सम्बन्धों का अधिकार जितना युवाओं का होता है उतना ही वृद्धों को नहीं। किन्तु उम्र अधिक होने का तात्पर्य शरीर की भूख समाप्त हो जाना नहीं है।

इस तरह आज स्त्री भी पुरुष की तरह अपने अस्तित्व को पहचानने लगी है। पुरुष के प्रति स्त्री का प्रमुख कर्तव्य वह जानने लगी है और उसे पूर्ण करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है। जैनेन्द्र जी ने 'स्व' और 'पर' के अन्तर को मिटाकर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में उच्च भावों की अभिव्यक्ति की है। पुरानी लीक पर चलना उन्हें मंजूर नही। मानव के हित में सामाजिक मूल्यों का बदलाव जरूरी है। जब तक समाज और नैतिकता का भय स्त्री–पुरुष में व्याप्त रहेगा वे स्वाभाविक सम्बन्धों में नहीं बंध पाएंगे। नैतिकता आधे को लेती है, जैनेन्द्र जी समग्र मनुष्य को लेते हैं। इसीलिए स्त्री–पुरुष में परस्पर प्रेम अनिवार्य है, तो सहयोग भी अनिवार्य है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. कुमार, जैनेन्द्र, काम, प्रेम और परिवार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1953
2. कुमार, जैनेन्द्र, परख, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1992
3. शर्मा, ओम प्रकाश, जैनेन्द्र उपन्यासों का शिल्प, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979
4. कुमार, जैनेन्द्र, सुनीता, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1980
5. कुमार, जैनेन्द्र, मुक्तिबोध, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1978
6. कुमार, जैनेन्द्र, अनास्वामी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1980
7. कुमार, जैनेन्द्र, जयवर्द्धन, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1965
8. कुमार, जैनेन्द्र, अनन्तर, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1978

संदर्भ–सूची

1. कुमार, जैनेन्द्र, काम, प्रेम और परिवार, पृ. 69
2. कुमार, जैनेन्द्र, काम, प्रेम और परिवार, पृ. 71
3. कुमार, जैनेन्द्र, काम, प्रेम और परिवार, पृ. 47
4. कुमार, जैनेन्द्र, परख, पृ. 21
5. शर्मा, ओम प्रकाश, जैनेन्द्र उपन्यासों का शिल्प, पृ. 79
6. कुमार, जैनेन्द्र, सुनीता, पृ. 97
7. कुमार, जैनेन्द्र, मुक्तिबोध, पृ. 145
8. कुमार, जैनेन्द्र, अनास्वामी, पृ. 51
9. कुमार, जैनेन्द्र, जयवर्द्धन, पृ. 190
10. कुमार, जैनेन्द्र, अनन्तर, पृ. 28

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 169-172

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

नये भारत के केन्द्र में नारी शक्ति

*डॉ. नीतू सिंह**

आज नारी–उत्थान हेतु जितने प्रयास किये जा रहे हैं, उसे हर क्षेत्र में वरीयता दी जा रही है, चाहे वह शिक्षा हो या राजनीति हो अथवा व्यापार का क्षेत्र हो या चिकित्सा का। कहीं शुल्क मुक्ति के रूप में, कहीं आरक्षण देकर, कहीं आर्थिक संरक्षण देकर ये समस्त सुविधायें क्या नारी की अपेक्षाओं की सम्पूर्ति कर रही हैं? नारी शिक्षित होते हुये स्वावलम्बी हो रही है, उसकी जागरूकता बढ़ रही है। पहले की अपेक्षा निर्भीक एवं मुखरित हो रही है। भीरुता उससे पीछे छूट गयी है, वह अधिकारी हो या कर्मचारी, नेता या जनता, अभिनेत्री हो या कवयित्री, सर्वत्र अपना वर्चस्व बना रही है, किन्तु अभी ग्रामीण क्षेत्रों में सत्तर प्रतिशत नारी समाज अशिक्षित है जो शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार नहीं कर पाता। उसके लिए नारी की स्थिति मौन रहकर बिना कुछ समझे हुये केवल परिश्रम करने की है। परिश्रम करने पर भी वह अपनी मौलिक आवश्यकताओं को स्वेच्छा से पूरा नहीं कर सकती। उसे दीनता का जीवन ही बिताने को मजबूर किया जाता है, क्योंकि वे स्त्री–शिक्षा को अंग्रेजी का प्रभाव मानते हैं। ऐसी स्थिति में आज के समाज में यह अवधारणा विकसित करना आवश्यक है कि स्त्रियों के लिए शिक्षा, उच्च शिक्षा की धारणा वैदिक काल से ही प्रचलित है, यह अंग्रेजी का प्रभाव नहीं, बल्कि भारतीयता से प्रेरित है। इसके अतिरिक्त नारी के शिक्षित होने पर उसके मनोबल का विकास होता है जिससे पूरा परिवार शिक्षित होता है और परिवार को सही दिशा मिलती है। शिक्षित नारी अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र के उत्तरदायित्वों का निर्वाह भी भली–भाँति करने में सक्षम होती है। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिककालीन नारी की स्थिति पर विविध रूपेण विचार करते हुये आज की नारी की स्थिति से अपेक्षित सन्दर्भों को जोड़ने का प्रयास किया गया है।

आज नारी सुरक्षित होकर भी अपने आप को कहीं न कहीं किसी रूप में अशक्त अनुभव करती है। उसके पीछे यह कारण हो सकता है कि पिछली शताब्दियों में उसके लिए 'अबला' एवं 'दासी' जैसे अनुचित, हीन शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है, जिसके संस्कार, नारी मन में गहरे बैठे हैं तथा समाज भी उसे इसी रूप में देखना चाहता है। इस संदर्भ में यदि हम वैदिक चिन्तन की ओर लौटकर अपनी धरतीके मौलिक मंत्र को ग्रहण करना चाहें तो यजुर्वेद से हमें ज्ञात होता है कि'नारी सहस्रवीर्या' है, उसमें सहस्रों प्रकार की शक्ति निहित हैं–

अषाढ़ासि सहमाना सहस्वराती, सहस्व वृतनायतः।
सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व।।[1]

इस मंत्र में नारी को 'अजेय' कहा गया है। 'सहस्रवीर्या' पद से यह संकेत प्राप्त होता है कि नारी अपनी आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार के पराक्रम प्रकट कर सकती है। वस्तुतः यह कथन स्त्री की असाधारण आत्मशक्ति का द्योतक है। वह स्वयं तो शक्ति–सम्पन्न है ही, दूसरों में भी पराक्रमपूर्ण प्रेरणादायिनी शक्ति का संचार करने में सक्षम है।

तैत्तिरीय–संहिता में इन्द्राणी की सेना को देवता कहा गया है। यह भी कहा गया है कि जिसकी सेना बल या निस्तेज हो, वह इन्द्राणी की निमित्त यज्ञ में आहुति दें, इससे उसकी सेना सबल होगी। वह सेना में तेजस्विता लाती है–

इन्द्राणी वै सेनायै देवता। सैवास्य सेनां सं श्यति।।[2]

यह उदाहरण नारी जाति के लिए गौरव का विशय है।

स्त्रियों की लज्जाशीलता और सुकुमारता के आधार पर आज उन्हें अबला समझा जाता है, यह भ्रान्त धारणा है। अथर्ववेद में यह स्पष्ट कहा गया है कि स्त्री अबला या निर्बल नहीं, वह वीर है, वीरों की जननी है, वीरों की पत्नी है–

अवीरमिव मामर्यं शरारूरभिमन्यते।
उताहभस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा, विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।[3]

* *प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, रणवीर रणंजय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी, उ.प्र.*

नीच और कामुक व्यक्ति स्त्री को निर्बल समझकर उन्हें आतंकित करना चाहते हैं। इसका उत्तर मंत्र में दिया गया है कि स्त्री वीर है, वीरांगना है, वीर की पत्नी और स्वयं वीरता के कार्य करने वाली है।

प्रश्न उठता है कि निर्बलता और सबलता क्या है? विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि चारित्रिक न्यूनता एवं आत्मिक बल का अभाव निर्बलता है और सच्चरित्रता तथा आत्मिक बल का अस्तित्व सबलता है। चरित्र बल और आत्मबल शरीर की स्थूलता पर निर्भर नहीं है। यह मानव के उच्च गुणों पर निर्भर है। स्त्री में अपने सतीत्व की रक्षा का आधार उसका दृढ़ मनोबल होता है। उसका मनोबल उच्च होने पर कोई शत्रु या नीच व्यक्ति उसकी ओर देखने का भी साहस नहीं कर सकते। सच्चरित्रता और पातिव्रत्य का इतना उत्कट बल होता है कि वह अग्नि तुल्य दाहक और नाशक होता है।

जो स्त्रियाँ निर्भीक और निःसंकोच हैं वे ही नेतृत्व कर सकती हैं। स्त्री में नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि उसमें अदम्य उत्साह हो। ऋग्वेद के एक मंत्र में ऊषा के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है कि नवीन शक्ति से युक्त होती ऊषा ज्ञान का प्रकाश फैलाती है। ऊषा में तेजस्विता है। वह निःसंकोच रूप से अन्धकार दूर करती हुयी सदा प्रातः प्रकट होती है। उसके उदय के बाद ही सूर्य आता है, यज्ञादि होते हैं और अग्नि को प्रदीप्त किया जाता है। अतः वह इन कार्यों में अग्रणी है।

नारी योग्य, निर्भीक और साहसी होने पर ही परिवार में प्रमुख होकर रहेगी। नारी के लिए आवश्यक है कि उसमें अध्यवसाय एवं आत्मानुशासन हो, वह कठिन परिस्थितियों का सामना कर सके और परिवार के सभी लोगों को नियंत्रण में रख सके। वह नियंत्रण योग्यता, कर्मठता और चारित्रिक बल पर निर्भर करता है।

माता के शुभ या अशुभ विचार गर्भस्य शिशु में प्रतिफलित होते हैं। अतः विधान है कि गर्भिणी सदा उच्च विचार रखें, प्रसन्न हों तथा भय न करें, क्योंकि राष्ट्र के लिए वीर सन्तान की आवश्यकता है। ऋग्वेद के निम्न मंत्र में सुयोग्य पुत्रों और पुत्रियों का गुणगान करते हुये माता गर्व की अनुभूति करती है। पुत्री का तेजस्विनी होना भावी सन्तति की ओजस्विता का सूचक है–

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो में दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया, पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।[4]

इस मंत्र में 'संजया' पद इन्द्राणी के स्वयं विजयिनी एवं शुभमर्दिनी होने का सूचक है, यह कथन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

आज की सत्तर प्रतिशत नारी अशिक्षा के अंधकार से त्रस्त हैं। उनके प्रति सामाजिक अवधारणा को परिवर्तित करने की अपेक्षा है। वस्तुतः अशिक्षा केवल नारी के लिए ही नहीं प्रत्युत पूरे परिवार के लिए, समाज के लिए अभिशाप है। नारी शिक्षा हेतु सामाजिक अवधारणा को परिवर्तित करने की अपेक्षा है। इस परिवर्तन हेतु वैदिक चिन्तन से परिचित होने की आवश्यकता है। उदाहरण स्वरूप किसी ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं को उच्च शिक्षा देने की बात करना, लड़की को अंग्रेजियत सिखाना है। किन्तु जब हम वैदिक चिन्तन को आगे करके बात करते हैं, तो समाज उसे अपनी संस्कृति का अंग समझकर उसे सहज रूप में स्वीकार करने को तैयार हो जाता है, क्योंकि भारतीय मानस में अपनी पुरानी मान्यताओं के प्रति गहरी आस्था है।

वैदिक काल में नारी को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। वे मंत्रद्रष्टा ऋषिकायें भी होती थीं। ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 72वें सूक्त की रचयित्री अदिति बताई जाती हैं, 107वें सूक्त की दक्षिणा, 151वें सूक्त की ऋषिका श्रद्धाकामायनी हैं। 9वें मण्डल के 6वें सूक्त की कवयित्री अत्रिगोत्री निवावरी, 8वें मण्डल की अंगिरा गोत्री, शाश्वती, 10वें मण्डल के 109वें सूक्त की ऋषिका देवी जुहू हैं। इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया है। स्त्रियों के लिए इस प्रकार उच्च संबोधन बड़े महत्त्व का है तथा ध्यातव्य है। घोषा एवं विश्ववारा वैदिक ऋषिकाओं में प्रमुख हैं। घोषा ने अपनी छन्द रचना की ओर स्वयं इंगित किया है–

एतं वा स्तोममश्विनावकर्मा तक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः।।[5]

अश्विनों, जिस कुशलता से भृगु रथ का निर्माण करते हैं, इसी प्रकार इस स्रोत को मैंने तुम्हारे लिये रचा है। जिस प्रकार वर के लिए वधू का शृंगार किया जाता है और जैसे पुत्र–पौत्रों द्वारा वंशवेलि बढ़ाई जाती है, उसी प्रकार तुम्हारी स्तुति में ऋचाओं को मैंने संवारा है। वैदिक काल में स्त्री को यज्ञ करने और मंत्र पाठ का पूरा अधिकार दिया गया था। परवर्तीकाल में संकीर्ण वृत्ति के लोगों ने नारी को यज्ञ और वेदपाठ से वंचित किया था। यह वैदिक विधि का उल्लंघन है। ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार नारी को प्रतिदिन प्रातः और सायं यज्ञ करना चाहिए, इससे उसकी बुद्धि बढ़ेगी और श्रीवृद्धि होगी–

संहोत्रं स्म पुरानारी, समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणी, इन्द्रपतनी महीयेत,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।[6]

इस मंत्र में स्त्री के गौरव का वर्णन है। स्त्रियाँ न केवल गृहकार्य में दक्ष होती थीं, अपितु वे सामूहिक यज्ञों में भाग लेती थीं और पति के साथ युद्ध में भी जाती थीं। सामूहिक यज्ञों में जहाँ पुरुषों का महत्त्व है, वहाँ स्त्रियों का भी महत्त्व कम नहीं है। जो स्त्रियाँ प्रतिदिन यज्ञ करती थीं वे सामूहिक यज्ञों में अवश्य जाती थीं। यज्ञशाला में उन्हें आगे स्थान दिया जाता था। इस प्रकार वैदिक समाज का वास्तविक मूल्यांकन उस समाज की स्त्रियों की स्थिति से होता है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों को कितना अधिकार प्राप्त होता है, कितना सम्मान प्राप्त होता है, विशेष महत्त्वपूर्ण है। वैदिक काल में नारी का जो चित्र हमें प्राप्त होता है, उससे आर्यों की सदाशयता का आभास होता है।

वैदिक काल में नारी के लिए विराट, सरस्वती एवं सिनीवाली संबोधन प्राप्त होते हैं। विराट् का अर्थ है तेजोमयी अर्थात् उच्च चारित्रिक बल वाली। सरस्वती ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी है अर्थात् चरित्र बल के साथ ही ज्ञान का बल स्त्री को पूज्य बना देता है। 'सिनीवाली' शब्द प्रतिपदा के नवोदित चन्द्र के लिये है। जिस प्रकार प्रतिपदा का चन्द्र निरंतर वृद्धि प्राप्त करता है उसी प्रकार स्त्री भी परिवार का वर्धन करती है–

प्रतितिष्ठि विराडसि, विष्णुरिवेह सरस्वति।
सिनीवालिं प्रजायतां, भगस्य सुमतावसत्।।[7]

ऐसी नारी ऐश्वर्य के देवता या भगवान की कृपा पात्र होती है।

वैदिककालीन युवतियाँ यथासम्भव इच्छानुकूल पति का वरण करती थीं। पतिगृह पहुँचकर युवती का दाम्पत्य जीवन आरम्भ होता था। विविध प्रकारेण वधू के शृंगार का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 85वें सूक्त में आर्य–वधू का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस सूक्त के मंत्रों को आज भी विवाह के समय पढ़ा जाता है। वधू का पतिगृह में आगमन मंगलसूचक माना जाता था। वधू के सौभाग्य के लिए, बड़ी ही सुन्दर शुभकामना, प्रस्तुत ऋचाओं में है–

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीलन्तौ पुत्रैर्नप्तभिमोंदमानौ स्वे गृहे।।[8]

यहाँ कामना की गयी है कि नव दम्पत्ति आजीवन साथ रहें। पूर्ण आयु को प्राप्त करें। पुत्र–पौत्रों से युक्त गृह में आनन्दमय जीवन बितायें। नववधू सदैव सुमंगला नारी का प्रतिरूप बनी रहे। जिस वधू को ऐसे शुभाशीश दिये जाते हैं वह सच्चे अर्थों में गृहस्वामिनी होती थी, वह दासी नहीं समझी जाती थी, न ही सास, ससुर के दबाव में घुटनमय जीवन बिताती थी। ननदें उसका जीवन कलहमय नहीं बनाती थीं। वह पूरे परिवार की साम्राज्ञी थी। वह सास, ससुर, ननद तथा देवर सभी पर शासन करती थी–महारानी सास बनो, महारानी सास बनो। हे ननंदरी, देवताओं की साम्राज्ञी, साम्राज्ञी बनो।

साम्राज्ञी श्वसुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधि देवृषु।।[9]

इस मंत्र में संकेत किया गया है कि वधू सास, ननद और देवरों के साथ गृहस्वामिनी के रूप में रहे। तात्पर्य यह है कि वधू शिष्ट व्यवहार करे, सदा परिवार का हित चिन्तन करे तथा अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से सबको अपने अनुकूल रखे। वस्तुतः नारी के स्वामित्व की चर्चा जहाँ से शुरू होती है, वहीं से उसके उत्तरदायित्वों का क्षेत्र भी विस्तष्त हो जाता है। पूरे परिवार के सदस्यों के खान–पान, आचार, व्यवहार एवं सुस्वास्थ्य का, वृद्ध एवं रुग्ण की परिचर्या का दायित्व भी उसी का होता है, ऐसी स्थिति में उसका स्वामित्व होना भी आवश्यक है अन्यथा वह मात्र वंदिनी होकर ही रह जायेगी। वैदिक काल में नारी को उत्तरदायित्व बोध किस प्रकार था, इसके लिए एक उदाहरण ही पर्याप्त है–

विश्वोह्यन्यो अरिराजगाम ममेदहः श्वसुरो ना जगाम्।
जक्षीयाद् धाना उत सोमंपपीयात् स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्।।[10]

किसी सहभोज के अवसर पर जब सभी आमंत्रित भोजन कर चुके और वसुक्र–पत्नी के श्वसुर नहीं आये तो उसने अपनी चिन्ता उक्त मंत्र में व्यक्त की है। वह चिन्तित है कि श्वसुर भी आते तो वह भी सुस्वादु भोजन कर लेते। इससे तत्कालीन पारिवारिक आदर्श की प्रस्तुति होती है। आज की नारी अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो रही है, उसे पति–गृह में हर प्रकार के स्वामित्व की अपेक्षा है किन्तु कर्तव्यों को वह नहीं स्वीकारना चाहती,

इसका उदाहरण पूरे समाज में प्राप्त है। पतिगृह आने के पश्चात् आज की वधू केवल पति को हो स्वीकार कर पाती है, पति के परिवारजनों के प्रति उसे आत्मीयता का बोध नहीं होता। इसका कारण है उसे बाल्यावस्था से ही विपरीत संस्कार दिये जाते हैं। हास–परिहास के माध्यम से ऐसे बीज आरोपित किये जाते हैं जैसे कि श्वसुरालय, बालिका का अपना घर न होकर उसको आतंकित करने वालों का गृह हो, किन्तु वैदिक काल में दी जाने वाली शिक्षा का संकेत द्रष्टव्य है–

स्योना भव श्वसुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनाऽस्यै सर्वस्यै विशे, स्योना पुष्टायेषां भव।।[11]

हे वधू, तुम श्वसुरों के लिए सुख देने वाली हो, परिवार के लोगों के लिए सुख देने वाली हो। तू समस्त परिजनों को सुख देने वाली हो, तूसुखद होते हुये इन सबके पोषण के लिए हो। इन दायित्वों के निर्वाह के लिए स्त्री का विदुषी और ज्ञानवती होना आवश्यक है, तभी वह कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहते हुये जीवन के प्रति सजग रहेगी। पतिगृह में सुरक्षा एवं व्यवस्था का ध्यान रखने के लिए उसका स्वस्थ रहना आवश्यक है। अतएव उसके दीर्घायु की कामना 'दीर्घ त आयुः सविता कृणोतु' (अथर्व. 14/2/75) में की गयी है। नारी स्वस्थ रहे तथा परिवार को भी स्वस्थ रखें, इस सन्दर्भ में यजुर्वेद के द्वादश अध्याय में कहा गया है कि स्त्रियाँ औषधि–विद्या अवश्य ग्रहण करें, क्योंकि औषधीय ज्ञान रखने वाली स्त्रियाँ ही कल्याणकारिणी हो सकती हैं, वे स्वयं स्वस्थ रह सकती हैं तथा दूसरों के रोगों का निवारण कर सकती हैं–

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शं ह्रदे।।[12]

यहीं एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि औषधि विद्या के विद्वान् इकट्ठे बैठकर प्रश्नोत्तर विद्या से परस्पर विचार विनिमय किया करें जिससे यह विद्या अधिक प्रभावोत्पादक होकर रोगों के निवारण में समर्थ हो सके।

वैदिक मंत्रों के अध्ययन से नारी अपनी दीनहीनता को समाप्त कर सोयी हुयी शक्तियों को उद्बुद्ध कर सकेगी, उसका मनोबल पुष्ट होगा, आत्मबल का सम्पूर्ण विकास होगा। उसमें नवीन नारी का जन्म होगा। एक वैदिक मंत्र के भावानुसार जैसे सूर्य प्रदीप्त किरणों से वस्तुओं को प्रकाशित करता है, वैसे ही विदुषी तथा अग्नि के समान तेजस्विनी स्त्रियाँ सभी कार्यों को कुशलतापूर्वक करती हैं और अपने दक्षतापूर्ण कार्यों से सबको प्रभावित करती हैं। यदि नारी समाजसेवी के रूप में आती है तो ग्राम, नगर और समाज उसका ऋणी रहेगा और उसका सम्मान करेगा। इन कार्यों के द्वारा नारी सबके लिए सुखद और आदरणीय होगी, ऐसी मंगलकामना अथर्ववेद के तीसरे काण्ड में प्राप्त होती है।

संदर्भ–सूची

1. यजुर्वेद 13/26
2. तैत्तिरीय संहिता 2/2/8/1
3. ऋग्वेद 10/86/9, अथर्ववेद 20/26, निरूक्त 6/31
4. ऋग्वेद 10/159/3
5. ऋग्वेद 10/39/14
6. ऋग्वेद 10/86/10, अथर्ववेद 20/126/10
7, अथर्ववेद 14/2/15
8, ऋग्वेद 10/85/42, अथर्ववेद 14/1/12
9, ऋग्वेद 10/85/46
10, ऋग्वेद 10/28/1
11, अथर्ववेद 14/2/27
12, यजुर्वेद 12/92

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 173-177

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महिला शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

*कु. दीप्ति सिंह** *डॉ. गीता सिंह***

सारांश :

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।

जिस स्थान पर स्त्रियों की पूजा की जाती है एवं उनका सत्कार किया जाता है। उस स्थान पर देवता सदा वास करते हैं और प्रसन्न रहते हैं जहाँ ऐसा नहीं होता है। वहाँ सभी धर्म और कर्म निष्फ़ल होते हैं। शिक्षा प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य का मौलिक अधिकार होता है शिक्षा प्रायः समानता के अधिकार के अन्तर्गत आती है।

प्रत्येक महिला पुरुष को शिक्षा प्राप्ति का समान अधिकार है, अपितु इस पुरुष प्रधान समाज में वर्तमान परिदृश्य में महिलाओं की शिक्षा चुनौती पूर्ण देखी जा रही है जबकि यह सर्वज्ञात हैं कि समाज में महिलाओं का स्थान वैदिक काल से ही महत्वपूर्ण रहा है।

जिस प्रकार किसी परिवार के निर्माण की आधारशिला एक जननी (माता) होती है उसी प्रकार किसी राष्ट्र के निर्माण में एक शिक्षित महिला का योगदान सर्वोपरि है।

वर्तमान काल में नारी शिक्षा की अत्यंतप्रासंगिक है। नारी शिक्षा के द्वारा ही नारी को समाज में प्रत्येक क्षेत्र का सामना करने के लिए स्वावलंबी बनाया जा सकता है एक सशक्त महिला ही अपने संपूर्ण जीवन को उचित मार्गदर्शन कर जीवन को सही तरीके से जीने में सक्षम बना सकती हैं।

यह ज्ञात हैं की सर्वप्रथम एक स्त्री ने ही पुरुष को घर वसा कर रहने की प्रेरणा दी, परंतु आज उसी स्त्री को उचित अधिकार नहीं मिलता जिसके कारण महिलाओं को न केवल परिवार में अपितु समाज के प्रत्येक क्षेत्र में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

अतः इन्हीं सारी समस्याओं के समाधान के लिए सरकार ने राष्ट्रीय एवम् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न योजनाओं को लागू किया जिसके द्वारा वर्तमान में महिलाओं की शिक्षा उनके स्वास्थ्य स्वावलंबन के साथ साथ उनको सशक्त बनाया जाए जिसके सहारे वे समाज में अपना पूर्ण योगदान दे सके तथा स्वयं को उचित स्थान से सुशोभित कर सके एवं पुरुषों के भाती स्थान प्राप्त कर सके। अंतः प्रस्तुत पेपर का मुख्य उद्देश्य महिला शिक्षा का उनके स्वास्थ्य स्वावलंबन और सशक्तिकरण से सम्बन्धित संमस्याओं पर विचार करना तथा उन समस्याओं से सम्बन्धित सुझावों एवं समाधान पर प्रकाश डालना है!

कुंजीभूत शब्द–*शिक्षा, महिला समावेशन, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, चुनौती एवं समाधान*

प्रस्तावना–

पूज्यनीय महाभागा पुण्याश्च गृहदीपत्यः
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्ता तस्माद्रक्ष्या विशेषतः

स्त्री को घर की लक्ष्मी परम भाग्यशालीनि पुण्यमयी और घर को शोभावन करने वाली माना गया है, इसलिए इनकी विशेष रक्षा करनी चाहिए अर्थात स्त्री विशेष रूप से पूज्यनीय है। नास्ति विद्या सम चछु, नास्ती मातृसंमो गुरुः विद्या के समान कोई नेत्र नहीं तथा माता के समान कोई गुरु नहीं हैं राष्ट्रश्य स्व नारी अस्ति। अतः नारी राष्ट्र

* *शोधार्थी, शिक्षा संकाय, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.*

** *असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.*

का कल है। जिस प्रकार से किसी परिवार के निर्माण में प्रथम प्राथमिकता एक माता की होती है। उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र के निर्माण या उत्थान में एक शिक्षित या अशिक्षित महिला की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। किसी महिला का शिक्षित होना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना की किसी राष्ट्र का उन्नति करना।

शिक्षा से आशय किसी परिवार समाज राष्ट्र के निर्माण में विद्या रूपी ज्ञान से लिप्त होकर ज्ञान रूपी वह शस्त्र जिसके द्वारा कोई भी राष्ट्र अपनी प्रगति के पथ पर चलकर उन्नति करता है शिक्षा मानव जीवन की वह अनुपम कीर्ति है जो भाग्य का नाश होने पर व आश्रय देती है।

According to John Debey- I believed that education is fundamental method of social progress and reform.

अंतः शिक्षा जीवन को निरुद्देश के मार्ग से हटाकर उद्देश्यपूर्ण जीवन की ओर मोड़ती है, भारत का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि वैदिक काल से ही शिक्षा को सर्वोपरि रखा गया है। कहा जाता हैं कि शिक्षा वह प्रकाश है, जो अंधकार रूपी घनी छठा को हटाकर ज्ञान रूपी प्रकाश की किरण का प्रसार कर जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करती हैं प्रत्येक काल से ही शिक्षा का अपना महत्त्व रहा बिना शिक्षा के बिना एक मनुष्य केवल पशु के समान है अर्थात ज्ञानविहीन मनुष्य का जीवन इस धरा पर केवल बोझ है ।

''येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणों न धर्मं, ते मृत्युलोक भविभारभूता, मनुष्य रूपरेण मृगाश्चरंती'' (चाणक्य नीति 10/7)

जिन लोगों के पास न विद्या है न तप है न ज्ञान है न शील है न गुण है और न धर्म वे लोग इस पृथ्वी पर भार है और मनुष्य के रूप में मृग जानवर की तरह ही घूमते है।

भारतीय संविधान में शिक्षा प्राप्ति का समान अधिकार है तथा शिक्षा को मौलिक अधिकार के अंतर्गत रखा गया ।प्रत्येक स्त्री पुरुष को शिक्षा प्राप्ति का समान अधिकार हैं यह ज्ञात है कि स्त्री ने ही पुरुष को घर बसा कर रहने की प्रेरणा दी है लेकिन इस पुरुष प्रधान समाज की रूढ़िवादी विचारधारा मे आज भी स्त्रियों की दशा दयानीय है उल्लेखनीय है कि लगभग 3000 से अधिक वर्षों पहले वैदिक कालीन युग में स्त्रियों की दशा बहुत संतोषजनक थी स्त्रियों को प्रतिष्ठित रूप से स्थान व सहयोग प्राप्त था वैदिक अवधारणा है कि स्त्री सिद्धांत के अनुसार महिलाओं को देवी के रूप में पूजा शुरू की गई उदाहरण स्वरूप "शिक्षा की देवी मां सरस्वती" महिलाओं की शिक्षा पर जोर न केवल आधुनिक समय की बात है बल्कि वैदिक काल के साथ–साथ हर युग महिलाओं की शिक्षा को सर्वोपरि रखा गया महिला शिक्षा से आशय समाज में एक ऐसी विचारधारा व पद्धतियों का निर्माण करना जिसके द्वारा महिलाओं का चहुमुखी विकास हो तथा प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह सामाजिक आर्थिक मानसिक शारीरिक विश्व में वह सशक्त रूप सस्वावलंबी होकर चुनौतियों का सामना कर सके तथा जीवन को सरलता व सुलभता के साथ जीवन यापन कर सके,महिलाओं को शिक्षित करना किसी समाज की प्रगति करने के समान है।

अंबेडकर के अनुसार, ''किसी समाज की उन्नति का मापन उसे समाज की औरतों की स्थिति या उन्नति को देखकर मापन किया जा सकता है वर्तमान में महिला शिक्षा का प्रभाव देखने पर यह ज्ञात होता है कि आज शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं का अनोखा रूप देखने को मिल रहा है। इस स्वतंत्र भारत में महिलाओं की शिक्षा को अनदेखा नहीं किया जा सकता लेकिन वर्तमान में यह आंकड़ा मिलता है कि लोगों की रूढ़वादी विचारधारा व अनुचित व्यवस्थाओं के आधार पर महिलाओं की शिक्षा को नजर अंदाज किया गया हैं जो किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए उचित नहीं।''

सन 1958 से लेकर स्वतंत्रता पश्चात तक महिलाओं की शिक्षा पर सुझाव था तथा उनको शिक्षा प्राप्त का पुरुषों के समान अधिकार प्रदान था कहा जाता है कि एक शिक्षित महिला कई पीढ़ियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है, आज की विचारधारा व लोगों की स्थिति के आधार पर देखा जाता है कि महिलाओं का जीवन अत्यंत चुनौती पूर्ण होता जा रहा है इसके पीछे मुख्य कारण समाज की सोच व प्रचलित सामाजिक पद्धतियों का होना है आज न जाने कितने करोड़ महिलाएँ लड़कियाँ पोषण गरीबी व उत्पीड़न का शिकार बनती जा रही है कारण है असाक्षरता व परिवार का पूर्ण रूप से आर्थिक कमजोर होना परिवार के जीवन यापन व जीविकोपार्जन के लिए खाली पेट बाहर अथक श्रम करती हैं ,महिलाएं निरक्षर होने व गरीबी होने के कारण ज्यादा से ज्यादा गर्भधारण का होना व पोषण आहारों का उचित रूप से न मिलने की वजह से कुपोषण व समय से पहले शादी विवाह होने की वजह से विभिन्न शारीरिक मानसिक समस्याओं का जन्म हो जाता है ना जाने कितनी महिलाएँ उचित उपचार

व देखभाल पोषण ना प्राप्त होने की वजह से अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं, आज की स्थिति यह है कि महिलाओं का लिंगानुपात पुरुषों के लिंगानुपात में काफी औसत अंतर है पुरुषों की संख्या में बढ़ोत्तरी व महिलाओं की संख्या में कटौती होती जा रही है इसके पीछे का कारण लड़कियों के पैदा होने से पूर्व उनका गर्भपात करा देना! समाज में यह विचारधारा प्रचलित है कि जैसे ही लड़कियां पैदा होती हैं उनके शिक्षा से संबंधित मामलों पर कम ध्यान दिया जाता है बल्कि उनकी शादी विवाह इत्यादि की चिंता लोगों को ज्यादा होने लगती है यह सभी का समाज में होना साक्षरता की कमी के कारण है। आज की नारी ना तो परिवार में सुरक्षित है ना ही परिवार या घर के बाहर आए दिन महिलाओं के शोषण से संबंधित मामलों को देखा जा रहा है परिवार घर में उत्पीड़न का प्रमुख कारण लोगों की लड़की होने की रूढ़िवादी विचारधारा तथा दहेज नामक लोलुपता आदि है जबकि घर के बाहर निजी शिक्षण संस्थानों में भी महिलाओं का शोषण देखने को मिलता हैं। महिलाएँ शोषण का शिकार होती जा रही है लोग लड़कियों की असुरक्षा की वजह से उनको विद्यालय स्कूल तक भेजने में डरते हैं। कुछ लड़कियाँ तो स्कूल के बीच ही पढ़ाई छोड़ देती हैं।

आज वर्तमान की स्थिति यह है कि उच्च शिक्षा तक नाम मात्र की लड़कियाँ ही पहुँच पाती है शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति में विशेष योगदान रखती है अतः वर्तमान में महिलाओं का उत्पीड़न व इत्यादि समस्याओं से बचने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा का होना अत्यंत आवश्यक है

भारत में महिलाओं की शिक्षा व स्वालंबन के उद्देश्य

1. भारत में महिला शिक्षा का स्वतंत्रतापूर्व व वर्तमान में स्थिति का विश्लेषण करना।
2. वर्तमान में महिला शिक्षा स्वास्थ्य सम्बंधित समस्याओं का अध्ययन।
3. महिला शिक्षा स्वास्थ्य संलंबन से संबंधित समस्याओं पर एक सुझाव का अध्ययन करना।

भारत में नारी शिक्षा की आवश्यकता : समाज में उचित स्थान प्राप्त हेतु पारिवारिक सहयोग व स्वास्थ्य प्रहरी के रूप में राष्ट्र की उन्नति के साथ समाज के विकास में वैदिक काल में नारी के लिए साहित्य अध्ययन में वैदिक कर्म कांड करने की भी स्वतंत्रता नारियों को थी कहा जाता है कि शिक्षा विहीन नारी नारीतत्व विहीन माना जाता है।

21वीं सदी में देखा गया कि कई परिवार अपने लड़कियों को स्कूल भेजने व शिक्षा तक पहुँच बनाने में असुरक्षित महसूस करते हैं, इसके पीछे रूढ़वादी विचारधारा व आर्थिक गरीबी कहीं ना कहीं मुख्य कारण रहा है समाज में यह मिथ्या प्रचलित है कि किसी विशेष कार्य या परियोजना के को करने के लिए महिलाओं की दक्षता पुरुष समक्ष के मुकाबले कम होती है और इसी कारणवश देश में महिलाओं तथा पुरुषों के औसतन काफी अंतर रखा जा रहा है।

महिला शिक्षा व सशक्तिकरण के मार्ग में आने वाली चुनौतियाँ–

भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है महिलाओं को पुरुषों के समान सामाजिक दर्जा नहीं दिया जाता है या प्राप्त है तथा उन्हें घर की चार दिवारी तक सीमित कर दिया जाता है।

आज भी अधिकांश प्रतिशत महिलाएँ असाक्षरता से लिप्त हैं कारण देश में महिलाओं की सुरक्षा तथा इसी कारण लोग अपनी लड़कियों को घर से बाहर भेजने में डरते है गरीबी पितृ सत्तात्मक मानसिकता स्कूलों में उपयुक्त संसाधनों की कमी तथा सभी बच्चों लड़के व लड़कियों की शिक्षा में असमानताएँ पाए जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ समाज के सामने उपस्थित है।

महिलाओं का शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वावलंबन की दिशा में सशक्तिकरण किसी भी देश के समग्र विकास के लिए अनिवार्य है। यह न केवल सामाजिक समता को बढ़ावा देता है, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति का भी मार्ग प्रशस्त करता है। इसी सोच के अंतर्गत राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रयास किए जा रहे हैं, जो महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ करने में सहायक हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे संगठन निरंतर प्रयासरत हैं। 'यूएन वीमेन' जैसे संगठन महिला शिक्षा, लैंगिक समानता और स्वास्थ्य के मुद्दों पर विभिन्न देशों में जागरूकता फैला रहे हैं और योजनाओं को समर्थन दे रहे हैं। सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में विशेष रूप से लैंगिक समानता को प्राथमिकता दी गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) भी महिला स्वास्थ्य को लेकर अनेक देशों में जागरूकता अभियान और योजनाएँ चला रहा है।

इन प्रयासों का उद्देश्य न केवल महिलाओं को उनके अधिकार दिलाना है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर बनाकर समाज में समान भागीदारी देने का है। जब महिला शिक्षित होती है, तो वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है, स्वास्थ्य के प्रति सजग होती है और अपने जीवन में निर्णय लेने में सक्षम बनती है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय योजनाएं इसी सोच को साकार करने का माध्यम बन रही हैं।

अतः राष्ट्रीय मनवा अधिकार आयोग NHRC भारत में 5 सितंबर, 2022 को भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य सशक्तिकरण व पोषण से संबंधित समस्याओं पर सुझाव पेश किया व इन समस्याओं से संबंधित चुनौतियाँ का समाधान व संभावनाएँ बता कर सार्थक प्रयास किया।

अतः इन्हीं सारी चुनौतियों को देखते हुए महिलाओं की शिक्षा स्वास्थ्य सांवलंबन व उनके सशक्त बनाने के लिए भारत सरकार ने विभिन्न योजनाएँ चलाने का प्रयास किया जिसके द्वारा महिलाएँ सशक्त होंगी व सशक्त पूर्वक समस्त आने वाली समस्याओं व चुनौतियों को सहजता व सरलता पूर्वक सामना कर सकेंगी।

वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने 8 मार्च की संध्या को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर विभिन्न प्रकार की योजनाओं का उद्घाटन किया जिसके तहत महिलाओं को सुरक्षित शिक्षित व सशक्त बनाया जाएगा

योजनाओं को निम्न वर्गों में विभाजित किया गया है–

1. सामाजिक योजनाएँ
2. शैक्षिक योजनाएँ
3. आर्थिक योजनाएँ

प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत 2 करोड़ घर बनाए गए हैं पहले महिलाओं को संपत्ति का अधिकार नहीं था आज इस योजना के तहत उन्हें यह अधिकार मिल रहा है। मिशन इंद्रधनुष नामक योजना नवजात कन्याओं के स्वास्थ्य के प्रति लोगों को गंभीर बने

सुकन्या समृद्धि योजना, एकीकृत बाल विकास योजना, आयुष्मान समृद्धि योजना, स्वीकृत बाल विकास योजना जिसमें 6 वर्ष तक के बच्चों को खास कर लड़कियों के पोषण के लिए उनके स्वास्थ्य व पोषण से संबंधित मामलों पर नजर रखा जाएगा।

राजीव गांधी किशोरी सशक्तीकरण योजना (सबला) उज्ज्वला योजना ,स्वाधार गृह योजना, कस्तूरबा गांधी बालिका आवास योजना, तथा बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजनाएँ इत्यादि आयोजित की गई।

उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने मिशन शक्ति योजना लागू की इसके माध्यम से समाज में जागरूकता का संदेश दिया गया।

महिला सम्मान हो स्वावलंबन में समाज की भूमिका में महिलाओं का स्थान को सर्वोत्तम माना। उन्होंने कहा महिलाएं समाज की चेतन परिहार होती है बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना के माध्यम से देश में चेताना को जगाने का प्रयास किया गया है उन्होंने इसी अवसर पर शास्त्रों की सूक्ति का उल्लेख किया

नास्ति मातृसमा छाया, नास्ती मातृ समा गति
नास्ती मातृसम श्रआण नास्ती मातृ समा प्रियाः

अतः माता के समान कोई छाया नहीं, माता के समान कोई सहारा नहीं माता के समान कोई रक्षक नहीं माता के समान कोई प्रिया नहीं।

निष्कर्ष : अतः एक स्त्री को सृजन का शक्ति माना जाता है स्त्री से ही मानव जाति का अस्तित्व है भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज है अतः जब यह ज्ञात है कि स्त्री ही संपूर्ण समाज के सृजन में प्राथमिक भूमिका निभाती है तो भेदभाव क्यों ही किया जा रहा है अतः महिलाओं की शिक्षा उनका स्वास्थ्य व उनके सशक्त बनाना ना ही केवल एक महिला के लिए आवश्यक है बल्कि संपूर्ण राष्ट्र के प्रगति के लिए भी आवश्यक होता है इन्हीं सारी वर्तमान में व्याप्त चुनौतियां के परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न योजनाओं का गठन कर महिला शिक्षा स्वास्थ्य स्वावलंबन को सशक्त बनाने के लिए सार्थक प्रयास कर रहा है और भविष्य में यह प्रयास प्रभावशीलता के साथ निरंतर जारी रहेगा!

सन्दर्भ–सूची

1. गुप्ता, दीपिका (2018), बालिका सशक्तिकरण हेतु सरकारी प्रयास एवं उनकी समीक्षा, International Journal of Multidisciplinary Research (IJFMR)

2. देवी, विमला (November 2020), ग्रामीण महिलाओं के सशक्त विकास में स्वयं सहायता समूह का योगदान सहायता का योगदान व समूह का राजनीतिक महत्व, (INDIAN Journal of Research)

3. आलम, मो. सदरे (2021), महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का प्रभाव : एक अध्ययन, Scholarly Research Journal for Interndisciplinary Studies

4. अग्निहोत्री, डॉ. दिलीप (March 10, 2022), महिला स्वावलम्बन के सार्थक प्रयास।

5. विश्नोई, मयंक (February 2025), महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने वाले अनमोल विचार।

6. केन्द्रीय बजट, 2019–2020 परियोजना एवं योजना।

7. जनगणना, 2011 (अन्तिम आँकड़ें), भारत सरकार।

8. सक्सेना, एम. (2016), भारतीय परिवारों में महिलाओं की पारम्परिक भूमिका और सीमाएँ, मनोविज्ञान और सामाजिक विज्ञान 20 (5), 60–72।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Mass Comm. : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 178-189

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Evolution of Diasporic Family Identity in Bollywood Cinema Since 1960s

*Dr. Rochak Saxena** *Mr. Karan Vora***

Abstract : *The phenomenon of diaspora represents the dispersion of individuals and communities from their homeland to various parts of the world, often resulting in the formation of transnational identities and cultural hybridity (Bruneau, 2010). Indian cinema, particularly Bollywood, has played a significant role in portraying the experiences, challenges, and evolving identities of diasporic families over the decades (Mehta &Pandharipande, 2010). The study aims to explore how diasporic family identities have been depicted and transformed in Bollywood narratives over time. Sangam (1964) was the first Indian film to be shot abroad, following which Indian filmmakers over the years explored diaspora in the context of narrative. The researchers analyse two representative films per decade from the 1960s onwards which include An Evening in Paris (1967), PurabAurPashchim (1970), Des Pardes (1978), Dilwale Dulhaniya Le Jayenge (1995), Pardes (1997), KalHo Na Ho (2003), Namaste London (2007), Patiala House (2011), London Paris New York (2012), Mrs. Chatterjee vs Norway (2023), and Dunki (2023). Drawing upon a qualitative research methodology, this paper employs content analysis as its primary tool to examine and interpret the thematic, narrative, and visual elements related to diasporic family identity in the selected Bollywood films. It allows for a structured analysis of film content, identifying patterns, changes over time, and representations of diaspora within cinematic narratives for comprehensive insights and understanding. This paper uses a coding system to categorise thematic elements related to Diasporic representation. The key codes used are Identity Negotiation, Cultural Assimilation and Hybridity, Nostalgia and Homecoming, Intergenerational Relations and Social Ties and Connections.*

Furthermore, the researchers have also interviewed industry experts to get insights into the filmmaking process, directorial intentions, and societal influences shaping the portrayal of diasporic family identity in Bollywood cinema through the years. The portrayal of diaspora in Indian cinema serves as a lens to understand the complexities of migration, cultural adaptation, and the negotiation of identity within trans-national and trans-cultural contexts. The analysis reveals a nuanced evolution of diasporic family identity in Bollywood cinema, demonstrating shifts in representation, thematic focus, and cultural narratives across decades, supported by insights from industry experts.

Keywords : *Bollywood, Diaspora, Families, Evolution, Indian Culture*

Introduction : Diaspora cuts across a wide-ranging band of subjects of concern such as identity, transnationalism, hybridity and socio-cultural dynamics. It can be argued that the Indian diaspora is one of the most extensive and diverse internationally, thus, selecting it as the focus of the specified themes in art, in their various forms, is quite justified (Varadarajan, 2010). Diaspora, a historical and social / cultural term, depicts the migration of people or groups of people from their original/voluntary place of residence to other places in the world. This process – with the economic, political, or social

* ***Assistant Professor, Auro University Surat, Gujarat, India***

** ***Assistant Professor, Chandidas Mahavidyalaya, Khujutipara***

motivation – engulfs new cultural profiles that reflect experiences of mobility and change (Cheng & Katz, 2005). Immigrants live in two cultures at once – they stay connected to both their birth cultures and interact with new cultures in a new country. Such an overlap forms what scholars referred to as the cultural Third Space, a concept given by Homi K. Bhabha in 1994 (Hollinshead, 1998) due to the establishment of the continuity between the two cultural poles of sameness and otherness.

The Indians are perhaps among the largest and most spread Diaspora in the world characterized by great cultural, social and economic impact on their host societies; not to forget, they remain deeply connected with India (Chand, 2012). The idea of multiple belonging, thus, has been of considerable concern to scholars from literature, sociology, anthropology and film industry. Representation of the Indian community in the cinematic platform especially in Bollywood has become a unique way to understand and study the core subjects of identification, place and culture. Over the years, Bollywood, which is the largest film industry in India and a major cultural icon has played a very important role in construction and reinforcement of the Indian social realities. Organised in chapters that address the diaspora, it offers a living history of the Indian psyche and a dream of the world.

Diaspora and its Representation in Cinema : Film can reflect the reality of the society, change the latter, and build people's emotional experiences and perceptions as well (Brown, 2011). The representation of diaspora in movies does not only involve narrating histories; it embodies the ways in which humanities is negotiated and history is remembered. Therefore, Indian cinema especially Bollywood movies play a central part in this regard. As a result of its use of exaggeration in narrative style and scale and highly coloured representation of culture among other aspects of production, Bollywood explores the different aspects of the Indian diaspora's living, suffering and transitioning.

The shift in diasporic portrayal in Bollywood also corresponds to the gradual changing social-political map of India and its associations. The earliest films of Bollywood stretched the Indian culture as immigrants fearing the assimilation of Indian traits by the people in western countries (Ramasubramanian, 2005). With the globalization of markets and increase in people's migration, new aspects of 'Indian' subjects' experience became depicted in Bollywood movies, moving on from clear divisions, to the issues of cultural confrontation and interaction, subject positioning and intergenerational relationships.

This study, titled *"Evolution of Diasporic Family Identity in Bollywood Cinema Since 1960s,"* seeks to trace this transformation by analyzing select films that represent diasporic family identities over six decades. It investigates thematic elements such as cultural assimilation, nostalgia, homecoming, and social ties, supported by insights from industry experts.

Objectives

- Examine and interpret the thematic, narrative, and visual elements related to diasporic family identity in selected Bollywood films (Two per decade).
- Identify patterns, changes over time, and representations of diaspora within cinematic narratives for comprehensive insights and understanding.

Methodology : The method of the study adopted in this research work is qualitative and exploratory in nature, whose primary goal is to unearth the developing narrative of the diasporic family identity as captured in Bollywood cinema. The emphasis is more on analyzing storytelling and concerns and placing those representations within the frameworks offered by practitioners. The design uses qualitative content analysis to analyse films more systematically and expert interviews for greater contextual understanding. The combination of both methods aligns with the study objectives of analyzing and identifying cultural narratives.

This research employs a two-pronged methodological approach to analyze the evolution of diasporic family identity in Bollywood cinema. The primary method is content analysis, which allows for a structured examination of the selected films through five thematic codes: Identity Negotiation, Cultural Assimilation and Hybridity, Nostalgia and Homecoming, Intergenerational Relations, and Social Ties and Connections. These codes serve as analytical lenses to identify patterns.

The five thematic codes applied for this study are developed out of an integrative approach. This applied a review of the current literature on diaspora and cultural studies and secondary thematic analysis for selecting Bollywood films dealing with diaspora theme. The Literature Review section drew upon key articles, including Homi K. Bhabha's outline of cultural hybridity (1994) and Avtar Brah's definition of diasporic spaces (1996) in order to determine areas of research of interest in relation to diasporic existence. In addition, a scoping review of among films; *Dilwale Dulhania Le Jayenge* (1995), *Namaste London* (2007), and *Mrs. Chatterjee vs Norway* (2023) revealed recurring motifs and patterns within cinematic portrayals of diasporic families. These insights were further elaborated with the help of filmmaker and industry expert interviews, to make them consider concepts such as identity negotiation or cultural integration as central. The emergence of these thematic codes helps in achieving a general perspective of the portrayal of diasporic family identities and to give account of their transformation comprehensively in Bollywood Cinema.

The study spans over 60 years of Bollywood cinema, focusing on the following films :

- *An Evening in Paris* (1967)
- *PurabAurPaschim* (1970)
- *Des Pardes* (1978)
- *DilwaleDulhania Le Jayenge* (1995)
- *Pardes* (1997)
- *KalHo Na Ho* (2003)
- *Namaste London* (2007)
- *Patiala House* (2011)
- *London Paris New York* (2012)
- *Mrs. Chatterjee vs Norway* (2023)
- *Dunki* (2023)

Sangam has been chosen as the starting point of films as it is the first Hindi film to be shot abroad. It must also be noted that during the 1980s, there wasn't a single Hindi film that suited the criterion for the study.

Through the systematic application of these codes, the study explores key themes such as the negotiation of dual identities, the challenges of cultural assimilation, the longing for the homeland, and the evolving dynamics within diasporic families. This comprehensive approach not only identifies recurring motifs but also highlights the progression in the depiction of diasporic narratives over time.

The second methodological pillar that is used in the framework of the study is the verification of the outcomes with experts. Film trade analyst and a cinema professor contribute to the discussion. For instance, the opinions from experts contribute to the study by providing cultural information or information about the industry in which the movies belong. In such a connection, this study follows content analysis with expert interviews so as to provide an all-round scrutiny of how Bollywood has had an effect and/or has portrayed diasporic family attributes, which should be informative for understanding the interconnection of cinema, culture and migration.

Content Analysis

***An Evening in Paris* (1967)**

1. Identity Negotiation : In *An Evening in Paris*, the protagonist played by Shammi Kapoor navigates between multiple identities. He is seen as a playboy in Paris but has a deeper side to him when he encounters the heroine played by Sharmila Tagore. The film showcases the negotiation of Indian identity in a Western setting, where Kapoor's character has to balance traditional values with a modern lifestyle. This negotiation is exemplified through the contrast between the characters' public and private personas. The film presents a clash between traditional Indian values and the more liberal Western lifestyle. Kapoor's character navigates between these contrasting identities, showcasing a negotiation

between his Indian roots and the cosmopolitan environment of Paris. This negotiation is evident in his relationships and interactions, reflecting the challenges faced by diasporic individuals in reconciling multiple cultural identities.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film explores cultural assimilation and hybridity through the interactions of Indian characters in a foreign environment. The characters experience a blend of Western modernity with Indian traditions, seen through their fashion choices, lifestyle, and social interactions. The film portrays the fusion of Indian and Western cultures, reflecting the broader themes of cultural hybridity.

3. Nostalgia and Homecoming : Although set in Paris, the film also delves into themes of nostalgia and yearning for home. The characters often reminisce about India and their cultural roots, although it is not evidently presented. The primary focus of the remains at tugging the modern ambitions of the audiences. However, the nostalgia is further emphasized in contrast to the glamorous but superficial lifestyle depicted in Paris.

4. Intergenerational Relations : While not a central theme, the film hints at intergenerational dynamics within diasporic families. The interactions between the protagonist and his uncle subtly highlight generational contrasts in values and perspectives. This portrayal underscores the evolving familial relationships influenced by migration and cultural adaptation.

5. Social Ties and Connections : The film portrays social connections and relationships formed across cultural boundaries. The characters engage with a diverse array of individuals, forging friendships and romantic alliances that transcend geographical and cultural barriers. These social ties illustrate the broader networks that diasporic communities establish in new environments.

***PurabaurPaschim* (1970)**

1. Identity Negotiation : *Purab Aur Paschim* intricately explores identity negotiation through its protagonist Bharat, played by Manoj Kumar, who represents traditional Indian values and culture. The film juxtaposes Bharat's strong Indian identity with the contrasting Western lifestyle portrayed through characters in London. Bharat's character undergoes a transformation and adaptation as he navigates between these contrasting worlds, highlighting the challenges and conflicts involved in negotiating one's identity within a diasporic context.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film delves into cultural assimilation and hybridity by depicting Bharat's experiences in London, where he encounters Western culture for the first time. The contrast between traditional Indian customs and modern Western practices underscores the challenges and transformations that occur when cultures intersect. The narrative reflects the process of cultural adaptation and the emergence of hybrid identities within diasporic communities.

3. Nostalgia and Homecoming : *Purab Aur Paschim* evokes themes of nostalgia and homecoming through Bharat's longing for India and its cultural values. The film emphasizes the importance of preserving one's roots amidst exposure to foreign influences. Bharat's eventual return to India symbolizes a homecoming and reaffirms the significance of his cultural heritage, illustrating the emotional complexities associated with diasporic experiences. The song '*Hai Preet Jahan Ki ReetSada*' is an example of how nostalgia is communicated and eventually rooted in the characters' hearts by recounting the merits of being an Indian

4. Intergenerational Relations : The film explores intergenerational relations through Bharat's interactions with characters representing different generations. The generational divide is depicted through contrasting attitudes towards cultural traditions and societal values. The maker although has focussed on the young generation, but also includes characters who have settled in London since a very long time, hence marking a comprehensive presentation of the society. Bharat's relationship with his elders and peers underscores the evolving dynamics within diasporic families and highlights the transmission of cultural values across generations.

5. Social Ties and Connections : *Purab Aur Paschim* portrays social ties and connections formed across cultural boundaries. Bharat's interactions with individuals from diverse backgrounds illustrate

the broader network of relationships established within diasporic communities. The film underscores the importance of fostering social connections while navigating unfamiliar environments.

***Des Pardes* (1978)**

1. Identity Negotiation : *Des Pardes* delves into identity negotiation through the character of Raj, played by Dev Anand, who migrates from India to the United Kingdom. Raj grapples with the challenges of adapting to a new culture while preserving his Indian identity. The film portrays Raj's journey of self-discovery and the complexities of balancing his roots with the allure of Western modernity, reflecting the process of identity negotiation inherent in diasporic experiences.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film explores cultural assimilation and hybridity as Raj encounters British society. *Des Pardes* illustrates the fusion of Indian and Western elements in Raj's lifestyle, depicted through fashion, music, and social interactions. The narrative underscores the dynamics of cultural adaptation and the emergence of hybrid identities shaped by diasporic experiences.

3. Nostalgia and Homecoming : Despite the opportunities abroad, Raj experiences a sense of displacement and yearning for India. The film highlights the emotional complexities associated with diasporic experiences and underscores the significance of homeland in shaping one's identity.

4. Intergenerational Relations : The film addresses intergenerational relations through Raj's interactions with fellow migrants and older generation characters. The generational divide is depicted through contrasting attitudes towards cultural traditions and societal values. Raj's relationships underscore the evolving dynamics within diasporic families and the transmission of cultural values across generations.

5. Social Ties and Connections : *Des Pardes* portrays social ties and connections formed within the diasporic community. Raj builds relationships with fellow Indians in the UK, highlighting the importance of social networks in navigating unfamiliar environments. The film emphasizes the role of communal bonds in providing support and solidarity amidst cultural adaptation.

***Dilwale Dulhaniya Le Jayenge* (1995)**

1. Identity Negotiation : DDLJ portrays identity negotiation prominently through the characters of Raj (played by Shah Rukh Khan) and Simran (played by Kajol). Both characters, raised in London, navigate their Indian heritage while being influenced by Western culture. Raj's playful and carefree demeanor contrasts with Simran's more traditional upbringing, reflecting the tension between assimilation and preservation of cultural identity. Raj's journey to win over Simran's family underscores his struggle to negotiate his Indian identity in a diasporic setting.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film vividly explores cultural assimilation and hybridity as Raj and Simran engage with their Indian roots during a trip to Punjab. DDLJ beautifully showcases the fusion of Indian traditions with modern sensibilities, blending elements of music, dance, and familial values. The characters embody a hybrid identity, embodying both Western and Indian cultural influences, which is celebrated throughout the narrative.

3. Nostalgia and Homecoming : Nostalgia and homecoming are central themes in DDLJ, particularly during the protagonists' visit to India. Simran's longing for her homeland and familial ties evoke deep emotions, highlighting the significance of roots and tradition amidst diasporic experiences. The film captures the bittersweet nostalgia associated with reconnecting with one's cultural heritage and ancestral home. Simran's father wants her to marry off a boy from India- his homeland, along with expressing a desire to be around *deshkimitti*.

4. Intergenerational Relations : DDLJ portrays intergenerational dynamics through Simran's relationship with her father, Baldev Singh (played by AmrishPuri). The generational conflict between traditional values and modern aspirations is palpable, symbolizing broader shifts within diasporic families. The film emphasizes the importance of familial bonds and the evolving nature of parent-child relationships in diasporic contexts. The plot point of him wanting to settle for his friend's son for his daughter and the daughter falling in love with a so-called brash boy, brought up in London elevates the tension within the narrative.

5. Social Ties and Connections : Social ties and connections play a significant role in DDLJ, particularly within the diasporic community in Europe. Raj's interactions with Simran's friends and relatives highlight the sense of community and solidarity among Indians living abroad. It is however not explored well enough. It must be noted though that all the friends- Raj's or Simran's are shown to be Indians living abroad.

***Pardes* (1997)**

1. Identity Negotiation : *Pardes* prominently addresses identity negotiation through the character of Ganga (played by Mahima Chaudhry), who moves from India to the United States. Ganga undergoes a transformation as she navigates the cultural differences between her traditional Indian upbringing and the modern American lifestyle. It is only after Ganga moves to the USA does she start having existential and identity crisis in an environment that is totally alien to her. The film portrays Ganga's struggle to reconcile her Indian values with the Western environment, highlighting the complexities of identity formation within a diasporic setting. However, the character of Arjun (played by Shahrukh Khan) is a contrasting example to Rajeev (played by ApurvaAgnihotri) who has maintained his cultural demeanour despite being brought up in the USA.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film vividly explores cultural assimilation and hybridity as Ganga and other characters adapt to life in the United States. The contrast between Indian traditions and American customs is depicted through various cultural markers such as language, clothing, and social norms. The scenes involving parties wherein her fiancé dances carelessly with other women much to the dismay of Ganga is just one example. *Pardes* portrays the blending of Indian and American influences, illustrating the emergence of hybrid identities among diasporic individuals. The fact that Rajeev's father wants an Indian girl for his son in marriage reinstates this phenomenon.

3. Nostalgia and Homecoming : Nostalgia and homecoming are central themes in *Pardes*, particularly as Ganga grapples with homesickness and yearning for her native land. The film emphasizes the emotional toll of diasporic experiences and the longing for familial connections and cultural roots. Ganga's eventual return to India underscores the significance of homecoming and the reaffirmation of her cultural identity.

4. Intergenerational Relations : Intergenerational dynamics play a crucial role in "Pardes" through Ganga's interactions with her family members in India and the United States. The generational divide is portrayed through differing attitudes towards tradition and modernity, reflecting broader shifts within diasporic families. The film highlights the complexities of maintaining familial bonds across geographical distances and cultural divides. The dialogue spoken by Arjun during the climax "*Agar Ganga kihifazatkarnapyaarhai, tohhai*", tries to rub the conventional mindset off the older generation.

5. Social Ties and Connections : Social ties and connections are depicted through Ganga's relationships with fellow Indians and Americans in the United States. The film underscores the importance of community and support networks in diasporic contexts, illustrating how individuals form social connections to navigate unfamiliar environments and preserve cultural ties. This is particularly evident how Arjun and his group of friends are shown, in contrast to Rajeev and his friends.

***Kal Ho Naa Ho* (2003)**

1. Identity Negotiation : *Kal Ho Naa Ho* prominently addresses identity negotiation through the character of Naina, played by PreityZinta, who struggles with personal insecurities and family responsibilities. Naina's journey involves grappling with her Indian heritage in a multicultural American society, which owns a restaurant struggling to find customers. The film sensitively portrays Naina's quest to reconcile her cultural identity with the challenges of modern life, highlighting the complexities of identity formation in a diasporic setting.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The fusion of Indian values with Western influences is depicted through various cultural markers, including food, music, and interpersonal dynamics. *KalHoNaaHo* showcases the evolution of hybrid identities among diasporic individuals, reflecting the diverse tapestry of multiculturalism in America.

3. Nostalgia and Homecoming : Nostalgia and homecoming are central themes in *Kal Ho Naa Ho*, particularly as Naina confronts emotional turmoil and unresolved family issues. However, India and belonging for the homeland are not seen here. The family and belonging are explored, in a way of being together, wherein the family is going through a difficult time at multiple levels.

4. Intergenerational Relations : Intergenerational dynamics play a significant role in *Kal Ho Naa Ho* through Naina's relationships with her mother, grandmother, and extended family. The generational divide is portrayed through differing perspectives on tradition and modernity, highlighting the tensions within diasporic families. The film underscores the importance of communication and understanding across generations in navigating cultural complexities.

5. Social Ties and Connections : Social ties and connections are depicted through Naina's friendships and romantic relationships in the diasporic community. The film emphasizes the role of social networks in providing support, companionship, and a sense of belonging amidst cultural diversity. The character of Rohit (played by Saif Ali Khan) has been effectively written to portray this nuance in the narrative.

***Namaste London* (2007)**

1. Identity Negotiation : *Namaste London* prominently addresses identity negotiation through the character of Jasmeet (Jazz), played by Katrina Kaif, who is born and raised in London but grapples with her Indian heritage. Jazz's struggle to reconcile her Western lifestyle with her traditional Indian roots forms a central conflict in the film, especially when she is married in India and decides to nullify it upon returning to London. The narrative sensitively portrays Jazz's journey of self-discovery and her quest to assert her identity amidst cultural expectations and societal pressures.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film vividly explores cultural assimilation and hybridity through Jazz's interactions with her family and the broader Indian community in London. The clash of cultures is depicted through various cultural markers, including language, customs, and familial traditions. *Namaste London* showcases the complexities of balancing Indian values with Western influences, illustrating the emergence of hybrid identities among diasporic individuals.

3. Nostalgia and Homecoming : Nostalgia and homecoming are significant themes in "Namaste London," particularly as Jazz confronts her conflicted feelings about her Indian heritage. The film captures Jazz's yearning for familial connections and cultural roots, highlighting the emotional complexities of diasporic experiences, more so during her interactions with Arjun (played by Akshay Kumar) after their marriage. Jazz's eventual return to India serves as a transformative homecoming, symbolizing her journey towards self-acceptance and cultural pride.

4. Intergenerational Relations : Intergenerational dynamics play a crucial role in *Namaste London* through Jazz's relationships with her parents, especially her father (played by Rishi Kapoor) who holds traditional values. The generational divide is portrayed through differing attitudes towards marriage, career, and cultural identity, reflecting broader tensions within diasporic families. The film underscores the importance of mutual understanding and acceptance across generations.

5. Social Ties and Connections : Social ties and connections are depicted through Jazz's friendships and romantic relationships within the English community. The diasporic community is seen to be coming together during a rugby match in the film. *Namaste London*celebrates the bonds forged through shared experiences, illustrating the resilience and interconnectedness of diasporic individuals in a multicultural society.

***Patiala House* (2011)**

1. Identity Negotiation : *Patiala House* addresses identity negotiation through the character of Parghat Singh Kahlon (Gattu), played by Akshay Kumar, who struggles with pursuing his passion for cricket while navigating his family's traditional values. Gattu's conflict between honoring his Punjabi heritage and pursuing his dreams reflects the challenges of negotiating one's identity within a diasporic community. The film portrays Gattu's journey towards self-acceptance and asserting his individuality

amidst familial expectations, especially when he decides to play for English cricket team and not Indian.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The film vividly explores cultural assimilation and hybridity through Gattu's interactions with his family and the broader Punjabi community in London. The clash between traditional Punjabi customs and modern British lifestyle is depicted through various cultural markers, including language, attire, and social norms. *Patiala House* portrays the complexities of blending Indian values with Western influences, illustrating the emergence of hybrid identities among diasporic individuals.

3. Nostalgia and Homecoming : Nostalgia and homecoming are significant themes in *Patiala House*, particularly as Gattu grapples with honoring his father's wishes and his own aspirations. The film captures Gattu's yearning for acceptance and validation from his family, highlighting the emotional complexities of diasporic experiences. Gattu's journey towards reconciliation with his roots symbolizes a transformative homecoming, emphasizing the importance of embracing one's cultural heritage.

4. Intergenerational Relations : Intergenerational dynamics play a crucial role in *Patiala House* through Gattu's relationship with his strict father, played by Rishi Kapoor. The generational conflict is portrayed through differing attitudes towards tradition, career choices, and personal identity. The film underscores the challenges of bridging the gap between generations within diasporic families, emphasizing the importance of mutual respect and understanding.

5. Social Ties and Connections : Social ties and connections are depicted through Gattu's interactions with his extended family and the local Punjabi community in Southall. The film celebrates the role of social networks in providing support, camaraderie, and a sense of belonging amidst cultural diversity. *Patiala House* highlights the resilience and solidarity of diasporic individuals, showcasing the strength of community bonds in navigating the challenges of adaptation and cultural preservation.

***London Paris New York* (2013)**

1. Identity Negotiation : The film delves into identity negotiation through the characters of Nikhil and Lalitha, who come from Indian backgrounds but have grown up or spent significant time in Western cities. Throughout the film, they grapple with questions of personal identity, balancing their Indian heritage with the influence of Western culture. The characters navigate between different aspects of their identities, showcasing the complexities of identity negotiation in a diasporic setting.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : *London Paris New York* explores cultural assimilation and hybridity as Nikhil and Lalitha experience life in three distinctly different Western cities. Each city represents unique cultural landscapes, and the characters adapt differently to their surroundings while retaining elements of their Indian upbringing. The film depicts the blending of cultural influences, reflecting the emergence of hybrid identities among diasporic individuals.

3. Nostalgia and Homecoming : While the film focuses more on the present and future, there are moments that evoke nostalgia and a sense of longing for home. The characters reflect on their pasts and their connections to India, highlighting the emotional tug-of-war experienced by many diasporic individuals. The exploration of different cities can also be seen as a metaphorical search for a sense of belonging and homecoming.

4. Intergenerational Relations : Although not a central theme, *London Paris New York* hints at intergenerational dynamics through subtle references to family backgrounds and values. The characters' experiences and choices are influenced by their upbringing and family expectations, underscoring the generational differences within diasporic families.

5. Social Ties and Connections : The film portrays social ties and connections within the diasporic community through the interactions of Nikhil and Lalitha with other characters they encounter during their travels. These connections provide a sense of familiarity and belonging in unfamiliar territories, highlighting the importance of social networks in diasporic experiences.

***Mrs. Chatterjee vs Norway* (2023)**

1. Identity Negotiation : Debika (played by Rani Mukherji) brings up her kids in the regular Indian way, which is challenged in the story by the Norwegian government under the pretext of a racket being run illegally. Her Indian identity is questioned as a result of which her kids are taken away from her, as the central theme of the film. The narrative focusses on how Debika struggles to get the custody of her kids back resorting to ways that at times are unfair in the eyes of the law.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : The portrayal of the lawyer (played by Jim Sarbh) shown to be a rationale balances the dynamics of being in Norway and also understanding Debika's points of view. However, as an important plot point of the film, it is also shown evidently how Indians are viewed by the people of a particular country, and judged time and again for something that is routine is someone else' culture. The portrayal of cultural notions are brought forth in how Debika raises her kids up, showing the cultural symbols or acts that Indian culture is known for.

3. Nostalgia and Homecoming : There are multiple scenes in the film wherein Debika is shown to yearning to go back to India, where she thinks she wouldn't have to face such problems. However, in a contrasting scenario, her troubles don't seem to end even when she comes back to India, because her kids are still snatched from her, citing that the legal battle belongs to Norway. On the other hand, Debika's husband Aniruddha (played by Anirban Bhattacharya) is presented as a person who wants to belong to Norway leaving his Indian identity behind and is also ready to give up on his kids just so that he gets to stay in Norway, eventually becoming its citizen.

4. Intergenerational Relations : The facet isn't explored as a central theme of the film, as the film primarily talks about a mother getting bereaved of her kids, maintaining a stance of a mother's grief. There are parents of Debika and Aniruddha but it is not something that is much explored in the narrative.

5. ocial Ties and Connections : A woman is all by herself in a foreign land, especially when she has dedicated herself to raising the kids, is what comes forth in the film. Debika hardly gets any help in getting her kids back, as a result of which she has to fight a long legal battle with the Norwegian government. On the other hand, Aniruddha wants to maintain his social ties so as to not get his citizenship opportunity jeopardized.

***Dunki* (2023)**

1. Identity Negotiation : Dunki explores the hardships Indians have to face when they travel abroad in the hope of getting glamorous employment opportunities, and in many cases end up struggling all their lives. Through the case of Manu (Taapsee Pannu), Buggu (Vikram Kochchar), and Balli (Anil Grover), the film brings forth the painful and traumatic situations one has to face while travelling to a foreign land illegally. The identity of characters is explored primarily through the fact of how they badly want to come back to India- their homeland but are not able to.

2. Cultural Assimilation and Hybridity : Through various scenes in the film, the makers highlights the plight of all those who have taken the 'donkey route' to reach to a foreign land. The house shown where many people have gathered in a congested space tells that the mindset is common among all. The challenges faced by the characters are many at various levels right from the time they travel to a foreign land battling guns and bullets, to how they are striving to earn their daily bread portray a world that is horrific.

3. Nostalgia and Homecoming : Right from the first scene, the film speaks of how one is desperately wanting to come home. It's been many years for the three characters in a foreign land but they have lost their identities, their loved ones, and it's all money that has mattered to them. The song '*NikleTheKabhi Hum Ghar Se'* explores very strongly the idea of remembering one's homeland.

4. Intergenerational Relations : The characters themselves have gotten old in the narrative, leading a life that they didn't want to. What they dreamt of- and what they have become is exactly in contrast. However, nothing particular has been said or shown about intergenerational relations in the way of how they interact with each other. It must be noted that parents whose kids have gone abroad

leaving them behind are all shown to be frail and pining for their loved ones to just come back and not crave for money any longer.

5. Social Ties and Connections : The condition of all refugees is the same and they all get together to aid each other in tough times is a notion portrayed throughout the film. The diasporic community has formed an inseparable bond, shown to be inevitable in terms of the portrayal of the tricky challenging situations. At a time when Mannu is struggling to come back, all she is reminded of is Hardy (Shahrukh Khan) back in India banking upon him for their homecoming.

Data Findings : The industry experts were interviewed using a self-structured interview schedule. The questions in the interview were:

Q.1: From your perspective as an expert, how have you observed the depiction of diasporic family identities in Bollywood evolve over the years, particularly in terms of thematic representation and narrative treatment?

Q.2: Can you share, in your opinion, insights into the creative decisions and directorial intentions behind portraying diasporic themes in Bollywood films? How do societal influences and audience preferences shape the storytelling approaches when representing diasporic experiences on screen?

Q.3: In your experience, what are some key challenges or considerations faced by filmmakers when authentically depicting diasporic family identities in Bollywood? How do filmmakers navigate the balance between cultural authenticity and cinematic storytelling in this context?

The comments from the interview are :

1. Komal Nahta, Film Critic and Film Trade Analyst, Mumbai : Films are a reflection of society so as society changes, representation of diasporic families also changes. I think over the years it has changed in the sense that families are more modern today, children are more outgoing. Diasporic families were always a little more modern in their outlook than families settled in India. More so now. I don't think cultural authenticity is more important than commercial consideration in films. It's all very nice to say that there is cultural authenticity or they are trying to represent the families as authentically as possible, what every filmmaker is trying to do is male a hit film, and in doing that if he has to compromise on cultural authenticity or reality, I don't think anybody will shy away because finally it's a commercial enterprise, so everything is governed by what will appeal to the public rather than what is reality. I think that goes for not just representation of diasporic families but representation of everything in cinema. You may say that I have made a very authentic film but finally the bottomline is that you've made a commercial film and you'll add in ingredients that will bring value for money for the audience, which will make the audiences rush to the cinemas and provide them entertainment.

2. Dr. Vikas Rajpopat, Assistant Professor (Film Studies), Central University of Chhattisgarh : In the initial stages, it was depicted like families who have moved from India are living in memories of the nation they belonged to. They were depicted as if they were not happy, not having a life there, and India should be where they should actually be. They were portrayed like they were missing out on something very crucial; the thought of brain drain of why they left their country of origin. But now after 2000, diasporic families have been shown to be living their life well, having connections, and having a good resourceful life. I believe this is the evolution in terms of representation, and it should happen more though many times depicting diasporic families, we impose patriotism and thoughts of 'should' and 'should not', but that shouldn't be the case.

Talking of directorial intentions, it is a great phenomenon. Many people belonging to India are actually settled abroad. We say that art is the mirror of society, so it gets represented that way. Creatively, a new perspective comes to place while depicting diasporic families. Indian families would have similar types of demeanour, but in diasporic families, there is a whole new angle to it bringing in newness as well. Audience per se, I believe that those in India have relatives settled abroad, would find more connect emotionally. If we talk about only diasporic audience, they may also see themselves getting represented in a particular way, leading to some sort of connect.

I think only 2 out of 10 makers would actually go authentic. All others crave drama, emotional or mental stimulation. Had makers actually looked for authentic representation, I believe the way diasporic families were presented before the 2000s was not appropriate at all. To show them as if they are in a prison isn't right. They are out of India. Simple. Not in jail. It has been their choice. So the makers have missed out on authenticity to a great deal. Now after 2000s, if we talk of some realism in cinema, it is now that things are changing. The culture would be different ofcourse. It is also a study of the generational gap.

I don't think makers actually feel the need to balance authenticity and cinematic storytelling. They are more concerned about appeal. For instance 'The Namesake'. If we talk about the storytelling, the family portrayed a gap between generations and Indian identities. However, I don't see a conscious effort in balancing the two.

Interpretations and Conclusions

1. Evolution of Representation : Over the decades, the representation of diasporic families in Bollywood has evolved significantly. Initially, in films from the pre-2000s era, diasporic families were often depicted as longing for their homeland, feeling disconnected, and living in memories of India. This portrayal often emphasized the idea of brain drain and a sense of loss associated with migration. However, post-2000s, there has been a shift in representation. Diasporic families are now portrayed as leading fulfilled lives abroad, embracing their new surroundings, and maintaining strong connections with both their cultural roots and adopted countries. This evolution reflects a more nuanced and positive depiction of diasporic experiences, highlighting the resilience and adaptability of migrant families.

2. Cultural Authenticity vs. Commercial Considerations : KomalNahta emphasizes the commercial nature of filmmaking, where cultural authenticity often takes a back seat to commercial viability. Filmmakers prioritize creating hit films that appeal to a wide audience, and this sometimes leads to compromises in depicting cultural authenticity or realism. Commercial success often dictates the narrative choices in representing diasporic families and other aspects of cinema.

3. Directorial Intentions and Audience Connection : Dr.Vikas Rajpopat discusses the importance of directorial intentions in depicting diasporic families. He highlights how filmmakers, especially those with personal diasporic experiences, bring a unique perspective and authenticity to their storytelling. Diasporic audiences, as well as Indian audiences with relatives abroad, often find emotional connections and relatability in these narratives.

4. Balancing Authenticity and Cinematic Storytelling : There is a debate regarding the balance between authenticity and cinematic storytelling in representing diasporic families. Dr.VikasRajpopat suggests that while some filmmakers strive for authenticity, many prioritize drama and emotional stimulation to enhance audience appeal. The challenge lies in striking a balance between authenticity and cinematic entertainment without falling into stereotypes or misrepresentations.

5. Generational Dynamics and Realism : The representation of diasporic families also serves as a study of generational dynamics. Films post-2000s depict a more realistic and varied portrayal of diasporic experiences, showcasing the cultural differences and adaptations across generations. This exploration adds depth to the narratives and reflects the evolving cultural landscape of diasporic communities.

It is therefore clear that Indian diasporic family identity drew out by Bollywood cinema goes through drastic changes in representation over time. If earlier film narratives could be characterized by either a certain yearning to return to the homeland, or a more rebellious wish not to go back there ever, contemporary films of the diaspora paint a more optimistic picture of this concept. This brings us to tensions between the different aspirations of the representation: the search for the real, on the one hand, and the demands of popular entertainment and cinema norms, on the other hand, which illustrates the multiplicity of issues surrounding diasporic families in Hindi Cinema. Based on the recent investigations of the diaspora stories, there is an urgent task of providing not only the representation that might be appealing but that will also reflect the challenges of the cultural adjustments and identity processes.

References

1. Bharucha, R. (1993), The Question of Faith : An Indian Diaspora Perspective, Orient Blackswan.

2. Brown, T. (2011), Using Film in Teaching and Learning about Changing Societies, *International Journal of Lifelong Education*, *30*(2), 233-247.

3. Bruneau, M. (2010), Diasporas, Transnational Spaces and Communities, *Diaspora and Transnationalism : Concepts, Theories and Methods*, *3*(1), 35-50.

4. Chand, M. (2012), Diasporas, Migration, and Trade : The Indian Diaspora in North America, *Journal of Enterprising Communities : People and Places in the Global Economy*, *6*(4), 383-396.

5. Cheng, L., & Katz, M. (2005), Migration and the Diaspora Communities, In *Culture and Society in the Asia-Pacific* (pp. 65-87). Routledge.

6. Hollinshead, K. (1998), Tourism, Hybridity, and Ambiguity : The Relevance of Bhabha's 'Third Space'Cultures, *Journal of Leisure Research*, *30*(1), 121-156.

7. Mehta, R. B., & Pandharipande, R. V. (Eds.). (2010), *Bollywood and Globalization : Indian Popular Cinema, Nation, and Diaspora*, Anthem Press.

8. Mishra, V. (2007), The Literature of the Indian Diaspora : Theorizing the Diasporic Imaginary, Routledge.

9. Raghuram, P., Sahoo, A. K., Maharaj, B., & Sangha, D. (2008), Tracing an Indian Diaspora : Contexts, Memories, Representations, SAGE India

10. Ramasubramanian, S. (2005), A Content Analysis of the Portrayal of India in Films Produced in the West, *The Howard Journal of Communications*, *16*(4), 243-265.

11. Varadarajan, L. (2010), *The Domestic Abroad : Diasporas in International Relations*, Oxford University Press.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 190-195

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Impact of Verbal and Emotional Intelligence on Academic Success Among Adolescents

*Dr. Rakesh Kumar Dangi** *Smt. Manisha Thakur***

Abstract : *This research examines the influence of verbal and emotional intelligence on academic success among adolescents. The study used a sample of 200 students from different government schools in Chhattisgarh, divided equally between boys and girls. Emotional intelligence was measured using the "Emotional Intelligence Scale" developed by Hyde, Pethe, and Dhar, while verbal intelligence was assessed through a Verbal Intelligence Test Developed by Dr. R.K. Ojhaand Dr. K. Ray Choudhury. Results revealed a significant positive correlation between both verbal and emotional intelligence with academic success, suggesting that students with higher intelligence in these areas tend to perform better academically.*

Keywords-*Verbal Intelligence, Emotional, Intelligence, Academic success, Adolescents*

Introduction-Adolescence is a critical period marked by rapid cognitive, emotional, and social development. Emotional intelligence (EI) and verbal intelligence (VI) play a significant role in shaping an adolescent's academic journey. Verbal intelligence refers to the ability to reason using language, while emotional intelligence is the capacity to manage one's emotions and understand the emotions of others (Goleman, 1995).

Previous research has highlighted the crucial role of both verbal and emotional intelligence in academic achievement. This study aims to analyze the impact of these intelligences on the academic performance of adolescents, as understanding the relationship can provide newavenues for educational strategies.

Concepts and Literature Review-

Emotional Intelligence- Emotional intelligence involves a person's ability to perceive, evaluate, and regulate emotions both in themselves and in others (Salovey & Mayer,1990).

Goleman (1998) expanded on this concept, linking high emotional intelligence with success in various aspects of life, including academic achievement. Studies suggest that students with higher emotional intelligence can better manage stress, stay motivated, and maintain positive relationships, all of which contribute to better academic outcomes (Brackett et al., 2011).

Verbal Intelligence-Verbal intelligence refers to the ability to understand and use language to analyze information. This form of intelligence is closely linked with literacy, comprehension, and critical thinking skills, all of which are essential for academic success, particularly in language-intensive subjects (Naglieri & Kaufman, 2001). Strong verbal intelligence enhances reading comprehension, essay writing, and understanding of complex concepts, which correlates with better academic outcomes.

Methodology-

Research Design-This study used a quantitative research design, collecting data from 200

* *Administrative Officer, Advance Technical & Industrial Training Centre, Indore, Madhya Pradesh)*

** *Young Professional, Model Career Centre, Janjgir, Champa (Chhattisgarh)*

participants (100 boys and 100 girls) in the 10th grade from government schools in Janjgir Champa, Chhattisgarh. The sample was randomly selected, ensuring a diverse demographic in terms of socio-economic backgrounds.

Instruments

• **Emotional Intelligence Scale :** Developed by Anokool Hyde, Sanjyot Pethe, and Upinder Dhar, this scale measures ten dimensions of emotional intelligence, including self- awareness, empathy, and emotional stability.

• **Verbal Intelligence Test :** This test, developed by Dr. R.K. Ojha and Dr. K. RayChoudhury, measures the abilityto analyze information and solve problems using language- based reasoning.

• **Procedure :** The data collection involved administering both tests to students during school hours. The emotional intelligence scores were recorded and compared with their academic records (9th-grade and 10th-grade scores) obtained from school records.

Results

1. Impact of Verbal Intelligence on Academic Success

Verbal Intelligence	N	Mean	SD	t-value
High	30	90.8067	4.7721	20.0182**
Low	30	61.138	6.5669	

Note:@indicatethatNosignificance,*indicatethatsignificantat<0.05,**indicate that significant at < 0.0001

Thetwo-tailed P valueisless than 0.0001

Table-1: showing the Mean, SD and t-values of academic score with reference to high and low verbal intelligence.

The analysis revealed that students with high verbal intelligence scored significantly higher in academics. The mean score for students with high verbal intelligence was 90.81, while thosewith low verbal intelligence scored 61.14, showing a statistically significant difference (p <0.0001).

Graph : Verbal Intelligence and Academic Performance

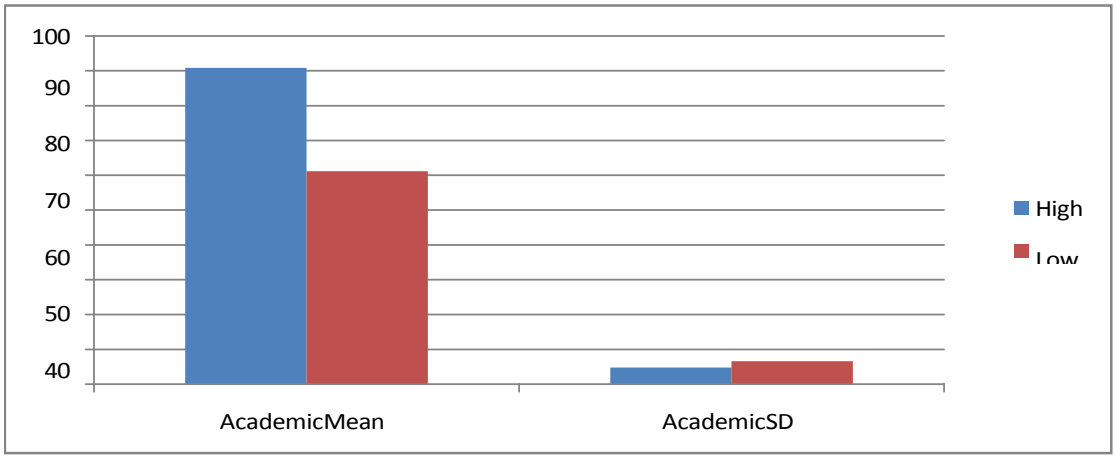

Graphical representation of academic performance of students when the verbal intelligence is high and low.

2. Impact of Emotional Intelligence on Academic Success

Emotional Intelligence	N	Mean	SD	t-value
High	30	89.9147	4.5824	20.8915**
Low	30	48.7683	9.766	
Note:@indicatethatNosignificance,*indicatethatsignificantat<0.05,**indicate that significant at < 0.0001 Thetwo-tailed P valueisless than 0.0001				

Table - 2 : showing the Mean, SD and t-values of academic scores of students with reference to high and low emotional intelligence.

Similarly, students with high emotional intelligence exhibited significantly better academic performance. The mean academic score for students with high emotional intelligence was 89.91, compared to 48.77 for those with low emotional intelligence ($p < 0.0001$).

Graph : Emotional Intelligence and Academic Performance

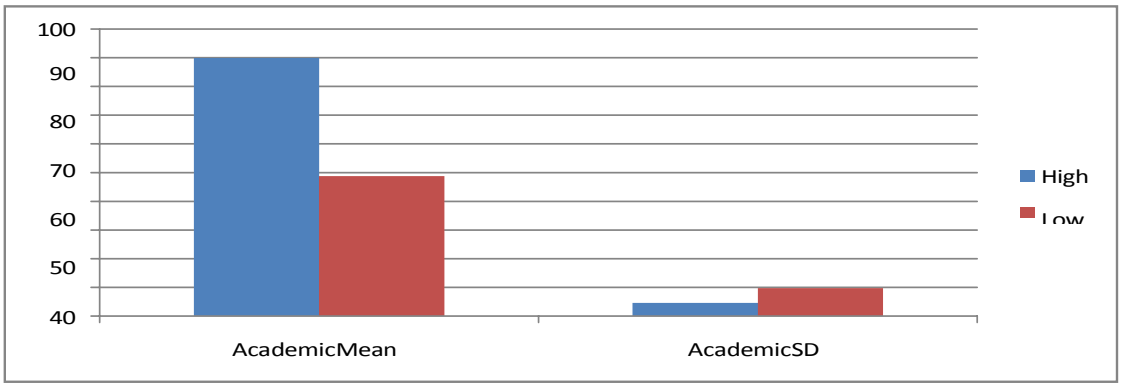

3. Correlation between Verbal and Emotional Intelligence

Intelligence Scale	N	Mean	R Score
Verbal Intelligence	60	73.317	0.9243*
Emotional Intelligence	60	68.4	
Note:@indicatethat Nosignificance,*indicate that significantat<0.05,**indicate that significant at < 0.01			

Table-3 : Showing the Mean and correlation among Verbal Intelligence and Emotional Intelligence among students

The correlation between verbal and emotional intelligence was found to be significantly positive ($r = 0.92$), indicating that students with higher verbal intelligence also tend to have higher emotional intelligence.

The P-Valueis<.00001. The result is significantat p<.05. The value of R is 0.9243.

Thisis strong positive correlation, which means that high X variable scores go with high Y variable

scores (and vice versa).

Hence mentioned positive hypothesis H_3 is Accepted

Graph : Correlation between Verbal and Emotional Intelligence

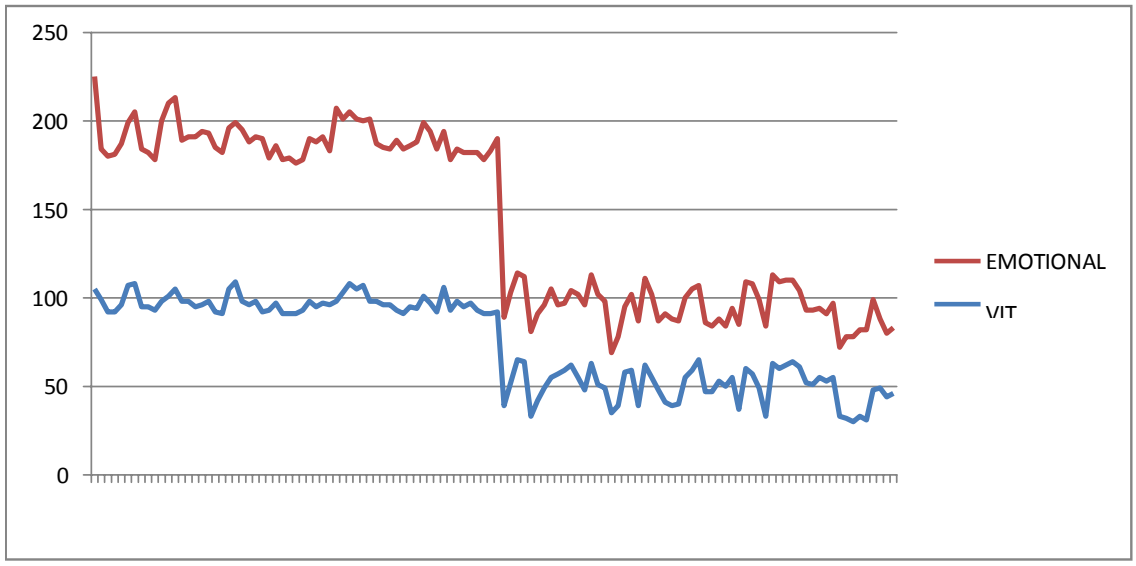

Graphical representation of correlation between verbal intelligence and emotional intelligence among students.

Discussion-The findings of this study suggest a strong link between verbal intelligence, emotional intelligence, and academic success. Adolescents who score high in verbal intelligent end to have better comprehension, critical thinking skills, and academic performance across subjects. Similarly, emotional intelligence enhances students' ability to manage stress, maintain motivation, and build positive relationships, contributing to academic success.

The significant correlation between verbal and emotional intelligence implies that these two forms of intelligence complement each other, both contributing to a student's overall academic performance.

Conclusion- This research highlights the importance of verbal and emotional intelligence in shaping the academic success of adolescents. Schools and educators should focus on nurturing these intelligences through targeted interventions, such as emotional learning programs and language development exercises. By fostering both verbal and emotional intelligence, educators can help students achieve higher academic success and improve their overall well-being.

References

1. Karim, J., & Weisz, R. (2011), The Role of Emotional Intelligence and Emotional Labour in Predicting Work-Family Conflict, Psychological Distress and Life Satisfaction. The paper was presented at the International Journal of Arts & Sciences (IJAS) Conference for Academic Disciplines, University of Washington Rome Centre, Rome, Italy, 22-25, 2010.

2. Deniz, M., Avsarolu, S., Deniz, M. E., & Bek, H. (2010), Emotional Intelligence and Life Satisfaction of Teachers Working at Private Special Education Institutions, Procedia-Social and Behavioural Sciences, 2 (2), 2300-2304.

3. Boris Nikolaev & Jennifer Juergensen McGee (2016), Relative Verbal Intelligence and Happiness.

4. Deepali and Seema Dubey (2020), A Study on Level of Verbal Intelligence Among Students of Government Upper Primary School.

5. Ismail Erten Hakki (2009), Gender Differences in Academic Achievement Among Turkish prospective Teachers of English as a Foreign Language, European Journal of Teacher Education 32:75-91. DOI:10.1080/02619760802586113

6. Chowdhury, Aparajita; Kumari Anita (2007), Parental Support in Children's Need Satisfaction and Academic Achievement; Indian Educational Abstract and Review : Vol. 31. (p. 15-17)

7. Allen, J., & Cohen, J. (2006), Emotional Intelligence in Classrooms and in Schools : What we see in the Educational Setting, In K. R. Murphy (Eds.), A Critique of Emotional Intelligence : What are the Problems and How Can They be Fixed? (pp. 125-140).

8. Anukool Hyde, Sanjay Pethe and Upinder Dhar, Emotional Intelligence of adolescent students, National Psychological Corporation, Kacheri Ghat, Agra.

9. Bastian, V. A., Burns, N. R., & Nettlebeck, T. (2005), Emotional Intelligence Predicts Life Skills, but not as well as Personality and Cognitive Abilities, Personality and Individual Differences, 39, 1135-1145.

10. Bloom, B. S. (1956), Taxonomy of Educational Objectives : The Classification of Educational Goals, Handbook 1, Cognitive Domain. New York : D McKay.

11. Brackett, M. A., Mayer, J. D., & Warner, R.M. (2004), Emotional Intelligence and the Prediction of Behaviour, Personality and Individual Differences, 36, 1387–1402.

12. Carmeli, A., Yitzhak-Halevy, M., & Weisberg, J. (2009), The relationship between emotional intelligence and psychological wellbeing. Journal of Managerial Psychology, 24, 1, 66-78. DOI: 10.1108/02683940910922546

13. Carr (2009), Emotional intelligence in medical students : does it correlate with selection measures? PubMed.gov, US National Library of Medicine National Institute of Health. 43(11):1069-77. doi: 10.1111/j.1365-2923.2009.03496.x.

14. Ciarrochi, J. P. Forgas, & J. D. Mayer (Eds.), Emotionalintelligencein everyday life : A scientific inquiry, (pp.133-149). Philadelphia, PA: Psychology Press.

15. Cooper, R., & Sawaf, A. (1998), Executive EQ : Emotional intelligence in business, London: Orlon.

16. Drago, A. J. (2004), The relationship between emotional intelligence and academic achievement in non-traditional college students. (Doctoral Dissertation, Walden University, 2001), Dissertation Abstracts International, 65 (9), 4811B.

17. Goleman, D. (1995), Emotional intelligence, Why it matters more than IQ. NewYork, Bantam Books.

18. Greenspan, S. I. (1989), Emotional Intelligence. In K. Field, B.J. Cohler, & G. Wool (Eds.), Learning and Education: Psychoanalytic Perspectives.Madison, CT. International Universities Press.

19. Low, G., Lomax, A., Jackson, M., & Nelson, D. (2004), Emotional intelligence : A new student development model, A paper presented at the 2004 National Conference of American College Personnel Association, Philadelphia, Pennsylvania.

20. Mayer, J. D., Caruso, D. R., & Salovey, P. (1999), Emotional intelligence meets traditional standards for intelligence. Intelligence, 27(4), 267-298. 113 - Mishra, R. and Ranjan P.(2008). Emotional Intelligence as related to Self-esteem of adolescents. Indian Journal of Human Relation, 34, 13-17.

21. Nasir, M., & Masrur, R. (2010), An Exploration of Emotional Intelligence of the Students of IIUI in Relation to Gender, Age and Academic Achievement.Bulletin of Education and Research, 32, (1), 37-51.

22. Nuthana P. G. Yenagi Ganga (2007), Gender Analysis of Academic Achievement among high school students; Department of Human Development Collegeof rural Home Science, Dharwad University of Agricultural Sciences, Dharwad.

23. Pada, M. (2000), Analysis of Relationship between Academic Achievement and School Interventions of Class IX students : Journal of Educational Research and Extension,Vol. 37.No.4.pp.1-8

24. Palmer, B., Donaldson, C., & Stough, C. (2002), Emotional intelligence and life satisfaction. Personality and Individual Differences, 33, 1091–1100.

25. Roy Sharmistha (2008), A Comparative study of factors affecting Academic Achievement of school going adolescent boys and girls. Third International Conference on Interdisciplinary Social Science, Monash University Centre,Prato, Tuscany, Italy 22-25 July.

26. Singh,R.,& Sharma, N.R. (2009), Emotional Intelligence and Neuroticism. Journal of Indian Health Psychology, 4 (1), 107.

27. Sluyter (Eds.), Emotional intelligence (pp. 3-31). New York : Basic Books. Sood, Ramana (1991) A Study on Academic Achievement of pre-engineering Students inrelationtotheir Socio-Economicstatus;Indian Educational Review 26(2): 102-106.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 196-198

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण से उत्पन्न परिस्थिति में ब्रिटिश हस्तक्षेप : मध्य भारत की रियासतों के विशेष संदर्भ में

*डॉ. प्रतिभा दिरवाया**

विश्व के पांच महाद्वीपों में यूरोप सबसे छोटा महाद्वीप है, जिते आधुनिक प्रगतिवादी विश्व कस जाना है, इसकी चौचारिक जड़ें यूरोप में निहित थी। आधुनिक विश्व के इतिहास में सर्वप्रथम यूरोप महाद्वीप का नाम आता है, जहाँ से वे सभी विचारधारायें विकसित हुईं जिससे आधुनिक युग का सूत्रपात हुआ।[1]

''17वीं शताब्दी यूरोपिय इतिहास में अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। पुनर्जागरण तथा भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप यूरोप में आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में निरन्तर प्रतिस्पर्धा और एकाधिकार द्वारा व्यापारिक क्रांति का सूत्रपात एवं विकास हुआ। 18वीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर से ही यूरोपिय साम्राज्यों के मध्य अधिकाधिक धन संचय के प्रयास प्रारम्भ हो गये। इसी के साथ औद्योगिक क्रांति इंग्लैण्ड में अठारहवीं शताब्दी के मध्य (1789 ई.) से प्रारंभ हो गयी, और धीरे–धीरे अन्य यूरोपिय देशों में विकसित होते हुए उन्नीसवीं शताब्दी तक सर्वत्र व्याप्त हो गयी। नये बाजारों, नये उपनिवेशों के खोज की दौड़ शुरू हो गयी। पुर्तगाली डच, अंग्रेज व फ्रांसीसी, स्पेनी जातियों में उपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो गयी। मुगलकाल में विशेष रूप से उत्तर मुगलकाल भारत में यूरोपिय जातियों का आगमन हुआ और आर्थिक व व्यापारिक एकाधिकार के लिए प्रतिस्पर्धा आरंभ हुई। इस कार्य में में अंग्रेजों को सर्वाधिक सफलता मिली। आर्थिक एकाधिकार के उद्देश्य से ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अपनायी गयी नीतियों के परिणामस्वरूप उन्हें राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई।

औद्योगिक क्रांति के क्षेत्र में ब्रिटेन अग्रणी रहा। वस्त्रोद्योग में उसने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। 13वीं शताब्दी में 18 औद्योगिकीकरण उसका प्रथम् उद्देश्य बन गया। मशीनों का अविष्कार और उत्पादन के क्षेत्र में उनका अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। जचे औद्योगिक नगरों व बस्तियों का विकास होने लगा और उत्पादन के लिए कच्चा माल प्राप्त करने के लिए भारत जैसे देशों में उनका राजनीतिक और प्रशासनिक हस्तक्षेप बढ़ने लगा।

ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा प्लासी के युद्ध (1757) से प्रारंभ उनके राजनीतिक उद्देश्य और भारतीय राज्यों के साथ उनके कूटनीतिक संबंध को जो प्रारम्भ हुआ वह उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया 1858 से भारत में एक ब्रिटिश साम्राज्य घोषित करने के रूप इसकी समाप्ति सही जिसकी साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया हुईं।[2]

राजनैतिक सर्वोच्चता की स्थापना के पश्चात् अंग्रेजों ने अपना सम्पूर्ण ध्यान आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति में लगा दिया। डलहौजी की आधुनिकीकरण की नीति को व्यापक और अधिक सक्षम बनाने के प्रयास किये गये। आवागमन एवं संचार के साथनों का आधुनिकीकरण और विस्तार, दूरस्थ क्षेत्रों में सड़कों व रेलों से जोड़ने और संचार की सुविधा के लिए डाक–तार की समुचित व्यवस्था करबना उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तराई की प्रमुख आवश्यकता बन गयी। रेलों तथा सड़कों के निर्माण से ब्रिटिश कंपनी को अत्यधिक लाभ हुआ। कच्चा माल समुद्री बंदरगाहों तक पहुँचाना, जिससे उसे इंग्लैण्ड भेजा जा सके। सड़कों व रेलों द्वारा दूर–दूर के क्षेत्रों में ब्रिटिश उत्पादन भेजना व उनकी खपत द्वारा अधिक से अधिक धन कमाना, यह अंग्रेजों की केवल प्रशासनिक और खेल कुटनीतिकता ही नहीं अपितु उनके दूरदर्शी कुशल और चालाक व्यापारी का अद्भुत सम्मिश्रण था। अंग्रेजों ने अपने आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साम्राज्यवाद का आश्रय लिया और साम्राज्यवाद की पूर्ति के बाद सर्वग्राहीवाद का मार्ग अपनावा।[3]

ब्रिटिश सरकार ने अपने औद्योगिक एवं साम्राज्यवादी हितों को ध्यान में रखकर 1857 की क्रांति के पश्चात् आवागमन एवं संचार के साधनों के विकास को महत्व दिया।[4]

ब्रिटिश सरकार ने 1863 में सार्वजनिक रूप से यह इच्छा व्यक्त की कि सभी देशी रियासतों के शासक अपने–अपने क्षेत्रों में रेल लाइनों के निर्माण के लिए सशर्त भूमि देने संबंधी घोषणा कर दें। ब्रिटिश सरकार द्वारा इस प्रकार की इच्छा व्यक्त करने का तात्पर्य अधिक से अधिक देशी रियासतों के शासकों को रेल लाइनों के निर्माण के लिए तैयार करना था।[5]

रेलवे का विकास 1863 में ब्रिटिश सरकार ने जबलपुर से इलाहबाद के मध्य व 1863 में ही बंगाल, नागपुर रेलवे लाईन के निर्माण के लिए भी निःशुल्क एवं सम्पूर्ण अधिकारों सहित अंग्रेज सरकार को भूमि प्रदान की गयी।[6]

सन् 1864 में ब्रिटिश सरकार ने मध्य भारत के ए.जी.जी. कर्नल सर आर. मीडे को आदेश दिया कि वे सैलाना रियासत के तत्कालिन शासक दुलेसिंह से बड़ौदा–इंदौर रेलवे लाईन के निर्माण हेतु निःशुल्क एवं समस्त अधिकारों सहित भूमि की माँग करें, जिसे दुलेसिंह ने स्वीकार कर लिया।[7]

1864 में ही उक्त रेलवे लाईन की योजना को पूर्ण करने के लिए रतलाम के तत्कालीक शासक रणजीत सिंह से निःशुल्क एवं समस्त अधिकारों सहित भूमि प्राप्त करने में सफल रहे।[8]

1864 में ब्रिटिश सरकार ने खण्डवा से इंदौर के मध्य रेलवे लाईन की आवश्यकता पर बल देते हुए इंदौर के शासक तुकोजीरॉव होलकर से 20 अप्रैल, 1869 में एक समझौता किया इस अवसर पर तुकोजीरॉव होल्कर ने न सिर्फ रेल लाईन के निर्माण के लिए निःशुल्क भूमि प्रदान करना स्वीकार किया वरन् ब्रिटिश सरकार को उसके निर्माण के लिए 1 करोड़ रु. का ऋण भी देने की पेशकश की। शर्त यह भी थी कि इस रेलवे लाइन का नाम 'होल्कर स्टेट रेलवे लाइन' होगा। साथ ही होल्कर ने रेल लाईन पर परिवहन एवं कस्टम कर वसूलने का अधिकार भी अपने पास रखा। जब रेल लाइन का निर्माण कार्य सम्पन्न हो गया और वह यातायात के लिए खोल दी गयी तब–होल्कर ने परिवहन कर में वृद्धि कर दी। इससे ब्रिटिश सरकार एवं होल्कर के मध्य मतभेद हो गये। 1869 में ब्रिटिश दबाव के चलते होल्कर शासक को झुकना पड़ा और बढ़ाये हुए परिवहन कर को वापिस लेते हुए यह अधिकार ब्रिटिश सरकार एवं संबंधित रेल कम्पनी को सौंपना पड़ा।[9]

1864 में ब्रिटिश सरकार के साथ हुए समझौते के अनुसार सीतामऊ के शासक राजसिंह ने अपने राज्य में रेलवे लाईन निकालने में सहमति व्यक्त की। 1872 में ब्रिटिश सरकार ने मध्य भारत के 'एजेण्ट टू द गवर्नर जनरल' लेफ्टिनेण्ट कर्नल एच. डेली को आगरा एवं ग्वालियर के बीच रेल लाइन के निर्माण कार्य को सम्पन्न करने के लिए ग्वालियर के शासक जीवाजी राव सिंधिया से भूमि ग्रहण का आदेश दिया 19 नवम्बर, 1872 में दोनों के मध्य समझौता हुआ एवं जीवाजी रॉव ने 75 लाख रुपये ऋण के रूप में देने की पेशकश की।[10]

11 जनवरी, 1873 को इंदौर से नीमच के बीच रेल लाइन बिछाने की सहमति भी समस्त शर्तों के साथ निःशुल्क जीवाजी रॉव सिंधिया ने अंग्रेजों को सौंप दी। परिस्थितियों तथा आवश्यकतानुसार 1880 में भोपाल की बेगम शाहजहान ने होशंगाबाद एवं भोपाल के मध्य रेल लाइन बिछाने का प्रस्ताव रखा जिससे भोपाल को खण्डवा–इंदौर रेल लाइन से जोड़ा जा सके, ब्रिटिश सरकार ने बेगम की इस योजना को स्वीकार कर निःशुल्क भूमि अधिग्रहित कर ली। 1884 में ब्रिटिष सरकार ने झाँसी–भोपाल और झाँसी–मानिकपुर के मध्य रेलवे लाइन बिछाने की योजना बनायी। ये दोनों लाइनें ओरछा से होकर निकलती थी। अतः सरकार ने ओरछा के शासक प्रतापसिंह से निःशुल्क एवं सर्वाधिकार प्राप्त भूमि ग्रहित कर ली। इसी प्रकार 1897 में ब्रिटिश सरकार ने झाबुआ के शासक–गोपालसिंह से 1864 में समझौता कर गोधरा–रतलाम–नागदा–उज्जैन रेल लाइन के निर्माण के लिए निःशुल्क एवं सर्वाधिकार –सहित भूमि प्रदान की।[11]

ब्रिटिश सरकार की उक्त रेलवे लाइनों के निर्माण की व्यवस्था एवं उसकी नीति का उद्देश्य साधारणतया देशी राज्यों से उसके लिए सहयोग, समर्थन प्राप्त करना था, क्योंकि इसकी सफलता राज्यों के सहयोग पर निर्भर थी। अंग्रेज सरकार ने रेल परिवहन के समस्त अधिकार अपने पास रखे, उन्होनें अपने साम्राज्यवादी और आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर इस व्यवस्था को व्यावहारिक रूप प्रदान किया न कि भारतीय हितों को ध्यान में रखकर।

सड़क व्यवस्था–सत्रहवी शताब्दी तक सड़कों को औद्योगिक नीति का एक अनिवार्य और अपरिहार्य अंग के रूप में प्रयोग करने की भारतीय शासकों की नीतियाँ स्पष्ट नहीं थी। अठारहवी शताब्दी में भी सड़के व राजपच सुरक्षित नहीं थे, और उन पर आर्थिक गतिविधियाँ भी सुरक्षित नहीं थी। ब्रिटिश प्रशासन को परिवहन के प्रमुख साधन के रूप में सड़कों के समुचित विकास, रख–रखाव, निर्माण और व्यवस्था पर प्रबंधन के लिए समयोचित और आवश्यक उपाय करना अनिवार्य हो गया। यह उनके आर्थिक साम्राज्यवाद की प्रमुख चिंता और उद्देश्य पूर्ति का

मुख्य साधन बन गया। औद्योगिकीकरण के प्रमुख पक्षधर डलहौजी ने इस दिशा में ठोस कदम उठाया। लाई मेरे और लार्ड रिपन के काल में स्थानीय स्वशासन के विकास के साथ–साध यह सुनिश्चित किया कि सड़कों के निर्माण और रख–रखाव का काम स्थानीय प्रशासन करेगा।[12] अपने राज्य व क्षेत्र से गुजरने वाली सड़कों के निर्माण में उन देशी रियासतों ने भी महत्वपूर्ण दायित्वों जैसे–सड़कों का रखरखाव, सुरक्षा व निर्माण में आर्थिक सहभागिता का कार्य किया इनमे मध्य भारत की प्रमुख रियासतों के शासकों में ग्वालियर के शासक रतलाम के शासक, सीतामऊ शासक, होलकर राज्य आदि प्रमुख थे।

इन सड़कों से आने–जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं से परिवहन करने एवं सीमा शुल्क का अधिकार भी अंग्रेजों ने अपने पास सुरक्षित रखा।

डाक, तार एवं दूरसंचार व्यवस्था–डलहौजी द्वारा औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण की दृष्टि से किए जाने वाले कार्यों में सबसे उल्लेखनीय कार्य डाक व दूरसंचार संबंधी व्यवस्था थी। वस्तुतः संचार व्यवस्था के सूत्रपात ने भारत में आधुनिकता का सूत्रपात किया, संचार व्यवस्था ने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन पद्धति को परिवर्तित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 1857 के बाद ब्रिटिश सरकार ने मध्य भारत की समस्त छोटी–बड़ी रियासतों के शासकों को डाक, तार एवं दूरसंचार व्यवस्था को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर तक मध्य भारत की अधिकांश रियासतों के शासको ने ब्रिटिश सरकार के उन प्रस्तावों को स्वीकार कर, संचार नीति में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की।

ब्रिटिश सरकार की उक्त व्यवस्थाओं नीतियों का उद्देश्य साम्राज्यवादी व आर्थिक लाभ कमाना तथा इन मध्य भारत की देशी रियासतों के प्रशासन में अधिकाधिक–प्रभाव बढ़ाकर इनमें हस्तक्षेप करना था। यह इनकी आर्थिक एवं साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति का अभिन्न अंग साबित हुए। इन उक्त व्यवस्थाओं से देशी रियासतों के शासकों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, अपितु अंग्रेज सरकार का प्रभाव व हस्तक्षेप दिन–प्रतिदिन बढ़ता चला गया।

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ. गोहित राजीव कुमार, आधुनिक विश्व का इतिहास, प्रकाशक डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण–2007, पृ. 1, 2
2. मिल, जेम्स, हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इडिंया, पृ. 278–300
3. टप्पर, सी.एल., इण्डियन पॉलिटिकल प्रेक्टिस, भाग–1, पृ. 150, 170
4. टप्पर, सी.एल., इण्डियन पॉलिटिकल प्रेक्टिस, भाग–1, पृ. 150, 170
5. एचिसन, सी.यू., ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज ऐंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स, भाग–4, पृ. 172
6. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया, 1908, पृ. 407
7. फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट : ए प्रोसिडिंग्स, मार्च–1865, पृ. 72, 90
8. मालकम जान, मेमायर्स ऑफ सेण्ट्रल इंडिया, पृ. 178
9. फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेंट : ए प्रोसिडिंग्स, दिसम्बर–1870, पृ. 217, 245
10. सिंह, रघुवीर बैस, मध्य भारत की देशी रियासतों में ब्रिटिश हस्तक्षेप पृ. 173, 174
11. मालकम, सर जॉन, मेमायर्स ऑफ सेन्ट्रल इंडिया, पृ. 299
12. मजूमदार, आर.सी., दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इंडियन पीपुल्स बम्बई, 1970, खण्ड–9, पृ. 859

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 199-205

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गोरखपुर टेराकोटा शिल्प : ऐतिहासिक लोककला व आधुनिक नवाचार का संगम

*कु. अमृता सिंह** *डॉ. सुनीता***

सारांश : *गोरखपुर, उत्तर प्रदेश का एक ऐतिहासिक शहर है, जो न केवल अपने धार्मिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि यहां के अद्‌भुत टेराकोटा शिल्प के लिए भी जाना जाता है। टेराकोटा, यानी मिट्टी से बना शिल्प, भारतीय काव्यात्मकता, सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर को संजोने का एक अद्वितीय माध्यम है। गोरखपुर में यह शिल्प कला स्थानीय जनजीवन, धार्मिक क्रियाओं और वास्तुकला के संगम का प्रतीक है। इस क्षेत्र की लोककला और वास्तुकला में गहरी साझेदारी है, जो टेराकोटा शिल्प के रूप में जीवित है। गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प प्राचीन भारत की महान सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है। यह शिल्प कला काशी, प्रयागराज और अन्य उत्तर भारतीय क्षेत्रों में प्रचलित थी, लेकिन गोरखपुर में इसका विशेष स्थान है। यहाँ के कारीगरों ने टेराकोटा से न केवल मूर्तियों और पूजा के सामान बनाए, बल्कि घरों, मंदिरों और भवनों के सजावट में भी इसका इस्तेमाल किया। टेराकोटा शिल्प में प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल, विभिन्न प्रकार के डिजाइन और धार्मिक प्रतीकों का समावेश इसकी विशेषता है।*

गोरखपुर के टेराकोटा शिल्प में लोककला और वास्तुकला का अनोखा संगम दिखाई देता है। यह शिल्प कला केवल सजावट तक सीमित नहीं है, बल्कि यह धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों का अभिव्यक्तिकरण भी है। मंदिरों और अन्य धार्मिक स्थलों की वास्तुकला में टेराकोटा का इस्तेमाल विशेष रूप से देखा जाता है। गोरखपुर के विभिन्न मंदिरों की दीवारों पर उकेरे गए धार्मिक चित्र, देवी–देवताओं की मूर्तियाँ और पवित्र दृश्य इस बात के गवाह हैं कि यहां के कारीगरों ने अपनी कला को न केवल भवनों की सजावट, बल्कि धार्मिक भावनाओं और आस्थाओं के साथ जोड़ा।

टेरेकोटा कला एक सिरेमिक शिल्प है जो मिट्टी से बने गहनों या बिना रंगे हुए मिट्टी के उत्पादों पर आधारित है। इसे अलंकरण, प्राकृतिक रंगों और नए आकारों के साथ प्रयोग करने की विशेषता है। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के भटहट ब्लॉक के औरंगाबाद गांव को अपने टेरेकोटा उत्पादों के लिए विश्वभर में प्रसिद्धि प्राप्त है। इस क्षेत्र में ''कबिस मिट्टी'' नामक एक प्रकार की मिट्टी पाई जाती है, जो टेरेकोटा उत्पादों के निर्माण में बहुत उपयोगी होती है।

गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प धर्म और संस्कृति का दर्पण है। यहां के कारीगरों ने अपनी कला में हिंदू धर्म की विविधता, विशेषकर देवी–देवताओं के चित्रण को प्रमुखता दी है। मंदिरों के गेट्स, दीवारों और आंगनों में स्थापित की गई टेराकोटा मूर्तियाँ, जैसे भगवान शिव, गणेश, दुर्गा, राम, कृष्ण, आदि, यहाँ के धार्मिक जीवन का अहम हिस्सा हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न पर्वों, त्योहारों और लोक कथाओं का चित्रण भी टेराकोटा शिल्प में मिलता है, जो इस कला के सांस्कृतिक महत्त्व को दर्शाता है।

गोरखपुर के टेराकोटा शिल्प का वास्तुकला में भी गहरा प्रभाव है। यहाँ के कारीगरों ने मंदिरों और अन्य धार्मिक स्थानों के निर्माण में इस कला का इस्तेमाल किया। विशेष रूप से गोरखपुर के प्रसिद्ध ''गोरखनाथ मंदिर'' में टेराकोटा शिल्प की छाप देखी जा सकती है। यहां की दीवारों पर उकेरे गए नक्काशी, चित्र और मूर्तियाँ, स्थापत्य कला के अद्‌भुत उदाहरण हैं। इन शिल्पों में टेराकोटा की रचनात्मकता और बारीकी से किए गए कार्य ने इन भवनों को न केवल धार्मिक महत्व, बल्कि वास्तुकला के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण बना दिया।

* ***शोध छात्रा (ICHR, JRF), मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर***

** ***शोध निर्देशिका, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर***

आज के समय में प्रौद्योगिकी और आधुनिक वास्तुकला ने निर्माण की तकनीकों को बदल दिया है, गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प अब भी जीवित है। यह कला न केवल स्थानीय कला और शिल्पकारों के लिए एक आजीविका का स्रोत है, बल्कि यह पर्यटन उद्योग का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। यहां के शिल्पकार पारंपरिक तकनीकों के माध्यम से टेराकोटा कला का संरक्षण कर रहे हैं, जबकि साथ ही आधुनिक बाजार की मांगों को भी ध्यान में रख रहे हैं।

गोरखपुर का ऐतिहासिक टेराकोटा शिल्प न केवल लोककला और वास्तुकला के मिलन का प्रतीक है, बल्कि यह इस क्षेत्र की धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहर को संजोने का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। इस शिल्प कला ने समय के साथ–साथ अपनी पहचान बनाई है और आज भी यह न केवल शिल्पकला के क्षेत्र में, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में भी अहम स्थान रखता है। गोरखपुर के टेराकोटा शिल्प का महत्व न केवल स्थानीय स्तर पर, बल्कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महसूस किया जाता है।

की–वर्ड–*टेराकोटा, ODOP, GI-TAG, OFPO, पर्यावरण स्थिरता।*

परिचय : भारत में टेराकोटा हस्तशिल्प उद्योग का विकास मौर्य और गुप्त काल के दौरान हुआ, जब सुंदर मिट्टी की मूर्तियाँ और बर्तन बनाए जाते थे। यह कला रूप समय के साथ विकसित हुआ और विभिन्न क्षेत्रों में फैला, जहाँ हर क्षेत्र ने अपनी अनूठी शैली और तकनीक विकसित की। आज टेराकोटा हस्तशिल्प भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है, जो देश की समृद्ध कलात्मक विरासत और कुशल शिल्पकारी को दर्शाता है। हालांकि भारत में चमकदार मिट्टी के बर्तनों (ग्लेज़ पॉटरी) की कला हजारों वर्षों से प्रचलित है, लेकिन बिना चमक वाले मिट्टी के बर्तन (अंग्रेज़ पॉटरी) ही वो हैं जिनके लिए भारत विश्व प्रसिद्ध है। टेराकोटा वस्तुएँ भारतीय घरों में किसी न किसी रूप में आम हैं, और कारीगरों ने इस कला को पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रखा है।

आज भारत टेराकोटा की बेहतरीन वस्तुएँ जैसे मूर्तियां, फूलदान, सजावटी हैंगिंग्स और घंटियां, दीवाली के दीये आदि का निर्यात करता है, जिससे यह कला कारीगरों के लिए एक लाभकारी व्यवसाय बन गई है। हालांकि ऐसा कोई भारतीय गाँव खोजना मुश्किल है जहाँ कुम्हार और अन्य कारीगर न हों, फिर भी कुछ राज्य और शहर अपनी विशिष्ट टेराकोटा शिल्पकला के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

इसमें उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के टेराकोटा हस्तशिल्प का भी एक समृद्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। इस कला को कुशल कारीगरों द्वारा सदियों से प्रचलित रखा गया है और यह क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत में गहराई से जड़ा हुआ है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित गोरखपुर टेराकोटा शिल्पकला का केंद्र रहा है। इस कला में मिट्टी को विभिन्न आकारों में ढालकर पकाया जाता है ताकि मिट्टी के बर्तन और सजावटी वस्तुएँ बनाई जा सकें। गोरखपुर के टेराकोटा हस्तशिल्प अपनी जटिल डिज़ाइनों, अनूठे पैटर्न, और चमकीले रंगों के लिए प्रसिद्ध हैं।

जिला विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्प वस्तुओं के लिए भी जाना जाता है, जो कारीगरों की प्रतिभा और रचनात्मकता को प्रदर्शित करता है। गोरखपुर जिले के टेराकोटा हस्तशिल्प ने क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इस कला रूप ने कई कारीगरों को रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं, जिससे उन्हें सतत आजीविका अर्जित करने में मदद मिली है।

वर्षों में टेराकोटा कला नई तकनीकों और डिज़ाइनों के साथ विकसित हुई है, लेकिन शिल्प का मूल सार बना हुआ है। गोरखपुर टेराकोटा हस्तशिल्प का एक प्रमुख केंद्र बना हुआ है, जहां कुशल कारीगर अपनी उत्कृष्ट कृतियों के माध्यम से समृद्ध विरासत को जीवित रख रहे हैं।

ऑफ फार्म प्रोड्यूसर्स ऑर्गेनाइजेशन (OFPO) उन उत्पादकों की सामूहिक आवश्यकताओं और हितों पर ध्यान केंद्रित करने वाला एक संगठन है, जो कृषि के अलावा अन्य गतिविधियों जैसे कारीगरी, शिल्प और छोटे उद्योगों में लगे हुए हैं। ये संगठन मौजूदा वैश्विक संदर्भ में इन गैर–कृषि उत्पादकों की आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने और समर्थन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वैश्विक आर्थिक चुनौतियों के सामने, आत्मनिर्भरता कई देशों के लिए एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बन गई है। ऑफ–फार्म उत्पादकों को बढ़ावा देकर, व्च्ब्े इस लक्ष्य को प्राप्त करने में योगदान करते हैं। ये संगठन गैर–कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने, आयातित वस्तुओं पर अधिक निर्भरता कम करने और स्थानीय उद्यमिता को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।

गोरखपुर में टेराकोटा उत्पाद का क्षेत्र व उपलब्धियां–गोरखपुर में टेराकोटा शिल्प केवल एक

हस्तकला नहीं, बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर का प्रतीक है। इसकी जड़ें गांवों की उस परंपरा में गहराई से जुड़ी हैं, जहाँ काली, डीह और अखाड़ा को ग्रामदेवता के रूप में पूजा जाता है। इन देवताओं की मुर्तिओं का निर्माण और उन्हें टेराकोटा के माध्यम से जीवंत रूप देना गोरखपुर के लोगों की आस्था और कला कौशल का अद्वितीय उदाहरण है। जब किसी की मनोकामना पूरी होती है या गांव में कोई शुभ अवसर आता है, तो लोग टेराकोटा के हाथी और घोड़े कुम्हारों से बनवाकर ग्राम देवता को अर्पित करते हैं। इन मूर्तियों की पूजा गाँव की समृद्धि और सुरक्षा के प्रतीक के रूप में की जाती है। गोरखपुर में कारीगर मुख्य रूप से भटहट ब्लॉक के औरंगाबाद गांव में फैले हुए हैं। लगभग 200 परिवार इस कार्य में लगे हुए हैं। हालांकि पुरे गोरखपुर क्षेत्र में टेराकोटा शिल्प का निर्माण होता है लेकिन औरंगाबाद गाँव ने इस कला को एक नई दिशा और पहचान दी है। इस गाँव के कुम्हारों ने परंपरागत रूप से टेराकोटा का उपयोग धार्मिक प्रतीकों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे सजावटी और व्यवसायिक रूप से भी विकसित किया। यहाँ के कलाकारों ने टेराकोटा के 400 से अधिक रूपों का विकास किया है, जिसमें पशुओं की मूर्तियाँ, पौराणिक पात्र, देवी–देवता की मूर्तियाँ और जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाने वाली कलाकृतियाँ शामिल हैं। 1966 में, भारत सरकार ने इस कला को सम्मानित करते हुए ''महावतदार घोड़े की मूर्ति'' पर 20 पैसे का डाक टिकट जारी किया, जिसने गोरखपुर की टेराकोटा कला को राष्ट्रीय पहचान दिलाई।

टेराकोटा शिल्पकार मुख्य रूप से भटहट के औरंगाबाद, भरवलिया, लंगड़ी गुलरिया, बूढ़ाडीह, अमावा, एकला आदि गांवों और गोरखपुर के चरगावां ब्लॉक के पादरी बाजार, बेलवा रायपुर, जंगल एकला नंबर 1, जंगल एकला नंबर 2 में फैले हुए हैं। टेराकोटा उत्पादों में प्रयुक्त मिट्टी 'कबिस' मिट्टी है जो औरंगाबाद, भरवालिया और बूढ़ाडीह क्षेत्रों के तालाबों में पाई जाती है। इसके अलावा, ऐसी मिट्टी केवल मई और जून के महीनों में ही पाई जाती है। बाकी साल तालाब पानी से भरे रहते हैं। टेराकोटा के कारीगर किसी भी रंग का इस्तेमाल नहीं करते हैं। वे सिर्फ़ मिट्टी के ढांचे को सोडा और आम के पेड़ की छाल के मिश्रण में डुबोते हैं और उसे पकाते हैं। टेराकोटा का लाल रंग सालों तक फीका नहीं पड़ता।

ODOP योज़ना–जिले में खास पारंपरिक उत्पाद को उस जिले का ओडीओपी उत्पाद घोषित किया गया। गोरखपुर में टेराकोटा से बन मिट्टी के उत्पादों को भी ओडीओपी में शामिल किया गया। गोरखपुर जिले के औरंगाबाद और आसपास के गिनती के गांवों तक सिमटा रहा टेराकोटा (Gorakhpur Terracotta) का माटी शिल्प योगी आदित्यनाथ सरकार (Yogi Government) की पहल से वैश्विक स्तर पर पहुंच चुका है। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा जिलों के पारंपरिक शिल्प व हुनर को उद्यम का रूप देने के लिए शुरू एक जिला, एक उत्पाद योजना (ODOP) में शामिल होने के बाद टेराकोटा लोकल से ग्लोबल की सफल यात्रा पर है। इस पारंपरिक शिल्प को इंडस्ट्री में तब्दील करने में सरकार के प्रयासों से प्रेरित होकर कई संस्थाएं भी आगे आ रही हैं। शिल्पकारों को अपने कारोबार को और रफ्तार देने में पूंजी की कमी नहीं होगी। इस दिशा में एक पहल पंजाब एंड सिंध बैंक की तरफ से वही की गई है। सरकार की तरफ से मिलने वाले वित्तीय सहायता के अलावा अब ये शिल्पकार बैंक से आसानी से लोन लेकर कारोबार का भरपूर विस्तार कर सकेंगे। पंजाब एंड सिंध बैंक ने गोरखपुर के 5000 टेराकोटा शिल्पकारों को सहजता से लोन देने की कार्ययोजना है। बैंक की तरफ से शिल्पकारों को 25 करोड़ रुपये का ऋण उपलब्ध कराने का लक्ष्य है। बैंक इसके लिए उत्तर प्रदेश के सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम

(एमएसएमई) विभाग के साथ मिलकर काम करेगा।

GI Tag-हाल ही में 20 अप्रैल 2020 को, भौगोलिक संकेत रजिस्ट्री के रजिस्ट्रार द्वारा इसके अत्यधिक प्रशंसित हस्तशिल्प 'गोरखपुर टेराकोटा' को एक और जीआई टैग के लिए प्रमाण पत्र प्रदान किया गया। आवेदन लक्ष्मी टेराकोटा मूर्तिकला केंद्र, औरंगाबाद, गुलरिहा, गोरखपुर द्वारा दायर किया गया था।

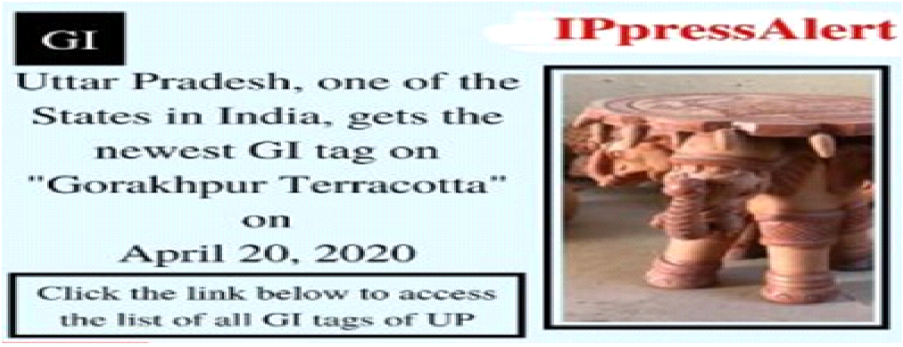

टेराकोटा उत्पाद और पर्यावरणीय स्थिरता–टेराकोटा (Terracotta) प्राकृतिक मिट्टी से बने पारंपरिक उत्पाद हैं, जो पर्यावरणीय रूप से अनुकूल होते हैं। प्लास्टिक और अन्य गैर–बायोडिग्रेडेबल सामग्रियों के बढ़ते उपयोग के बीच, टेराकोटा एक टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रहा है। औद्योगिक युग में प्लास्टिक और धातु के उत्पादों की अधिकता ने पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया है। प्लास्टिक कचरा प्रदूषण का एक मुख्य कारण है, और इसके विकल्प खोजने की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इसी संदर्भ में, टेराकोटा उत्पाद एक पारंपरिक और टिकाऊ समाधान प्रदान करते हैं।

टेराकोटा उत्पादों की पर्यावरण अनुकूल विशेषताएँ–

(a) प्राकृतिक और नवीकरणीय स्रोत–टेराकोटा मिट्टी से बनाया जाता है, जो एक प्राकृतिक और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध संसाधन है। अन्य निर्माण सामग्रियों की तुलना में मिट्टी का उत्खनन पर्यावरण पर कम नकारात्मक प्रभाव डालता है।

(b) ऊर्जा दक्षता–टेराकोटा निर्माण की भट्टी प्रक्रिया में अपेक्षाकृत कम तापमान की आवश्यकता होती है, जो इसे अन्य सिरेमिक और निर्माण सामग्रियों जैसे कंक्रीट या धातु की तुलना में अधिक ऊर्जा–कुशल बनाती है। कुछ निर्माता अब ऊर्जा–कुशल भट्टी तकनीकों या नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग कर रहे हैं ताकि ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम किया जा सके।

(c) दीर्घायु और टिकाऊपन–टेराकोटा अपनी मजबूती और क्षरण के प्रति प्रतिरोधक क्षमता के लिए जाना जाता है। टेराकोटा से बने उत्पादों की लंबी उम्र होती है, जिससे बार–बार प्रतिस्थापन की आवश्यकता कम हो जाती है और संसाधनों की खपत कम होती है। इसकी दीर्घायु निर्माण, परिवहन और निपटान से जुड़े पर्यावरणीय प्रभाव को भी कम करती है।

(d) तापीय इन्सुलेशन–टेराकोटा एक खराब ऊष्मा संवाहक (thermal conductor) है, जिसका अर्थ है कि इसकी तापीय चालकता कम होती है। कुछ मामलों में, यह ऊर्जा दक्षता में योगदान दे सकता है क्योंकि इमारतों में ठंडा रखने के लिए अतिरिक्त शीतलन प्रणालियों की आवश्यकता कम होती है।

(e) छिद्रता/नमी नियंत्रण–टेराकोटा एक छिद्रयुक्त (porous) सामग्री है, जो नमी को अवशोषित और छोड़ सकती है। यह गुण भवनों के अंदर नमी के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक हो सकता है, जिससे आंतरिक वातावरण अधिक आरामदायक बनता है।

(f) पुनर्चक्रण योग्यता (Recyclability)–टेराकोटा उत्पाद अक्सर पुनः उपयोग किए जा सकते हैं। टूटे या त्यागे गए टेराकोटा उत्पादों को कुचलकर पुनः निर्माण प्रक्रिया में इस्तेमाल किया जा सकता है, जिससे परिपत्र अर्थव्यवस्था (circular economy) को बढ़ावा मिलता है और नए कच्चे माल की मांग कम होती है।

(g) जैव–अवक्षयशीलता (Biodegradability)–टेराकोटा एक प्राकृतिक सामग्री है, जो समय के साथ विघटित हो सकती है। हालांकि यह कुछ जैविक सामग्रियों की तरह तेजी से नहीं टूटता, लेकिन इसका विघटन पर्यावरण के लिए हानिकारक नहीं होता।

(h) कम विषाक्तता (Low Toxicity)–टेराकोटा उत्पाद आमतौर पर हानिकारक रसायनों या योजकों (additives) से मुक्त होते हैं। प्राकृतिक मिट्टी और पारंपरिक भट्टी विधियों का उपयोग इसे कम विषाक्त बनाता है, जिससे यह उत्पादन और उपयोग के दौरान सुरक्षित रहता है।

(i) रखरखाव लागत में कमी–टेराकोटा की मजबूती लंबे समय में रखरखाव की लागत को कम करती है। टेराकोटा से बनी इमारतों या संरचनाओं को कम मरम्मत या प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है, जिससे दीर्घकालिक लागत बचत होती है।

(j) बहुउपयोगिता और अनुकूलता–टेराकोटा को विभिन्न आकारों और डिजाइनों में ढाला जा सकता है, जिससे यह निर्माण और डिज़ाइन में बहुप्रयोज्य हो जाता है। यह अनुकूलता टिकाऊ और नवाचारी वास्तुकला समाधान तैयार करने में मदद करती है।

(k) स्थानीय स्रोत और आर्थिक प्रभाव–टेराकोटा अक्सर स्थानीय रूप से प्राप्त किया जाता है, जिससे परिवहन से होने वाले कार्बन उत्सर्जन में कमी आती है। इसके अलावा, कई स्थानों पर अभी भी पारंपरिक हस्तकला विधियों का उपयोग किया जाता है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं का समर्थन करता है और सांस्कृतिक परंपराओं को बनाए रखते हैं ।

टेराकोटा कला का संरक्षण और विकास–टेराकोटा शिल्प को उद्यम में बदलने के लिए सीएम योगी ने इसे बहुआयामी और महत्वाकांक्षी ओडीओपी योजना में शामिल किया। ओडीओपी में शामिल होने के बाद टेराकोटा शिल्पकारों को संसाधनगत, वित्तीय व तकनीकी मदद तो मिली ही, सीएम की अगुवाई में ऐसी जबरदस्त ब्रांडिंग हुई कि इसके बाजार का अपार विस्तार हो गया। मुख्यमंत्री खुद तमाम मंचों से टेराकोटा की ब्रांडिंग करते हैं। एक तरह से इसके ब्रांड एम्बेसडर खुद मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ हैं।

टेराकोटा कला के विकास के क्रम में ही गोरखपुर के गुलरिया ब्लाक में OFPO (Off Farm Producer Organisation) की स्थापना की गयी, आज के वैश्विक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में OFPO की प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि वे स्थानीय स्तर पर आर्थिक विकास और समृद्धि को बढ़ावा देते हैं। ये संगठन कौशल प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और बाजार पहुँच प्रदान करके कारीगरों को उनकी उत्पादकता और लाभप्रदता बढ़ाने में सक्षम बनाते हैं। इससे स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूती मिलती है और गरीबी को कम करने में मदद मिलती है।

टेराकोटा शिल्पकारों को OFPO से कई लाभ मिलते हैं :

1. बाजार तक व्यापक पहुँच–यह संगठन घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर टेराकोटा उत्पादों की सामूहिक रूप से मार्केटिंग करता है, जिससे कारीगरों की दृश्यता और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ती है।

2. ज्ञान और नवाचार साझा करने का मंच–कारीगर अपने तकनीकों, नवाचारों और सर्वोत्तम प्रथाओं को साझा कर सकते हैं, जिससे उत्पादन की गुणवत्ता और दक्षता में सुधार होता है।

3. सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति–संगठन अपने सदस्यों को बेहतर मूल्य और शर्तों पर बातचीत करने में सक्षम बनाता है, जिससे उन्हें अपने उत्पादों का उचित पारिश्रमिक प्राप्त होता है।

टेराकोटा शिल्पकारों के OFPO को बढ़ावा देने में कई कार्यान्वयन एजेंसियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिनमें शामिल हैं :

खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) वित्तीय सहायता और तकनीकी सहयोग प्रदान करता है। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) ऋण, सब्सिडी और अनुदान के माध्यम से वित्तीय सहायता देता है। उद्यमिता विकास संस्थान (EDII) टेराकोटा कारीगरों को कौशल विकास और उद्यमशीलता प्रशिक्षण प्रदान करता है। जिला उद्योग केंद्र (DIC)–टेराकोटा OFPOs की स्थापना और प्रबंधन में मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करता है।

इन सभी संगठनों के सामूहिक प्रयासों से कई टेराकोटा OFPOs की सफलता और वृद्धि संभव हुई है। इससे ग्रामीण कारीगरों को सशक्त बनाने और पारंपरिक शिल्प को संरक्षित करने में सहायता मिली है। साथ ही, यह सतत विकास और स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में योगदान दे रहा है।

उपसंहार–गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प केवल एक पारंपरिक हस्तकला नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह कला सदियों से चली आ रही है और समय के साथ इसमें न केवल विविधता आई है, बल्कि यह आधुनिक आवश्यकताओं और नवाचारों के अनुरूप भी ढलती रही है। गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प प्राचीन काल से ही समृद्ध रहा है। मौर्य और गुप्त काल के दौरान इस कला का व्यापक रूप से प्रचार–प्रसार हुआ, इस काल में मिट्टी से बनी मूर्तियों, दीवारों की सजावट और धार्मिक प्रतीकों की मांग अत्यधिक थी। समय के साथ यह कला क्षेत्रीय विशेषताओं को समाहित करते हुए विकसित हुई, जिससे विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ, पशु–मूर्तियाँ और देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ बनने लगीं।

गोरखपुर के टेराकोटा शिल्प में विशेष रूप से हाथ से बनाई गई नक्काशीदार आकृतियाँ देखने को मिलती हैं, जो इसे अन्य क्षेत्रों के टेराकोटा शिल्प से अलग बनाती हैं। स्थानीय कारीगर अपनी विशिष्ट तकनीकों और पारंपरिक ज्ञान का उपयोग करके उत्कृष्ट कृतियों का निर्माण करते आए हैं। समय के साथ इस पारंपरिक कला में आधुनिक तकनीकों और नवाचारों का समावेश हुआ है, जिससे न केवल इसकी गुणवत्ता में सुधार हुआ है, बल्कि इसे एक व्यावसायिक स्तर पर भी बढ़ावा मिला है। वर्तमान में टेराकोटा शिल्पकार नए–नए डिज़ाइन, चमकदार रंगों और टिकाऊ निर्माण तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं। 3क प्रिंटिंग, मोल्डिंग, और पेंटिंग जैसी आधुनिक तकनीकों के माध्यम से इस शिल्प को अधिक आकर्षक और ग्राहकों की मांग के अनुरूप बनाया जा रहा है।

सरकार और विभिन्न संगठनों द्वारा इस कला को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं। खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC), राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD), और जिला उद्योग केंद्र (DIC) जैसी संस्थाएँ टेराकोटा कारीगरों को वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और बाज़ार उपलब्ध कराने में मदद कर रही हैं। इन प्रयासों के कारण अब गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प न केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी पहचान बना रहा है।

गोरखपुर का टेराकोटा शिल्प न केवल कला और संस्कृति का प्रतीक है, बल्कि यह स्थानीय कारीगरों के लिए आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। यह उद्योग हजारों लोगों को रोजगार प्रदान करता है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ अन्य आर्थिक अवसर सीमित हैं।

इसके अतिरिक्त, टेराकोटा शिल्प महिलाओं को भी आर्थिक रूप से सशक्त बना रहा है। कई महिलाएँ इस हस्तशिल्प कार्य में संलग्न होकर अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत कर रही हैं। साथ ही, यह पारंपरिक ज्ञान और तकनीक की पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरण की प्रक्रिया को भी बनाए रखता है। गोरखपुर के टेराकोटा शिल्प की बढ़ती लोकप्रियता और वैश्विक बाज़ार में इसकी बढ़ती माँग को देखते हुए, इसके भविष्य की संभावनाएँ अत्यधिक उज्ज्वल हैं। हालांकि, इस उद्योग को और अधिक बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है

तकनीकी उन्नयन–आधुनिक उपकरणों और तकनीकों का अधिक से अधिक उपयोग कर उत्पादों की गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता को बढ़ाना।

वैश्विक बाज़ार से जुड़ाव–डिजिटल मार्केटिंग और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से टेराकोटा उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाना।

सरकारी सहयोग और नीतिगत समर्थन–सरकार द्वारा उचित वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और निर्यात को प्रोत्साहित करने वाली नीतियाँ लागू करना।

युवाओं को जोड़ना–इस परंपरागत कला को जीवित रखने के लिए युवा पीढ़ी को इससे जोड़ने हेतु प्रशिक्षण और उद्यमिता विकास कार्यक्रम शुरू करना ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बन सके।

संदर्भ–सूची

1. मशाडो, सी. एट अल. (2019), पर्यावरणीय रूप से सतत परियोजनाओं के संदर्भ में सामाजिक उद्यमियों की सामाजिक पूंजी को बढ़ावा देना : एक साहित्य समीक्षा। सस्टेनेबिलिटी, 11(11), 3257

2. भारतीय लाल मिट्टी के मिट्टी के बर्तन (टेराकोटा) उद्योगों की समस्याएं और विकास के लिए नीतियां इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज ISSN : 2278–6236 प्रभाव कारक : 6.943 सामग्री विज्ञान और इंजीनियरिंग

3. पंचमुरा, पश्चिम बंगाल में टेराकोटा शिल्प और इसके कारीगरों पर एक समकालीन अध्ययन यूनिवर्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च (पीयर–रिव्यूड रेफरीड जर्नल) © UIJIR | ISSN (O)– 2582–6417 अप्रैल 2021, वॉल्यूम 1, अंक 11 www.uijir.com

4. सिंधु सभ्यता से समकालीन कला तक भारतीय टेराकोटा की ऐतिहासिक यात्रा यूरोपियन जर्नल ऑफ मॉलेक्युलर एंड क्लिनिकल मेडिसिन ISSN : 2515–8260 वॉल्यूम 07, अंक 07, 2020

5. सना (2018), गोरखपुर की टेराकोटा मिट्टी के बर्तन संकट में : गोरखपुर के कुम्हार समुदाय के मुद्दों और चुनौतियों पर एक अध्ययन, इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड साइंस।

6. मिश्रा, शशि प्रकाश और मंसूरी, अब्दुल जिलानी, भारतीय लाल मिट्टी के बर्तन (टेराकोटा) उद्योगों की समस्याएं और विकास के लिए नीतियां, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज।

7. जेना, संजीब कुमार और परिडा, जयंत कुमार, ओडिशा के टेराकोटा कारीगरों की दुर्दशा : कोटपद ब्लॉक का एक अध्ययन।

8. https://cultureandheritage.org/2022/05/gorakhpur-terracotta-handicrafts-html

9. उत्तर प्रदेश को मिला नया जीआई टैग–गोरखपुर टेराकोटा : https://www.theippress.com/2020/05/20/uttar-pradesh-one-of-the-states-in-india-gets-the-newest-gi-tag-on-handicraft-gorakhpur-terracott

10. https://odopup-in/hi/article/gorakhpur

11. https://books.google.co.in/books/about/Aurangabad-Gorakhpur/Gaon/ki-Mati-Kala-html?id=A3YyEQAAQBAJ-redir-esc=y

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 206-209

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पं. मदन मोहन मालवीय के दृष्टिकोण से शिक्षा का महत्त्व

*डॉ. अतुल कुमार सिंह** *शमीम अहमद***

शोध सार–पं. महामना मदन मोहन मालवीय एक शिक्षाविद्, विचारक एवं युगदृष्टा थे। वे समाज में व्याप्त बुराइयों और प्रथाओं को जड़ से समाप्त करने के लिए तथा प्रगतिशील समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा की वकालत की शिक्षा के माध्यम से ही मानव के शारीरिक, बौद्धिक एवं भावात्मक विकास पर जोर देते थे ताकि शिक्षा के माध्यम से यह राष्ट्र प्रेम व समाज में अपना योगदान दे सकें। वे शिक्षा को राष्ट्रभाव जागृति करने वाले साधन के रूप में देखते थे। शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न शिक्षण संस्थानों जैसे– बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, गौरी पाठशाला और हिन्दू छात्रावास आदि की स्थापना करके एक क्रान्तिकारी कदम उठाया। जो वर्तमान में भी यह शिक्षण संस्थान पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। इन शिक्षण संस्थानों से छात्र पढ़कर देश, समाज और राष्ट्र का पुनर्निर्माण कर रहे हैं जो सपना महामना ने वर्षों पहले देखा था आज वह साकार हो रहा है। उनके द्वारा किये गये शिक्षा में योगदान आज भी प्रासंगिक है।

प्रस्तावना–भारत विचारवान, तर्कशील एवं चिन्तनशील महापुरुषों की जन्मस्थली है। यहाँ समय–समय पर महापुरुषों की भूमिका निभाने वालों का जन्म भारत माँ की गोद में होता रहा है जिससे धरती माँ धन्य होती रही है। इन महापुरुषों ने अपने सामाजिक कृतित्व के माध्यम से अज्ञानता के अन्धकार से भरे समाज को समय–समय न केवल ज्ञानरूपी प्रकाश से एक नई दिशा प्रदान की वरन् समाज के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके बताये हुए ज्ञान इनके चरित्र और आचरण तथा इनके द्वारा स्थापित आदर्शों एवं मूल्यों में समय–समय पर मानवीय सभ्यता को श्रेष्ठ से पराकाष्ठा तक पहुँचाने के लिए नवीन मार्ग ही अपनाये। प्रगतिशील समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा का एक महत्वपूर्ण जगह है। भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गाँधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, सावित्रीबाई फूले, ज्योतिबा फूले, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरू रामकष्ण परमहंस आदि जैसे दार्शनिकों एवं शिक्षाविदों ने अपने–अपने दार्शनिक विचारों से शिक्षा के ज्योति को अधिक प्रकाशमय किया है।

इन्हीं महापुरुषों में पं. मदन मोहन मालवीय का नाम भी प्रमुख रूप से लिया जाता है। मालवीय जी एक राष्ट्रवादी, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद् और प्राचीन भारतीय संस्कृति के विद्वान महामना पं. मदन मोहन मालवीय राष्ट्र के इतिहास में एक विशाल व्यक्ति के रूप में खड़े हैं। उन्होंने प्राचीन और आधुनिक पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के एक अद्वितीय समन्वय का प्रतिनिधित्व किया। महामना पं. मदन मोहन मालवीय शिक्षा को मानव के सर्वांगीण विकास का साधन मानते थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा वह है जो विद्यार्थी की शारीरिक, बौद्धिक तथा भावात्मक शक्तियों को मजबूत और विकसित कर सकें तथा भविष्य में किसी व्यवसाय द्वारा ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह करने के योग्य बना सके। वे शिक्षा को राष्ट्र प्रेम जागृति करने वाली शक्ति बनाना चाहते थे ताकि नई पीढ़ी निःस्वार्थ भाव से समाज एवं राष्ट्र की सेवा कर सके वे शिक्षा का मानव मात्र का अधिकार मानते थे तथा इसका समुचित प्रबन्ध राज्य का कर्तव्य मानते थे। वे शिक्षा की एक ऐसी राष्ट्रीय प्रणाली विकसित करना चाहते थे जिसमें प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च विश्वविद्यालय में शिक्षा निःशुल्क हो। जिससे निर्धन होने के कारण कोई भी शिक्षा से वंचित न रह जाये। जिसके व्यापक विस्तार से सामाजिक कुरीतियों एवं असमानताओं को दूर किया जा सके।

* *शोध निर्देशक, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान*

** *शोधार्थी, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान*

महामना मदन मोहन मालवीय द्वारा स्थापित शैक्षिक संस्थायें–महामना मदन मोहन मालवीय एक उच्च कोटि के शिक्षाविद् और देशभक्त थे। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता, राष्ट्र की प्रगति तथा जनता का सर्वांगीण उन्नति उनके देश सेवा के मुख्य लक्ष्य थे। वे जाति, भाषा, सम्प्रदाय और क्षेत्रवाद के आधार पर भारतीयों के मध्य बढ़ती हुई असमानता को समाप्त कर भारत को एक प्रगतिशील एवं शक्तिशाली राष्ट्र और सम्प्रभु देश के रूप में देखना चाहते थे और शिक्षा की राष्ट्र की उन्नति का महत्वपूर्ण औजार मानते थे तथा उन्होंने शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना अपने जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य बनाया इसके लिए वह किसी से भी चन्दा एवं दान लेने में संकोच नहीं करते थे। उन्होंने धन को शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और उनके विकास पर भी लगाते थे लेकिन व्यक्तिगत कार्य हेतु नहीं। उन्होंने प्रमुख शैक्षिक संस्थानों का निर्माण कराया–

1. हिन्दू बोर्डिंग हाउस–महामना द्वारा स्थापित कराया गया यह पहला संस्थान है। महामना उचित शिक्षा हेतु छात्रावास के महत्व को समझते थे। उन्होंने सन् 1901 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के **म्योर सेन्ट्रल कॉलेज** के लिए **230** कमरों का एक विशाल छात्रावास का निर्माण कराया। यह छात्रावास सन् 1903 ई0 में बनकर तैयार हुआ। इसके निर्माण में ढ़ाई लाख से अधिक रूपये खर्च हुए थे। जिसमें एक लाख की राशि उन्होंने प्रान्तीय सरकार से मिली थी। शेष राशि उन्होंने चन्दा से इकट्ठा किया था। प्रारम्भ में इस छात्रावास का नाम **मैकडॉनल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस** रखा गया, पर महामना के देहान्त के उपरान्त इसका नाम बदलकर **मालवीय हिन्दू बोर्डिंग हाउस** कर दिया गया। प्रख्यात इतिहासकार पं. सुन्दरलाल इसी छात्रावास में रहते थे। आजादी के लड़ाई में यह क्रान्तिकारी के छिपने का एक प्रमुख जगह रहा, चन्द्रशेखर आजाद इसी छात्रावास में रुका करते थे। भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर यहीं के अन्तःवासी रहते हुए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्यक्ष चुने गये। यहीं से देश की सियासत में कदम रखा।

2. गौरी पाठशाला–महामना अपने निजी जीवन से लेकर सार्वजनिक जीवन में स्त्री शक्ति की महत्ता न केवल स्वीकार करते हैं बल्कि व्यवहारिक रूप से भव्यता प्रदान करते हैं। वह कहते थे मैने माँ की शिक्षा को मूल मानते हुए स्त्री शक्ति को काम्या और भोग्य की ओर से बाहर निकाल कर साम्या और आराध्या के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रबल पक्षधर थे। इसलिए लेजिसलेटिव काउन्सिल के बहस में वे देवदासी प्रथा का प्रबल विरोध करते हुए कहते हैं कि देवदासी प्रथा को किसी भी रूप में धार्मिक स्वीकृति नहीं प्राप्त है। महामना सारे समाज के उन्नति के लिए स्त्री शिक्षा को बहुत ही आवश्यक मानते थे। वे राष्ट्र सेवा के लिए स्त्री को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते थे। जितना पुरूष को। सन् 1904 ई0 में मालवीय जी ने राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन और बालकृष्ण भट्ट के सहयोग से गौरी पाठशाला की स्थापना की यह पाठशाला वर्तमान समय में उच्चतर माध्यमिक महाविद्यालय हो गया है।

3. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय–काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पवित्र शहर वाराणसी में स्थित है यह एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शिक्षा का मन्दिर है। इस रचनात्मक और अभिनव विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1916 ई. में राष्ट्रवादी एवं शिक्षाविद् पं. महामना मदन मोहन मालवीय ने एक आयरिश महिला **एनी बेसेन्ट** जैसे महान हस्तियों के सहयोग से की थी। जो उस समय भारत में **होम रूल लीग आन्दोलन** की नेतृत्व कर्ता थी। इसके साथ ही उन्होंने भारत के विश्वविद्यालय के रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की कल्पना की थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संसदीय कानून 1915 के तहत स्थापित किया गया था। इसने भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारत में शिक्षा के सबसे बड़े केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इसने आधुनिक भारत के अनेक महान स्वतन्त्रता सेनानियों और राष्ट्र निर्माता को जन्म दिया और बड़े संख्या में प्रसिद्ध विद्वानों, कलाकारों, वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीकर्ता के माध्यम से राष्ट्र की प्रकृति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आज किसी पहचान का मोहताज नहीं है। विश्व के प्राचीनतम शहरों में से एक वाराणसी में स्थित **बीएचयू** की गिनती देश में सबसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में होती है। इसका नाम सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों तक में सम्मान के साथ लिया जाता है। यहाँ से पढ़े–लिखे लाखों छात्रों ने अपने–अपने क्षेत्रों में न जाने कितने कीर्तिमान हासिल किये हैं। इसी के साथ उन्होंने समाज और अपने देश के विकास में महत्वूपूर्ण योगदान भी दिया है।

महामना मदन मोहन मालवीय जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य–शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य मानव का सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक, मानसिक और शारीरिक आदि शक्तियों का विकास करना होता है। इनके अनुसार स्वस्थ्य शरीर के बाद दूसरी आवश्यकता है ज्ञान, बुद्धि और विवेक की। अतः शिक्षा द्वारा इनका

भी विकास होना चाहिए। मालवीय जी एक ईमानदार समाज सेवक और अपने संस्कृत के सच्चे मानने वाले थे। ये शिक्षा द्वारा भारतीय संस्कृति के रक्षा पर बहुत बल देते थे। मालवीय जी चरित्र को मनुष्य का अतिआवश्यक गुण मानते थे। अतः शिक्षा के द्वारा उसके विकास पर बल देते थे। ये शिक्षा द्वारा मनुष्य को अपने जीविकोपार्जन अर्थात रोजी–रोटी कमाने योग्य भी बनाना चाहते थे। ये एक सच्चे राष्ट्रभक्त थे और इन्होंने शिक्षा द्वारा बच्चों में राष्ट्रीयता के विकास की बात करते थे। आध्यात्मिक उन्नति को तो वे मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मानते थे। मालवीय जी द्वारा निश्चित शिक्षा के इन उद्देश्यों को आज भी भाषा में निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है–

1. शारीरिक विकास–मालवीय जी के अनुसार मानव के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का पहला साधन शरीर है, **स्वस्थ शरीर है तो व्यक्ति आरोग्य है।** मालवीय जी ने साफ जाहिर किया है कि यह मनुष्य के शरीर को साधन मानते थे, साध्य नहीं परन्तु साध्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति के लिए शरीर की पहली आवश्यकता है तो शिक्षा द्वारा मनुष्य को स्वास्थ्य रक्षा की शिक्षा देना आवश्यक है। अतः यह मनुष्य जीवन का उद्देश्य हो या न हो परन्तु शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य होना चाहिए। **एक प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु ने कहा है कि ''शिक्षा एक स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मस्तिष्क का निर्माण है।''** मालवीय जी ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि यदि राष्ट्र के निवासियों का शरीर दुर्बल होगा तो राष्ट्र भी दुर्बल होगा। इन्होंने स्वास्थ्य के तीन खम्भे बताये हैं– **आहार, शयन और ब्रह्मचर्य।** इनकी दृष्टि से शिक्षा द्वारा मनुष्य को उचित आहार, शयन और ब्रह्मचर्य का ज्ञान कराना चाहिए और तदनुकूल आचरण एवं व्यवहार में प्रशिक्षित करना चाहिए।

2. मानसिक एवं बौद्धिक विकास–मानव के मानसिक एवं बौद्धिक विकास से मालवीय जी का तात्पर्य विभिन्न भाषाओं और विभिन्न विषयों के ज्ञान से था। इन्होंने स्पष्ट किया है कि भाषा और विभिन्न विषयों का ज्ञान ही मनुष्य को बुद्धिमान एवं विवेकशील प्राणी बनाता है और विवेक से मनुष्य अच्छे और बुरे में अन्तर करता है। करणीय और अकरणीय कर्मों को समझता है और सत्य मार्ग का अनुकरण करता है। लेकिन मालवीय जी भारतीय ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करते थे कि भौतिक विकास के लिए पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की तुलना में भारतीय ज्ञान अधिक उपयोगी है।

3. नैतिक एवं चारित्रिक विकास–मालवीय जी ने व्यक्तियों को नैतिक नियमों के पालन को आवश्यक मानते थे और चारित्रिक बल को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर बल दिया है। मालवीय जी धार्मिक नियमों को नैतिकता और चरित्र का आधार मानते थे। यही कारण है कि ये मनुष्य के नैतिक और चारित्रिक विकास के लिए धर्म की शिक्षा को आवश्यक मानते थे।

4. व्यावसायिक एवं आर्थिक विकास–मानव के चार पुरुषार्थों में अर्थ दूसरे नम्बर पर आता है। अर्थ का वास्तविक अर्थ है– साधन। और क्योंकि धन सब वस्तुओं को प्राप्त करने का साधन है इसलिए उसे अर्थ कहते हैं। मालवीय जी देश की गरीबी और बेरोजगारी की समस्या से भी चिन्तित थे। इस सब के लिए इन्होंने शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा जैसे– कृषि, कला–कौशल एवं अन्य उद्योगों की शिक्षा के व्यवस्था करने पर बल दिया था। इन्होंने स्पष्ट किया है कि हमारा भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। इसलिए यहाँ पर कृषि शिक्षा की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए।

5. राष्ट्रीयता का विकास–मालवीय जी के अनुसार भारतीय राष्ट्रीयता का मूल आधार हिन्दूत्व है। हिन्दूत्व से मालवीय जी का बड़ा विस्तष्त अर्थ था। इनके अनुसार हिन्दूत्व भारत के धर्म–दर्शन का नाम है, एक ऐसे धर्म–दर्शन का नाम जो प्राणी मात्र के कल्याण में विश्वास करता है, एक ऐसे धर्म–दर्शन का नाम जो शाश्वत है। इससे साफ दिखाई देता है कि मालवीय जी संकुचित राष्ट्रवाद के पक्षधर नहीं थे ये तो **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** अर्थात पूरा विश्व एक परिवार है। ये शिक्षा द्वारा इसे राष्ट्रीयता के सुरक्षा पर विशेष महत्व देते थे।

महामना मदन मोहन मालवीय जी के अनुसार शिक्षा की पाठ्यचर्या–मालवीय जी ने शिक्षा के पाठ्यचर्या की कोई क्रमबद्ध रूपरेखा तो प्रस्तुत नहीं की परन्तु इसके निर्माण के सम्बन्ध में उन्होंने अपना कुछ सुझाव जरूर दिये हैं। इनका पहला सुझाव तो यह है कि हमारा पाठ्यक्रम हमारे धर्म और संस्कृति पर आधारित होने चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया है कि हमें हमारे धर्म और संस्कृति का सही ज्ञान संस्कृत साहित्य से होता है इसलिए भारतीयों को संस्कृत भाषा का ज्ञान अवश्य और अनिवार्य रूप से कराया जाना चाहिए।

महामना मालवीय जी के अनुसार अनुशासन–मालवीय शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन को बहुत ही जरूरी मानते थे परन्तु ये अनुशासन से इनका अर्थ आत्मानुशासन से लेते थे। ये दण्ड के भय से स्थापित व्यवस्था को

ये अनुशासन नहीं मानते थे क्योंकि दण्ड वाह्य अनुशासन है ये इस बात पर विशेष बल देते थे कि अध्यापक और छात्र दोनों को स्वंय अपने ऊपर नियन्त्रण रखना चाहिए। और मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिए। इनका स्पष्ट मत था कि छात्र को तभी अनुशासन में रहेंगे जब अध्यापक अनुशासन में रहेंगे। अतः आवश्यक है कि अध्यापकों को अपने आचरण में सुधार करना चाहिए जिससे छात्र आदर्श एवं अनुकरणीय समझकर उसको ग्रहण करेंगे।

महामना मदन मोहन मालवीय जी के अनुसार शिक्षक–मालवीय जी ने स्वंय में अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में प्रारम्भ किया था। ये भारतीय प्राचीन परम्परा के अनुयायी थे। और शिक्षकों को समाज में सर्वोच्च जगह देते थे। इनके अनुसार शिक्षक को धर्म परायण, विद्वान और सत्यभाषी होना चाहिए और विद्यार्थियों के प्रति समर्पण की भावना होनी चाहिए। इसके साथ–साथ प्रत्येक शिक्षक का आचरण और व्यवहार आदर्श और सर्वोच्च होना चाहिए। यह शिक्षकों से यह अपेक्षा करते थे कि वे समाज के सेवक और सच्चे राष्ट्रभक्त हों। इनका विश्वास था कि ऐसे शिक्षकों से ही शिक्षार्थी अपने वास्तविक ज्ञान और उच्च आचरण की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

महामना मदन मोहन मालवीय जी के अनुसार शिक्षार्थी–मालवीय जी शिक्षार्थियों से ब्रह्मचर्य का पालन करने की उम्मीद करते थे। ये अपने शिष्यों को प्रातःकाल उठने, नित्य सन्ध्यावन्दन करने, बड़ों का आदर करने, शिक्षकों में श्रद्धा रखने और उनकी आज्ञा का पालन करने और प्राणी मात्र का सेवा करने का उपदेश देते थे। इनके अनुसार विद्यार्थियों को अपने मन, वचन और कर्म पर नियन्त्रण रखना चाहिए, उन्हें विनम्र होना चाहिए, सादा जीवन जीना चाहिए और विद्या से अनुराग करना चाहिए। ये भारत में प्राचीन वैदिक कालीन गुरु–शिष्य परम्परा को पुनः जीवित करना चाहते थे।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवेचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पं. महामना मदन मोहन मालवीय शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते थे। वे समाज एवं राष्ट्र का सतत् विकास शिक्षा के माध्यम से करना चाहते थे। वे समाज के गरीब वर्गों के लिए निःशुल्क शिक्षा की वकालत किया करते थे जिससे भारत का कोई भी गरीब व्यक्ति अशिक्षित न रहे। इसके साथ ही मालवीय जी स्त्री शिक्षा के भी बड़े समर्थक थे उनका मानना था कि स्त्री शिक्षा राष्ट्र और समाज के विकास के लिए आवश्यक है। एक शिक्षित महिला, न केवल अपने परिवार का बल्कि पूरे समाज का उत्थान कर सकती है। माताएँ ही भावी पीढ़ी का निर्माण करती है। जिससे उनके अन्दर राष्ट्रीय भाव जागृत हो सके, एक निरक्षर व्यक्ति राष्ट्र के विकास, समाज में हो रही गतिविधियों और प्रगतिशीलता को नहीं समझ सकता है। उन्होंने आवश्यकता के अनुसार विभिन्न शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जो आज भी शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। मालवीय जी के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये गये कार्यों का वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है।

सन्दर्भ–सूची

1. रवीन्द्र अग्निहोत्री, (1973), भारतीय शिक्षा–दशा और दिशा, केदार नाथ राम नाथ एण्ड कं. मेरठ।
2. अंजली यादव (2021), पं. मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचार, टारगेट नोट्स
3. डॉ. एल.एल.के. ओड (1977), शिक्षा के नूतन आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
4. सरिता–सुमित (2020), पं. मदन मोहन मालवीय का शिक्षा दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आधुनिक भारतीय शिक्षा 10(2) 13–19
5. कमलापति ओझा (1956), देश–विदेश के महान शिक्षक, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स प्रकाशन वाराणसी।
6. पद्म नारायण आचार्य, हमारे कुलपति मालवीय जी, गीता धर्म प्रकाशन, वाराणसी (1936)
7. पांचजन्य (2021), आध्यात्मिक रूप से भी स्त्री शक्ति के प्रबल पूजक थे मालवीय जी
8. राय, विनय कुमार (2021), महामना पं. मदन मोहन मालवीय का शैक्षिक चिन्तन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, गरिमा सिन्धू, 129–137

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 210-211

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

योग को व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में मूल रूप से उतारने की प्रक्रिया

*प्रो. (डॉ.) भृगुनाथ पाण्डेय**

वर्तमान युग की तेज़ रफ्तार जीवनशैली ने व्यक्ति और परिवार के बीच के संबंधों को तनाव, अव्यवस्था और मानसिक दबाव से भर दिया है। ऐसे समय में 'योग' केवल एक शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि एक जीवनशैली, एक दर्शन और एक अनुशासन बनकर उभरा है। योग का मूल उद्देश्य मन, शरीर और आत्मा के संतुलन को स्थापित करना है, और जब यह संतुलन व्यक्तिगत स्तर पर प्राप्त होता है, तो इसका प्रभाव अनिवार्य रूप से पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है।

योग को व्यक्तिगत जीवन में उतारना अर्थात स्वयं के भीतर स्थिरता, स्पष्टता और आत्मनियंत्रण को विकसित करना। जब व्यक्ति नियमित योगाभ्यास करता है दृ जैसे कि प्राणायाम, ध्यान, आसन एवं यम–नियम तो उसके मानसिक भावों में परिवर्तन आता है। वह अधिक धैर्यवान, सहनशील और विवेकशील बनता है। यह गुण पारिवारिक संबंधों में संवाद और समझ की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं।

पारिवारिक जीवन में योग का समावेश करना केवल सभी सदस्यों को एक साथ योग कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है योग की मूल अवधारणाओं को जीवन के हर पहलू में शामिल करना जैसे–कि समता, क्षमा, अनुशासन, और सेवा भावना। जब बच्चे अपने माता–पिता को ध्यान करते हुए, संयमित जीवन जीते हुए देखते हैं, तो वे अनजाने में उन्हीं गुणों को आत्मसात कर लेते हैं। इस प्रकार योग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मूल्यों के माध्यम से प्रवाहित होता है।

योग केवल व्यक्तिगत लाभ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामूहिक उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त करता है। पारिवारिक योग सत्र, जहाँ सभी सदस्य एक साथ अभ्यास करें, एकजुटता, सहयोग और भावनात्मक संबंध को मजबूत करता है। यह आधुनिक समय में, जब डिजिटल उपकरणों ने वास्तविक संवाद को बाधित कर दिया है, एक प्रभावी माध्यम बन सकता है परिवार को पुनः जोड़ने का।

आज के समय में विभिन्न शोधों ने यह प्रमाणित किया है कि नियमित योगाभ्यास करने वाले परिवारों में तनाव का स्तर कम होता है, आपसी झगड़े कम होते हैं, और मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। यह निष्कर्ष केवल भारतीय शोधों तक सीमित नहीं, बल्कि अमेरिका, जापान और यूरोप के कई संस्थानों द्वारा भी पुष्टि की गई है।

योग को पारिवारिक जीवन में उतारने की प्रक्रिया के लिए कुछ चरणबद्ध उपाय अपनाए जा सकते हैं :

(1) परिवार में योग को प्राथमिकता देना,

(2) एक नियमित समय तय करना,

(3) शुरुआत में सरल अभ्यासों से आरंभ करना,

(4) बच्चों को खेल के माध्यम से जोड़ना, और

(5) योग के सिद्धांतों पर चर्चा करना।

यह भी आवश्यक है कि योग को केवल शारीरिक व्यायाम के रूप में न देखा जाए। 'अष्टांग योग'– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि– एक सम्पूर्ण जीवनशैली का प्रारूप है। यदि परिवार इन

* *कुलपति, जे.एस. विश्वविद्यालय, उ.प्र., भारत*

आठ अंगों में से कुछ को भी अपने दैनिक जीवन में उतारना प्रारंभ कर दे, तो पारिवारिक संबंधों में गहराई और स्थायित्व आ सकता है।

भारतीय संस्कृति में योग का स्थान अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। पातंजलि योगसूत्र से लेकर भगवद्गीता तक, योग की अवधारणाएँ आध्यात्मिक और सामाजिक समरसता की स्थापना करती हैं। आज इन मूल्यों की पुनः स्थापना की आवश्यकता है, विशेषकर शहरी और व्यस्त जीवनशैली के संदर्भ में जहाँ संबंधों की गुणवत्ता लगातार गिर रही है।

विश्व योग दिवस (21 जून) जैसे आयोजनों ने आम जनमानस में योग के प्रति जागरूकता तो बढ़ाई है, लेकिन अब आवश्यकता है कि इसे सार्वजनिक मंचों से निकालकर व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर आत्मसात किया जाए।

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि योग केवल शरीर को स्वस्थ रखने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा जीवनमूल्य है जो व्यक्ति को स्वयं से और अपने परिवार से गहराई से जोड़ता है। जब योग व्यक्तिगत चेतना का हिस्सा बनता है, तो वह परिवार को शांति, सहयोग, और स्नेह का केंद्र बना देता है।

संदर्भ–सूची

1. Patanjali (C. 400 BCE), योग सूत्र
2. भगवद्गीता, अध्याय 6, ध्यान योग।
3. Iyengar, B.K.S. (2002), Light on Yoga, Harper Collins.
4. Saraswati, Swami Satyananda (2008), Asana Pranayama Mudra Bandha, Bihar School of Yoga.
5. Harvard Health Publishing (2018), Yoga Benefits Beyond the Mat.
6. Indian Council of Medical Research (ICMR), (2020), Effects of Yoga on Mental and Physical Health.
7. WHO (2021), Mental Health and Psychosocial Considerations During COVID-19 Outbreak–Role of Yoga.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 212-213

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

विद्यानिवास मिश्र जी की दृष्टि में भारतीय संस्कृति की निरंतरता के अवयव

*कुमारी विभा द्विवेदी***

सनातन धर्म के संबंध में एक अत्यंत प्रचलित उक्ति है कि यह नित्य नूतन और चिर पुरातन है। आदिम युग से जिस सभ्यता और संस्कृति की बुनियाद भारतीय उपमहाद्वीप में ऋषि–मुनियों द्वारा डाली गई, जिन बुनियादी जीवन–मूल्यों को आरोपित किया गया, वे अपनी निरंतरता के साथलोक मानस में आज भी स्थापित हैं। मंत्रद्रष्टा ऋग्वैदिक–ऋषियों ने जीवन के जो सूत्र दिये, उन्हें आठ हजार वर्ष बाद भी आज की पीढ़ी गांठ बांधकर रखी है, तो दुनिया आश्चर्यचकित क्यों न हो? पुनर्जन्म का सिद्धांत, कर्मफल का सिद्धांत, त्याग के साथ उपभोग का विचार, विद्या–अविद्या का अंतर, प्रकृति के साथ साहचर्य, पूर्ण वर्णाश्रम जीवन दर्शन जैसे मूल्यवान विचारों का उत्स अतीत के शास्त्रों में आलेखित है।

विश्व के अनेक भू–भागों पर इसके समानांतर अनेक सभ्यताएँ जन्मीं, विकसित हुई और मिट गयीं ,लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित विश्व की एक मात्र ऐसी सभ्यता, जिसे दुनिया सनातन या हिंदू सभ्यता के नाम से जानती है, अपनी निरंतरता के साथ आज भी जीवंत एवं सशक्त है और मार्गदर्शक की भूमिका में वैश्विक पहचान बना चुकी है। इसी निरंतरता को विद्यानिवास मिश्र ने अपने आख्यानों–व्याख्यानों और

निबंधों में पूर्ण गौरव–गरिमा के साथ समाहित किया है। उन्होंने कहा है– ''जीवन की निरंतरता केवल काल में ही नहीं देश में भी है। अथवर्वेद के दसवें सूक्त में एक मंत्र का संदर्भ ग्रहण करते हुए उन्होंने कहा मर्त्य और अमर्त्य की निरंतरता –

अपाङ्प्राङेति स्वधया गृभीतो मतर्यो–मतर्येना सयोनिः।
नाश्वश्वनता विषुचीना वियन्ता–न्यन्यं चिक्युर्न हि चिक्युरन्यम्त।''[1]

हिंदू मंत्र का अभिप्राय है कि ''अमरणधर्मा जीव मरणधर्मा शरीर के साथ एक सूत्र के द्वारा जुड़ता है।... मरणधर्मा शरीर स्थूल रूप में मरकर भी सूक्ष्म रूप में संक्रमण करता रहता है और अहंता के सूत्र के द्वारा आत्मा से बंधा रहता है। इस सूक्ष्म शरीर से संबद्ध आत्मा, अनेक दिशाओं में भटकता हुआ पुत्र,संबंधी जैसे आत्मीय शरीरों को तो जरूर पहचान लेती है, किंतु अपने अशरीरी परम आत्मीय रूप को नहीं पहचान पाती।... इसीलिए चार पीढ़ियों तक समान पिंड का एक दूसरे के साथ भागीदार मानता है और विभिन्न अनुष्ठानों में इन आत्माओं के तर्पण के लिए अनेक विधानों का अनुपालन करता है।''[2]

यह विश्व भारतीय मानस के अन्तर्जगत की संरचना का मूल आधार और विश्वास है। जिसके अनुपालन की दृढ़ता देश के कोने–कोने में अलग–अलग रूपों में आज भी विद्यमान है। इसी प्रकार प्रारब्ध (भाग्य) का भोग भोगना पड़ता है। यह विश्वास भी लोक मानस में दृढ़ता से स्थापित है, अविचलित ढंग से भारतीय समाज इसी बुनियादी सिद्धांत के आधार पर अपनी दैनिक गतिविधियाँ नियमित और नियंत्रित कार्य करता रहा है। इस विश्वास का संबंध व्यक्ति की अंतःचेतना से होता है और वही किसी धर्म परायण मनुष्य की गतिविधियों का नियामक भी होता है। पाप और पुण्य की अवधारणा भी इसी का एक पहलू है।

विद्यानिवास मिश्र जी ने बहुत सूक्ष्मता से इस तथ्य का अवलोकन किया है। ''क्रियमाण कर्म ही प्रारब्ध का भोग कराते हुए भी जीवन क्रम को संचित की अपेक्षा से मुक्त कर देता है और इसलिए वह पूर्व नियत फल की धारा को मोड़ भी देता है। इस माने में वह प्रारब्ध से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। क्रियमाण कर्म यदि ठीक तरह अनुवर्तित किया गया तो वह न केवल प्रारब्ध को भोगने के लिए भीतर से शक्ति और विश्वास देता है, बल्कि प्रारब्ध के भोग की अवधि को भी नियंत्रित करता है।''[3]

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार*

अधिकांश भारतीयों के लिए गीता में कृष्ण द्वारा अनासक्त कर्मयोग का सिद्धांत आज भी उतना ही मूल्यवान और प्रासंगिक है, जितना विगत सहस्त्रों वर्षों में रहा– ऐसा कैसे संभव है। संस्कृति की यह निरंतरता अटूट अविच्छिन्न रूप से कैसे पीढ़ी दर पीढ़ी अपने मौलिक तत्वों के साथ आगे बढ़ती रही? जैसे– अतीत में हुए सहस्त्रों हमले इसका कुछ बिगाड़ नहीं पाए। विभिन्न संस्कृतियाँ हमलावर के रूप में आई और उसी वेग के साथ सनातन में विलीन होती चली गई। जैसे–बरसात में उफनती सैकड़ों नदियाँ गंगा में विलीन हो जाती है, ठीक उसी तरह शक, हुण, आग्नेय, यवन, मुगल, तुर्क, मंगोल आदि अलग–अलग कालखंडों में आते रहे और सनातन के जबड़े में समाते गए। अरबों और तुर्कों के आने तक अवश्य ही सनातन की पाचन शक्ति कमजोर पड़ती दिखती है। इन सभी विधर्मी संस्कृतियों ने बहुत क्रूर प्रहार किया है। बहुत जुल्म अत्याचार भी किये हैं। अनगिनत हत्याएँ भी की हैं। मठ–मंदिरों, देवालयों जैसे प्रतीकों को मिटाया भी है। लेकिन यह चारदीवारी पर हुए हमले जैसा ही था। तो सनातन के बाहरी ढांचे को अवश्य ही भारी नुकसान पहुंचाया, लेकिन आंतरिक मूल्यों से समाज को विचलित नहीं कर पाए। वह अटूट सतत निरंतर प्रवाहित होता रहा। अपनी मौलिकता के साथ वह आज भी संसार को आलोकित कर रहा है। बाजारवाद, व्यापारवाद, उपनिवेशवाद, उपभोक्तावाद जैसे वैश्विक तंत्र भी इन विश्वासों को कमजोर नहीं कर पाए हैं, आस्था से डिगा नहीं पाए। इसी का समकालीन उदाहरण है– प्रयागराज में आयोजित महाकुंभ में आस्था की डुबकी लगाने देश की आधी आबादी (70 करोड़) लगभग एकत्र हो गयी थी। देश ही, नहीं दुनिया के कोने–कोने से लोग आस्था की डुबकी लगाने पहुंचे थे। प्रत्येक छः साल पर ऐसा भव्य महिमामंडित दृश्य देखने को मिलता है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र जी के निबंधों में भी कुंभ का वर्णन है, जो इस प्रकार है–

''कुंभ हमारी संस्कृति में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पूर्णता प्राप्त करना हमारा लक्ष्य है, पूर्णता का अर्थ है समग्र जीवन के साथ एकता, अंग को पूरे अंगों की प्रतिस्मृति, एक टुकड़े के रूप में होते हुए अपने समूचे रूप का ध्यान करके अपने छुटपन से मुक्ति। इस पूर्णता की अभिव्यक्ति है पूर्ण कुंभ। अथर्ववेद में एक कालसूक्त है, जिसमें काल की महिमा गाई गई है। उसी के अंदर एक मंत्र है, जहां शायद पूर्ण कुंभ शब्द का प्रयोग मिलता है, वह मंत्र इस प्रकार है–

''पूर्णः कुंभों–धिकाल आहितस्तं वै पश्यामो जगत्
ता इमा विश्व भुवनानि प्रत्यङ् बहुधा नु सन्तः
कालं तमाहु, परमे व्योमन्।''[4]

हजारों वर्ष पूर्व मुक्ति के लिए ऋषिऋण, पितृऋण, देवऋण की बातें होती थीं, उसका आज भी अनुपालन किया जा रहा है। यह भारत की संस्कृति का एक शाश्वत तथ्य है। इस मान्यता के साथ जीवन–यापन करते हैं और इन ऋणों से मुक्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं। इन ऋणों की चर्चा लेखक ने भी की है, जो नीचे उद्धृत है–

''यों तो तीन ही ऋण प्रसिद्ध हैं– ऋषिऋण, पितृऋण और देवऋण। ऋषिऋण ब्रह्मचर्य आश्रम और ब्राह्मण के धर्म स्वाध्याय से उतरता है, पितृऋण गृहस्थ आश्रम और क्षत्रिय के सर्वपालक कार्य से उतरता है, देवऋण वानप्रस्थ आश्रम और विनिमय–प्रधान वैश्य के कार्य से उतरता है, क्योंकि देवता की उपासना में एक–दूसरे को उपकृत करने की भावना रहती है। यज्ञ और उपासना के द्वारा मनुष्य देवता को भावित करता है और उसी के द्वारा देवता भी मनुष्य को भावित करते हैं।''[5]

उपर्युक्त विवेचन से पूरी तरह स्पष्ट है कि पंडित विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान थे। उन्होंने अपने गहन अध्ययन एवम् अनुभव से भारतीय संस्कृति से संबंधित मूल विशेषताओं को पहचान लिया था। भारतीय संस्कृति की अजस्र प्रवहमानता का ठोस वैचारिक आधार है, वह आधार जगत व्यापी एकत्व का बोधक है। इसी तात्विक बोध के अनुरूप इसके अंतर्गत विभिन्न व्यावहारिक प्रयोगों और प्रथाओं का विधान है। यही कारण है यह संस्कृति अनादि काल से अब–तक अपनी विशिष्ट सत्ता अक्षुण्ण बनाए हुए है। विश्व की किसी भी अन्य संस्कृति के मूल में एकत्व का ऐसा तत्त्व–बोध नहीं पाया जाता है। उनमें एककालिकता और एकदेशीयता की संकीर्णता है। इसीलिए वह बनती, बिगड़ती और मिटती रही है, जबकि भारतीय संस्कृति की विद्यमानता देश कालातीत है, इसकी निरंतरता शाश्वत है।

संदर्भ–सूची

1. विद्यानिवास मिश्र रचनावली, पृ. 114, खंड 15
2. उपरोक्त
3. उपरोक्त पृ. 115, खंड 15
4. सोच–विचार पत्रिका, पृ. 13
5. विद्यानिवास मिश्र रचनावली, पृ. 116, खंड 15

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 214-219

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बिहार के औरंगाबाद जिला में लिंगानुपात का स्थानिक-कालिक विश्लेषण

*डॉ. नरेन्द्र कुमार सिंह** *रंजीत कुमार***

सार : *प्रस्तुत शोध पत्र जनगणना रिपोर्ट 2001 तथा 2011 के आधार पर औरंगाबाद जिला के प्रखण्डों में लिंगानुपात का अध्ययन करना तथा इसकी वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करने के लिए तैयार किया गया है। लिंगानुपात समाज में महिलाओं की स्थिति एवं हलातों को प्रदर्शित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय और सामाजिक मापदण्ड है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत का लिंगानुपात 943, बिहार राज्य का 910 तथा औरंगाबाद जिला का 926 है। औरंगाबाद जिला का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से कम है तथा राज्य के औसत से अधिक है। समाज में विभिन्न सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के हुआ है। लेकिन जिला के लिंगानुपात में गिरावट आ रही है। 1901 में लिंगानुपात 1037 था जो 2011 में 934 हो गया, जो जिला के लिए गंभीर चिंता और जनसांख्यिकीय खतरे में से एक है। औरंगाबाद जिला में घटता लिंगानुपात महिलाओं की निम्न स्थिति और पुरुषों व महिलाओं को दी जाने वाली असमान भूमिका का सूचक है।*

शब्द कुंजी : *लिंगानुपात, मातृ मृत्युदर, पुरुष प्रभुत्व, दहेज लिंगानुपात में विचलन*

परिचय : जनसंख्या के किसी समुह में महिलाओं एवं पुरुषों के अनुपात को लिंग अनुपात कहते है। यह जनसंख्या की एक महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय विशेषता है। लिंगानुपात से तात्पर्य किसी निश्चित जनसंख्या में पुरुषों एवं स्त्रियों के अनुपात से है।[1] जनांकिकीय अध्ययन में लिंग संरचना का विशेष महत्व है क्योंकि इसके द्वारा जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ प्रदेश की सामाजिक एवं आर्थिक दशाएँ भी प्रभावित होती है। संतुलित लिंगानुपात संतुलित जनसंख्या संरचना का प्रतिनिधित्व करता है। लिंगानुपात प्रति हजार पुरुष पर महिलाओं की संख्या प्रदर्शित करता है। यह अनुपात समाज में महिलाओं की स्थिति को दर्शाने वाला सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक और जनसांख्यिकीय मापदण्ड है। लिंगानुपात किसी क्षेत्र में प्रचलित सामाजिक एवं कूटनीतिक परिस्थितियों का एक सूचकांक है और यह क्षेत्रीय विश्लेषण के लिए एक उपयोगी उपकरण है।[2] लिंगानुपात किसी क्षेत्र के भौगोलिक विश्लेषण के लिए मौलिक अवधारणा है तथा यह सभी जनसांख्यिकीय तत्वों को प्रभावित करता है।[3]

जनगणना 2011 के अनुसार भारत तथा बिहार का लिंगानुपात क्रमशः 943 तथा 918 था, जबकि औरंगाबाद जिला का लिंगानुपात 926 था। औरंगाबाद जिला का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से कम तथा बिहार राज्य के औसत से अधिक है। राष्ट्रीय औसत से कम होने का प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक समाज, धार्मिक विश्वास, आधुनिक चिकित्सा, प्रौद्योगिकी के विकास का प्रभाव आदि है। भारत का भी लिंगानुपात विश्व के कई अन्य देशों से कम है। यहाँ लिंगानुपात कम होने के प्रमुख कारण उच्च मातृ मृत्युदर का परिणाम है, क्योंकि महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह है, जो भोजन पोषण और स्वास्थ्य देखभाल जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव होता है।

घटते हुए लिंगानुपात की समस्या बहुआयामी है, इसका कोई एक कारण नहीं है। घटते लिंगानुपात का प्रमुख कारण समाज की रूढ़िवादी पारंपरिक मानसिकता, पुत्र की इच्छा रखना, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज के लिए हत्या, स्वास्थ्य उपचार में भेदभाव आदि है।

उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

- औरंगाबाद जिला में लिंगानुपात में दशकीय परिवर्तन का विश्लेषण,
- औरंगाबाद जिला के प्रखण्ड स्तर पर लिंगानुपात का तुलनात्मक अध्ययन।

** प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार*

*** शोध छात्र, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार*

आँकड़ों के स्रोत एवं विधितंत्र : वर्तमान अध्ययन 2001 तथा 2011 की भारत की जनगणना से प्राप्त द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। जनणगना से प्राप्त आँकड़ों को सांख्यिकीय विधि की सहायता से संसाधित तथा विश्लेषित किया गया है। प्रखण्डस्तरीय लिंगानुपात को स्पष्ट करने लिए मानचित्रों का उपयोग किया गया है।

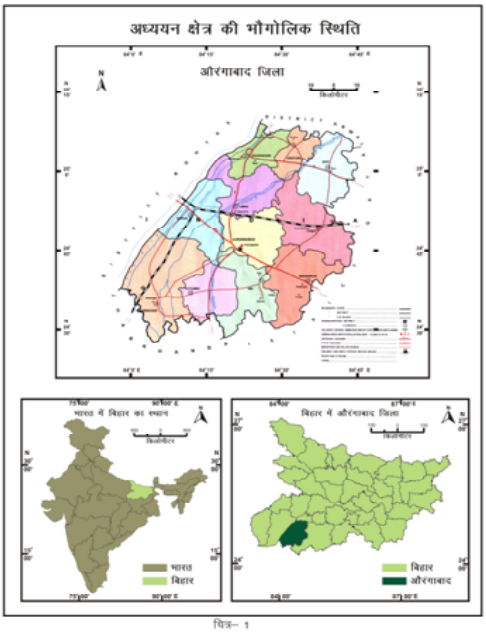

चित्र– 1

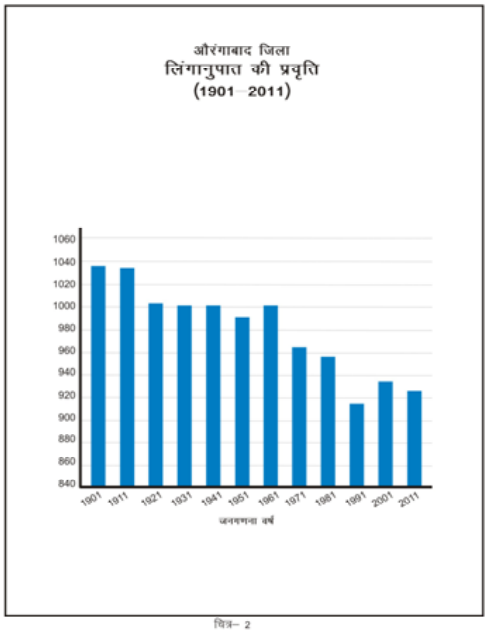

चित्र– 2

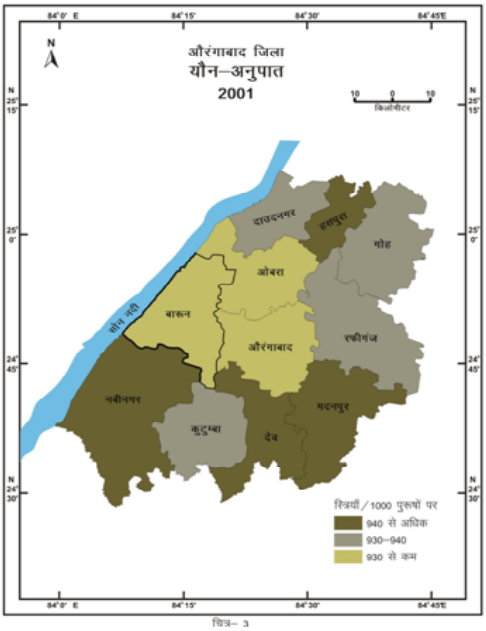

चित्र– 3

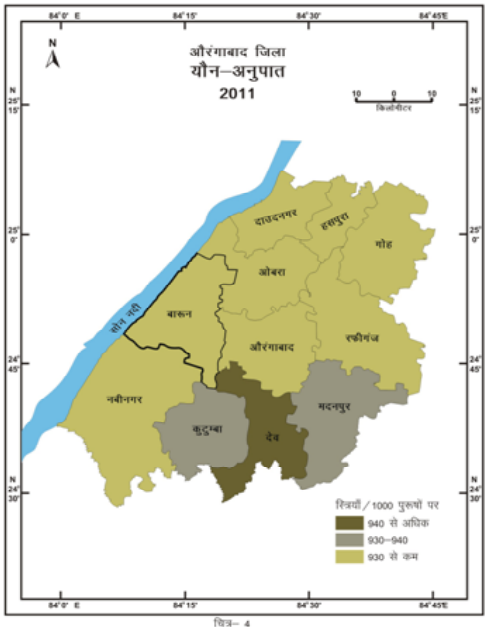

चित्र– 4

अध्ययन क्षेत्र : औरंगाबाद जिला दक्षिण बिहार के दक्षिणी मध्य–पष्चिमी भाग में स्थित एक प्रमुख जिला है। यह दक्षिण में छोटानागपुर के उत्तर–पश्चिम में स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार $24^0$30′ उत्तर से $25^0$15′ उत्तर तक तथा देशान्तरीय विस्तार $84^0$00′ पूरब से $84^0$45′ पूरब के मध्यम स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 3305 वर्ग किलोमीटर है। इस जिला के उत्तर में अरवल तथा दक्षिण में झारखंड राज्य का पलामू तथा गढ़वा जिला, पूर्व में गया जिला तथा पश्चिम में सोन नदी तथा रोहतास जिला से घिरा हुआ है। जनगणना 2011 के अनुसार इस जिला की जनसंख्या 25,40,073 है, औसत घनत्व 769 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इस जिला का विस्तार राज्य की कुल 3.51 प्रतिशत भाग पर है जहाँ 2.44 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। साक्षरता 72.77 प्रतिशत है। औरंगाबाद जिला में कुल 11 प्रखण्ड तथा 6 शहर है। औरंगाबाद नगर जिला का मुख्यालय है।

औरंगबाद जिला में उष्ण कटिबन्धीय मानसुन जलवायु मिलती है जहाँ औसत तापमान 26.54 से.ग्रे. तथा औसत वर्षा 1177 मि.मी. होती है। यहाँ पतझड़ वन तथा काटेदार झाड़ियाँ मिलती है। 3.68 प्रतिशत काटेदार झाड़ियाँ मिलती है। 3.68 प्रतिशत भाग पर वनों का विस्तार है।

औरंगाबाद सड़क मार्ग और रेल मार्ग का केन्द्र है। यहाँ से राष्ट्रीय उच्च पथ–2 तथा 98 गुजरती है। अनुग्रह नारायण रोड प्रमुख रेलवे स्टेशन है जो हावड़ा–गयाजी–पंडित दीनदयाल उपाध्याय रेल मार्ग पर अवस्थित है।

विश्लेषण : 1901 में बिहार राज्य का लिंगानुपात 1061 महिलाएँ प्रति हजार थीं जो लगातार घटती हुई 1951 में 1000 हो गयी। 1961 में कुछ बढ़कर 1005 महिलाएँ प्रति हजार थी। इसके बाद यौनानुपात लगातार घटती हुई 2011 में 916 महिलाएँ प्रति हजार हो गयी (तालिका–1)।

औरंगाबाद जिला में यौनानुपात राज्य के लिंगानुपात के लगभग समानांतर रहा है। यहाँ भी लिंगानुपात में कभी वृद्धि हुई है तो कभी ह्रास हुआ है। सामान्य रूप से देखा जाय तो औरंगाबाद जिला में लिंगानुपात में 1901 से 2011 तक लगातार ह्रास की प्रवृत्ति रही है। 1901 में औरंगाबाद जिला में यौनानुपात 1037 था, जो 0.19 प्रतिशत के ह्रास के बाद 1911 में 1035 हो गयी। 1911 के बाद 1921 में यह अनुपात 1003 हो गयी। इस दशक में 3. 09 प्रतिशत का ह्रास हुआ। 1921 के बाद 1931 में लिंगानुपात 1001 हो गयी। इस दशक में 0.20 प्रतिशत का ह्रास हुआ। 1931 से 1941 में कोई ह्रास नहीं हुआ। 1941 में लिंगानुपात 1001 ही रही।

तालिका–1 : औरंगाबाद जिला में लिंगानुपात (1901–2011) प्रति हजार पुरुशों पर महिलाओं की संख्या

वर्ष	बिहार		औरंगाबाद	
	महिलाओं की संख्या	परिवर्तन प्रतिशत	महिलाओं की संख्या	परिवर्तन प्रतिशत
1901	1061	–	1037	–
1911	1051	–0.94	1035	–0.19
1921	1020	–2.95	1003	–3.09
1931	995	–2.45	1001	–0.20
1941	1002	0.70	1001	0.00
1951	1000	–0.20	991	–1.00
1961	1005	0.50	1001	1.01
1971	957	–4.78	964	–3.70
1981	948	–0.94	956	–0.83
1991	907	–4.32	915	–4.29
2001	919	1.32	934	2.08
2011	916	–0.33	926	–0.86

स्रोत : औरंगाबाद जिला के जनगणना के आँकड़ों से आकलन।

1951 में 1.00 प्रतिशत ह्रास के बाद यह अनुपात 991 हो गयी। 1951 से 1961 के दशक 1.01 प्रतिशत की वृद्धि के लिंगानुपात 1001 हो गयी। 1961 के बाद 1971, 1981 तथा 1991 तक लिंगानुपात में क्रमशः 3.70 प्रतिशत, 0.83 प्रतिशत तथा 4.29 प्रतिशत के ह्रास के बाद लिंगानुपात क्रमशः 964, 956 तथा 915 हो गयी। 1991 से 2001 के दशक में 2.08 प्रतिशत की वृद्धि के बाद लिंगानुपात 934 हो गयी। 2001 से 2011 के दशक में लिंगानुपात में 0.86 प्रतिशत के ह्रास के बाद अनुपात 926 हो गया (चित्र–2)। इस प्रकार यह अनुपात 1901 में 1037 था जो 2011 में 926 हो गया। 110 वर्षों में प्रति हजार पुरुषों पर 111 महिलाएँ कम हो गयी। 1901 से लेकर 1941 तक तथा 1961 में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक रहा है। 1951, 1971 से 2011 तक महिलाओं की संख्या पुरुष से कम रही है। औरंगाबाद जिला का लिंगानुपात 1971 के बाद राज्य के लिंगानुपात से अधिक रहा है।

2001 में प्रखण्डवार लिंगानुपात : तालिका–2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि जिला की लिंगानुपात 2001 में 934 था। 2001 में प्रखण्ड स्तर पर सबसे अधिक अनुपात हसपुरा प्रखण्ड (958) तथा सबसे कम औरंगाबाद प्रखण्ड (909) का है। 2001 के लिंगानुपात को तीन वर्गों में (चित्र–3) में विभाजित किया गया है :

तालिका–2 : औरंगाबाद जिला में प्रखण्डस्तरीय यौन–अनुपात (2001–2011)

वर्ष	बिहार		औरंगाबाद	
	महिलाओं की संख्या	परिवर्तन प्रतिशत	महिलाओं की संख्या	परिवर्तन प्रतिशत
1901	1061	–	1037	–
1911	1051	–0.94	1035	–0.19
1921	1020	–2.95	1003	–3.09
1931	995	–2.45	1001	–0.20
1941	1002	0.70	1001	0.00
1951	1000	–0.20	991	–1.00
1961	1005	0.50	1001	1.01
1971	957	–4.78	964	–3.70
1981	948	–0.94	956	–0.83
1991	907	–4.32	915	–4.29
2001	919	1.32	934	2.08
2011	916	–0.33	926	–0.86

स्रोत : औरंगाबाद जिला के 2001 तथा 2011 के जनगणना आँकड़ों से आकलन।

(i) 940 से अधिक स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुषों पर– इस वर्ग में औरंगाबाद जिला का चार प्रखण्ड हसपुरा (958), मदनपुर (944), देव (943) तथा नबीनगर (942) प्रखण्ड आते हैं। इन सभी प्रखण्डों में यौन–अनुपात जिला के यौन–अनुपात से अधिक है।

(ii) 930 से 940 स्त्रियाँ अनुपात प्रति हजार पुरुषों पर–इस वर्ग में औरंगाबाद जिला के चार प्रखण्ड कुटुम्बा (938), गोह (936), रफीगंज (936) तथा दाउदनगर (930) सम्मिलित हैं।

(iii) 930 से कम स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुषों पर– इस वर्ग में जिला के तीन प्रखण्ड ओबरा (928), बारून (919) तथा औरंगाबाद (909) आते हैं। इन सभी प्रखण्डों में नगरीय जनसंख्या है। औरंगाबाद जिला का मुख्यालय है। यहाँ गावों से पुरुष वर्ग काम के लिए शहरों में रहते है। महिलाएँ गांवों में रहती है। इसीलिए शहरों में लिंगानुपात कम है।

2011 में प्रखण्डवार यौन–अनुपात :

2011 में जिला का यौन–अनुपात 926 है। प्रखण्डों में सबसे अधिक देव (940) में है। यौन–अनुपात के वितरण की दृष्टि से इसे निम्नलिखित तीन वर्गों (चित्र–4) में बाँटा गया है :

(i) 940 से अधिक स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुषों पर–इस वर्ग में जिला का एक मात्र प्रखण्ड देव (940) है।

(ii) 930 से 940 तक स्त्रियाँ अनुपात प्रति हजार पुरुषों पर–इस वर्ग में जिला के दो प्रखण्ड कुटुम्बा (939) तथा मदनपुर (932) आते हैं।

(iii) 930 से कम स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुषों पर–इस वर्ग में जिला के 8 प्रखण्ड हसपुरा (929), बारून (926), नबीनगर (926), दाउदनगर (925), ओबरा (923), गोह (922), रफीगंज (920) तथा औरंगाबाद (916) आते है।

2001 से 2011 में लिंगानुपात में विचलन : जनगणना वर्ष 2001 से जनगणना वर्ष 2011 में लिंगानुपात में परिवर्तन को दो वर्गों में बाँटकर अध्ययन किया गया है। वैसे प्रखण्ड जिसमें 2001 से 2011 में लिंगानुपात में वृद्धि हुई है। दुसरे वैसे प्रखण्ड जिसमें 2001 से 2011 में लिंगानुपात में कमी हुई है। इसमें लिंगानुपात में वृद्धि वाले मात्र तीन प्रखण्ड बारून, औरंगाबाद तथा कुटुम्बा है। बारून में 2001 में लिंगानुपात 919 था जो 2011 में 926 हो गया। इसमें 0.85 प्रतिशत का सकारात्मक परिवर्तन हुआ। औरंगाबाद प्रखण्ड में लिंगानुपात 2001 में 909 था, जो 2011 में 916 हो गया। इस प्रखण्ड में 0.76 प्रतिशत की धनात्मक परिवर्तन हुआ। कुटुम्बा प्रखण्ड में लिंगानुपात 2001 में 938 था जो 2011 में 939 हो गया। इस प्रखण्ड में 0.13 प्रतिशत की धनात्मक वृद्धि हुई। शेष सभी प्रखण्डों में ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है। 2001 में देव, दाउदनगर, ओबरा, मदनपुर, गोह, नबीनगर, रफीगंज तथा हसपुरा में लिंगानुपात क्रमशः 943, 930, 928, 944, 936, 942, 936 तथा 958 था जो 2011 में घटकर क्रमशः 940, 925, 923, 932, 922, 926, 920 तथा 926 हो गया। इन सभी प्रखण्डों में ऋणात्मक परिवर्तन क्रमशः –0.34 प्रतिशत, –0.54 प्रतिशत, –0.60 प्रतिशत, –1.26 प्रतिशत, –1.52 प्रतिशत, –1.74 प्रतिशत, –1.76 प्रतिशत तथा –3.00 प्रतिशत हुआ है।

जनगणना 2001 तथा 2011 के लिंगानुपात के विश्लेषण से पाया कि औरंगाबाद जिला में प्रखण्ड स्तर पर धनात्मक तथा ऋणात्मक विचलन पाया गया है।

धनात्मक विचलन (जहाँ विगत वर्ष से लिंगानुपात में वृद्धि हुई है)–औरंगाबाद जिला के 11 प्रखण्डों में से मात्र तीन प्रखण्डों (औरंगाबाद, बारून तथा कुटुम्बा) में धनात्मक विचलन मिलते हैं।

ऋणात्मक विचलन (जहाँ विगत से लिंगानुपात में कमी हुई है)–औरंगाबाद जिला के प्रखण्डों में से 8 प्रखण्डों में ऋणात्मक विचलन मिलते हैं। सबसे अधिक विचलन हसपुरा प्रखण्ड में हुआ है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : उपरोक्त शोध–पत्र के विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अध्ययन क्षेत्र में लिंगानुपात की स्थिति संतोषजनक नहीं है। लिंगानुपात में लगातार गिरावट आयी है, जो 2011 में 916 तक आ गयी है। लिंगानुपात के आँकड़ें बेहद दुर्भाग्यपूर्ण और चिंताजनक है। औरंगाबाद जिला में निम्न लिंगानुपात के विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक कारक है, जिसमें प्रमुख रूप से पुत्र को वरीयता देना है। लिंगानुपात के अन्य कारकों में कन्या भ्रूण हत्या, बालिकाओं की उपेक्षा, देहज प्रथा, दहेज के लिए हत्या, स्वास्थ्य उपाचार में भेदभाव, मातृ मृत्युदर आदि प्रमुख है।

वर्तमान अध्ययन के आलोक में महिलाओं की समग्र स्थिति में सुधार के लिए निम्नालिखित सुझाव दी जाती है–

- औरंगाबाद जिला में महिला निरक्षरता एक बड़ी समस्या है। यह जिला में महिलाओं और लड़कियों के समग्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के मार्ग में सबसे कठिन समस्याओं में से एक हैं। सरकार और गैर सरकारी संगठनों को निरक्षरता उन्मूलन के लिए सकारात्मक रूप से कार्य करना चाहिए।
- बालिकाओं के महत्व के बारे में जागरूकता फैलाई जानी चाहिए और बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं जैसी संस्थाओं को पूर्ण समर्थन दिया जाना चाहिए।
- महिलाओं में वित्तीय स्वतंत्रता बढ़ाई जानी चाहिए।
- समाज में महिलाओं और लड़कियों में भेदभाव न हो इसके लिए जन जागरूकता लायी जाय।

● भारत में महिलाओं के कल्याण के लिए विभिन्न कानून है जिन्हें लागू किया जाना चाहिए।

चूँकि महिलाँ घरेलू कार्य, कृषि कार्य से लेकर रोजगार कार्य में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके बिना समग्र विकास संभव नहीं है। लिंगानुपात में संतुलन नहीं होने से अनेक सामाजिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती है। इसलिए इनका अनुपात पुरुषों की तुलना में कम नहीं होनी चाहिए। इसलिए संतुलित लिंगानुपात को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची

1. शकील, ए. (2014), ट्रेन्डस एण्ड पैटर्न्स ऑफ पोपुलेशन ग्रोथ एण्ड फुड सिक्यूरिटी इन इस्टर्न, उत्तर प्रदेश, पी–एच.डी. थीसिस, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

2. ताजुद्दीन, एम. (1996), बक्सर डिस्ट्रिक्ट : ए स्टडी इन इंटीग्रेल्ड रूरल डेभलप्मेंट पी–एच.डी. थीसिस (अनपब्लिश्ड) पृ. 43

3. मैथानी, बी.पी. (1986), स्पास्यिल एनालिसिस ऑफ माइक्रो लेवर प्लांनिंग : ए केस स्टडी ऑफ सेन्ट्रल प्लेस सिस्टम एण्ड स्पासिपल ऑर्गेनाइजेशन्स इन द हिल्स, ओमसन्स पब्लिकेशन्स, न्यू–दिल्ली, पृ. 24

4. Agnihotri, S.B. (2000), Sex Ratio Pattern in the India Population : A Fresh Exploration Sage, New Delhi.

5. Das, N. (1987), Sex Preference and Fertility Behaviour : A Study of Recent India Data Demography, 24, 517-530.

6. Clark, S. (2000), Sex Preference and Sex Composition of Children Evidence from India, Demography, 37, 477-487.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 220-223

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

*डॉ. राजेश त्रिपाठी** *कृष्ण पाल सिंह परमार***

शोध सारांश : *समाज में महलाओं विरूद्ध हिंसा व अपराध की समस्याद नवीन विषय नहीं है। समय के साथ समाज में महिलाओं के समान अधिकार व विकास, सुरक्षा के लिए कई प्रयास किये गये। किन्तुह महिलाओं के विरूद्ध हिंसा में वृद्धि हुई है। इस लेख का उद्देश्यत हिंसा के कारण का अध्ययन व शासन के प्रयासों का अध्ययन करना है।*

शब्द कुंजी– *IPC, NCRB, NGO, CAWC, POCSO*

प्रस्तावना : वर्तमान में सामाजिक विज्ञान में शोधकर्ताओं, केन्द्रीय और राज्य सरकारों, सुधारकों का ध्यान महिलाओं की समस्या एवं उनके विरूद्ध हिंसा ने आकृष्ट किया है। भारतीय समाज में महिलाएँ एक लम्बी काल से अवमानित, यातना और शोषण का शिकार रही है। महलाओं के विरुद्ध हिंसा या अपराध कार्यस्थल, सार्वजनिक स्थल मात्र एक सीमित नहीं रही, सबसे अधिक हिंसा या अपराध उनके घर या परिवार में होती है।

स्वाधीनता के पश्चात हमारे समाज में महिलाओं के समर्थन में बनाए गए कानूनों, महिलाओं में शिक्षा के फैलाव और महिलाओं की धीरे–धीरे बढती हुई आर्थिक स्वहतंत्रता के बावजूद असंख्यम महिलाएँ अभी भी हिंसा की शिकार है। उनको पीटा जाता है, उनका अपहरण होता है। उनके साथ बलात्कार किया जाता है। दहेज के लिये उन्हेंय जिंदा जला दिया जाता है।

महिलाओं का उत्पीड़न (Women's Harassment) : महिलाओं के प्रति अपराध की विचारधारा की कोई सरल या सर्वमान्य परिभाषा नहीं है, परन्तु नई ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी (2005 का 7वां संस्क्रण) ने इसकी परिभाषा अपराधिक कृत्य या ऐसा कृत्य जो नैतिक या बड़ी गलती है, तथा कानून द्वारा सजा प्राप्त करने योग्य है।

भारतीय दंड संहिता (IPC) 1860 ने दोष (offence) शब्द का प्रयोग, अपराध (Crime) के स्थोान पर किया है। जो इस संहिता के अनुसार सजा प्राप्त करने योग्य है। एक दोष (offence) दो प्रकार से होता है। किसी कृत्य के करने से या किसी कृत्य के न करने से। इसलिए ऐसे अपराध जो महिलाओं के विरूद्ध हो' या जिसमें 'महिलाएँ पीडित' हो उन्हें महिलाओं के विरूद्ध अपराध माना गया (सिंह 2012) अपहरण, हत्या, पत्नी उत्पीाड़न, बलात्कार तथा छेडखानी आदि महिलाओं के प्रति अपराध के उदा० है।

पुलिस रिसर्च ब्यूरों, दिल्ली द्वारा महिलाओं के विरुद्ध अपराध को दो श्रेणी में बांटा गया है– (i) IPC इंडियन पिंनल कोड के अन्तर्गत आने वाले अपराध (क्राइम इन इण्डिया, नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो, दिल्ली 1994 : 204)। पहली श्रेणी में 7 अपराध बलात्कार, अपहरण, एवं भगा कर ले जाना, दहेज के लिए हत्या, प्रताड़ना (मानसिक एवं शारीरिक), उत्पीड़न एवं छेड़छाड़ और 21 वर्ष से कम आयु की महिलाओं के साथ दुराग्रह।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की प्रकृति विस्तार और विशेषताएं–विभिन्न एजेन्सीं द्वारा दिये गये आंकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है। कि महिलाओं के विरूद्ध अपराध विगत वर्षों में बढ़ रहे हैं। NCP द्वारा जारी आंकड़ों के आधार पर NGO द्वारा किये गए अध्ययन के अनुसार 1998 से 2011 के बीच 13 वर्षों में महिलाओं के प्रति अपराध में 74% वृद्धि दर्ज की गई है। घरेलू हिंसा के मामलों में वृद्धि की दर सबसे ज्यादा 140 प्रतिशत पर है, अपहरण 117 प्रतिशत, बलात्कार 60 प्रतिशत और छेड़छाड़ 40 प्रतिशत है। लगभग 30 प्रतिशत

* *एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकुट, सतना, म.प्र.*

** *शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकुट, सतना, म.प्र.*

मामले पति और ससुराल वालों द्वारा क्रूरता के हैं (द संडे गार्जियन, 6 अप्रैल, 2013)। इसी तरह लोकसभा सचिवालय (No-2/RN/Ref/2013) द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं के प्रति अपराध की कुछ घटनायें (दोनों IPL और SLL) जो 2007 में 1,85,312 थी, 2011 में बढ़कर 2,28,650 हो गई। वर्ष 2012 में, यह संख्या 2,44,270 थी इस प्रकार वर्ष के दौरान 7 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई। अपराध के लिहाज से यह आँकड़ा इस प्रकार है– अपहरण (38,262), उनके शील भंग करने के इरादे के साथ महिलाओं पर हमला (45,351) महिलाओं के शील भंग के लिए किए गए अपमान (9,173), पति और उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता (1,06,527) और विदेशों से लड़कियों की छल से दोखे से लाना (59) प्रतिशत के आधार पर हर वर्ष कुल अपराध क्रमशः 1.6, 1.9, 0.4, 4.5 और 0.0 हो रहे हैं भारतीय दंड संहिता (IPC) के तहत। यह कहा जाता है कि भारत में हर 20 मिनट में एक बलात्कार हर 25 मिनट में छेड़छाड़, हर 40 मिनट में अपहरण और हर 4 घंटों में दहेज हत्या होती है।

राजस्थाान में भारतीय दंड संहिता मामलों का अनुपात राष्ट्रीय औसत के रूप में कुल अपराधों में महिलाओं के खिलाफ प्रतिबद्ध अधिक या कम ही रह गया है। राजस्थांन पुलिस की वेबसाइट के मुताबिक वर्ष 2012 में राज्य में कुल 1,07,948 अपराधों के मामले सूचित किए गए जिसमें से 21,975 (या 12.81 प्रतिशत) महिलाओं के खिलाफ थे।

अपराधों के विरूद्ध महिला सैल (CAWA) और दिल्ली पलिस स्टेशन में दर्ज महिलाओं के खिलाफ अपराध मे वृद्धि और अन्य मामलों की संख्या में बढ़ोत्तरी से यह स्पष्ट है कि महिलाओं के विरुद्ध अपराध में वृद्धि हुई शिकायतों की संख्याप 2007 में 9853 से बढ़कर 2011 के 11,419 हो गई लगभग 16 प्रतिशत की वृद्धि (सिफी, न्यूज 16 सितंबर 2012) मामलों में वृद्धि जरूरी नहीं हुई कि बढ़ती रिपोर्टिंग की वजह से है लेकिन यह केवल लेकिन समानता और महिलाओं के अधिकार में बढ़ती जागरूकता का संकेत है उनकी सुरक्षा के लिए नये कानून मे पीड़ित का विश्वास है और इस तरह की संस्थाएँ जैसे महिला न्यायालय ओर गैर–सरकारी संगठन महिलाओं के लिए काम रक रहे हैं। लेकिन हम सभी को पता है कि विभिन्न कारणों की वजह से सभी मामलों की सूचना नहीं दी जाती ओर न ही दर्ज होते हैं। घरेलू हिंसा जैसे पत्नी को पीटने या घर पर प्रताड़ित महिलाओं की सूचना नहीं दी जाती लेकिन संकलित मामलों की चर्चा करते हुए हमें महिलाओं के खिलाफ के हिंसा की प्रकृति और विस्तांर के बारे में कुछ अनुमान हो सकता है। हम कुछ व्यक्तिगत मामलों के विस्तार और लक्षणो का नीचे विश्लेषण करेगे।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के प्रकार–लैंगिक समानता और महिलाओं में उनके अधिकारों की जागरूकता का परिणाम है कि महिलाओं ने हिंसा के विरूद्ध आवाज उठाना शुरू कर दी है। किंतु फिर भी विभिन्न कारणों की वजह से सभी मामलों की सूचना नहीं दी जाती है। जिसमें घरेलु हिंसा, पत्नी के साथ मार–पीट, जबरन यौन शोषण आदि को उनके द्वारा छिपा लिया जाता है।

यहाँ हम कुछ समान्यप रूप से घटित होती रहने वाली हिंसा की घटनाओं का अध्ययन करेंगें।

दहेज से संबंधित हत्याएँ–हर माता पिता का एक सपना होता है कि अपनी बेटी की शादी एक ऐसे घर में करे जहाँ उसे कोई तकलीफ परेशानी न हो। किन्तु दहेज हत्या एक बड़ी समस्या बन गयी है। जहाँ दहेज की लालच मे पति अथवा ससुराल पक्ष के लोगों द्वारा प्रताड़ित होकर महिलाएँ आत्महत्या या हत्या की जाती है। एक अनुमान के मुताबिक प्रत्येक 90 मिनट में एक हत्या हदेज की वजह से होती है।

केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री अजय कुमार मिश्रा द्वारा राज्यसभा में साझा किए गये आंकड़ों के अनुसार, 2017–2021 के बीच देश में 35,493 दहेज हत्याएँ हुई। वर्ष 2017 में 7,466, वर्ष 2019 में 6,966 वर्ष 2021 में 6,753 दहेज के कारण हुई मोत दर्ज की गई।

पत्नीत को पटिना–महिलाओं के विरूद्ध हिंसा में सबसे अधिक मामले घरेलु, हिंसा पत्नी के साथ मारपीट के हैं। इस प्रकार के केस में सामान्यतः पीड़िता हिंसा के विरूद्ध आवाज नहीं उठाती है।

इस प्रकार की हिंसा का शिकार बड़े घराने की महिलाओं से लेकर गरीब वर्ग के घरों में सामान्य रूप से देखने मिलती है।

बलात्काार–बलात्काल वर्तमान में भारत में गंभीर समस्या बन गई है। देश में परिस्थिति इतनी बद्तर हो चुकी है कि 4 माह के बच्चे से लेकर 70 वर्ष की महिला तक का बलात्कांर करने में नहीं हिचकते हैं।

2012, NCRB की एक रिर्पाट के अनुसार भारत में बलात्कार तेजी से बढ़ता अपराध हे। 1971–2012 के बीच इसमें 902 % की वृद्धि हूई हे, 2011 में 24,206 से 2012 में बढ़कर 24,930 वर्ष 2021 में यह बढकर 31,677 हो गया अर्थात प्रतिदिन 86 घटना घटित हुई जिसमें से 49 केस दर्ज होते हैं।

17 Jan 2018 kathua (J&K) में 8 वर्ष की नाबलिग के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना हुई। वहीं इंदौर में 21 अप्रैल, 2018 को 4 माह की बंच्चे के साथ फिर से यही घटना हुई। ऐसे कई केस देश में है जो लोक–लाज शक्ति सम्पन्न, रसूखदार लोगों के प्रभाव दबाव के कारण कभी सामने नहीं आते हैं।

एसिड हमले/तेजाब फेंकना–भारत उन देशों में से एक हैं जहां एसिड फेंकने या हमलों के मामले सबसे अधिक होते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में हर साल लगभग 1000 एसिड हमले होते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से इस बढ़ते हुए खतरे के खिलाफ महिलाओं के संघर्ष में कानूनी उदासीनता सबसे ज्यादा निराशाजनक पहलू है। निकिता दोवल की द वीक (20 मई, 2012) में प्रकाशित कवर स्टोरी 'लास्ट वर्ल्ड' कहती है, वर्तमान में इसके हिंसात्मक आचरण के बावजूद एसिड हमलों में विशेष रूप से भारतीय दंड संहिता में संबंधित अनुभाग नहीं है। एसिड हमलों के मामलों को भारतीय दंड संहिता के अनुभाग 300, 322, 325 और 326 से निबटा रहे हैं। इसमें से केवल धारा 326 में ही संरक्षक वस्तु, से हमले के मुद्दे की बात होती है, लेकिन इसे गंभीर चोट के रूप में माना गया है। हालांकि यह धारा अजीवन कारावास तक की सजा की अनुमति देती है, ज्याादातर दोषियों को केवल 3–4 वर्ष की जेल की सजा मिलती है। अगर आदेश दिया है, तो मुआवजा अक्सर आंशिक रूप से होता है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा रोकने हेतु प्रयास–महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विभिन्न रूपों को (लिंग आधारित, शारीरिक व मानसिक अपराधों) रोकने के लिए प्रशासन द्वारा विभिन्न योजनाओं अधिनियमों को लागू किया है। समय के साथ समाज में भी महिलाओं के अधिकारों व समानता का प्रसार हुआ है। महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए, अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों व अपराधों के विरूद्ध खुलकर आवाज उठा रही हैं।

1. संविधान द्वारा महिलाओं को संरक्षण–भारतीय संविधान महिलाओं को न केवल समानता का अधि ाकार बल्कि राज्य को यह अधिकार देता है कि महिलाओ के अधिकारो व विकास के लिए विशेष अधिनियम व कानूनों को बनाये व लागू किये जा सकते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में महिलाओं व पुरुषों को राजनैतिक, आर्थिक, व सामाजिक स्तर पर सामान अवसर प्रदान किये जायेंगे।

अनुच्छेद 39 (a) राज्यों को अधिकार देता है कि वह अपने नागरिकों के लिए लिंग भेद को नजरअंदाज करते हुए सभी को समानता का व कार्य करने का अधिकार प्रदान करता है।

2. प्रशासन द्वारा महिलाओ को संरक्षण–प्रशासन द्वारा समय समय पर कार्यपालिका को महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण व हिंसा के विरूद्ध सुरक्षा के लिए विभिन्न अध्यादेश व कानूनों का विधान किया गया है। प्रशासन ने महिलाओं के संरक्षण के लिए National and State Commissions, महिला पुलिस थाने, महिलाओं के विरूद्ध अपराधों के लिए सुनवाई हेतु पृथक जांच विभाग की स्थापना।

सरकार द्वारा NGO के साथ मिलकर वन स्टॉप सेंटर पीड़ित महिलाओं के लिए हॉस्टल व काउंसलिंग की व्यावस्था की गई है। कामकाजी महिलाओं के लिए विभिन्न स्थानों पर सार्ट होम स्टे की भी व्यवस्था की गई है। सरकार द्वारा महिलओं के आर्थिक विकास हेतु मनरेगा प्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना, उज्जवला योजना, लाडली लक्ष्मी योजना, सबला योजना, सुकन्या समृद्धि आदि योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। जिनका उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सामानता प्रदान करना है।

3. कार्यपालिका द्वारा महिलाओं को संरक्षण–भारतीय कार्यपालिका में महिलाओं के विरूद्ध किये गए विभिन्नि अपराधों व कृत्यों के संदर्भ में विभिन्न धाराएँ बनाई हैं। जिनका उल्लंघंन करने पर दंड का प्रावधान किया गया है।

उक्तए धाराएँ मुख्यल रूप से ये हैं–

भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत चिन्हित अपराध (IPC)

I. Rape (sec.376 IPC)

II. Kidnapping and abduction for different purposes (sec.363- 373 IPC)

III. Homicide for Dowry, Dowry Deaths of their attempts (sec.302/304- B of IPC)

IV. Torture, both mental and physical (sec.498-A of IPC)

V. Molestation (sec.354 of IPC)

VI. Sexual harassment (sec. 509 of IPC)

VII. Importation of girls (upto 21 years of age) (sec. 366 –B of IPC)

विशेष कानून के अंतर्गत उल्लेमखित अपराध

I. Commission of Sati (Prevention) Act, 1987

II. Dowry Prohibition Act, 1961

III. Indecent Representation of Women (Prohibition) Act, 1986

IV. Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956

V. Protection of Women from Domestic Violence Act,2005

Refrences

1. Ahuja, Mukesh, Window, New Age Publisher, Delhi 1996

2. Sociological Criminology, New Age Publisher, Delhi 1966

3. Blumer, D., Neuro-psyhtic Aspects of Voiolent of Behivor, University of Toronto, Canda

4. Borland, D., Marie (ed.), Violence in the Family Manchester, University Press, Manchester 1976

5. Chaoman, J.K, An Gates na Margaret (ed.), The Victimaztion of Women, Saga Publications Behverly Hills, Califoria 1976

6. Finkelhor lynn, A Criminal Richarad, Luxingtion Hotaling Gareld and Stars Murya, The Dark Side of Familes, Sage Publication Bevery, Hills California 1983

7. Hiberman, E. and Munson, M., Sixty Battred Women, Victimology A International Journal, vol. 1979-78

8. Leonard, E.B., Women Crime and Society, Longma,n New York 1982

9. Roy, Mariya ed., Buttered Women A Psycho-socialogical Study of Domestic Violence Van Nostrand Rinihold, New York 1977

10. Singh, Awadhesh Kumar, Violence Against Women and Children, Serials Publication, New Delhi 2012.

11. Strimrez, S.K. ad. Straus M. A. eds., Violence in the Family Harper and Row, New York

12. Thinking, J.R., Alchor and P.G. Bourne and R.E eds., Alcoholism Progress in Research and Treament Academic Press, New York 1973

13. Wilson Elizabeth, What is the Done About Violence Against Women, Penguin Hammondsworth, 1983

14. Wolfgang, M.E., et al. (eds), Perspective in Murder and Aggression John Wiley, New York 1978

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 224-229

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

जहानाबाद जिले में स्वयं सहायता समूह का जलवायू के कारण सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर प्रभाव

*विजीता कुमारी** *डॉ. मनीषा कुमारी***

सारांश–*जलवायु का सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। भारत का अधिकांश कृषि क्षेत्र मानसून पर आधारित है। यहॉ की ऋतुओं को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु एवं शरद ऋतु बिहार की जलवायु भी सामान्य प्रकार की है। मानसून के समय बिहार में अधिकांश वर्षा होती है। बिहार को जलवायु के आधार पर दो क्षेत्रों में बांटा जा सकता है, उत्तरी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र। मानसून के समय उत्तरी भाग में अक्सर बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती है। जबकि दक्षिणी भाग में कभी–कभी सुखाड़ की स्थिति पैदा हो जाती है। क्योंकि उत्तरी क्षेत्र की तुलना में दक्षिणी क्षेत्र में वर्षा कम होती है।*

जहानाबाद जिले के जलवायु शुष्क होने के कारण मानसून में भी वर्षा कम होती है। जिसका प्रभाव कृषि कार्यों पर पड़ता है। यहाँ सिंचाई की सुविधा कम होने के कारण कृषि कार्य मानसून पर आधारित है। चूँकि जहानाबाद के ग्रामीण क्षेत्रों के लोग कृषि पर निर्भर करते हैं। कृषि कार्य कम वर्षा के कारण बाधित होती है। जिससे उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में स्वयं सहायता समूह जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये समुदाय को संगठित करते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल और कम करने के लिए स्थानीय समाधानों को बढ़ावा देते हैं और आपदा प्रबंधन में सहायता करते हैं। समूह अपने सदस्यों की आवश्यकता पूर्ति के लिए उन्हें समय पर ऋण देती है जिससे सदस्य अपनी निजी आवश्यकता की पूर्ति करती है तथा अन्य व्यावसायिक कार्यों को करने में सक्षम होती है।

स्वयं सहायता समूह अधिकतम 20 सदस्यों का समूह होता है और जो अपनी समस्याओं के कारण एकत्रित होत हैं तथा स्वेच्छा से अपने नियमित बचत करते हैं। स्वयं सहायता समूह अपने सदस्यों को सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए अपना सहयोग देती है। प्रस्तुत शोध–पत्र जहानाबाद जिला से संबंधित है। 150 प्राथमिक के आंकड़ों को उत्तरदाताओं को एकत्रित किया गया है और वर्तमान अध्ययन का उद्देष्य जहानाबाद जिले में स्वयं सहायता समूह का जलवायु के कारण सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर पड़ने का प्रभाव का विश्लेषण करना है। चूँकि जहानाबाद जिले की जलवायु शुष्क है। इसलिए इसका कृषि कार्य पर प्रभाव पड़ता है जिससे ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर इनका प्रभाव पड़ता है।

मुख्य शब्द–*स्वयं सहायता समूह जलवायु, वित्तीय गतिशीलता, कृषि कार्य स्वरोजगार का अवसर, आर्थिक और सामाजिक स्थिति।*

परिचय–आमतौर पर स्वयं सहायता समूह ग्रामीण भारत में बनाये जाते हैं। इनके तुलनात्मक सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के साथ रहने वाले एक विशिष्ट क्षेत्र के 15–20 व्यक्ति शामिल होते हैं। समूह समाज, विश्वास, सहयोग, स्थिति और अन्तःनिर्भरता के मानकों पर काम करते हैं। सभी भाग के लोग मिलकर सभा को आयोजित करने और व्यक्तिगत रूप से विभिन्न मुद्दों पर विचार–विमर्श करते हैं और अपने सामाजिक, आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के अनुसार निर्णय लेते हैं। स्वयं सहायता समूह की बैठके सुविधाकर्त्ता (माईक्रोफाईनेन्स प्रतिष्ठान के मामले में) क्रेडिट अधिकारी द्वारा आयोजित की जाती है और मानक अवधि में बैठक होती है। वे

* *शोध छात्रा, भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार*

** *असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, एस.बी. कॉलेज, आरा, बिहार*

आमतौर पर संग्रह और आरक्षित निधि और क्रेडिट एक्सचेन्ज के प्रतिनिधित्व करने के संबंध में वित्तीय व्यवस्था को अपनाते हैं। इसमें व्यक्तियों के बीच संचार और समूह के सभी व्यक्तियों की समृद्धि के लिए ठोस दायित्व शामिल है। स्वयं सहायता समूह का यह महत्वपूर्ण तंत्र प्रचार का मानक और व्यक्तियों के बीच सामाजिक लगाव के निर्माण पर ठोस जोर है। इसे पूरा करने के लिए व्यक्तियों को अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, विरोधाभाषीयों को हराना होगा और अपने समग्र लाभार्थी को आगे बढ़ाने के लिए एकजुटता का निर्माण करना होगा। अपने नेटवर्क के अंदर संगठनों और संगठनों को और विश्वास को मजबूत करेंगें। ये समूह स्थानीय क्षेत्र को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक और चिकित्सा की देखभाल मुद्दों को निर्धारित करने के लिए सहयोगात्मक रूप से काम करने के लिए बेहतर ढंग से तैयार रहते हैं।

बिहार राज्य को दो जलवायु क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है। एक उत्तरी जलवायु क्षेत्र और दूसरा दक्षिणी जलवायु क्षेत्र है।

(1) उत्तरी जलवायु क्षेत्र में वर्षा अधिक होती है जिससे बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती है। जबकि दक्षिणी जलवायु क्षेत्र में वर्षा कम होती है। इसलिए इसे शुष्क जलवायु क्षेत्र कहा जाता है। चूँकि जहानाबद की अधिकांश ग्रामीण आबादी कृषि कार्यों पर निर्भर रहती है। वर्षा कम होने पर इसका कृषि पर प्रभाव पड़ता है, जिससे लोगों को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। स्वयं सहायता समूह अपने सदस्यों को इस आर्थिक संकट का सामना करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करता है। हाँ उन्हें रोजगार से रोजगार से जोड़ने में मदद करता है।

किसानों को ऐसे संस्थानों की आवश्यकता है जो उनकी आवश्यकताओं खेती और गैर खेती से पूरा करने में मदद कर सके। ऐसे जरुरतों को पूरा करने के लिए उन संस्थानों और व्यक्तियों से सम्पर्क करते हैं जो उनके सबसे करीब होते हैं। अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए बाजार से या सहकारी समिति से उधार लेते हैं। इसके अतिरिक्त रिश्तेदारों और दोस्तों से भी सम्पर्क करते हैं। हालांकि स्वयं सहायता समूह ऐसी संस्थायें हैं जहाँ सदस्य अपनी सामूहिक छोटी बचत से समूह के सदस्यों की मदद करने का प्रयास करते हैं। एक छोटा समूह स्वरोजगार की ओर बढ़ता है। स्वयं सहायता समूह अपने सदस्यों को सरकार द्वारा चलायी जा रही विकास योजनाओं के प्रति जागरूक करती है तथा योजना से लाभ लेने के लिए प्रेरित करती है। जरूरतमंद व्यक्ति को स्वयं सहायता समूह आर्थिक एवं सामाजिक रूप से मजबूत करने के लिए दृढ़ संकल्पित है। आमतौर पर इन लोगों को व्यक्तिगत रूप से औपचारिक बैंकिंग प्रणाली तक पहुँच नहीं होती है। साहूकार उनकी जरूरतों के समय उनका शोषण करते हैं। इन दोनों स्थितियों से निपटने के लिए स्वयं सहायता समूह बनाने की आवश्यकता महसूस की गयी है। सदस्य अपने सामूहिक संसाधन के साथ कुछ आय सृजन गतिविधियाँ अपनाते हैं, जिससे उनके घर में अतिरिक्त आय हो। इस प्रकार के संस्थायें अपनी जमीनी स्तर पर गरीबी उन्मूलन और सामाजिक एकजुटता के लिए शक्तिशाली उपकरण बन जाती है।

अध्ययन समीक्षा–सुजाता (2011) ने महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह के हिस्से और सामाजिक विकास के मुद्दों की जाँच करने का प्रयास किया था जो महिलाओं की आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक विकास के स्थानों की खोज के एक पदानुक्रमित अवसर के रूप में प्रतीत है। स्वयं सहायता समूह के अध्ययन के माध्यम से किसी अन्य सहायता समूह के बिना किया गया था। जाँच में पाया गया कि महिलायें वास्तव में अपने परिवार में प्रधान होती है। महिलाओं को स्वयं सहायता समूह से व्यक्तिगत रूप से अपने परिवार के लिए आर्थिक, उपार्जन के रूप में देखा गया।

कपूर, शिखा (2019) ने कहा कि आज के समय में कोई भी देश अपने ऐसे किसी भी निवासी को बर्दाश्त नहीं कर सकता जो आर्थिक विकास के उपयुक्त न हो और मामले पेश कर यह प्रदर्शित करे कि जनता की नजरों में उनका क्या प्रभाव है। यह जाँचने का प्रयास करता है कि सामाजिक उन्नति के एक हिस्से के रूप में स्वयं सहायता समूह को उपयोग व्यावसायिक उद्यम सम्मन के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए प्रयास किया जा सकता है। यह किसी तरह परिवार में लाभदायक और मौद्रिक प्रतिवद्धता में महिलाओं के सहयोग से इसके सामाजिक और आर्थिक प्रभाव को भी उजागर करता है। बाद में स्वयं सहायता समूह के महत्व को दर्शाता है।

उद्देश्य–जहानाबाद जिला में सामाजिक और आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूह की भूमिका का विश्लेषण।

अनुसंधान पद्धति–अनुसंधान पद्धति शोध की स्थापना, शोध के पैटर्न को दर्शाती है। वर्तमान शोध अध्ययन में सामाजिक और आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूह की भूमिका का विश्लेषण करने के लिए खोजपूर्ण शोध

पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसमें जलवायु के प्रभाव का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव की जाँच करना है। यह शोध अध्ययन जहानाबाद जिला में किया गया है। प्राथमिक तथ्यों को संग्रह करने के लिए जहानाबाद जिला में स्वयं सहायता समूह के सदस्यों से 150 इकाईयों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के द्वारा किया गया है। द्वितीय तथ्यों का संकलन पत्रिकाओं, शोध पत्र, जर्नल, लेखों की समीक्षा एवं इंटरनेट आदि के सहयोग से किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण–जहानाबाद जिले में स्वयं सहायता समूह के प्रदर्शन को क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान एकत्र किये गये प्राथमिक तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से संक्षेपित तौर पर समझाया जा सकता है। अध्ययन के विश्लेषण से योजना के प्रभाव और लाभार्थियों के आय के स्तर में वृहद, बचत पैटर्न में वृहद् और लाभार्थियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति जैसे कारकों पर इसके प्रभाव की प्रदर्शित होता है। अध्ययन से पता चलता है कि लगभग दो तिहाई 63.30 प्रतिशत लाभार्थी 61–50 वर्ष के आयु वर्ग के थे। इसके अलावा दो तिहाई 66 प्रतिशत विवाहित थे। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि 100 प्रतिशत उत्तरदाता साक्षर थे। इनमें 76 प्रतिशत प्राथमिक और मध्य विद्यालय की शिक्षा प्राप्त की तथा 22 प्रतिशत में हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की और केवल एक प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने कॉलेज (स्नातक) से उपर की डिग्री प्राप्त की।

यह भी पाया गया कि अधिकांश 55.70 प्रतिशत उत्तरदाता भूमिहीन थे। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि स्वयं सहायता समूह में शामिल होने के बाद उत्तरदाताओं की आय के स्तर में सकारात्मक बदलाव आया है। यह भी पाया गया कि स्वयं सहायता समूह में शामिल होने से पहले 9.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं की कोई आय नहीं थी और किसी भी उत्तरदाताओं की आय 10 हजार से अधिक नहीं थी। लेकिन स्वयं सहायता समूह में शामिल होने के बाद कोई भी उत्तरदाता बिना किसी आय के नहीं था और 6.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी आय का स्तर 10 हजार से उपर कर लिया।

तालिका संख्या–01

आय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
20 वर्ष तक	20	13.40
21–30	28	18.60
31–40	55	56.80
41–50	40	26.50
50 से उपर	07	4.70
कुल	150	100.00

तालिका संख्या–02

शिक्षा स्तर	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
प्राथमिक	75	50.00
मध्य	39	26.00
मैट्रिक	33	22.00
स्नातक	03	2.00
कुल	150	100.00

तालिका संख्या–03

वैवाहिक स्तर	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
अविवाहित	30	20.00
विवाहित	99	66.00
विधवा	21	14.00
कुल	150	100.00

तालिका संख्या–04

समूह से जुड़ने के बाद उत्तरदाताओं की आय

आय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
500 तक	15	10.00
501–1000	29	19.30
1001–2000	26	17.30
2001–3000	23	15.30
3001–5000	24	16.10
5001–10000	23	15.30
10000 से उपर	10	6.70
कुल	150	100.00

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि समूह में शामिल होने के बाद स्वयं सहायता समूह की मासिक बचत काफी बढ़ गयी है। यह भी पाया गया है कि स्वयं सहायता समूह में शामिल होने के बाद उत्तरदाताओं की सम्पति प्राप्त करने में सक्षम हुए। यह भी देखा गया है कि समूह में शामिल होने के बाद कई आर्थिक गतिविधियाँ शुरु की गयी।

तालिका संख्या–05

जहानाबाद जिले में मासिक वर्षा

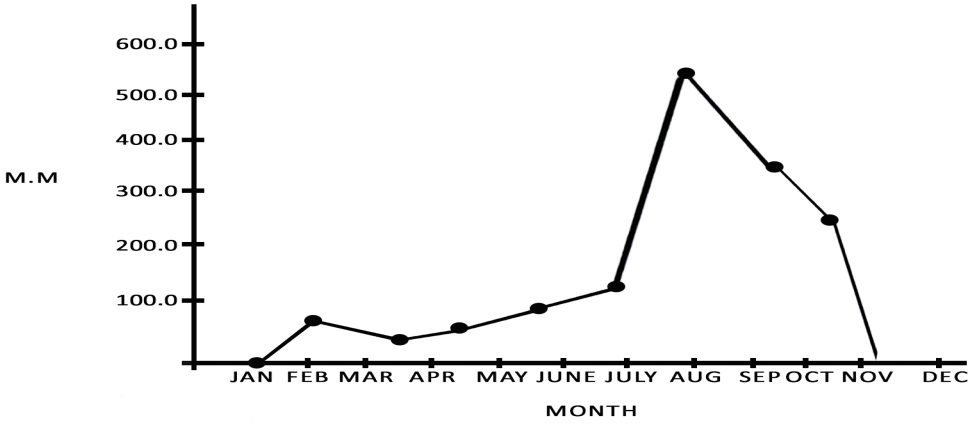

मई	38.73^0C	101.71^0F
जून	37.78^0C	100.00^0F
अप्रैल	36.40^0C	97.52^0F
जुलाई	33.78^0C	92.80^0F
अगस्त	31.73^0C	89.10^0F
सितम्बर	30.86^0C	87.55^0F
मार्च	29.87^0C	85.77^0F
अक्टूबर	28.09^0C	82.56^0F
नवम्बर	23.81^0C	82.56^0F
फरवरी	22.80^0C	73.80^0F
दिसम्बर	20.48^0C	68.86^0F

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि इस जिला में जुलाई और अगस्त महीने में अधिक तापमान रहता है तथा यहां अधिकतम तापमान अप्रैल महीना से जुन महीना में होता है तथा शरद ऋतु का मौसम नवम्बर से फरवरी महीना तक रहता है। इसका प्रभाव कृषि कार्यों पर पड़ता है। जिससे लोगों में सक्रियता बढ़ जाती है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि स्वयं सहायता समूह के बाद सदस्यों में पड़ोसियों में मदद करने की सक्रियता बढ़ जाती है, जिससे उनके सम्मान में वृद्धि हुई है तथा सदस्यों को सामाजिक स्तर ऊँचा हुआ है। लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

अध्ययन से पता चलता है कि समूह में शामिल होने के बाद परिवार के सदस्यों में प्रतिस्पर्धा के प्रति सम्मान बढ़ गया है। साथ ही अधिकांश उत्तरदाता स्वयं सहायता समूह में शामिल होने के बाद सक्रिय रूप से पड़ोसियों को मदद कर रहे हैं। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि समूह से जुड़ने के बाद सदस्यों के सामाजिक स्तर में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष–स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम से स्पष्ट रूप में गरीबों के जीवन में केन्द्रीय भूमिका निभाता है। जहानाबाद जिले में यह कार्यक्रम गरीब लोगों के बीच पहुँचाने में बहुत सफल होता दिख रहा है। महत्वपूर्ण बात यह है कि घरेलू आय में वृद्धि का प्रमाण है। यह है कि प्रभाव का बहुत महत्वपूर्ण संकेत है। कार्यक्रम में प्रतिभागियों के लिए जीवन स्तर में वृद्धि हुई है और कार्यक्रम से लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा का बहुत अधिक लाभ हुआ है। कार्यक्रम में ऋण देना उन मुख्य तरीकों में से एक है, जिससे लोगों को बीमारी आपात स्थिति और संकट के साथ खाद्य सुरक्षा को दूर करते हैं। जहाँ कार्यक्रम के प्रतिभागी स्थानान्तरण करते प्रतीत होते हैं। इन खर्चों को पूरा करने के लिए स्वयं सहायता समूह ऋण का स्रोत है। व्यक्तिगत स्तर पर इस बात के प्रमाण है कि कार्यक्रम पहले से ही अपेक्षाकृत सशक्त लोगों को आकर्षित करता है और कार्यक्रम में भागीदारी के माध्यम से कुछ लोगों के बीच सशक्तिकरण होता है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया आत्मसम्मान में वृद्धि के रूप में प्रकट होती है। कार्यक्रम में भागीदारी पारिवारिक स्तर पर निर्णय लेने में बदलाव से भी जुड़ी है। कार्यक्रमों में संगठनों के बारे में कहीं अधिक जागरूक है। स्वयं सहायता समूह बेरोजगारों के प्रशिक्षण, बुनियादी ढांचे के विकास विपणन और प्रौद्योगिकी सहायता, सदस्यों के संचार स्तर सदस्यों के बीच आत्मविश्वास पारिवारिक हिस्सा में बदलाव, बाहरी लोगों के साथ बातचीत को आवृति सदस्यों के बचत पैटर्न पर बदलाव में स्वयं सहायता समूह की महत्वपूर्ण भूमिका है।

संदर्भ–सूची

1. जानकी राधाकृष्ण (2007), वोमेन इम्पावरमेन्ट थ्रो सेल्फ हेल्प ग्रुप, न्यू सेंचुरी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. परमिन्दर सिंह (2001), द्वि परफॉर्मेन्स ऑफ सेल्फ हेल्प ग्रास इन पंजाब, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर इकोनोमिक, वॉइस नं.–03

3. गुलाब, एस.एन. चन्द्रशेखर राव (2003), वोमेन्स सेल्फ हेल्प ग्रुप्स, पॉवर एलिवेशन एण्ड इम्पावरमेन्ट, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 38 (12, 13)

4. गंगा, आर. (2007), इकोनोमिक इम्पावरमेन्ट ऑफ रुरल वोमेन थ्रो सेल्फ हेल्प ग्रुप्स, न्यू सेन्चुरी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

5. शारदा, ए. (2010), सेल्फ हेल्प ग्रुप एण्ड ओमेन इम्पावरमेन्ट–ए केस स्टडी विथ रिफिरेन्स टू चेन्नई, अभिजित पब्लिकेशन, दिल्ली पृ. 278–286

6. कृष्णामूर्ति, एन.ए. (2007), वोमेन इम्पावरमेन्ट थ्रो सेल्फ हेल्प ग्रुप इन तामिलनाडु, न्यू सेन्चुरी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

7. कुमकुम नारायण (2008), इम्पावरिंग वोमेन थ्रो इकोनोमिक मेजर्स, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

8. महाजन एण्ड विजय (2005), फ्रोम डाईक्रो क्रेडिट टू लिवलिहुड फाईनेन्स इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली 40(41), पृ. 4416–4419

9. नमजूदरी, एन.वी. (2001), ''पॉटेन्शियल रोल ऑफ सेल्फ हेल्प ग्रुप्स इन रुरल फाईनेन्सियल डिपेंडिंग, इण्डियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनोमिक, 56(3), पृ. 401–09

10. ओझा, आर.के. (2001), सेल्फ हेल्प ग्रुप्स एण्ड रुरल इम्पलायमेन्ट; योजना मई, पृ. 20–24

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 230-235

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

नई शिक्षा नीति-2020 के परिप्रेक्ष्य में यथार्थ ज्ञान और मूल्य शिक्षा : महर्षि पतंजलि के योग दर्शन के सम्बन्ध में

*प्रो. (डॉ.) दिनेश प्रसाद मिश्रा** *शुभंकर पाण्डेय***

सारांश : *प्रस्तुत शोध पत्र में नई शिक्षा नीति–2020 के मूल उद्देश्य समग्र विकास, यथार्थ ज्ञान और मूल्यपरक शिक्षा के संदर्भ में महर्षि पतंजलि के योग दर्शन की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। योगदर्शन में वर्णित अष्टांग योग, यम–नियम, ध्यान, समाधि आदि शिक्षार्थी के चरित्र निर्माण, आत्मविकास एवं नैतिक मूल्यों के संवर्धन हेतु अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। यह शोध शिक्षा नीति में निहित "नैतिकता और आध्यात्मिकता" की संकल्पना को भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण से स्पष्ट करता है।*

मुख्य शब्द : *नई शिक्षा नीति, योग दर्शन, महर्षि पतंजलि, मूल्य शिक्षा, यथार्थ ज्ञान, अष्टांग योग*

परिचय : शिक्षा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का माध्यम है, जिसका उद्देश्य केवल जानकारी या तथ्यों का संचय नहीं, बल्कि व्यक्ति के आचरण, दृष्टिकोण और चरित्र का निर्माण है। भारतीय परंपरा में शिक्षा को 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् जो मुक्ति की ओर ले जाए के रूप में परिभाषित किया गया है। इस दृष्टिकोण में केवल सांसारिक कौशल नहीं, अपितु आत्मिक एवं नैतिक उत्कर्ष भी निहित है। परंतु आधुनिक भौतिकतावादी युग में शिक्षा का स्वरूप मुख्यतः कौशल आधारित एवं प्रतिस्पर्धात्मक बन गया है, जहाँ नैतिक मूल्य, आत्मज्ञान एवं मानवता जैसे तत्व हाशिए पर चले गए हैं। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2020 में घोषित नई शिक्षा नीति इस एकांगी प्रवृत्ति को संतुलित करने का एक सशक्त प्रयास है। यह नीति एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना प्रस्तुत करती है, जिसमें ज्ञान के साथ–साथ मूल्यों, संस्कृति, आत्म–अनुशासन और आध्यात्मिक चेतना का समावेश हो। नीति में यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी प्रदान करना नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, समावेशी सोच, नैतिक बोध और आत्मिक विकास भी है। इस संदर्भ में भारतीय दर्शन विशेषकर महर्षि पतंजलि के योग दर्शन का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हो जाता है।

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग दर्शन केवल एक शारीरिक साधना पद्धति नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन–दृष्टि है, जिसमें मानसिक शुद्धि, आत्मनियंत्रण, चित्त की स्थिरता तथा मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग वर्णित है। अष्टांग योग के आठ अंग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि न केवल व्यक्तिगत आत्मविकास के साधन हैं, बल्कि इनका शिक्षण और अभ्यास मूल्य शिक्षा के प्रभावी माध्यम भी बन सकते हैं। यम और नियम जैसे सिद्धांत– सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष आदि– विद्यार्थियों में नैतिकता, अनुशासन और जिम्मेदारी जैसे गुणों का विकास करते हैं। नई शिक्षा नीति में स्पष्टतः यह सुझाव दिया गया है कि भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा को विद्यालयी पाठ्यक्रम में समाहित किया जाए। योग को प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक की संरचना में एक आवश्यक घटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः महर्षि पतंजलि का योग दर्शन इस नीति के मूल उद्देश्यों– जैसे नैतिक जागरूकता, समग्र शिक्षा, और आत्मिक संतुलन को मूर्त रूप देने का माध्यम बन सकता है।

इस शोध विषय के माध्यम से यह विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार महर्षि पतंजलि के योग दर्शन की शिक्षाएँ नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों से मेल खाती हैं और किस प्रकार इन्हें आधुनिक मूल्य शिक्षा

* *प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुल्तानपुर, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ.प्र.*

** *शोध छात्र, शिक्षा संकाय, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ.प्र.*

के रूप में विद्यालयी प्रणाली में प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है। यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि वर्तमान संदर्भ में नैतिक पतन और मानसिक तनाव की स्थितियों के समाधान हेतु योग दर्शन कैसे एक प्रभावी शैक्षिक साधन बन सकता है। इस प्रकार यह शोध, नई शिक्षा नीति और भारतीय योग परंपरा के अंतःसंबंधों को स्पष्ट करते हुए यथार्थ ज्ञान और मूल्य शिक्षा की पुर्नस्थापना की दिशा में एक सार्थक प्रयास है, जो न केवल शैक्षिक व्यवस्था को संतुलित बना सकता है, बल्कि राष्ट्र निर्माण में भी सहायक हो सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 में यथार्थ ज्ञान : भारत सरकार द्वारा वर्ष 2020 में प्रस्तुत नई शिक्षा नीति एक ऐतिहासिक एवं व्यापक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है, जो शिक्षा को केवल सूचना या तथ्य आधारित प्रक्रिया न मानकर उसे जीवन के यथार्थ ज्ञान से जोड़ने का प्रयास करती है। यह नीति परंपरागत भारतीय ज्ञान–विज्ञान, नैतिकता, रचनात्मकता और नवाचार को साथ लेकर चलने वाली शिक्षा व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत करती है, जिसमें ''ज्ञान का अर्थ केवल जानना नहीं, बल्कि समझना, अनुभव करना और आचरण में उतारना है।''

यथार्थ ज्ञान का आशय उस संपूर्ण ज्ञान से है, जो व्यक्ति को न केवल बौद्धिक रूप से समृद्ध करता है, बल्कि आत्मिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से भी सशक्त बनाता है। यह ज्ञान व्यक्ति को सोचने, समझने, तर्क करने, सहानुभूति रखने और जीवन के वास्तविक उद्देश्यों को जानने की क्षमता प्रदान करता है। नई शिक्षा नीति में इस यथार्थ ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है, जो निम्नलिखित बिंदुओं में स्पष्ट होता है :

समग्र शिक्षा पर बल : नई नीति का मूल लक्ष्य शिक्षा को समग्र, बहुआयामी, एकीकृत, लचीला और बहुस्तरीय बनाना है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को केवल परीक्षाओं में अच्छे अंक लाने हेतु तैयार करना नहीं, बल्कि उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल, संवेदनशील और सशक्त नागरिक के रूप में विकसित करना है। यह समग्रता ही यथार्थ ज्ञान का आधार है।

केवल सूचना नहीं, समझ का विकास : नीति में कहा गया है कि शिक्षा रटंत प्रणाली से हटकर आलोचनात्मक चिन्तन, तर्कशक्ति, प्रयोगात्मकता और रचनात्मकता को बढ़ावा दे। इस प्रकार का ज्ञान केवल पुस्तकीय नहीं होता, बल्कि व्यवहारिक और जीवनोपयोगी होता है, जो विद्यार्थी को आत्मनिर्भर बनाता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति का समावेश : नई शिक्षा नीति में भारत की प्राचीन ज्ञान–परंपरा, जैसे– योग, दर्शन, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, व्याकरण, गणित, खगोलशास्त्र, दर्शन आदि को पाठ्यक्रम में स्थान देने की बात की गई है। इस पहल का उद्देश्य विद्यार्थियों को अपने सांस्कृतिक मूल्यों और ज्ञान की जड़ों से जोड़ना है जो यथार्थ ज्ञान का अनिवार्य अंग है।

मूल्य आधारित शिक्षा : नई नीति में शिक्षा को नैतिकता, करुणा, संवेदनशीलता, सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, लोकतंत्र, कर्तव्यनिष्ठा, पर्यावरण जागरूकता आदि मूल्यों से परिपूर्ण बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। यह शिक्षण प्रक्रिया को केवल व्यावसायिक दृष्टि से नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण और आत्मिक विकास की दिशा में प्रेरित करता है।

स्थानीय से वैश्विक तक का दृष्टिकोण : NEP 2020 में यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा ऐसी हो जो स्थानीय परिवेश से आरंभ होकर वैश्विक परिप्रेक्ष्य तक विस्तृत हो। विद्यार्थियों को उनके स्थानीय संदर्भ, भाषा और संस्कृति से जोड़ते हुए विश्व नागरिक के रूप में तैयार किया जाए। यह विचार यथार्थ ज्ञान के बहुआयामी स्वरूप को साकार करता है।

शिक्षण की भाषा और समझ का गहरा संबंध : नई नीति में मूल भाषा (मातृभाषा/स्थानीय भाषा) में शिक्षा देने पर जोर दिया गया है, विशेषतः कक्षा 5 तक। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों की गहरी समझ और अभिव्यक्ति को सुदृढ़ करना है, जिससे वे विषयों को केवल ऊपरी तौर पर न सीखें, बल्कि आंतरिक रूप से समझें और आत्मसात करें।

ज्ञान से कौशल और आत्मनिर्भरता तक : नई शिक्षा नीति यथार्थ ज्ञान को कौशल विकास, नवाचार, उद्यमिता और रोजगार योग्यता से जोड़ती है। इसके अंतर्गत कौशल आधारित पाठ्यक्रम, व्यावसायिक शिक्षा, और व्यावहारिक परियोजनाओं का समावेश किया गया है, जिससे विद्यार्थी आत्मनिर्भर बन सकें।

सतत अधिगम की अवधारणाः नीति में षिक्षा को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। यथार्थ ज्ञान केवल औपचारिक विद्यालयों तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन भर अर्जित किया जाने वाला अनुभव एवं दृष्टिकोण है। इसके लिए मल्टीपल एंट्री–एग्जिट, ऑनलाइन शिक्षा, और ओपन लर्निंग सिस्टम को बढ़ावा दिया गया है।

नई शिक्षा नीति 2020 में मूल्य शिक्षा : शिक्षा का उद्देश्य केवल बुद्धि का विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण है, जिसमें उसका चारित्रिक, नैतिक, मानसिक और सामाजिक पक्ष भी परिपक्व हो। भारतीय शिक्षाशास्त्रीय परंपरा में यह मान्यता सदैव रही है कि शिक्षा का केंद्र बिंदु "मूल्य आधारित जीवन" होना चाहिए। इसी विचार को आधार बनाते हुए नई शिक्षा नीति–2020 में मूल्य शिक्षा को शिक्षा प्रणाली के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

आज के वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और सामाजिक–सांस्कृतिक संक्रमण के युग में जहाँ भौतिक विकास तीव्र गति से हो रहा है, वहीं नैतिक मूल्यों में गिरावट, संवेदनहीनता, हिंसा, भ्रष्टाचार, व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ भी गंभीर रूप लेती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा का यह कर्तव्य बनता है कि वह केवल सूचना या कौशल न देकर, विद्यार्थियों में मानवता, नैतिकता, आत्मानुशासन, सहिष्णुता, दया, ईमानदारी, देशभक्ति और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों का भी निर्माण करे। नई शिक्षा नीति इस दायित्व को स्पष्ट रूप से पहचानती है।

नई शिक्षा नीति 2020 में मूल्य शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ :

चारित्रिक निर्माण पर बल : नीति में स्पष्ट उल्लेख है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल 'जानना' नहीं बल्कि 'होना' और 'करना' भी है। इसके लिए मूल्य शिक्षा को चरित्र निर्माण का माध्यम मानते हुए नीति में इसे प्रत्येक स्तर की शिक्षा में समाविष्ट करने की बात की गई है।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण : मूल्य शिक्षा को भारतीय सांस्कृतिक विरासत, ऋषियों की परंपरा और हमारे दर्शन से जोड़ा गया है। नीति में सत्य, अहिंसा, शांति, करुणा, बंधुत्व, कर्तव्यबोध, सहिष्णुता जैसे मूल्यों के विकास पर विशेष बल दिया गया है। यह दृष्टिकोण न केवल नैतिकता की शिक्षा देता है, बल्कि विद्यार्थियों को भारतीयता से जोड़ता है।

समावेशी और वैश्विक दृष्टिकोण : नई शिक्षा नीति मूल्य शिक्षा को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक सीमा में न रखकर, एक समावेशी, सार्वभौमिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है, जिसमें सभी धर्मों, संस्कृतियों और मानवतावादी विचारों को स्थान दिया गया है।

शिक्षा में जीवन मूल्यों का एकीकरण : नीति में सुझाव दिया गया है कि मूल्य शिक्षा केवल पृथक विषय न बनकर, सभी विषयों, सह–पाठ्यक्रमीय गतिविधियों और व्यवहारिक शिक्षण में अंतर्निहित रूप में समाहित हो। अर्थात, शिक्षा ऐसी हो जिसमें गणित, विज्ञान या भाषा के माध्यम से भी सत्यनिष्ठा, तर्कशीलता, सहयोग और धैर्य जैसे गुण विकसित किए जाएँ।

योग, ध्यान और नैतिक शिक्षण का समावेश : नीति में योग, ध्यान, ध्यानशीलता (mindfulness) और नैतिक शिक्षण को विद्यालयी जीवन में नियमित रूप से शामिल करने की अनुशंसा की गई है, जिससे विद्यार्थियों का आंतरिक संतुलन और मानसिक स्वास्थ्य सुदृढ़ हो सके, जो मूल्य आधारित निर्णयों की नींव बनता है।

शिक्षकों को नैतिक मार्गदर्शक मान्यता : शिक्षक को केवल विषय–विज्ञानी नहीं, बल्कि मूल्य आधारित मार्गदर्शक के रूप में देखा गया है। शिक्षकों को ऐसा प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया गया है, जिससे वे छात्रों के लिए आदर्श व्यवहार प्रस्तुत कर सकें और जीवन–मूल्यों की व्यावहारिक शिक्षा दे सकें।

सामाजिक और पर्यावरणीय मूल्य : नीति में सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, पर्यावरण संरक्षण, सह–अस्तित्व जैसे आधुनिक मानवीय मूल्यों को भी शिक्षा का हिस्सा बनाने की बात की गई है। यह मूल्य शिक्षा को आधुनिक संदर्भों से जोड़ता है और विद्यार्थियों को सचेत, जिम्मेदार और संवेदनशील नागरिक बनने की ओर प्रेरित करता है।

महर्षि पतंजलि का योग दर्शन : भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग दर्शन का विशिष्ट स्थान है। यह दर्शन जीवन के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करता है जिसमें शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक सभी स्तरों पर अनुशासन और आत्मविकास की प्रक्रिया शामिल होती है। महर्षि पतंजलि योग दर्शन के सर्वप्रमुख प्रवक्ता माने जाते हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "योगसूत्र" में योग को एक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और व्यावहारिक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया। पतंजलि का योग दर्शन षड्दर्शन (भारतीय दर्शन के छह प्रमुख दर्शनों) में से एक है, जिसे आस्तिक दर्शन की श्रेणी में रखा गया है। इस दर्शन में मुख्यतः मन की चंचल वृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित कर आत्मसाक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ने की प्रक्रिया का विवेचन किया गया है।

योग का अर्थ और स्वरूप : महर्षि पतंजलि के अनुसार– "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (योगसूत्र, 1.2) अर्थात् योग वह स्थिति है जिसमें चित्त की वृत्तियों का निरोध (नियंत्रण) हो जाता है।

यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि योग केवल शरीर की आकृतियों या आसनों का अभ्यास नहीं, बल्कि मन, बुद्धि और आत्मा की शुद्धि, एकाग्रता और परमचेतना से एकात्मता की यात्रा है। योग के माध्यम से मनुष्य अपनी इंद्रियों और चित्त को वश में कर आत्मबोध प्राप्त कर सकता है।

अष्टांग योगः पतंजलि योगदर्शन की संरचना : महर्षि पतंजलि ने आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया को आठ अंगों में विभाजित किया है, जिसे "अष्टांग योग" कहा जाता है। ये हैं :

1. **यम**–बाह्य अनुशासन के नियमय पाँच प्रकार– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। ये समाज के प्रति नैतिक कर्तव्यों की शिक्षा देते हैं।

2. **नियम**–आंतरिक अनुशासन के नियमय पाँच प्रकार– शौच (स्वच्छता), संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान। ये आत्मविकास और आत्मनियंत्रण को प्रोत्साहित करते हैं।

3. **आसन**–शारीरिक स्थिति या मुद्रा जो ध्यान में स्थिरता और स्फूर्ति बनाए रखने में सहायक होती है।

4. **प्राणायाम**–श्वास की गति का नियंत्रित अभ्यास, जिससे प्राणशक्ति नियंत्रित होती है और मानसिक स्थिरता आती है।

5. **प्रत्याहार**–इंद्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर भीतर की ओर मोड़ना आत्मनियंत्रण की ओर पहला कदम।

6. **धारणा**–किसी एक विचार, वस्तु या लक्ष्य पर चित्त की एकाग्रता बनाए रखना।

7. **ध्यान**–निर्विचार, निरंतर और स्थिर एकाग्रता की अवस्था। यह मन को शुद्ध और स्पष्ट बनाता है।

8. **समाधि**–आत्मा और परमात्मा के एकत्व की अवस्थाय योग की चरम स्थिति। इस अवस्था में व्यक्ति 'पुरुष' (आत्मा) की साक्षात्कार करता है।

योग दर्शन की विशेषताएँ

आत्मानुशासन और नियंत्रण का मार्ग : योग दर्शन मनुष्य को आत्म–नियंत्रण, संयम और विवेकपूर्ण आचरण की ओर प्रेरित करता है। यह इच्छाओं और वासनाओं पर नियंत्रण का विज्ञान है।

चित्त की शुद्धि एवं मानसिक शांति : पतंजलि का योग ध्यान और समाधि के माध्यम से मानसिक विक्षोभ, चिंता, और तनाव का समाधान प्रस्तुत करता है।

नैतिक मूल्यों का पोषण : यम और नियम के अभ्यास से योग व्यक्ति में नैतिकता, ईमानदारी, सेवा, संयम और करुणा जैसे गुणों का विकास करता है।

ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय : योग दर्शन न तो केवल ज्ञानमार्ग है, न केवल भक्ति या कर्म यह तीनों का समन्वित मार्ग है, जिससे व्यक्ति संतुलित जीवन जी सकता है।

प्रायोगिक दर्शन : पतंजलि का योग शुद्ध दार्शनिक चिंतन नहीं, बल्कि पूर्णतः व्यावहारिक प्रणाली है जिसे कोई भी व्यक्ति नियमित अभ्यास के द्वारा अनुभव कर सकता है।

योग दर्शन और मूल्य शिक्षा के मध्य संबंध : भारतीय दर्शन और शिक्षा प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति के चरित्र निर्माण, नैतिक विकास और आत्मिक उत्थान को सुनिश्चित करना रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय मनीषियों ने जिन दार्शनिक परंपराओं की रचना की, उनमें योग दर्शन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग दर्शन न केवल आत्म–ज्ञान और मुक्ति की ओर ले जाने वाली साधना है, बल्कि यह मूल्य शिक्षा का भी सशक्त आधार प्रदान करता है।

आज के युग में जब शिक्षा में नैतिक मूल्यों का ह्रास, सामाजिक उत्तरदायित्व की कमी और आंतरिक अनुशासन का अभाव देखा जा रहा है, तब योग दर्शन एक ऐसी प्रणाली के रूप में सामने आता है, जो न केवल मन और शरीर का नियंत्रण सिखाता है, बल्कि सत्य, अहिंसा, संयम, करुणा, तप, संतोष, स्वच्छता, आत्मनियंत्रण, श्रद्धा, अनुशासन जैसे नैतिक गुणों को भी विकसित करता है। यही गुण मूल्य शिक्षा की मूल आत्मा हैं।

योग दर्शन के प्रमुख अंग और उनके नैतिक मूल्य

1. **यम (सामाजिक अनुशासन) :** यम पाँच होते हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये सभी समाज के प्रति व्यक्ति के आचरण को निर्देशित करते हैं।

- **अहिंसा**–करुणा, सहिष्णुता
- **सत्य**–ईमानदारी, सत्यनिष्ठा
- **अस्तेय**–ईमानदारी, परिश्रम की भावना
- **ब्रह्मचर्य**–आत्मनियंत्रण, मर्यादा
- **अपरिग्रह**–संतोष, सादगी

2. **नियम (व्यक्तिगत अनुशासन)** : नियम भी पाँच होते हैं– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान। ये आत्मविकास और अंतःशुद्धि के लिए आवश्यक हैं।

- **शौच**–शारीरिक और मानसिक स्वच्छता
- **संतोष**–आंतरिक संतुलन और सादगी
- **तप**–कठिनाइयों को सहने की क्षमता, आत्मसंयम
- **स्वाध्याय**–आत्मचिंतन और आत्मज्ञान
- **ईश्वरप्रणिधान**–श्रद्धा, आस्था, विनम्रता

3. **ध्यान और समाधि (आत्मिक एकाग्रता)** : ध्यान और समाधि व्यक्ति को अंतर्मुखी बनाते हैं, जिससे वह आत्मनिरीक्षण, संवेदनशीलता, क्षमा, सहनशीलता जैसे गहरे नैतिक गुणों का अनुभव करता है।

शैक्षिक संदर्भ में योग और मूल्य शिक्षा का एकीकरण

- विद्यालयों में योगाभ्यास के माध्यम से बच्चों में संयम, एकाग्रता और आत्मसंयम के गुण उत्पन्न किए जा सकते हैं।
- ध्यान और प्रत्याहार से विद्यार्थियों में आत्म–निरीक्षण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, जिससे वे अपने व्यवहार को सुधारने में सक्षम होते हैं।
- शिक्षक स्वयं यदि योगिक जीवन शैली अपनाएँ तो वे विद्यार्थियों के लिए नैतिक आदर्श बन सकते हैं।
- योग को यदि पाठ्यचर्या में मूल्य शिक्षा के एक उपकरण के रूप में शामिल किया जाए, तो विद्यार्थी केवल ''अच्छा पढ़ा लिखा'' नहीं, बल्कि ''अच्छा इंसान'' भी बन सकेगा।

नई शिक्षा नीति में योग दर्शन की भूमिका : भारतीय शिक्षा प्रणाली सदा से ही केवल बौद्धिक विकास पर नहीं, बल्कि व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक विकास पर बल देती रही है। नई शिक्षा नीति 2020 इसी मूल दर्शन को पुर्नस्थापित करने का एक प्रयास है, जिसमें शिक्षा को एक समग्र, बहुआयामी और जीवनोपयोगी अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा, आध्यात्मिकता, मूल्य शिक्षा, और योग दर्शन को विशेष महत्व दिया गया है।

समग्र शिक्षा का माध्यम : योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि अष्टांग योग के माध्यम से संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की प्रणाली है। नई शिक्षा नीति इसी समग्र दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करती है– "शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा" का संतुलित विकास। योग इस दृष्टिकोण को व्यवहार में उतारने का प्रमुख साधन बनता है।

मानसिक स्वास्थ्य और एकाग्रता का संवर्धन : आज के समय में विद्यार्थियों में बढ़ती हुई तनाव, अवसाद, ध्यानाभाव और असंयम की समस्याओं से निपटने के लिए योग एक प्रभावी उपाय है। प्राणायाम, ध्यान और समाधि जैसे योगिक अभ्यास विद्यार्थियों को मानसिक संतुलन, एकाग्रता और आत्म–नियंत्रण प्राप्त करने में सहायक होते हैं। नई शिक्षा नीति इस तथ्य को समझते हुए योग को विद्यार्थियों के दैनिक जीवन का हिस्सा बनाने पर बल देती है।

मूल्य शिक्षा का वाहक : योग दर्शन विशेषकर यम और नियम जैसे सिद्धांतों के माध्यम से सत्य, अहिंसा, संयम, संतोष, स्वच्छता, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैसे नैतिक मूल्यों का संचार करता है। नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा में नैतिकता और मूल्यों के एकीकरण की बात करती है। अतः योग न केवल व्यायाम है, बल्कि मूल्य शिक्षा का जीवंत उपकरण भी है।

भारतीय संस्कृति और परंपरा से जुड़ाव : नीति में भारत की गौरवशाली परंपरा, प्राचीन ज्ञान और सांस्कृतिक मूल्यों को शिक्षा का हिस्सा बनाने की बात की गई है। योग दर्शन, विशेषतः पतंजलि का योगसूत्र, भारतीय ज्ञान की अमूल्य निधि है। इसका षिक्षण विद्यार्थियों को अपनी सांस्कृतिक पहचान, जड़ों और राश्ट्रीय गौरव से जोड़ता है।

शिक्षक प्रशिक्षण में योग की भूमिका : नई शिक्षा नीति में कहा गया है कि शिक्षकों को केवल विषय विशेषज्ञ नहीं बल्कि नैतिक मार्गदर्शक और व्यक्तित्व निर्माता भी होना चाहिए। योग शिक्षक को आत्म–नियंत्रण, सहनशीलता, धैर्य और संवेदनशीलता जैसे गुण प्रदान करता है, जो शिक्षण को प्रभावशाली बनाते हैं। इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में योग को अनिवार्य रूप से शामिल करने की सिफारिश की गई है।

स्वस्थ जीवनशैली और आत्मनिर्भरता का विकास : योग के नियमित अभ्यास से विद्यार्थियों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, आत्म–शक्ति और आत्मविश्वास का विकास होता है। NEP-2020 का उद्देश्य एक ऐसा नागरिक बनाना है जो स्वस्थ, विवेकशील, रचनात्मक और आत्मनिर्भर हो। योग इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध होता है।

निष्कर्ष : उपरोक्त शोध का निष्कर्ष इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि नई शिक्षा नीति–2020 केवल शैक्षणिक संरचना में परिवर्तन का दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह भारतीय ज्ञान परंपरा, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक चेतना को शिक्षा की मूलधारा में पुर्नस्थापित करने का एक सशक्त प्रयास है। यह नीति शिक्षा को केवल सूचना प्राप्ति या रोजगारोन्मुख प्रक्रिया न मानकर, व्यक्ति निर्माण और राष्ट्र निर्माण का साधन मानती है। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि यथार्थ ज्ञान का अर्थ केवल अकादमिक जानकारी नहीं, बल्कि ऐसा ज्ञान है जो व्यक्ति को बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक और आत्मिक रूप से परिपक्व बनाता है। यह ज्ञान व्यक्ति को आत्मचिंतन, आत्मानुशासन, आत्मविश्वास एवं आत्मबोध की ओर अग्रसर करता है। इसी संदर्भ में महर्षि पतंजलि का योग दर्शन नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों को मूर्त रूप देने का एक प्रभावी माध्यम सिद्ध होता है। योगसूत्रों में वर्णित अष्टांग योग –यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि न केवल एक आध्यात्मिक मार्ग हैं, बल्कि ये मूल्य शिक्षा के वास्तविक स्तंभ हैं।

इस प्रकार योग दर्शन मूल्य शिक्षा के उन आदर्शों को प्रत्यक्ष रूप में प्रदान करता है, जिनका उल्लेख नई शिक्षा नीति में किया गया है, जैसे सत्यनिष्ठा, सहिष्णुता, करुणा, अनुशासन, आत्मनिर्भरता, सेवा भावना आदि। शोध में यह भी स्पष्ट हुआ कि यदि योग दर्शन को शिक्षा प्रणाली में व्यवस्थित रूप से एकीकृत किया जाए विशेषकर प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर तो यह छात्रों के आचरण, दृष्टिकोण और निर्णय क्षमता में सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है। नई शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में योग दर्शन का समावेश केवल एक सांस्कृतिक या शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि एक शिक्षण–दर्शन के रूप में किया जाना चाहिए, जो छात्रों को जीवन जीने की कला सिखाता है।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 236-237

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कूटकाव्य के प्रणेता क्षेमेन्द्र का संस्कृत साहित्य में योगदान

*डॉ. गिरिजा शंकर**

संस्कृत साहित्य में निरन्तर महाकाव्य खण्डकाव्य गीतिकाव्य स्त्रोतकाव्य, नाटय आदि अनेक विधाओं की रचना होती रही। इन्हीं रचनाओं के कारण ही आज संस्कृत साहित्य के समक्ष पुष्कल परिमाण के साथ उपस्थित है। कूटकाव्य हमें वेदों, उपनिषदों एवं महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में हमें कूट काव्य आचार्य क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों से ही प्रारम्भ होता है। अतः क्षेमेन्द्र को ही कूट काव्य का आदि प्रणेता कहा जा सकता है।

क्षेमेन्द्र संस्कृत भाषा के महाकवियों में भी अलौकिक प्रतिभा से मण्डित महाकवि थे, जिनकी प्रतिभा ने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपना जौहर दिखलाया। सरस्वती का यह वरद पुत्र शारदा देश का अर्थात् कश्मीर का निवासी था, परन्तु यह जब उत्पन्न हुआ था तब कश्मीर का वातावरण कविता जैसी कोमल कला के अनुशीलन नितान्त अनुपयुक्त था। कश्मीर के इतिहास में वह युग असंतोष, षड़यंत्र, नैराश्य तथा रक्तपात का काल था।

क्षेमेन्द्र ने अपनी काव्ययात्रा **''समयमातृका''** नामक काव्य से प्रारम्भ की। क्षेमेन्द्र की सबसे पहली कृति 1037 ई. की है। क्षेमेन्द्र अपने युग के वातावरण इतने अंसुष्ट तथा मर्माहत थे कि उसे सुधारने तथा पवित्र और विशुद्ध बनाने के लिए और दुष्टता के स्थान पर शिष्टता स्वार्थ के स्थान पर परार्थ की भावना को दृढ़ बनाने के लिए अपनी द्रुतगामिनी लेखनी को काव्य के नाना अंगों की रचना में लगाया। अपने युग को सुधारने के लिए कवि ने श्लाघनीय प्रयत्न किये और उनमें इन्हें सफलता भी मिली। महर्षि वेदव्यास के आदर्श पर रचना करने वाला यह कवि नाम्ना ही नही, प्रत्युत कर्मणा 'व्यासदास' था।

संस्कृत में काव्य की रचना तो क्षेमेन्द्र की अलौकिक प्रतिभा के प्रसाद का एक अंशमात्र थी। कश्मीर नरेश जयापीड के मन्त्रिप्रवर नरेन्द्र से क्षेमेन्द्र तक की वंशावली इस प्रकार है। नरेन्द्र→ भोगेन्द्र→सिन्धु→प्रकाशेन्द्र→ क्षेमेन्द्र। साहित्य विद्या का अध्ययन क्षेमेन्द्र ने अभिनवगुप्त से किया था।

क्षेमेन्द्र का काव्य निर्माण का मुख्य उद्देश्य जनजीवन को उदात्त, चरित्र सम्पन्न तथा शीलवान बनाया था। इसीलिए उन्होंने रामायण तथा महाभारत की प्रख्यात कथाओं का संक्षेप रूप प्रस्तुत किया। क्रमशः रामयण मंजरी में तथा भारत मंजरी में 1037ई0। इनका संक्षेप इतनी सुन्दरता तथा विवेक से किया कि हमें मनोरंजन के साथ–साथ मूल पाठ के निर्णय में पर्याप्त मदद मिलती है। क्षेमेन्द्र के कलम में जोर है, अनुभव में सच्चाई है, लेखन शैली में तीव्रता है, कथन में ओजस्विता है, और हृदय में दुःखों के बोझा से कराहने वाली जनता के सच्ची सहानुभूति है। इसीलिए क्षेमेन्द्र के इन काव्यों में तीव्र हास्य के साथ व्यंग्य से संपुटित अतीव मार्मिक उपदेश है।

क्षेमेन्द्र के काव्यों को प्रायः चार भागों में विभक्त किये गये हैं–

(क) पद्यात्मक (महाकाव्य)ए **(ख)** उपदेश काव्यए **(ग)** रीति सम्बद्ध (अलंकार ग्रन्थ), **(घ)** मिश्रित।

क्षेमेन्द्र कुल लगभग 40 ग्रन्थों की रचना की है। इनमें 18 प्रकाशित है।

क्षेमेन्द्र की कलम की चोट से पाठक दहल उठता है। इनके काव्यों में उपदेश होने पर भी वे नितान्त सरस, हृदयावर्जक है। सीधे–सादे शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त सुन्दर भाव श्रोताओं के हृदय को स्पर्श ही नहीं करते, प्रत्युत गहरी चोट करते हैं। उनके वर्णनें में नवीनता है तथा आधुनिकता की इतनी सुन्दर अभिव्यंजना है कि आज के पाठकों को भी इसकी सभ्यता मोह लेती है। इन्हीं काव्यों का परिचय यहाँ अभीष्ट है।

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर*

समयमातृका–वेश्याओं के सिद्धान्तों का प्रतिपादक मौलिक ग्रंथ है, धनी मानी जनों को वेश्याओं के जाल से बचने की शिक्षा देने के महनीय उद्देश्य से लिखी गयी इस ग्रन्थ की रचना 1050ई0 में अनन्त देव के राज्य काल में हुई। इस ग्रन्थ में 8 समय (परिच्छेद) हैं, जिसमें कश्मीर प्रवरपुर नगर की कलावती नाम्नी वेश्या को उसके नापित गुरु ने वेश्याओं के सिद्धान्तों का कुट्टिनी का उपयोग, कामुक जनों को वश में करने की कला तथा उससे पैसा ऐंठने की विद्या आदि का बड़ी रोचकता के साथ किया है।

कला विलास–क्षेमेन्द्र के उपदेश काव्यों में कला विलास अपना प्रमुख स्थान रखता है। कलाशास्त्र के प्राचीन प्रवीण पण्डित मूलदेव ने जगत को ठगने वाले धूर्तों की नाना विधाओं का यहाँ परिचय दिया है, जिसका ज्ञान जनता को कपटियों के जाल से बचाने में समर्थ होगा। इस काव्य में 10 सर्ग है, जिसमें क्रमशः ये ये विषय वर्णित हैं– दम्भ, लोभ, काम, वेश्यावृत्त, कायस्थचरित, मद, गायन, सुवर्णकारोत्पत्ति, नानाधूत तथा समस्त कला वर्णन।

चतुवर्ग संग्रह–पुरुषार्थ चतुष्टय का विवरण देने वाला उपदेश काव्य है। इसमें चार परिच्छेद है, जिसमें क्रमशः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्रशंसा वर्णित है।

सेव्य सेवकोपदेश–क्षेमेन्द्र ने सेवक की दीनदशा तथा प्रभुजनों के द्वारा किये गये दुर्व्यवहारों का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया, इसमें 61 पद्य हैं, जिनको अनेक छन्द प्रयुक्त हैं। कविता प्रसादमयी है तथा अपने वर्णनों से पाठकों का हृदय आकृष्ट करती है।

देशोपदेश–देशोपदेश तथा नर्ममाला क्षेमेन्द्र के हास्यापदेश काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं, जिनमें कवि ने अपनी अनुभूति के आधार पर कश्मीर के शासक वर्ग तथा समाज का बड़ा ही रंगीला प्रभावोत्पादक व्यंग्य चित्र खींचा। देशोपदेश के आठ उपदेशों में से प्रथम उपदेश दुर्जन के विविध चरित्र का वर्णन है, तो द्वितीय उपदेश के कदर्य (कृपण) का बड़ा ही तथ्यपूर्ण विवरण है। क्षेमेन्द्र के कदर्य में वर्तमान कालीनता का पुट देखकर आलोचक को आष्चर्य हुए बिना नहीं रहता। इसी प्रकार अनेक ज्वलंत एवं मार्मिक अन्यत्र उपदेशों में वर्णित है।

दर्पदलन–क्षेमेन्द्र ने उच्चुकल, धन, विद्या, सौन्दर्य, साहस, दान तथा तपस्या से उत्पन्न दर्प की निःसारता दिखाई है। दर्पदलन में सात विचार हैं, जिसके आरम्भ में तद्विषयक उपदेशात्मक सूक्तियाँ हैं तथा उसकी युक्तिमत्ता दिखाने के लिए भाषणों से उन नीतियों की उपादेयता सिद्ध करता है।

सन्दर्भ–सूची

1. आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास।
2. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास।
3. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास।
4. दामोदरगुप्त, कुटनीमतम।

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 238-241

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हड़प्पा सभ्यता में सामाजिक न्याय : एक अवलोकन

*देवेन्द्र सिंह**

सामाजिक न्याय की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है और हमें उसे उसकी सम्पूर्णता से ही समझना चाहिये। क्रियाशीलता सामाजिक न्याय का गत्यात्मक स्वरूप है, यहाँ जड़ता की स्थिति नहीं है। इसके साथ ही सृजनात्मकता इसमें अन्तःनिहित है। सामाजिक न्याय सक्रिय होने के नाते उन मानवीय मूल्यों का बोध कराती है, जो उसकी अभिवृद्धि में भी सहायक होते हैं, साथ ही यह सामाजिक दायित्वों की भी प्रेरणा देते हैं, जिससे मानवीय गरिमा को प्रतिश्ठित करके मानव समाज को व्यवस्थित किया जा सके।[1]

यह समाज में नवीनता के सृजन पर जोर देती है ताकि सभी नागरिकों का जीवन सुखमय, शान्तिप्रिय तथा न्यायसंगत बन सके। इस दृष्टि से सामाजिक न्याय का स्वरूप अनुशासित तथा कल्याणकारी भी है। किसी भी देश की सभ्यता व संस्कृति में उसका यही स्वरूप प्रभावी होता है, अतः सामाजिक न्याय का स्वरूप सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक होने के साथ–साथ नैतिक व विधिक भी है। इस प्रकार यह एक निरन्तर प्रक्रिया का विषय है। इसका बाह्य तथा आन्तरिक स्वरूप आदर्शमूलक, आन्दोलनकारी व क्रान्तिकारी है।[2]

सामाजिक न्याय के गत्यात्मक स्वरूप के कारण ही इसकी स्थापना, अनुभूति, निरन्तरता व व्यवहार केवल आंशिक रूप से ही संभव हो सकती है, क्योंकि गत्यात्मक क्रियाशीलता के साथ ही यह निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है, इसीलिये काल–विशेष में इसे पूर्णतः से साकार या अनुभूत करना संभव नहीं है, किन्तु एक संतोषजनक स्तर पर इसे स्थापित करने का प्रयास किया जा सकता है। यह अत्यन्त व्यापक अवधारणा है, जोकि व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राष्ट्र, पर्यावरण आदि सभी से सम्बंधित है। सामाजिक न्याय का उद्‌गम विचार, व्यवहार व प्रभावशीलता की संभावना प्रत्येक छोटी–बड़ी इकाई पर आश्रित है। इसका क्षेत्र सीमित तथा व्यापक दोनों है। इसकी सम्भावना, अनुभूति हर क्षण तथा हर स्थान पर हो सकती है। इसी भाँति इसका निषेध भी हर क्षण कहीं भी हो सकता है। सामाजिक न्याय का विचार विषमता व न्याय के पक्ष में कहाँ तक गतिमान है। यह देश–काल व परिस्थितियों पर निर्भर करता है और इसका सीधा संबंध सम्पूर्ण समाज से है तथा समाज के शोषित, वंचित वर्ग से इसे जोड़ना तथा इसे व्यवहारतः प्रभावी बनाना कही अधिक सार्थक होगा।

भारतीय समाज अपने आरम्भ बिन्दु से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा पर आधारित रहा है तथा इसमें मानवीय समानता से बढ़कर प्राणियों में व्यवहार की समानता पर बल दिया गया है। मनीषियों ने अनेक ग्रंथों, सूत्रों में इस समानता को व्याख्यायित भी किया है तथा समाज ने इस एकता व समानता को अन्तःनिहित भी किया है, इसीलिये आज हजारों वर्ष के पश्चात भी वह प्राचीन व्यवस्था आदर्श व मानदण्ड के रूप में समाज के लिये प्रेरणा स्रोत बनी हुई है, किन्तु समाज में हुये कुछ भौतिक व राजनीतिक परिवर्तनों ने इस समानता की भावना को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया, हॉलाकि प्रभाव की व्याख्या व्यक्तित्व विशेषों द्वारा भी प्रभावित हुई, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन परिवर्तनों ने समाज को गहरा आघात पहुँचाया, जिनके उदाहरण हम तत्कालीन विधि ग्रंथों में भी देख सकते हैं।

समाज की वर्तमान स्थिति के वास्तविक आकलन व मूल्यांकन के लिये हमें इसका प्रारम्भ से सूक्ष्म निरीक्षण करना होगा कि समाज की स्थापना किन तत्वों के आधार पर की गई थी तथा उन नियमों, परम्पराओं पर आधारित समाज कैसा था।

भारतीय परम्परा में सामाजिक व्यवस्था का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह विश्व की प्राचीनतम सामाजिक व्यवस्था है, जोकि एक लम्बे संघर्ष व विकास का परिणाम है। समाज अपने अर्न्तःद्वन्द्वों व अन्य कारकों के कारण

* *शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

निरन्तर विकसित तथा परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तन मात्र आन्तरिक कारणों से नही वरन् बाह्य व आयतित कारणों से भी होता है, जिसके प्रभाव अत्यन्त दूरगामी सिद्ध हुये। भारत में मानव सभ्यता आदिम युग से अपने अत्यन्त कठिन संघर्षरत सफर को तय करते हुये मेहरगढ़, बलूचिस्तान की घाटियों में कृषि को अपना आधार बनाते हुये व्यवस्थित सामाजिकरण के आरम्भिक रूप में स्थापित हुई। कालान्तर में कृषि व तकनीक के विकास ने इस सभ्यता को भारतीय उपमहाद्वीप के बहुत बड़े भू–भाग में स्थापित किया जो बाद में हड़प्पा या सिन्धुघाटी सभ्यता का आधार बनी।

हड़प्पा सभ्यता विश्व की प्राचीनतम विकसित सभ्यताओं में से एक है तथा भारतीय उपमहाद्वीप की प्रथम विकसित नगरीय सामाजिक व्यवस्था है। किसी भी सभ्यता का स्वरूप उसके विभिन्न वर्गों की स्थिति को प्रदर्शित करता है तथा विभिन्न वर्गों का जीवन जीने का ढंग व आपस में उनका संबंध समाज के स्वरुप को प्रदर्शित करता है।

हड़प्पा सभ्यता विश्व की प्रथम अत्यन्त उन्नत व नगरीय क्रान्तिकारी अवस्था को दर्शाती है। इसका व्यापक क्षेत्रीय विस्तार, नगर निर्माण योजना व इसकी सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता इसे विशिष्ट सभ्यता के रूप में स्थापित करती है। वर्तमान में जबकि हड़प्पा सभ्यता के बहुत सारे स्थलों का उत्खनन हो चुका है, तब इसमें कोई संदेह नही है कि यह विस्तृत क्षेत्र में फैली सभ्यता थी किन्तु विस्तृत उत्खनन तथा खोजों के बावजूद इस सभ्यता के उद्भव व विकासक्रम के विषय में ठोस जानकारी नहीं प्राप्त हो पायी है, क्योंकि सामान्यतः जब व जहाँ भी इस सभ्यता के अवशेषों की जानकारी प्राप्त हुई उनमें विशेषकर शहरीकरण, नगर योजना, विकसित व्यापार–वाणिज्य व धर्म के स्वरूपों का ही पता चला है तथा उपरोक्त बताई गई सारी विशेषताएँ किसी भी संस्कृति के विकसित चरण की ओर ही संकेत करते हैं।[3]

हड़प्पा सभ्यता के उद्भव की व्याख्या में सबसे बड़ी समस्या है–'पर्याप्त आवश्यक साक्ष्यों का अभाव', साहित्यिक स्रोत अनुलब्ध है तथा पुरातात्विक स्रोत अपर्याप्त सूचना प्रदान करते हैं। इस वजह से हमें अपनी प्रथम नगरीय सामाजिक व्यवस्था की स्पष्ट व समुचित जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है, किन्तु अगर हम समाज के स्वरूप संगठन व कार्य प्रणाली पर दृष्टिपात करें तो समाज की समुचित स्थिति का एक निकटतम आकलन अवश्य किया जा सकता है।

सर्वप्रथम देखें तो हड़प्पा एक नगरीय व्यवस्था है। नगर का अर्थ है–जो एक व्यवस्थित निर्माण योजना के द्वारा स्थापित हो, एक व्यापक जनसंख्या इसमें निवास करती हो तथा यातायात व जीवनयापन की बेहतर सुविधायें उपलब्ध हो। इस प्रकार के सभी उदाहरण हम हड़प्पा में देख सकते हैं, यथा–सुदृढ़ दुर्ग, बहुमंजिला इमारतें, पक्की सड़कें, उत्तम जल प्रबन्धन आदि। वाणिज्य–व्यापार भी अत्यन्त विकसित अवस्था में था, जोकि आन्तरिक व बाह्य दोनों स्तरों पर होता था। मेसोपोटामिया, बहरीन, फारस, बेबीलोन से व्यापार के साक्ष्य प्राप्त हुये है, जो उन्नत उत्पादन, यातायात तकनीक, वृहद माँग को प्रदर्शित करता है। ये सभी कारक समाज की समृद्धि के प्रतीक हैं।

वहीं हड़प्पाईयों ने विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में भी बहुत विकास किया था। उनकी सोच नवन्मेंषी, तार्किक व वैज्ञानिक थी। उन्होंने गणित, मापप्रणाली, धातुकला, नौकायन आदि विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की थी। इसके अतिरिक्त उन्हें ग्रह, नक्षत्रों व जीवन के उस पार के विषय में भी ज्ञान था। हड़प्पाई समाज में कला का भी समुचित विकास हुआ था, यथा–स्थापत्यकला, शिल्पकला, चित्रकला इत्यादि सम्भवतः साहित्य का भी विकास हुआ किन्तु हड़प्पाई लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी गई है।

हड़प्पाई समाज में धर्म के दो पहलू प्रचलित थे–(क) तत्व ज्ञान (ख) अनुष्ठान। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर हमें हड़प्पाई धर्म के अनुष्ठानिक रूप की जानकारी प्राप्त होती है, यथा–प्रकृति पूजा, मातृदेवी की पूजा, पषुपूजा आदि किन्तु तत्व चिन्तन की कोई स्पष्ट सूचना नही मिलती, क्योंकि सिन्धु लिपि का अध्ययन न होना, सबसे बड़ी बाधा इस विषय की जानकारी में सिद्ध हुई है।[4]

उपरोक्त कारकों का विश्लेषण करें तो ये सभी कारक सिन्धु घाटी या हड़प्पा सभ्यता को एक सामाजिक न्याय की पृष्ठभूमि पर अवस्थित समाज ही सिद्ध करते हैं–यथा– नगरीय सभ्यता का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है–'सांस्कृतिक विविधता', यही विशेषता उसे ग्रामीण व्यवस्था से अलग करती है, क्योंकि नगरीय व्यवस्था में विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के लोग उपस्थित रहते हैं। जिनमें धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज, रहन–सहन, भाषा आदि की पर्याप्त भिन्नता होती है, साथ समाज में क्रम सोपनिक तथा आर्थिक भिन्नता भी देखने को मिलती है। हड़प्पाई समाज भी पुरोहित, शासक, व्यापारी व श्रमिक वर्ग में बँटा था। दुर्ग, विभिन्न आकार के भवन, पुरोहित आवास, धार्मिक

स्थान, आर्थिक वर्गीकरण की ओर भी संकेत कर रहे हैं, किन्तु इन सब के बावजूद इस सांस्कृतिक विविधता में एक सामंजस्य दिखाई देता है। यहाँ प्रत्येक वर्ग के अधिकारों व मान्यताओं को स्वीकृति प्रदान की गई है यथा–विविध प्रकार के धार्मिक संस्कार व शवाधान पद्वति, अनेक रोजगार संसाधन। इसके साथ ही हड़प्पा समाज में हमें किसी भी प्रकार के वर्ग–संघर्ष या युद्ध के साक्ष्य नहीं प्राप्त हुये हैं। सभ्यता व समाज के विकसित होने का अर्थ ही यह है कि उसके विभिन्न वर्गों व कारकों में शान्तिपूर्ण सामंजस्य व सामाजिक सह–अस्तित्व स्थापित है क्योंकि सामाजिक वर्गों व कारकों के मध्य संघर्ष समाज को मात्र पतन की ओर ले जाता है, उन्नति की ओर नहीं, अतः हड़प्पाई समाज की उन्नत अवस्था को देखकर लगता है यहाँ समाज में शान्ति, सामंजस्य व न्याय स्थापित था।

हड़प्पा सभ्यता में वाणिज्य–व्यापार भी अत्यन्त उन्नत था। यह अन्तर्राज्जीय व वैदेशिक दोनों प्रकार का था। व्यापार की यह उन्नत अवस्था समाज में माँग, उत्पादन व समृद्धि को प्रदर्शित करती है। आन्तरिक व्यापार का विकसित होना यह सिद्ध करता है कि समाज में एक सुदृढ़, व्यवस्थित विधि व्यवस्था लागू थी, जिसे न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। वही वैदेशिक व्यापार समाज की आर्थिक सम्पन्नता को प्रदर्शित करता है, क्योंकि यदि उत्पादन समाज की माँग को पूर्ण नहीं कर पा रहा है, तो ऐसी अवस्था में निर्यात की संभावना नहीं हो सकती है अतः निर्यात उत्पादन की प्रचुरता को सिद्ध करता है तथा यह प्रचुरता कृषि व वाणिज्य के क्षेत्र में तकनीकी व प्रबंधन कुशलता को व्यक्त करती है साथ ही व्यापार संतुलन भी हड़प्पा की ओर झुका हुआ था, इसलिये समाज की आर्थिक सम्पन्नता के स्पष्ट संकेत व्यक्त होते हैं[5], अतः बुद्धि को सभी क्षेत्रों में विकसित होने के समान अवसर प्राप्त थे। यह अवस्था में समाज में न्याय व सामंजस्य पूर्ण व्यवस्था की ओर संकेत करती है।

हड़प्पाई राज्यों में कभी शासक वर्ग के विरूद्ध किसी प्रकार के विद्रोह के संकेत नहीं मिलते हैं, अतः समाज की राजनीतिक व आर्थिक स्थिति संतोषजनक प्रतीत होती है, साथ ही यह आर्थिक संतोष समाज के क्षैतिज व उर्ध्वाधर दोनों ही प्रकार से समाज में व्याप्त रहा होगा, अन्यथा समाज में किसी न किसी वर्ग से असंतोष के संकेत अवश्य प्राप्त होते साथ ही यह असंतोष निश्चय ही वर्ग–संघर्ष को जन्म देता, जिसके कारण समाज व व्यापार इस विकसित अवस्था में नहीं हो सकता था हालाँकि यह सम्पन्नता समान रूप में नहीं थी, फिर भी एक न्यायपूर्ण समाज की माँग यही है कि प्रत्येक को उसकी योग्यतानुसार विकसित होने के सभी अवसर प्राप्त हो तथा इसमें किसी भी प्रकार की बाधा न पहुँचायी जाये। हड़प्पाई समाज बहुत हद तक ऐसी ही सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत कर रहा है।

हड़प्पाई समाज विज्ञान–तकनीक के क्षेत्र में भी काफी विकसित प्रदर्शित हो रहा है। जिस भी समाज का दृष्टिकोण वैज्ञानिक व तार्किक होता है। वह काफी प्रगतिशील, सरल व नवोन्मेषी होता है। ऐसे समाज में गतिशीलता बनी रहती है तथा वह रूढ़िवादिता, अंधविश्वास व दखियानूसी परम्पराओं से मुक्त होता है। जिस भी समाज में उपरोक्त समस्याएँ नहीं होती, वह निश्चय ही अन्यायपूर्ण नहीं होगा, क्योंकि नकारात्मक कारक ही समस्त विषमताओं, अन्याय व विभेद के जनक होते हैं।

हड़प्पाई समाज में कला भी विकसित अवस्था में है। कला समाज की विकसित बौद्धिक अवस्था को प्रदर्शित करती है, आमतौर पर जब कला मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं यथा–सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि को चित्रित करने लगे, तो माना जाता है कि इस सभी क्षेत्रों में बौद्धिक विकास के लिये पर्याप्त अवसर उपलब्ध है, क्योंकि इनमें से किसी भी क्षेत्र में रुग्ढ़ता कला को व्यापकता प्रदान करने से रोकती है, लेकिन हड़प्पाई कला यह प्रदर्शित करती है कि मानवीय बौद्धिकता सभी क्षेत्रों में स्वंय को व्यक्त कर रही है।[6]

धर्म भी समाज की उच्च विकसित बौद्धिक अवस्था को ही प्रदर्शित करता है, हाँलांकि ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि धर्म मात्र बौद्धिकता से ही व्यक्त होता है, क्योंकि धर्म अपने स्वरूप में बौद्धिकता से प्राचीन है, फिर भी हड़प्पाई समाज में धर्म अत्यन्त विकसित रूप अर्थात आनुष्ठनिक व तात्विक स्वरूप में व्यक्त हुआ है। इसके साक्ष्य प्राप्त हुये हैं कि अनुष्ठानों के साथ ही शवाधान पद्धति में भी पर्याप्त भिन्नता देखने को मिली है, अतः यह स्वीकार्य मत है कि सभी को अपनी क्षमता व मान्यतानुसार धर्मपालन के अवसर प्राप्त थे। आमतौर पर धर्म आनुष्ठानिक स्वरूप तभी धारण कर पाता है, जबकि समाज में मानवीय जीवन के अन्य पहलू यथा–आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विकसित अवस्था में हो तथा यह तभी संभव है जब सामाजिक व्यवस्था न्यायपूर्ण, समरस, सरल तथा व्यवस्था हो।

हड़प्पाई लिपि के अभी तक पढ़े नहीं जा पाने की वजह से तत्वज्ञान के विषय में स्पष्ट जानकारी नही प्राप्त हो पायी है, किन्तु जैसा कि साक्ष्य प्राप्त हुये हैं कि मोहनजोदड़ो में एक ध्यानमग्न मुद्रा में पूर्ति प्राप्त हुई है, साथ ही योगमुद्रा में पशुपति की प्रतिमा, साथ ही अनेक ऐसे साक्ष्य प्राप्त हुये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि हड़प्पाई लोगों ने जीवन के पार जाकर भी देखना शुरू कर दिया था, यथा–मृतकों की समाधि स्थल पर दैनिक चर्या की वस्तुयें रखी जाती थी।[7] यह अवस्था समाज की उन्नत आध्यात्मिक अवस्था को व्यक्त करती है, क्योंकि जब अतीत से वर्तमान का व वर्तमान से भविष्य का संबंध जोड़ा जाता है, तब निश्चय ही एक ऐसी श्रृंखला या व्यवस्था का निर्माण होता है जो न्यायपूर्ण होती है, यथा–कर्म सिद्धान्त, जिसमें कभी भी कृतहानि तथा अकृत्वाभागम् का प्रसंग उपस्थित नही होता है। इसके साथ ही सभी यह मानते हैं कि शुभ कार्य का परिणाम शुभ ही होता है तथा अशुभ कार्य का परिणाम अशुभ होगा, अतः सभी शुभत्व की ओर ही अग्रसर होंगे।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीय समाज अपनी आरम्भिक अवस्था से ही न्याय तथा सामंजस्य की पृष्ठभूमि पर अवस्थित रहा है, हालांकि हड़प्पाई समाज भी पूर्णरूपेण समानता के सिद्धान्त को प्रदर्शित नहीं करती है, कहीं–कहीं कुछ असमानतायें भी देखने को मिलती है यथा–पदसोपानिक सामाजिक व्यवस्था, भवनों के आकार में अन्तर, दुर्ग व रिहायसी क्षेत्र में अन्तर, शवाधान प्रणाली आदि किन्तु ये अन्तर किसी शोषण को सिद्ध नहीं कर पाये हैं।

न्याय की अवधारणा भी युक्ति–युक्त सामाजिक विभेद को समाज में स्वीकार करती है, यदि सम्पूर्णता से दृष्टिपात किया जाय तो भारतीय उपमहाद्वीप की यह पहली विकसित सामाजिक व्यवस्था एक न्यायपूर्ण समाज की ओर ही संकेत करती है, यद्यपि अभी तक हड़प्पाई लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। इसके आगे पढ़े जाने की सम्भावना को देखते हुए न्याय के तत्व और अधिक स्पष्ट हो पायेंगे या फिर जो भी तथ्य उभर कर सामने आये, शायद उसके आधार पर उपरोक्त अवधारणा में संशोधन भी करना पड़े, किन्तु तब तक हम प्राप्त हुये प्रमाणों व साक्ष्यों के आधार पर हड़प्पाई समाज को एक न्यायपूर्ण व सामंजस्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के रूप में ही स्वीकार्य करते हैं।

संदर्भ–सूची

1. जाटव, डॉ. डी.आर. (1993), सामाजिक न्याय का सिद्धांत, समता साहित्य सदन, जयपुर, पृ. 5
2. पाण्डेय, डॉ. स्वयं प्रकाश (1993), समाज दर्शन के मूल सिद्धांत, भगवानदास एण्ड कम्पनी, पृ. 227
3. शर्मा, रामशरण (1997), प्राचीन भारत, एन.सी.आर.टी., नई दिल्ली, पृ. 17
4. झाँ, विजेन्द्र नारायण व श्रीमाली, कृष्णमोहन (2002), भारत का प्राचीन इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, वि.वि., नई दिल्ली
5. त्रिपाठी, डॉ. रमाशंकर (2006), प्राचीन भारत का इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी
6. शर्मा, रामशरण (2007), आर्य एवं हड़प्पा संस्कृतियों में भिन्नता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. श्रीवास्तव, डॉ. कृष्णचन्द्र (2004), प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृतिक, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 242-248

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बिहार राज्य के जिला कैमूर में नगरीकरण का परम्परागत व्यवसायों पर प्रभाव

*दुर्गेश कुमार चतुर्वेदी** *डॉ. रत्नेश शुक्ल***

सार : *नगरीकरण का अभिप्राय मात्र नगरीय जनसंख्या के स्थानिक वितरण से नहीं है अपितु नगरीकरण कृषि आदि परम्परागत आर्थिक क्रियाओं में संलग्न समाज को उद्योग एवं अन्य अनौपचारिक आर्थिक क्रियाओं में संलग्न आधुनिक समाज में रूपान्तरित करने वाली एक चक्रीय प्रक्रिया है। स्पष्ट है कि जैसे–जैसे नगरीकरण स्तर में वृद्धि होगी वैसे–वैसे प्रायः जातिगत पहचान से जुड़े परम्परागत व्यवसायों में ह्रास होगा ही। प्रस्तुत शोध–पत्र जिला कैमूर में नगरीकरण का परम्परागत व्यवसायों पर दृष्टिगत प्रभाव का अध्ययन करता है। प्रस्तुत शोध–पत्र जिला कैमूर में नगरीकरण के स्तर के निर्धारण के साथ–साथ उसके परम्परागत व्यवसायों पर प्रभाव का अध्ययन करता है। निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राथमिक तथा द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। जिला कैमूर में नगरीकरण के स्तर के निर्धारण के लिए समग्र नगरीकरण सूचकांक का आकलन हेतु द्वितीयक आँकड़ों के रूप में जनगणना 2011 का प्रयोग किया गया तथा जिला कैमूर में परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता के स्थानिक वितरण के अध्ययन हेतु प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण अनुसूची द्वारा किया गया जिसके अन्तर्गत 399 उत्तरदाताओं के प्रतिदर्श का स्तरीकरण प्रतिचयन द्वारा सर्वेक्षण किया गया। प्रस्तुत शोधपत्र मूलतः इस परिकल्पना पर आधारित है कि जैसे–जैसे समग्र नगरीकरण सूचकांक में वृद्धि होती है वैसे–वैसे परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता में ह्रास होता है। माध्य तथा मानक विचलन के आधार पर समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता को निम्न, मध्यम तथा उच्च कोटि में प्रस्तुत किया गया। समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता के मध्य व्याप्त सह–सम्बन्ध की मात्रा का मापन कार्ल पियर्सन के सूत्र के आधार पर किया गया तथा सह–सम्बन्ध की इस प्रभाविता के स्तरों का अध्ययन प्रतीपगमन अवशेष के आधार पर किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में आँकड़ों के प्रस्तुतीकरण हेतु वर्णमात्री विधि तथा प्रकीर्ण आरेख का प्रयोग किया गया है। 0.05 सार्थकता स्तर तथा स्वातंत्र्यांश 09 पर सिद्ध होता है कि समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता के मध्य दृष्टिगोचर ऋणात्मक सह–सम्बन्ध सार्थक है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों के सन्तुलित समग्र विकास हेतु परम्परागत व्यवसायों का संरक्षण नितान्त आवश्यक है।*

शब्द कुंजी : *नगरीकरण, परम्परागत व्यवसाय, अनौपचारिक आर्थिक क्रिया, समग्र नगरीकरण सूचकांक।*

1. परिचय : किसी क्षेत्र या प्रदेश में नगरीय जनसंख्या का वितरण उस क्षेत्र के नगरीकरण के स्तर को पूर्णतः व्यक्त नहीं करता यद्यपि नगरीय जनसंख्या का वितरण किसी क्षेत्र में नगरीकरण की प्रक्रिया का एक प्रमुख अभिकर्ता है। विभिन्न औपचारिक परिभाषाओं के आलोक में किसी जिला के कई प्रखण्डों में नगरीय जनसंख्या शून्य तो हो सकती है परन्तु नगरीकरण पूर्णतः अनुपस्थिति नहीं हो सकता। नगरीकरण कृषि आदि परम्परागत आर्थिक क्रियाओं में संलग्न समाज के उद्योग एवं अन्य अनौपचारिक आर्थिक क्रियाओं में संलग्न आधुनिक समाज में रूपान्तरण की वह प्रक्रिया है जो विभिन्न सामजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक एवं जनांकिकीय परिवर्तनों की वाहक है अर्थात् नगरीकरण की प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से स्थान को परन्तु परोक्ष रूप से मानव व्यवहार को भी प्रभावित करती है। नगरीकरण की प्रक्रिया की क्रियाशीलता के फलस्वरूप स्थान और मानव दोनों ही परम्परागत स्वरूप में स्थिर नहीं रह पाते यद्यपि उनका पूर्णतः आधुनिक होना नगरीकरण के विभिन्न अभिकर्ताओं की क्रियाशीलता की तीव्रता पर निर्भर करता है। फलतः एक मिली–जुली संस्कृति का विकास होता है जिसे प्रायः 'रुर्बन' से सम्बोधित किया

** शोध छात्र, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा बिहार*

*** असिस्टेंट प्रोफेसर (पत्राचार लेखक) स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा बिहार*

जाता हैं। किसी क्षेत्र में नगरीकरण प्रक्रिया के फलस्वरूप अवस्थापनात्मक विकास कार्यों द्वारा भूमि उपयोग में परिवर्तन के साथ–साथ व्यावसायिक संरचना भी परिवर्तित होती है। मूलभूत अवस्थापनात्मक विकास कार्यों (राजमार्ग, नगरीय आवास आदि) के कारण कृषि भूमि का आवासीय और व्यावसायिक उपयोग में रूपान्तरण हुआ है, जिससे कृषि तथा कृषि सम्बन्धी बनिहार जैसे परम्परागत व्यवसाय विलुप्त होने की ओर अग्रसर हो गये है और उन परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों की ओर विवशतावश प्रवास कर विभिन्न निर्माण कार्यों और रिक्शा चलाने जैसे अनौपचारिक व्यवसायों में संलग्न हो जाती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और इस कृषि प्रधान छवि का वास्तविक प्रतिनिधित्व बिहार राज्य प्रस्तुत करता है। बिहार राज्य का कैमूर जिला जो कि प्रशासनिक रूप से 11 प्रखण्डों में संगठित है जिसमें भभुआ, चैनपुर और मोहनियाँ नामक प्रखण्डों में ही नगरीय जनसंख्या का वितरण प्राप्त होता है (जनगणना, 2011)। परन्तु शेष प्रखण्डों में नगरीकरण के लक्षणों को पूर्णतः अनुपस्थिति मानना उपयुक्त नहीं है। प्रस्तुत शोधपत्र जिला कैमूर के नगरीकरण के विभिन्न लक्षणों के आधार पर समग्र नगरीकरण सूचकांक के आकलन के माध्यम से नगरीकरण के स्तर के प्रभाव को वहां के परम्परागत व्यवसायों पर स्पष्ट करता है।

2. शोधपत्र के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध–पत्र निम्नलिखित उद्देश्य प्रस्तावित है–

1. जिला कैमूर में नगरीकरण के वर्तमान स्तर का अध्ययन करना।
2. जिला कैमूर में परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के स्थानिक वितरण का अध्ययन करना।
3. जिला कैमूर में समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों के मध्य सह–सम्बन्ध की सार्थकता का परीक्षण करना तथा दृष्टिगोचर सह–सम्बन्ध के प्रभाविता स्तर के स्थानिक वितरण को प्रस्तुत करना।

3. निर्मित शोध–परिकल्पनाएँ : प्रस्तुत शोध–समस्या के समुचित समाधान हेतु निम्नलिखित परीक्षण योग्य शून्य एवं वैकल्पिक शोध–परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है–

शून्य परिकल्पना : नगरीकरण (समग्र नगरीकरण सूचकांक) और परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

वैकल्पिक परिकल्पना : नगरीकरण (समग्र नगरीकरण सूचकांक) और परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के मध्य दृष्टिगोचर सह–सम्बन्ध सार्थक है।

4. शोध–विधितन्त्र : प्रस्तुत शोधपत्र में प्रयुक्त शोध–विधितन्त्र को निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत सुस्पष्ट किया जा रहा है–

4.1 अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत शोधपत्र का अध्ययन क्षेत्र कैमूर जिला है जिसका नामकरण कैमूर पहाड़ी के नाम पर हुआ है। इसका मुख्यालय भभुआ है। यह जिला 25°05′46″ से 25°09′61″ उत्तरी अक्षांश तथा 83°67′ 74″ से 88°31′31″ पूर्वी देशान्तर के मध्य 3319.55 वर्ग कि.मी. में ग्रामीण क्षेत्र एवं 12.45 वर्ग कि.मी. में नगरीय क्षेत्र विस्तृत है जिसमें 1560813 ग्रामीण जनसंख्या एवं 65571 नगरीय जनसंख्या निवास करती है।

4.2 आँकड़ों का संग्रहण : प्रस्तुत शोध–पत्र मूलतः प्राथमिक आँकड़ों और द्वितीयक आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित है। जिला कैमूर में नगरीकरण के स्तर का निर्धारण समग्र नगरीकरण सूचकांक द्वारा किया गया है जिसके आकलन हेतु जनगणना 2011 से प्राप्त आँकड़ों को द्वितीयक सूचना स्रोत के रूप में शोध अध्ययन में प्रयुक्त किया गया है तथा जिला कैमूर में परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता के स्थानिक वितरण के अध्ययन हेतु प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण अनुसूची द्वारा किया गया।

4.3 प्रतिचयन आकार एवं विधि : जिला की कुल जनसंख्या को आधार मानकर प्रतिदर्श आकार की गणना सोल्विन के सूत्र के आधार पर की गयी जिसमें सार्थकता स्तर 0.05 निश्चित किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रतिदर्श आकार 399 प्राप्त हुआ जिन्हें समानुपातिक विधि से समस्त प्रखण्डों में वितरित कर स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से चयनित किया गया।

4.4 आँकड़ों का विश्लेषण : प्रस्तुत शोधपत्र समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के स्थानिक वितरण को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर उच्च, मध्यम, निम्न कोटि में विभक्त कर अध्ययन करता है। समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के मध्य सह–सम्बन्ध को कार्ल पियर्सन के सह–सम्बन्ध गुणांक के आधार पर तथा ज्ञात सह–सम्बन्ध की सार्थकता एवं निर्मित परिकल्पनाओं का परीक्षण स्टूडेंट टी परीक्षण द्वारा किया गया है। सह–सम्बन्ध की प्रभाविता की स्थानिक भिन्नता को प्रतीपगमन अवशेष के विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया गया हैं।

4.5 आँकड़ों का प्रस्तुतीकरण : समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों के स्थानिक वितरण सम्बन्धी आँकड़ों के कोटिवार प्रस्तुतीकरण हेतु वर्णमात्री विधि तथा सह–सम्बन्ध के प्रस्तुतीकरण हेतु प्रकीर्ण आरेख का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में एक्सेल तथा आँकड़ों के प्रस्तुतीकरण हेतु Arc Gis 10.2 का प्रयोग आँकड़ों के सांख्यिकीय विष्लेशण हेतु किया गया हैं।

4.6 चयनित संकेतक एवं चर : प्रस्तुत शोध–पत्र में समग्र नगरीकरण सूचकांक हेतु 21 धनात्मक संकेतकों तथा 04 ऋणात्मक संकेतकों का चयन किया गया है। चयनित 21 धनात्मक संकेतकों में प्रखण्ड एवं जिला की कुल कार्यशील जनसंख्या में गृह कार्यों एवं अन्य तृतीयक कार्यों में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत, बाल–लिंगानुपात, लिंगानुपात, जनघनत्व, कुल साक्षरता दर, अनुसूचित जाति साक्षरता दर, अनुसूचित जनजाति साक्षरता दर, शैक्षणिक सुविधायें, स्वास्थ्य सुविधायें, उपचारित नल जल, डाकघर, टेलीफोन, परिवहन एवं संचार व्यवस्था, बैंक, कृषि साख समितियाँ, पक्की सड़क, विद्युत व्यवस्था, प्रखण्डों में उद्योगों की प्रतिशत उपलब्धता, को सम्मिलित किया गया तथा चयनित 04 ऋणात्मक संकेतकों में अविद्युतीकृत गाँवों का प्रतिशत, अनुपचारित नल जल, सार्वजनिक शौचालय तथा खुले में शौच में संलग्नता प्रतिशत को सम्मिलित किया गया। प्रस्तुत शोध–पत्र मूलतः समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के मध्य सहसम्बन्ध के अध्ययन पर केन्द्रित है जिसकी पूर्ति हेतु समग्र नगरीकरण सूचकांक को स्वतन्त्र चर के रूप में तथा परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या को आश्रित चर के रूप में चयनित किया गया है।

5. पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन : नगरीकरण और परम्परागत व्यवसायों की परस्पर अन्तर्क्रिया सम्बन्धी साहित्य समीक्षा के अन्तर्गत कतिपय विद्वानों के महत्वपूर्ण शोधकार्यों के पुनरावलोकन को प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम ब्रेमन (2003) और हैरिस–व्हाइट (2005) का अध्ययन उल्लेखनीय है जिसमें भारत में नगरीय विस्तार और औद्योगीकरण के फलस्वरूप हुए पारम्परिक श्रमिकों के व्यापक प्रवास का उल्लेख किया गया है। नायर (2011) ने बताया कि तीव्र नगरीकरण के कारण नारियल और हथकरघा जैसे परम्परागत उद्योगों में ह्रास हुआ है और इसी तरह का प्रतिरूप भारत के अन्य राज्यों में वहां की विशिष्ट आर्थिक क्रियाओं के सन्दर्भ में देखा गया हैं। कुमार (2014) ने बताया कि बिहार में कृषि आय और पारम्परिक आजीविका में आयी गिरावट के कारण अन्तःराज्यीय और अन्तर्राज्यीय ग्रामीण–नगरीय प्रवास दोनों ही अप्रत्याशित रूप से बढ़ गया है। शर्मा (2016) ने बिहार में नगरीकरण के द्वारा जाति–आधारित पारम्परिक श्रम विभाजन और समुदाय–आधारित आर्थिक क्रियाओं के विखण्डन को स्पष्ट किया। सिन्हा और मिश्रा (2017) का अध्ययन मधुबनी चित्रकला के आजीविका के साधन के रूप में पतन के कारण अधिकांश कलाकार द्वारा जीवनयापन करने की संघर्षगाथा को व्यक्त करता हैं। प्रसाद (2018) ने पाया कि बिहार में युवा बुनाई, कुम्हार या लोहार जैसे परम्परागत व्यवसायों को त्याग कर नगरीय केन्द्रों में अनुपयुक्त वेतन पर अनौपचारिक कार्य कर रहे हैं। सिंह (2019) के अनुसार, पटना, गया और मुजफ्फरपुर जैसे जिलों में नगरीय विस्तार के कारण कृषि भूमि का आवासीय और व्यावसायिक उपयोग में रूपान्तरण हुआ है, जिससे लघु कृषक, भूमिहीन कृषक एवं कृषि कार्यों में परम्परागत रूप से संलग्न जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न अनौपचारिक कार्यों में विवशतावश संलग्न होती है। झा और वर्मा (2020) का तर्क है कि बिहार में मूलभूत अवस्थापनात्मक विकास कार्यों (राजमार्ग, नगरीय आवास आदि) के कारण कृषिगत भूमि उपयोग में ह्रास हुआ है अतः कृषि में संलग्न जनसंख्या विभिन्न निर्माण कार्यों और रिक्शा चलाने जैसे व्यवसायों में संलग्न हुई है। (राज, 2021) ने स्पष्ट किया कि परम्परागत व्यवसाय प्रायः जातिगत पहचान द्वारा जुड़े होते हैं जैसे कि कुम्भकार (कुम्हार), लौहकर्मकार (लोहार) और तांती (बुनकर) आदि युवा पीढ़ी द्वारा नवीन रोजगार हेतु नगरों को प्रवास के कारण व्यवसायों का यह परम्परागत स्वरूप तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध क्षीण हो रहे है।

6. विश्लेषण एवं निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध–पत्र के प्रस्तावित तीन उद्देश्यों के अनुरूप, सर्वप्रथम समग्र नगरीकरण सूचकांक के स्थानिक वितरण ततपश्चात परम्परागत व्यवसाय में संलग्न जनसंख्या के स्थानिक वितरण का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसाय में संलग्न जनसंख्या के मध्य सह–सम्बन्धों की सार्थकता का परीक्षण करने तथा दृश्टिगोचर सह–सम्बन्ध की प्रभाविता स्तर के स्थानिक वितरण को प्रस्तुत करने के साथ–साथ उपयुक्त सुझावों के साथ यह शोध–पत्र पूर्ण होता है।

उल्लिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत क्रमबद्ध विश्लेषण निम्नवत है–

6.1 जिला कैमूर में नगरीकरण का वर्तमान स्तर : जिला कैमूर में नगरीकरण के वर्तमान स्तर के अध्ययन के हेतु इक्कीस सकारात्मक सूचक और चार नकारात्मक सूचकों को चयनित किया गया तथा चयनित संकेतकों

के स्थानिक वितरण की माध्य से तुलना करके समग्र नगरीकरण सूचकांक का आकलन किया गया। प्राप्त मूल्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि जिला कैमूर के दो प्रखण्ड में नगरीकरण उच्च कोटि का है जिसमें दुर्गावती और चाँद सम्मिलित है। नगरीकरण की मध्यम कोटि के अन्तर्गत मोहनिया, चैनपुर, कुदरा भगवानपुर, रामगढ़, नुआंव, रामपुर और भभुआ नामक आठ प्रखण्ड आते हैं तथा नगरीकरण की निम्न कोटि अथवा स्तर को जिला कैमूर का एक मात्र प्रखण्ड अधौरा प्रकट करता हैं। सारणी 1.1 जिला कैमूर में नगरीकरण के स्तर निर्धारण हेतु सम्बन्धित समग्र नगरीकरण सूचकांक के स्थानिक वितरण मूल्यों तथा उसी आधार पर निर्मित मानचित्र 1.2 (A) में जिला कैमूर में नगरीकरण के वर्तमान स्तर को निम्न, मध्यम तथा उच्च कोटि में प्रदर्शित करता है।

6.2 परम्परागत व्यवसाय में संलग्न जनसंख्या का स्थानिक वितरण : अध्ययन क्षेत्र जिला कैमूर जिले में परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दुर्गावती प्रखण्ड में न्यूनतम 8.57 प्रतिशत तथा रामगढ़ में अधिकतम 21.88 प्रतिशत परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या है। इस प्रकार कैमूर जिले के समस्त 11 प्रखण्डों में परम्परागत व्यवसायों अर्थात् यजमानी प्रथा का यह प्रतिशत वितरण 8.57 प्रतिशत से 21.88 प्रतिशत के मध्य है। परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के प्रतिशत को निम्न, मध्यम तथा उच्च कोटि में विभाजित करने पर ज्ञात होता है कि जिला कैमूर के 18.18 प्रतिशत अर्थात् दो प्रखण्ड निम्न कोटि के अन्तर्गत सम्मिलित हैं जिसमें रामपुर और दुर्गावती प्रखण्ड आते हैं। उल्लिखित प्रखण्डों में परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 8.57 प्रतिशत और 8.70 प्रतिशत है। जिला कैमूर के परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के मध्यम कोटि के अन्तर्गत 63.64 प्रतिशत प्रखण्ड अर्थात् सात प्रखण्ड सम्मिलित हैं। इसमें चैनपुर, चाँद, कुदरा, मोहनिया, नुआंव, भभुआ और अधौरा प्रखण्ड आते हैं। उल्लिखित प्रखण्डों में परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 10.42 प्रतिशत, 11.76 प्रतिशत, 11.90 प्रतिशत, 16.07 प्रतिशत, 18.52 प्रतिशत, 18.75 प्रतिशत तथा 20 प्रतिशत है। परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के उच्च कोटि के अन्तर्गत 18.18 प्रतिशत अर्थात् दो प्रखण्ड आते हैं जिसमें भगवानपुर और रामगढ़ सम्मिलित हैं। उल्लिखित प्रखण्डों में परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 21.74 प्रतिशत तथा 21.88 प्रतिशत है। अध्ययन क्षेत्र जिला कैमूर में 15.04 प्रतिशत जनसंख्या परम्परागत व्यवसाय में संलग्न हैं। अधोलिखित सारणी 1.1 में जिला कैमूर में परम्परागत व्यवसायों में संलग्न जनसंख्या के स्थानिक वितरण मूल्यों तथा उसी आधार पर निर्मित मानचित्र 1.2 (B) में जिला कैमूर में परम्परागत व्यवसायों के संलग्न जनसंख्या के स्थानिक वितरण को निम्न, मध्यम तथा उच्च कोटि में प्रदर्शित किया गया हैं।

6.3 जिला कैमूर में नगरीकरण का परम्परागत व्यवसायों पर प्रभाव : अध्ययन क्षेत्र जिला कैमूर में समग्र नगरीकरण सूचकांक एवं परम्परागत व्यवसाय के मध्य अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन समग्र नगरीय सूचकांक के आधार पर करने पर ज्ञात होता है कि परम्परागत व्यवसाय के साथ सह–सम्बन्ध उच्च कोटि का ऋणात्मक –0.77717 है अर्थात् जैसे–जैसे जिला कैमूर में ग्रामीण जनसंख्या का नगरीय जनसंख्या में रूपान्तरण हो रहा है वैसे–वैसे परम्परागत व्यवसाय अर्थात् बनिहारी, यजमानी आदि प्रथाओं की परम्परा कम होती जा रही है।

सारणी 1.1 से स्पष्ट है कि समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसाय के मध्य आकलित सह–सम्बन्ध क्रमशः –0.77717 जिसका निर्धारण गुणांक 0.604 है। आकलित सह–सम्बन्ध की यह मात्रा सार्थकता स्तर 0.05 तथा स्वातंत्र्यांश 9 पर स्टूडेन्ट टी–परीक्षण द्वारा सार्थक सिद्ध होता है। सारणी 1.1 के आधार पर चित्र/प्रकीर्ण आरेख 1.1 की रचना गई है जिसमें जिला कैमूर में नगरीकरण के परम्परागत व्यवसाय पर प्रभाव को प्रदर्शित किया गया है।

समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसाय के मध्य दृष्टिगोचर उच्च कोटि का सार्थक ऋणात्मक सह–सम्बन्ध को प्रकट करने वाली समस्त इकाइयां परस्पर भिन्न–भिन्न स्तर का सह–सम्बन्ध रखती है। चित्र/प्रकीर्ण आरेख 1.1 से स्पष्ट है कि समस्त इकाइयाँ प्रतीपगमन रेखा से विचलन प्रकट करती हैं अतः परम्परागत व्यवसाय हेतु ज्ञात प्रतीपगमन समीकरण $y = -0.893x + 39.10$ के आधार पर प्रतीपगमन अवशेष की गणना की गई है। अधोलिखित सारणी 1.1 तथा मानचित्र 1.2 (C) में जिला कैमूर में समग्र नगरीकरण सूचकांक पर परम्परागत व्यवसाय के दृष्टिगोचर प्रतीपगमन अवशेष के आधार पर सह–सम्बन्ध प्रभाविता की कोटियाँ प्रस्तुत की गयी है जिसकी अत्यन्त निम्न कोटि के अन्तर्गत रामपुर प्रखण्ड को, निम्न कोटि के अन्तर्गत चैनपुर, अधौरा, दुर्गावती, नुआंव और कुदरा प्रखण्डा कों, मध्यम–उच्च कोटि के अन्तर्गत मोहनिया, चाँद, भभुआ तथा भगवानपुर प्रखण्डों को और उच्च कोटि के अन्तर्गत एक मात्र प्रखण्ड रामगढ़ को सम्मिलित किया गया हैं।

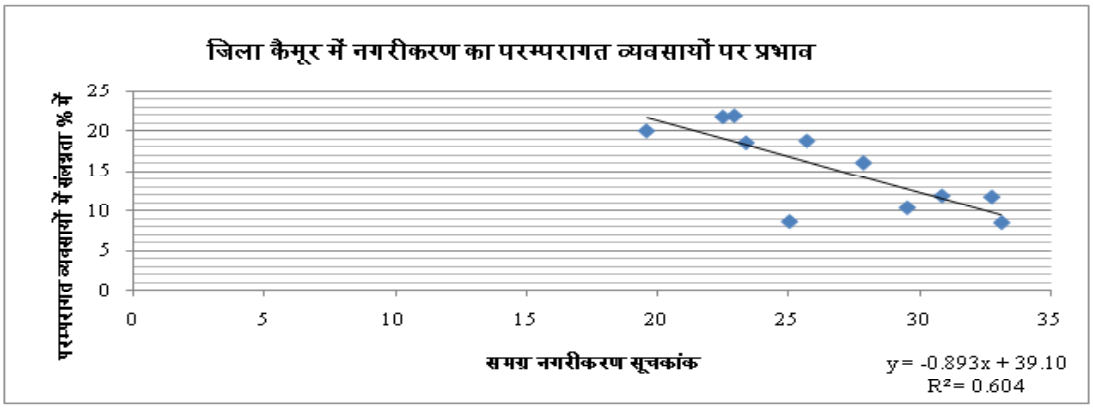

चित्र / प्रकीर्ण आरेख 1.1

सारणी 1.1 : जिला कैमूर में नगरीकरण पर परम्परागत व्यवसाय में संलग्न जनसंख्या का प्रतीपगमन अवशेष

कोटि	प्रखण्ड का नाम	समग्र नगरीय सूचकांक	परम्परागत व्यवसाय में संलग्न जनसंख्याका प्रतिशत	y = -0.8933x + 39.108 के आधार पर आकलित प्रतीपगमन अवशेष मूल्य
अत्यन्त निम्न	रामपुर	25.03	8.7	-8.05
निम्न	चैनपुर	29.52	10.42	-2.32
	अधौरा	19.58	20	-1.62
	दुर्गावती	33.12	8.57	-0.95
	नुआंव	23.37	18.52	0.29
	कुदरा	30.84	11.9	0.34
मध्यम उच्च	मोहनिया	27.85	16.07	1.84
	चाँद	32.74	11.76	1.90
	भभुआ	25.69	18.75	2.59
	भगवानपुर	22.49	21.74	2.72
उच्च	रामगढ़	22.92	21.88	3.25
सह–सम्बन्ध गुणांक (R)			-0.77717	
सह–सम्बन्ध की मात्रा			उच्च कोटि ऋणात्मक सह–सम्बन्ध	
निर्धारण गुणांक (R^2)			**0.604**	
प्रतीपगमन समीकरण			2.877	
स्टूडेन्ट टी–परीक्षण द्वारा आकलित मान			2.262	
स्टूडेन्ट टी–परीक्षण का सारणी मान ($\alpha = .05$ तथा df = 09)			शून्य परिकल्पना अस्वीकृत वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत उच्च कोटि ऋणात्मक सह–सम्बन्ध सार्थक	

स्रोत : जनगणना, 2011 तथा प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर शोधकर्ता द्वारा आकलित

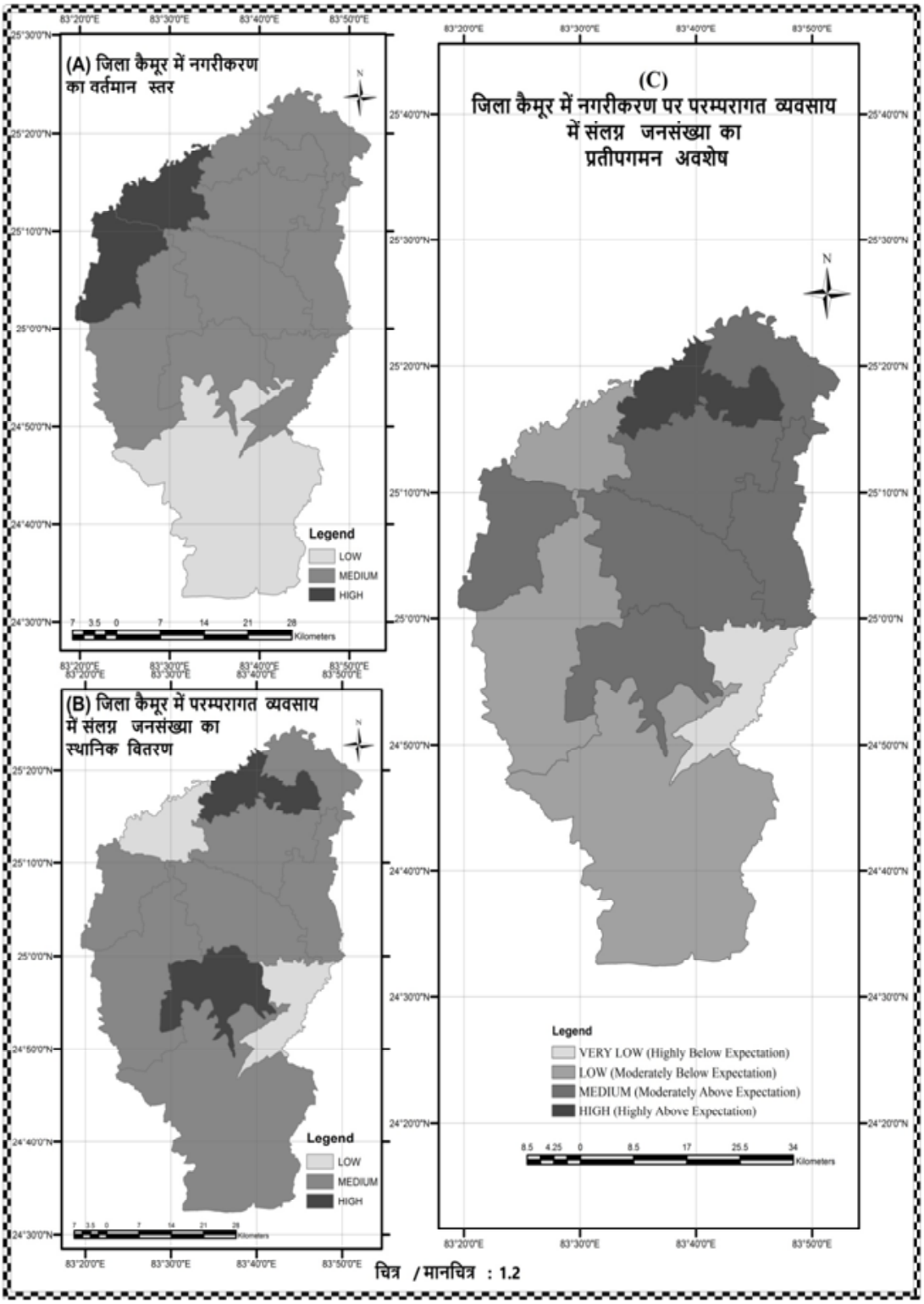
(A) जिला कैमूर में नगरीकरण
का वर्तमान स्तर
Legend
LOW
MEDIUM
HIGH
Kilometers
(B) जिला कैमूर में परम्परागत व्यवसाय
में संलग्न जनसंख्या का
स्थानिक वितरण
Legend
LOW
MEDIUM
HIGH
Kilometers
(C)
जिला कैमूर में नगरीकरण पर परम्परागत व्यवसाय
में संलग्न जनसंख्या का
प्रतीपगमन अवशेष
Legend
VERY LOW (Highly Below Expectation)
LOW (Moderately Below Expectation)
MEDIUM (Moderately Above Expectation)
HIGH (Highly Above Expectation)
Kilometers

चित्र /मानचित्र : 1.2

निर्मित परीक्षण योग्य परिकल्पना में समग्र नगरीकरण सूचकांक एक स्वतन्त्र चर है और परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता एक आश्रित चर हैं। उपर्युक्त सारणी 1.1 से स्पष्ट है कि स्वतन्त्र चर और आश्रित चर के मध्य परस्पर अन्तर्सम्बन्ध हेतु सह–सम्बन्ध गुणांक आकलित किया गया जिसका मान –0.777 हैं। आकलित सह–सम्बन्ध गुणांक का स्टूडेन्ट–टी परीक्षण द्वारा सार्थकता परीक्षण करने पर स्टूडेन्ट–टी परीक्षण द्वारा आकलित मान 2.877 ज्ञात हुआ जो कि स्वातंत्र्यांश *(df)* 9 एवं सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.02 पर स्टूडेन्ट–टी परीक्षण का सारणी मूल्य क्रमशः 2.262 तथा 2.821 हैं जो कि आकलित मूल्य से कम है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत करते हुए वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती हैं।

6.4 निष्कर्ष : परिकल्पना परीक्षण के उपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि समग्र नगरीकरण सूचकांक और परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता के मध्य दृष्टिगोचर उच्च कोटि के ऋणात्मक सह–सम्बन्ध सार्थक होने की 98 प्रतिशत सम्भावना हैं, मात्र 2 प्रतिशत यह सम्भावना हैं कि यह सह–सम्बन्ध संयोगवश हो सकता हैं अर्थात् 98 प्रतिशत सम्भावना के साथ यह निष्कर्ष दिया जा सकता हैं कि जैसे–जैसे नगरीकरण उच्च होता हैं, वैसे–वैसे परम्परागत व्यवसायों में जनसंख्या की संलग्नता में ह्रास होता हैं।

7. उपसंहार : अर्थव्यवस्था के विकास के क्रम परम्परागत व्यवसायों में संलग्नता में ह्रास स्वाभाविक है परन्तु यह ह्रास सामाजिक ताने–बाने को प्रभावित करने के साथ–साथ जब मानव संसाधन का प्रवास के माध्यम से पुनर्वितरण करता है तो गम्भीर नगरीय समस्याएं उत्पन्न होती है परम्परागत व्यवसायों को त्याग कर, अल्प आय में अनौपचारिक कार्यों में विवशतावश संलग्न प्रवासी जनसंख्या द्वारा किसी भी प्रकार का आर्थिक विकास जनित नहीं होता अपितु यह ग्रामीण गरीबी का नगरीय गरीबी एक प्रकार का रूपान्तरण है। अतः सरकारी नीतियों, स्वयं सेवक समूहों तथा असरकारी संगठनों द्वारा परम्परागत व्यवसायों को आर्थिक संरक्षण प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए जिससे भारत तथा बिहार पारम्परिक सामाजिक–सांस्कृतिक ताना–बाना सुरक्षित रखते हुए आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर रहें।

सन्दर्भ–सूची

1. Breman, J. (2003), *The Labouring Poor in India : Patterns of Exploitation and Exclusion*, Oxford University Press.

2. Census of India, Bihar (2011), *District Census Handbook Kaimur*, Directorate of Census Operations, Bihar.

3. Harriss-White, B. (2005), *India Working : Essays on Society and Economy*, Cambridge University Press.

4. Jha, A., & Verma, R. (2020), Urbanisation and Land Use Change in Bihar. *Journal of Regional Development Studies*, 12(1), 67–81.

5. Kumar, R. (2014), Migration from Bihar : Causes and Consequences, *Economic and Political Weekly*, 49(44), 64–72.

6. Kumar, V., & Singh, M. (2022), Skill Gap and Traditional Occupation in Bihar, *Indian Journal of Labour Economics*, 65(1), 23–35.

7. Nair, J. (2011), *The Promise of the Metropolis : Bangalore's Twentieth Century*, Oxford University Press.

8. Prasad, N. (2018), Changing Occupational Pattern in Rural Bihar, *Bihar Economic Journal*, 16(2), 45–58.

9. Raj, A. (2021), Traditional Castes and Occupations in Urbanising Bihar : A Sociological Perspective, *Social Trends*, 8(2), 88–104.

10. Sharma, K. (2016), Urbanisation and Social Change in Bihar. *Indian Journal of Social Development*, 16(1), 53–70.

11. Sinha, R., & Mishra, D. (2017), Revival of Madhubani Art through Urban Tourism, *South Asian Cultural Studies*, 5(1), 25–39.

12. Singh, R. (2019), Urban Expansion and Agricultural Land Loss in Bihar, *Geography and You*, 19(11), 22–29.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 249-252

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

तुलसी के रामचरितमानस का भाव और कला-पक्षीय चित्रण

*अर्चना पाण्डेय**

शोध सार–*हिन्दी के भक्तिकाल में राम उपासक, सगुण भक्ति के शीर्षस्थ महाकवि तुलसीदास का रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का अनुपम काव्य ग्रंथ है।[1] जो सहृदय है वही रामचरित का रसपान करने के लिए लालायित है। महाकवि तुलसी का राम काव्य उदात्त तत्वों से संयुक्त है। रामचरितमानस तुलसी की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। भाव और कला दोनों ही दृष्टि यह एक उत्कृष्ट एवं अमर काव्य है।*

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें।।[2]

रामचरित मानस में भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष हम सबके सामने हैं। उन्होंने भक्ति, शील और सौन्दर्य के अवतार श्री राम को सर्वशक्तिमान माना हैं। तुलसी ने विषमताओं में भी साम्य स्थापित कर स्वयं लोक नायक की पदवी ग्रहण की। तुलसी की इस असाधारण लोकप्रियता का कारण उनकी कृति रामचरितमानस में उच्च कोटि की काव्य कला है। उदात्त जीवन दर्शन है। विशिष्ट शिल्प प्रयोग है और युगीन उपादेयता है। इसके साथ ही तुलसी ने विभिन्न संप्रदायों, मतवादों और पंथों का सापेक्षित अध्ययन कर उनके श्रेष्ठतम सार तत्वों का मानस में समाहार किया। मानव के मनोलोक में जो भी है वह सब रामचरितमानस में है। 'उनके इस ग्रंथ में यह विशिष्टता है कि उन्होंने अपनी मौलिकता का दंभ नहीं किया।[3] इस प्रकार रामकाव्य सम्बन्धी सम्पूर्ण वांड्मय का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि तुलसी ने जिस राम–काव्य का वर्णन किया है वह 'नानापुरान–निगमागमसम्मत' होने पर भी अन्य सभी राम–काव्यों की अपेक्षा अपनी कतिपय विशिष्टताओं से परिपूर्ण है। इसमें तुलसी ने एक आदर्श समाज एवं आदर्श धर्म की प्रतिष्ठा की है और पात्रों के आदर्श चरित्र द्वारा लोकहित एवं लोकमंगल की शिक्षा देते हुए सम्पूर्ण विश्व के मानवों के सम्मुख आदर्श जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है। तुलसी का सम्पूर्ण राम काव्य अपनी गम्भीरता, प्रभावोत्पादकता, सरसता, सुन्दरता एवं भावप्रेषणीयता में सर्वोपरि है। उत्तरी भारत में तो साधारण झोंपड़ी से लेकर गगनचुम्बकी प्रासादों तक तुलसी के राम काव्य को श्रद्धा एवं आदर प्राप्त है। रामचरितमानस से सम्पूर्ण जन–जीवन प्रेरणा ग्रहण करता है। तुलसी ने राम के जिस आदर्श चरित्र की स्थापना की है, उसका स्वरूप पूर्ववर्ती एवं परवर्ती किसी भी राम काव्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। साथ ही तुलसी ने काव्य की दृष्टि से अपने काव्य में जो गुरुता, गम्भीरता एवं माधुर्य की सृष्टि की है, वह नाना पुराण निगमागम सम्मत एवं छहों शास्त्र सब ग्रन्थन को रस होकर भी तुलसी का काव्य मौलिकता में अन्य सभी काव्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि उसमें तुलसी ने अपनी अद्भुत रचना चातुरी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा, विलक्षण, उद्भावना भक्ति, उर्वर कल्पना एवं उत्कृष्ट काव्य कला के योग से एक ऐसे दिव्य एवं भव्य काव्य का निर्माण किया है जिसकी तुलना में कोई भी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काव्य नहीं ठहरता। यही कारण है कि 'गोस्वामी तुलसीदास मार्मिक प्रसंगो के वर्णन की दृष्टि से, सुव्यवस्थित कथा योजना की दृष्टि से, श्रीराम में भक्ति, शील एवं सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की दृष्टि से, सैद्धान्तिक समन्वय की दृष्टि से उच्च कोटि की शिष्टता एवं साधुता की स्थापना की दृष्टि से तथा उत्कृष्टशील निरूपण एवं काव्य सौष्ठव की दृष्टि से सर्वोपरि है और इसीलिए वे राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है।[4]

बीज शब्द–*वांड्मय, जीवन दर्शन, रामचरित, शीलरूपण, नवनवोन्मेषशालिनी, समाजवाद, निगमागम।*

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

विषय वस्तु–तुलसीदास ने रामचरितमानस, कवितावली, विनय पत्रिका, दोहावली, उत्तररामचरित आदि ग्रंथों के माध्यम से, 'अपनी रससिक्त लेखनी से, सरल शब्द–सर्जना से राम के चरित्र को जैसा प्रस्तुत किया, वैसा कोई अन्य नहीं कर सका।'[5] तुलसीदास जब राम को राजा बना देते हैं तब ऐसा लगता है कि राजा शब्द केवल राम के लिए ही बना है। गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाजवाद की स्थापना करना चाहा है। सत्य भी तो है कि सामाजिक मूल्य व्यक्ति के हित और स्वार्थ से ऊपर होते हैं। राम ने भी समाजवाद के इस अर्थ को अपने जीवन में उतारा और अपने आचरणों से लोगों को समझाया भी। वैसे तो सम्पूर्ण रामचरित मानस यही सीख देता है। वास्तव में समाजवाद राम के चरित्र में विशेष महत्व रखता है। सत्ता सुख को त्यागकर, समाजवाद को ढोकर राम ने अपने साहस का परिचय दिया है। त्याग की भावना साहसिकता का सर्वोच्च उदाहरण है। अगर व्यक्ति में साहस नहीं है, तो जीवन नहीं है। साहस, सत–जीवन का आधार है।

रामचरितमानस एक चरित्र काव्य है। इसके नायक क्षत्रिय कुल भूषण भगवान राम है, जो तुलसी की उदारता अन्तःकरण की विशालता एवं भारतीय चारित्रिक, आदर्श की साकार प्रतिमा है। तुलसी ने राम के रूप में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की आदर्शमयी ऐसी जीवन्त प्रतिमा प्रतिष्ठित की है, जो विश्व भर से अलौकिक, असाधारण, अनुपम एवं अद्‌भुत है, जो धर्म एवं नैतिकता की दृष्टि से सर्वोपरि है तथा जिसमें त्याग, विराग एवं साधु प्रकृति के साथ–साथ लोकहित एवं मानवता का साकार रूप विद्यमान है। तुलसी के राम एक आदर्श पुरुष ही नहीं है, अपितु वे एक ऐसे महान व्यक्तित्व सम्पन्न नायक हैं, जिनका कवि के कल्पना राज्य पर एकाधिकार है। जिसका महत्व कवि के साथ–साथ पाठकों एवं श्रोताओं के मनश्चक्षुओं के सम्मुख भी आज तक प्रतिष्ठत है और जिनके देवत्व पर मुग्ध होकर प्रणाम करते हैं, तुलसी के राम बुद्धिमान, धर्मज्ञ, यशस्वी, प्रजाा हितैषी, धर्मरक्षक, गोपालक, सत्यसिन्धु, लोकप्रिय, बलिष्ठ, शत्रुजयी महान, त्यागी, धैर्यवान, प्रियदर्शी, शक्ति शील सौन्दर्य के अगाध भण्डार, धर्मात्मा एवं उच्चतम आदर्श के प्रतीक हैं। वे विश्व रूप होकर भी मानव हैं और मानव होकर भी परब्रह्म स्वरूप हैं। तुलसी ने राम को मानव एवं ब्रह्म दोनों रूपों में चित्रित करके एक मानव की महत्ता एवं गुरुता का अच्छा निरूपण किया है। निस्सन्देह राम आदर्श के उतुंग शिखर पर प्रतिष्ठित मानव हैं, किन्तु तुलसी ने अपनी उर्वर कल्पना एवं उत्कृष्ट प्रतिभा द्वारा मानव में देवत्व की, नर में नारायण की अथवा व्यक्ति में ब्रह्म की जो स्थापना की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। इसी कारण राम मनुज जुहारी कार्य करते हुए अज अनादि निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म हैं, माता–पिता द्वारा परिचालित होकर भी विधि हरि सम्भु नचावन हारे हैं और कृष्ण वर्ण होकर भी कोटि मनोज लजावन हारे हैं। राम धीरोदात्त नायक हैं, मानवता के पोषक हैं, उच्च आदर्शों के प्रतीक हैं, तेजोमय क्षात्र धर्मयुक्त महान वीर हैं और दैहिक–दैविक–भौतिक तापों का विनाश करके एक समृद्धशाली, सर्वमुख सम्पन्न एवं सर्वजनोपयोगी आदर्श राम राज्य के संस्थापक हैं।

तुलसी का रामचरितमानस प्रकृति सुन्दरी का रमणीय क्रीड़ा स्थल है। इसमें स्थान–स्थान पर वन, पर्वत, नदी, सरोवर षट्‌ऋतु आदि के बड़े ही मनोहर एवं हृदश्यस्पर्शी वर्णन मिलते हैं, जिनमें कवि ने प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों द्वारा एक अद्‌भुत प्राकृतिक सौन्दर्य की सृष्टि की है। महाकवि तुलसी ने कहीं–कहीं प्रकृति से अपना घरेलु रिश्ता जोड़ते हुए भी चित्रण किया है–

बनदेवीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।।
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज तुराई।।[6]

महाकवि तुलसी ने रामचरितमानस में स्त्री जीवन के चित्र अनेक जगह चित्रित किये हैं। उनकी सीता गुणशीला, पतिव्रता स्त्री है। बिना स्त्री के पुरुष अधूरा है। स्त्री के बिना पुरूश के अस्तित्व की कल्पना ही नही है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।[7]

स्त्री समाज, दुनिया की पूरी आवादी की आधी है। कहीं–कहीं तुलसी ने स्त्री को अधम ते अधम अधम अति नारी भी कहा है। नारी अपनी अपराजेय शक्ति से पुरुष को प्रेरित करती रहती है। सीता उनकी स्त्री का गौरवगान प्रतीक है।

तुलसी ने रामचरितमानस में अपने युग के सामाजिक जीवन, राजनीति, नैतिकता, धार्मिक विद्वेष, विलासिता, राज्य समृद्धि पारिवारिक रीति रिवाज, लौकिक व्यवहार, जन–दशा आदि का वर्णन करके युग जीवन का एक मार्मिक चित्र भी अंकित किया है। जिसमें तत्कालीन जीवन के अन्तर्गत व्याप्त आडम्बरप्रियता, वंचकता, जड़ता ईर्ष्या, द्वेष स्वार्थपरता, विलासिता, वर्णसंकरता, अधार्मितका, निरक्षरता, अत्याचार, अनाचार आदि का निरूपण भी

मिलता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि 'तुलसीदास ने मानस के उत्तरकांड में कलियुग का जो वर्णन किया है, वह उन्हीं के समय की तत्कालीन परिस्थिति थी। उस अंश को पढ़कर ज्ञात होता है कि कवि के मन में समाज की उच्छृंखलता के लिए कितना क्षोभ था, इसी क्षोभ की प्रतिक्रिया उनके लोक शिक्षक समाज चित्रण के आदर्श में है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि तुलसी के मानस में तत्कालीन युग के जीवन की समग्र झांकी मिल जाती है।

रामचरितमानस में महाकवि तुलसी ने विविध भावों से युक्त नव रसों का सहज, सजीव और सफल चित्रण किया हैं। विविध रसों से परिपूर्ण सोपान में तुलसी की कारयित्री प्रतिभा के साथ उर्वर कल्पना और उत्कट भावुकता के दर्शन होते हैं। पुष्प वाटिका में राम–सीता मिलन में संयोग श्रृंगार के दर्शन होते हैं तो अशोक वाटिका में विरहिणी सीता के वियोग श्रृंगार का वर्णन मिलता है। दशरथ मरण पर रानियों के विलाप में करुणा रस की व्यंजना होती है तो धनुष यज्ञ अवसर पर लक्ष्मण की दर्प उक्तियों में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। नारद मोह के चित्रण में हास्य रस का चित्रण है तो परशुराम की गर्वोक्तियों में रौद्र रस विद्यमान है। इसी तरह शिव जी की बारात में भयानक रस की अभिव्यक्ति है। खरदूषण, मेघनाथ, राम–रावण के युद्ध में वीभत्स रस मिलता है। इसी प्रकार राम के विराट रूप चित्रण में अद्‌भुत रस की सफल व्यंजना हुई है। भक्ति निरूपण में ''परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।'' में शांत रस की अभिव्यंजना हुई है। रामचरित मानस का अंगीरस शांत रस प्रधान है। इसी तरह तुलसी ने अपने महाकाव्य में स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथा एवं आत्मप्रवोध के लिए मानस की रचना की है। वहीं कीरति भणिति भूति भल सोई में कविता को श्रेष्ठ मानकर सबका हितेषी माना है। इसी प्रकार राम के सुयश के लिए चित्रण किया है। तुलसी राम की भक्ति के माध्यम से लोक कल्याण दिखलाते हुए कल्कि कलुष का विभंजन करते हुए सर्वसाधारण के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

महाकवि तुलसी ने काव्य प्रतिभा और प्रेरणा शक्ति के माध्यम से रामचरितमानस में जिस सरसता और रमणीयता की वृद्धि की है जिससे यह काव्य सबसे अधिक हृदय को स्पर्श करने वाला लगता है। तुलसी ने मानस की भाषा के लिए अरथ अनूप स्वभाव सुभासा, सोह पराग मरन्द सुवासा। इस तरह उन्होंने भावों को प्रेषणीयता से युक्त भाषा में संवाद, प्रसांगानुकूल शब्द चयन, व्यावहारिक एवं मुहावरे दार बनाया है। इसी तरह अलंकार योजना में भावों के उत्कर्ष के लिए अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बनाया है। उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, द्रष्टांत, व्यतिरेक आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। जिसमें चित्रोमपता के साथ निर्दोष सम्यक दर्शन होते हैं। रूपक, अनुप्रास और द्रष्टांत अलंकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं–

नील सरोरूह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन।।[8]
बंदउँ गुरु पद परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारु।।[9]
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परम कुधात सुहाई।[10]

छंद विधान की दृष्टि से भी तुलसी ने मात्रिक छंदों में चौपाई, सोरठा, दोहा, हरिगीतिका, तोमर, त्रिभंगी और चौपैया छंद को अपनाया है वहीं वर्णिक वृत्तों में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंगप्रयात, मालिनी, वसन्ततिलका, वंशस्थ आदि छंदों का प्रयोग किया है।

महाकवि तुलसी अपने युग के लोकनायक थे। आपने सामाजिक विकास को गति देकर उसके महत्व को बतलाया है। साथ ही उन्होंने अपने काव्य के आधार पर भारतीय समाज में वैचारिक क्रान्ति करने का शंखनाद किया है। वर्तमान समय में तुलसी का काव्य केवल भारतीय समाज की दृष्टि से ही नहीं बल्कि वैश्विक समाज में एकात्मकता की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर आपका काव्य मनुष्य में आत्मविश्वास निर्माण करने में सक्षम है। तुलसी का काव्य काव्यशास्त्रीय मानदण्ड की दृष्टि से भी बहुत सफल बन पड़ा है। महाकवि तुलसी प्रबन्धकार के रूप में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की अनुभूति देने वाले हैं। निश्चित रूप से महाकवि तुलसी का काव्य इसीलिए लोकभाषा की दृष्टि से अप्रतिम और प्रासंगिक बना हुआ है। आपने अपनी भाषा के आधार पर समाज को प्रबोधित करने का जो विशिष्ट कार्य किया है उससे आपकी संवाद शैली का प्रभावी प्रयोग दिखलाई पड़ता है।

उपसंहार–निष्कर्ष यह है कि तुलसी का रामचरितमानस अद्‌भुत काव्य सौष्ठव, सरल रचना शैली एवं संर्वागपूर्ण काव्य कुशलता से परिपूर्ण है। यह काव्य तुलसी की काव्य मर्मज्ञता, कलात्मकता, सरसता, भावुकता, गम्भीरता एवं रचना निपुणता का द्योतक है। इसमें तुलसी कवि और उपदेशक दोनों रूपों में विद्यमान हैं। कवि ने मर्यादित श्रृंगार के साथ–साथ असीम शौर्य, अतुलित पराक्रम, अद्वितीय शील उत्कृष्ट रूप सौन्दर्य एवं उच्चकोटि के मानवता प्रेम का निरूपण किया है। मानस का निर्बल, निरीह एवं निराश्रित जनता के संबंध है, इसमें जगत् से अधीर एवं विक्षुब्ध मानव को भक्तवत्सल एवं सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान के समीप पहुंचकर आश्वस्त करने की अपूर्व शक्ति है। इसमें लोक जीवन की गहराई तक पहुँचने की अद्‌भुत क्षमता है। इसीलिए यह काव्य राम राज्य के उन्नत आदर्श की प्रेरणा देता हुआ विश्व में सुख एवं शांति के साथ–साथ लोकहित की प्रतिष्ठा कर रहा है।

वर्तमान परिस्थिति में पूरा विश्व आतंक, भय, अविश्वास के जिस वातावरण में जकड़ा हुआ है, ऐसे में राम से एक राजा व समाज को दिशा देने वाले एक नेतृत्व की आवश्यकता फिर से अनुभव की जा रही है। राम राज्य ही किसी भी राज्य की आदर्श स्थिति हो सकती है, इसे सभी ने स्वीकार किया है। भौतिकतावादी समाज में प्रेम, बंधुत्व, करुणा के भावों के प्रसार के लिए यदि हम इतिहास परम्परा और मिथक में कोई चरित्र पाते हैं तो वह राम का ही है। इस तरह सिद्ध है कि रामचरितमानस का स्थान हिन्दी साहित्य में ही नहीं जगत के साहित्य में निराला है। उत्तम काव्य के लक्षणों से युक्त, साहित्य के सभी रसों का आस्वादान कराने वाला काव्य कला की दृटि से भी सर्वोच्च कोटि का ग्रंथ है।

संदर्भ–सूची

1. खण्डेलवाल, डॉ. जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, 25वां संस्करण 2013–14
2. पोद्‌दार, हनुमान प्रसाद, तुलसी कृत रामचरितमानस, गोरखपुर, गीता प्रेस, बारहवाँ संस्करण, संवत् 2063
3. त्रिपाठी, डॉ. ओम प्रकाश, संपादन (लेख डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित का लेख) भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन, कानपुर, विद्या प्रकाशन, संस्करण 2014
4. सक्सेना, डॉ, द्वारिका प्रसाद, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, आगरा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, संस्करण 2015
5. गर्ग, प्रो. संध्या, (संपादक), वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राम की प्रासंगिकता, काठमंडू, नेपाल, डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्रा पब्लिकेशन, प्रा. लि., प्रथम संस्करण 2022

संदर्भ–ग्रंथ

1. खण्डेलवाल, डॉ. जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 184
2. पोद्‌दार, हनुमान प्रसाद, तुलसी कृत रामचरितमानस, गोरखपुर गीता प्रेस, बारहवाँ संस्करण, संवत् 2063, पृ. 12,
3. त्रिपाठी, डॉ. ओम प्रकाश, संपादन (लेख डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित का लेख) भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का पुनर्मूल्यांकन, पृ. 153
4. सक्सेना, डॉ, द्वारिका प्रसाद, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ. 183
5. गर्ग, प्रो. संध्या, (संपादक), वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राम की प्रासंगिकता, पृ. 11
6. रामचरितमानस, पृ. 311
7. रामचरितमानस, पृ. 311
8. रामचरितमानस, पृ. 2
9. रामचरितमानस, पृ. 3
10. रामचरितमानस, पृ. 5

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 253-255

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भीष्म साहनी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना

*यज्ञेश चतुर्वेदी**

प्रस्तावना : साहित्य समाज का दर्पण होता है ठीक उसी प्रकार जैसे रचनाएँ किसी लेखक के व्यक्तित्व और जीवन का प्रतिबिंब। हम किसी साहित्यकार को, उसकी कृतियों और उसके द्वारा जीवन में भोगे गए यथार्थ से तटस्थ रख के नहीं देख सकते। निःसंदेह साधारण मनुष्य हो या कृतिकार, काल, समय व परिस्थितियों की उत्पत्ति है। प्रतिभा के भंडार, सामाजिक सरोकार के वास्तुकार, मानवीय संवेदनाओं के सहज मूर्तिकार, भीष्म साहनी का संपूर्ण कथा साहित्य मानवीय संवेदनाओं की करुणामय संघर्ष का केंद्र रहा है। प्रेमचंद, यशपाल की परंपराओं को जितनी बारीकियों और सहजता से आगे ले जाने का उत्तरदायित्व भीष्म साहनी ने निभाया है; वे कहीं अन्यत्र दुर्लभ है।

उन्होंने समाज के संवेदना शून्य होते हुए, वर्गों के जीवन को, अपने कथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मानव होने की प्रथम कसौटी, मनुष्य की संवेदनशीलता और मानवीयता में निहित है। भीष्म साहनी जी ने अपनी रचनाओं की भावभूमि में यह सिद्ध करने का सार्थक प्रयास किया है। भारतीय समाज में विद्यमान असमानता, षोशण वर्गीय–विभेद, सांप्रदायिकता तथा विभाजन की त्रासदियों को उद्घाटित करते हुए, सत्ता हस्तांतरण, भारत विभाजन के काल में भोगे हुए यथार्थ को साहित्य में उकेर कर अपने पूर्व, समसामयिक व भविष्य की चुनौतियों को एक साथ अपने कथा संसार में पिरोनें वाले कथाकार भीष्म साहनी जी का योगदान अवर्णनीय है[1] उन्होंने झरोखे, कड़ियाँ, तमस, बसंती, मैय्या दास की माड़ी, कुन्तों नीलू नीलिमा नीलोफर, आदि उपन्यासों के साथ भाग्य रेखा, पहला पाठ,पटरियां, वाड्चू शोभायात्रा निशाचर, आदि कहानी संग्रहों में पूँजीवादी व्यवस्था व आर्थिक विसंगतियों के मध्य उन्मूलित होते मानवीय मूल्यों एवं हिंसक घटनाओं को आलोचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का सफल व सार्थक प्रयास किया है।

"अमृतसर आ गया"[2] जैसी कहानियों में भीष्म साहनी ने स्वयं मुसाफिर बनकर, संपूर्ण यात्रा का सजीव वर्णन प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया है कि, किस प्रकार भारत विभाजन के दौरान, राजनीतिक स्वार्थपरता और आर्थिक निहितार्थकों के मध्य सारभौमिक मानवीय संवेदनाओं का उन्मूलन हुआ। कहानी में किरदार दुबला बाबू के मनोविज्ञान का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए भीष्म साहनी ने यह दिखाया है कि कैसे पाकिस्तान की सरजमीन पर मूक होकर अपने ऊपर हुए यातनाओं को झेलने वाले व्यक्ति को, सांप्रदायिक संरक्षण और वर्गीय बहुलता का संबंल भारत की सीमा में उन्मादी और हिंसक बना देती है। अपने सांप्रदायिक उन्माद के भावावेश में वह व्यक्ति जब गाड़ी एक स्टेशन पर धीरे–धीरे रुक रही होती है, तो वह देखता है की एक निरीह बूढ़ा व्यक्ति एक औरत के साथ नंगे पांव चला आ रहा है। जब गाड़ी के दरवाजे के पास पहुंचकर वह आवाज लगता है कि– 'दरवाजा खोलो' तो दुबला बाबू बोलता है कि– 'कौन है इधर जगह नहीं हैं' बाहर खड़ा आदमी फिर गिड़गिड़ाने लगता है– "खुदा के वास्ते गाड़ी निकल जाएगी बाबू और उसने लपक कर दरवाजा खोल दिया– "या अल्लाह" उसे आदमी के अस्फुट से शब्द सुनाई दिए, दरवाजा खुलने पर जैसे ही उसने इतमीनान से सांस लिया और उसी वक्त में बाबू के हाथ में चमकते छड़ को देखा। एक ही भरपूर वार में बाबू ने उसे मुसाफिर के सर पर वार किया, व्यक्ति के सर से लहू की धार बह चली और वह आसक्त होकर गिर पड़ा उपरोक्त प्रसंग में साहनी जी ने राजनीतिक शक्तियों के हस्तांतरण और सांप्रदायिक उन्मादों के मध्य मिट रही नैतिकता और मानवीय मूल्यों की तरफ पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। विभाजन के मध्य जब लोग आर्थिक विपन्नताओं, सामाजिक उन्मूलन और परदेस गमन का दंश झेल रहे थे, ऐसे में केवल सांप्रदायिकता के नाम पर मानव मात्र का क्रूर व नृशंस हो जाना कहां तक तर्कसंगत है?

* *शोध छात्र, हिन्दी विभाग, टी.डी.पी.जी. कॉलेज, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.*

मानवीय संवेदनाओं को जीवन का आधार स्वीकार करने वाले भीश्म साहनी ने, "चीफ की दावत"[3] कहानी में उल्लेखित किया है, कि किस प्रकार सामनाथ एक क्लर्क है, जो बहुराष्ट्रीय कंपनी में नौकरी करता है! वह तरक्की पाने की मनसा से अपने बॉस को घर पर दावत के लिए बुलाता है, पूंजीवादी दौर में सामनाथ मां को फालतू सामान में तब्दील कर देता है। सामनाथ को आशंका है, कि उसके माँ को इस आधुनिकतावादी जमाने के कायदे मालूम नहीं है ऐसे में अपने अधिकारी को अपनी आवास पर बुलाकर रिझाने एवं आवाभगत करने के प्रयास में सामनाथ अपने बुजुर्ग माँ को उपेक्षाओं की सारी हदें पार कर देता है। व्यक्ति की ऐसी मनोवृत्तियों के मध्य पतित होते मानवीय संवेदनाओं की जो अनुभूति पाठक के मन में होती है, वह मध्यवर्गीय जीवन व परिवार में पीढ़ियों के मध्य उपजे अंतर्द्वंद को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ निरूपित किया है। पारिवारिक जीवन में बदलते रिश्तों के मायने एवं उनके घटते मूल्य के साथ–साथ आधुनिकता भोगी मानव आज के परिवेश में नैतिक कसौटियों के मयार में कितना प्रासंगिक है यह कह पाना असम्भव है।

"ओ हरामजादी"[4] कहानी में प्रवासी भारतीय के मन की पीड़ाओं का वर्णन है सागमीट कहानियों में वर्ग विभाजित समाज में पनपती अमानवीयता का तर्कपूर्ण चित्रण प्रस्तुत है। वहीं "कड़ियां" उपन्यास आधुनिक समाज के बदलते मानवीय एवं वैवाहिक मूल्य की ओर संकेत करता है। उपन्यास की मूल कथा दांपत्य जीवन से संबंधित है। उपन्यास का पात्र महेंद्र और प्रमिला के मध्य मतभिन्नता विद्यमान है। जहां महेंद्र आधुनिकतावादी और पाश्चात्य जीवन शैली को अनुकरण करने वाला व्यक्ति है वही उसकी पत्नी प्रमिला घरेलू व पतिव्रतधर्म परायण स्त्री है। महेंद्र अपनी पत्नी प्रमिला को घर से बाहर निकाल देता है। वहीं दूसरी तरफ उसकी पत्नी प्रमिला अपने पति द्वारा किए गए अत्याचार और शोषण को मूक होकर सहती है। उपन्यास में स्त्री की निर्भरता एवं पितृसत्तात्मक समाज की निरंकुशता के मध्य, लगातार विघटित हो रहें मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं का जितना संजीव चित्रांकन भीष्म साहनी करते हैं वह भारतीय हिंदी साहित्य कथा उपन्यास की परंपराओं में अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है।

धर्मांधता के नाम पर मानवीय मूल्य को दमित करने वाले लोगों की मानसिक वृत्ति को उजागर करने का काम, साहनी जी ने अपने उपन्यास नीलू, नीलिमा, नीलोफर, में किया है यह उपन्यास भी ''तमस''[5] और बहुत–सी कहानियों की तरह यह हिंदू मुस्लिम सांप्रदायिकता की समस्या पर केंद्रित है।

''कड़ियां'' और ''कुन्तो'' की भांति पुरुष सत्ता के अत्याचार और दमन के साथ–साथ सांप्रदायिक व कट्टरपंथी सोच की घृणित दुनिया का घिनौना चेहरा बेनकाब करते हुए भीष्म साहनी जी ने तत्कालीन जनजीवन को, संवेदनशील बनाने का भगीरथ प्रयास किया है।

असतो माँ सद–गमय।
तमसो माँ ज्योर्ति–गमय।
मृत्यों–माँ अमृत गमय।

वैदिक ऋचा को उद्धृत करते हुए भीष्म साहनी जी में अपने उपन्यास ''तमस''[6] का शीर्षक यहीं से उठाया है यह वही तमस है जो सांप्रदायिकता का विषैला अंधकार है उपन्यास की शुरुआत नत्थू द्वारा सूअर मारने के दृश्य से होती है सूअर की घटना और गौकसी के बाद दंगे शुरू हो जाते हैं और देखते ही देखते पूरा शहर सांप्रदायिकता के विषैले धुंध में समा जाता है जिसका कारण ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के साथ सत्ता के लोलुप व्यक्तियों व धार्मिक कट्टरपंथियों का निजी स्वार्थ सम्मिलित है।

"सरदारनी"[7] कहानी; साहनी जी के इन्हीं प्रयासों का जीता जागता उदाहरण है। जहाँ उन्होंने एक सच्ची घटना को आधार बनाकर "सरदारनी" जैसे पात्रों के द्वारा जो मानवीय चेतना से ओत–प्रोत व कर्तव्यनिष्ठ है। दरअसल कहानी एक अफवाह से प्रारंभ होती है स कि हिंदू मुस्लिम आपस में मारकाट करने की तैयारी में है और मास्टर करमदिन मुस्लिम मोहल्ले में जाना चाहते हैं सरदारनी उन्हें वचन देती है। कि वह उन्हें मुस्लिम मोहल्ले में सही सलामत पहुँचाएगी और आपने वचन को निभाती है। सरदारनी उन्हें अपनी जान पर खेल कर मुसलमान मोहल्ले तक पहुँचाती है चूँकि कहानी का उद्देश्य सांप्रदायिक सद्भाव है, लेकिन दंगों के दौरान धार्मिक उन्माद और मानवीय पीड़ाओं को सांप्रदायिकता ने लील लिया है। उपरोक्त कहानी इस बात का परिचायक है कि व्यक्ति संवेदना के स्तर पर मृत हो चुका है।

निष्कर्ष : उपरोक्त के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी जी ने भारतीय पुरातन संस्कृति में व्याप्त हजारों साल की मानवीय संवेदनाओं को बड़े ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया मानव सेवा को देखने

दिखाने का जो अप्रतिम प्रयास लेखक ने किया है वह आज के परिवेश में भौतिक सुख संसाधनों के पीछे भागती दुनिया के लिए नजीर है अपने कथा साहित्य के माध्यम से विघटित होते मानवीय मूल्य से जन्मी विसंगतियों एवं विखराव का सूक्ष्म अंकन कर, संपूर्ण सामाजिक नैतिकता की स्थापना तथा कथा साहित्य में संपूर्ण जीवन दर्शन का प्रस्तुतीकरण किया है।

संदर्भ–सूची

1. कश्यप, श्याम, भीष्म साहनी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृ. 279
2. साहनी, भीष्म, मेरी प्रिय कहानी, राजपाल प्रकाशन, मदरसा रोड कश्मीरी गेट, दिल्ली, पाँचवाँ, संस्करण–2022, पृ. 63
3. साहनी, भीष्म, मेरी प्रिय कहानी, राजपाल प्रकाशन, मदरसा रोड कश्मीरी गेट दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण–2022, पृ. 13–21
4. कश्यप श्याम, भीष्म साहनी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृ. 49
5. इण्टरनेट–भीष्म साहनी

https://www.abhivyakti-hindi.org/kahaniyan/2010/o_haramzade/o_haramzade1.htm

6. कश्यप, श्याम, भीष्म साहनी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृ. 65
7. इंटरनेट–भीष्म साहनी, सरदारनी कहानी

https : //hindikahani-hindi&kavita-com@Sardarni&Bhisham&Sahni-php

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 256-258

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय ज्ञान परम्परा में अपभ्रंश के रत्न कवि (योगीन्दु और मुनि राम सिंह)

*डॉ. बारेलाल जैन**

भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा में धर्म दर्शन, साहित्य, व्याकरण, कला आदि के साथ जीवनपयोगी अनेक सिद्ध सोपानों का चित्रण मिलता है। भारतीय साहित्य अपनी विशिष्ट शैली और उपलब्धियों के लिए विश्व में मान्य और जीवन्त प्रासंगिक है। चाहे सुख का समय हो या किसी भी विषम आपदा या कठिनाई का समय हो। भारतीय ज्ञान परम्परा में सदैव ही मानवीय उदात्तताओं के दर्शन होते है। कीरी से कंजर तक की रक्षा और आजीविका पोषण में सहज ही उदारता और समरसता के उद्धरण भारतीय साहित्य और संस्कृति विशिष्ट विशेषता बनी हुई है। भारतीय घर्म दर्शनों में जैन धर्म जनधर्म माना गया है। इसकी शिक्षाएँ, सिद्धान्त सम्पूर्ण मानव समाज के लिए हितकर हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त के आधार पर व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व में शांति की स्थापना इसकी अपनी निजी विशेषता है। जैन वांड्मय में चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, संगीत कला आदि के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वैभव के दर्शन भी मौजूद है। चूँकि भाषा भावों की संवाहक होती है। भाषा से ही हमें किसी देश या जातीय संस्कृति के दर्शन सुलभ हो पाते हैं।

भारत देश की भाषागत उन्नति में जैन मुनि/साधक भी सहायक रहें हैं। इन जैन मुनियों/साधकों ने प्राकृत के अनेक रूपों का उपयोग किया और सृजन सेवा की...। हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के जन्म लेने के पूर्व इन प्रान्तों में जो भाषा प्रचलित थी उनमें जैनों का विशाल साहित्य सृजित है। जिसे अपभ्रंश साहित्य कहा गया है।[1] नरेन्द्र प्रकाश जैन के अनुसार जैन दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह संसार के किसी भी प्राणी को दीन हीन या पतित नहीं मानता। जिस तरह बीज में वृक्ष, बूंद में सागर और अणु में विराट छिपा रहता है उसी प्रकार हर जीव में आत्मोत्थान की अपार सम्भावना छिपी रहती है। हर आत्मा में परमात्मा बनने की योग्यता है। वशर्ते वह अपने विकारों को जीतकर सम्यक् पुरुषार्थ कर, लोक कल्याण की भावना में निरत हो। इन सब गौरवपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के सैकड़ों ग्रंथों में किया गया है।[2]

ईसा की छठवीं सदी के जैन मुनि योगीन्दु[3] के बारे में ज्यादा परिचय तो नहीं मिलता, लेकिन उनके काव्य आध्यात्मिक ग्रन्थ 'परमात्म प्रकाश' और 'योगसार' अपभ्रंश भाषा में रचित है। जिनकी प्रेरणा और प्रभाव आगे चलकर संत काव्य परम्परा पर है। योगीन्दु जी महान् अध्यात्मवेत्ता, लोकमंगल के अभिलाषी संत रहे है। उनका हृदय जनसाधारण के दुःख दैन्य और अज्ञान से दयार्द्र था।[4] वे साम्प्रदायिकता से परे साधक रहे है। उनकी साधना धर्म विशेष की सीमाओं में आबद्ध नही है।[5] अपभ्रंश में दोहा, छंद का श्रीगणेश जैन कवि जोइन्दु (योगीन्दु) की रचनाओं से माना जाता है।[6] कबीर ने जिस ब्रह्म को निर्गुण कहा है, मुनि योगीन्दु ने उसे निष्कल (निरंजन) की संज्ञा दी है–

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु, जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि, णाउ णिरंजणु तासु।।[7]

अर्थात् जिसके न वर्ण, न गंध, न रस, न शब्द, न स्पर्श, न जन्म और न मरण होता है, वहीं 'निरंजन' कहलाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में संत काव्य पर इनका विशेष प्रभाव मिलता है।[8]

योगीन्दु जी ने अपने सृजन में शास्त्र–पुराण और तपस्या अथवा तन्त्र–मंत्र से जीव की मुक्ति नहीं मानी है। आपने सन्त कवियों की तरह परमात्मा को 'घट' के भीतर खोजने की बात की है–

देउ ण देअलि णवि सिलए, णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ समचित्ति।।[9]

* *हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

अर्थात् देव, देवालय, पाषाण की मूर्ति, लेप, चित्र में नहीं रहता। वह तो समचित में निवास करता है। योगीन्दु जी कहते है–'ज्ञानियों के निर्मल मन में अनादि देव उसी प्रकार निवास कर रहा है, जैसे सरोवर में हंस लीन रहता है। उन्होंने परमात्मा को जिन, ब्रह्म, शान्त, शिव एवं बुद्ध आदि संज्ञाएँ प्रदान की हैं। मुक्ति–साधना में आप ने गुरु का स्थान अनन्यतम माना है। योगीन्दु के काव्य में भी गुरु महिमा का गान किया गया है। वे कहते है– ''जब तक जीव को गुरु–प्रसाद नहीं मिलता, तब तक जीव आत्मदेव को नहीं पहचानता। सद्गुरु के अभाव में यह जीव कुतीर्थों में भटकता है। इनका यह प्रभाव आगे चलकर गुरु–सत्संग सन्त काव्य की प्रमुख विशेषता बनी है। कबीर, दादू, नानक आदि सन्त कवियों ने भी अपने काव्य में गुरु–महिमा का यशोगान किया है। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में अपभ्रंश के विशिष्ट साधक कवि मुनि रामसिंह जी उच्च कोटि के अध्यात्म रसिक कवि Lohdj fd;sx;sgSavkidkle; bZkdhnlohal nhekukt krkgS[10] डॉ. विवेक शंकर के अनुसार आपका प्रमुख ग्रंथ पाहुड दोहा है।[11] मुनि योगीन्दु जी की शैली का अनुकरण आपकी इस रचना पर दिखलाई देता है, जो परवर्ती संत काव्य परम्परा में भी परिलक्षित होता है। पाहुड दोहा कृति आपकी संत काव्य की विशेषताओं को उजागर करती है। इस कृति में आपने घट के अन्दर बसने वाले देव का दिग्दर्शन किया है। वे तीर्थों में भटकना व्यर्थ मानते थे। उनके लिए देह ही देवालय रहा है। मन के शुद्ध और निश्चल होने पर ही पर लोक प्राप्त होता है। सत्संग को ही आप शाश्वत सुख मानते है। जाति–पाँति का विरोध आपके इस ग्रंथ में इस तरह मिलता है–

हउं गोरउहउं सामलउ, हउंमि विभिण्णउवण्णि।
हउं तणु अंगउ थूलु हउं, एहउ जीव म मण्णि।।[12]

अर्थात् मैं गोरा हूँ, साँवला हूँ, मैं विभन्न वर्ण का हूँ, मैं दुर्बलांग हूँ, मैं स्थूल हूँ, हे जीव। तूँ ऐसा मत मान। इसी तरह आपने बाह्याचारों और क्रियाकाण्डों को भी नही माना है। आप कहते है– ''जब भीतरी चित्त मैला है, तब बाहर तप करने से क्या लाभ? चित्त में उस निरंजन को धारण करो, जिससे चित्तगत मैल से मुक्ति हो सके। इस तरह यह सिद्ध होता है कि हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा पूर्व समय में भी मानवीय समरसता से परिपूर्ण रही है। अपनी बात करते हुए मुनि राम सिंह जी इस ग्रंथ में आगे कहते है–'मन को विषय कषायों से दूर रखकर आत्मा (निरंजन) में जिसने मन को रोक दिया या बसा लिया वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। आपके साहित्य साधना में भी बाह्याचारों या आडम्बरों का समर्थन नहीं है। वे मुक्ति का कारण तन्त्र–मंत्र नहीं मानते। गुरु महिमा के संबंध में मुनि रामसिंह जी का कथन है कि–''प्राणी तभी तक कुतीर्थों का भ्रमण करते है, धूर्तता करते है जब तक वे गुरु के प्रसाद से देह के देवालय को नही जान लेते। लोभ और विषय–वासना तब तक बनी रहती है जब तक गुरु के प्रसाद के द्वारा स्थिर बोध प्राप्त नहीं होता। शास्त्र आदि पढ़ने से कुछ मिलने वाला नहीं। शिव को प्राप्त करने के लिए एक ही अक्षर को पढ़ना चाहिए। साधक को मूड़ मुड़ाने से नहीं, बल्कि चित्त के मुण्डन से मुक्ति सम्भव है।[13] इस तरह आपके काव्य में योग, कर्म, भक्ति व ज्ञान आदि के साथ चारित्र, तप, धर्म, अहिंसा तथा अपरिग्रह आदि की सुन्दर विवेचना भी की गई है। जो भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रासांगिक और जीवन्त सूत्र है।[14] हर दर्षन और संस्कृति की एक मूल भाषा होती है जिसके माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति होती है। जैन संस्कृति के प्रणेताओं ने भी अपनी भाशा को ऐसा ही माध्यम बनाया जो जन मानस से जुड़ी रही हो। प्राकृत भाषा में और उसके बाद अपभ्रंश भाषा में जैन साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। अपभ्रंश भाषा और साहित्य ने हिन्दी के आदिकाल और मध्यकाल को बहुत प्रभावित किया है। योगेन्दु जी के योगदान इस रूप में उल्लेखनीय है।[15] रहस्यवादी कवियों में मुनि रामसिंह का नाम विशेष रूप से बड़े आदर के साथ लिया जाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में जैन साहित्य की प्रासंगिकता विज्ञान की कसौटी पर खरी रही है। रात्रि भोजन त्याग, पानी छानकर पीना, अभक्ष्य पदार्थों का त्याग, शुद्धता के साथ निरोगी जीवन को अक्षुण करती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार जैन साहित्य आदिकाल का महत्वपूर्ण साहित्य है। अपभ्रंश की अनेक रचनायें जैन धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई है जो उत्तम काव्य कोटि की है।[16] जैन साहित्य सर्वधर्म सम्प्रदाय का आदर्श रहा है। इसी तरह लक्ष्मी सागर वाष्णेय ने भी जैन साहित्य को साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना है। जैन अपभ्रंश साहित्य में योगीन्दु जी का परमात्म प्रकाश और योगसार तथा मुनि रामसिंह का पाहुड़ दोहा रचना है। इन रचनाओं में जीवन को उन्नत करने वाले उपदेशों के साथ काव्य का निखरा हुआ रूप मिलता है। डॉ. हरिवंश कोछड़ भी कहते हैं जैन अपभ्रंश ग्रंथों में अनेक काव्यात्मक सुन्दर स्थल है।[17] इस तरह भारतीय ज्ञान परम्परा में अपभ्रंश भाषा के दो अनमोल रत्न कवि श्री योगीन्दु जी और मुनि राम सिंह जी विशिष्ट रचनाकार है।

संदर्भ–सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण नौ, 2023
2. पंडित कैलाश चन्द्र, जैन धर्म, सिद्धान्तशास्त्री, प्राच्य श्रमण भारती, मुज्जफरनगर, 2003
3. डॉ. राजकुमार जैन, अध्यात्म पदावली, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली।
4. डॉ. प्रेम सागर जैन, जैन शोध एवं समीक्षा, जैन शोध विद्यापीठ, महावीर जी राजस्थान।
5. डॉ. बारे लाल जैन, हिन्दी साहित्य की संत काव्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन, जैन विद्यापीठ, सागर संस्करण 2019
6. मुनि योगीन्दु, परमात्म प्रकाश, राजचन्द्र आश्रम, अगास, गुजरात 1978
7. सम्पादक डॉ. हीरालाल जैन, पाहुड दोहा, मुनि रामसिंह, गोपाल अम्बादास चबरे, कारजां 1933
8. डॉ. पुष्पलता जैन, जैन सांस्कृतिक चेतना, सन्मति विद्यापीठ नागपुर प्रकाशन, 1984
9. डॉ. विवेक शंकर, हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अभिनव इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2017
10. डॉ. जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवत्तियाँ, खण्डेलवाल., अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2013–2014

संदर्भ–ग्रंथ

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 153
2. पंडित कैलाश चन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, जैन धर्म
3. संपादक, डॉ. ए. एन. उपाध्याय, परमात्म प्रकाश, पृ. 129
4. डॉ. राजकुमार जैन, अध्यात्म पदावली, पृ. 77
5. डॉ. प्रेम सागर जैन, जैन शोध और समीक्षा, पृ. 59
6. डॉ. विवेक शंकर, श्रीमती उर्मिला साध, हिन्दी–साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अभिनव इतिहास, पृ. 60
7. संपादक, डॉ. ए. एन. उपाध्याय, परमात्म प्रकाश (मुनि योगीन्दु), पृ. 25
8. डॉ. बारे लाल जैन, हिन्दी साहित्य की संत काव्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन, पृ. 16–17
9. परमात्म प्रकाश (मुनि योगीन्दु), संपादक, डॉ. ए. एन. उपाध्याय, पृ. 112
10. डॉ. जयकिशन प्रसाद, खण्डेलवाल, हिन्दी साहित्य की प्रवत्तियाँ, पृ. 47
11. डॉ. विवेक शंकर, श्रीमती उर्मिला साध, हिन्दी–साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अभिनव इतिहास, पृ. 60
12. मुनि रामसिंह, पाहुड दोहा, पृ. 16
13. मुनि रामसिंह, पाहुड दोहा, पृ. 40
14. मुनि रामसिंह, पाहुड दोहा, पृ. 60
15. डॉ. पुष्पलता जैन, जैन सांस्कृतिक चेतना, पृ. 89
16. डॉ. विवेक शंकर, हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अभिनव इतिहास, पृ. 33
17. डॉ. जयकिशन प्रसाद, खण्डेलवाल, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 42–43

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Yog : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 259-262

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

सृष्टि के ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला-योग

*डॉ. गोपेन्द्र कुमार साहू**

शोध सारांश–*योग केवल शरीर को स्वस्थ रखने की विधि नहीं, बल्कि यह जीवन और सृष्टि के गूढ़ रहस्यों को जानने का विज्ञान और दर्शन दोनों है। योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक सम्पूर्ण पद्धति है। यह एक ऐसा दिव्य सेतु है जो प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करता है। 'योग' का अर्थ है– 'जुड़ना' या 'एकत्व'। यह मन, शरीर और आत्मा को जोड़ने का माध्यम है। यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाती है। योग केवल आसन नहीं है, यह जीवन और ब्रह्मांड के नियमों को समझने का गहन विज्ञान है। यह हमें बताता है कि... हम सृष्टि में कैसे उत्पन्न हुए, कैसे काम करते हैं और पुनः उस परम स्रोत से कैसे जुड़ सकते हैं। योग एक अत्यंत प्राचीन दर्शन है, जो आत्म नियंत्रण, मोक्ष प्राप्ति, आत्मज्ञान तथा आत्म–साक्षात्कार का पूर्ण ज्ञान कराता है। जब हम योगाभ्यास करते हैं, तो केवल शरीर को नहीं, बल्कि अपनी चेतना को भी जागरूक करते हैं। यह भौतिक (Physical), मानसिक (Mental), आध्यात्मिक (Spiritual), और ब्रह्मांडीय (Cosmic) स्तर पर सृष्टि और चेतना को समझने का माध्यम है ।*

मूल शब्द–*योग, श्रीमद्भगवद्गीता, योगदर्शन।*

प्रस्तावना–योग भारत की प्राचीनतम और सर्वाधिक वैज्ञानिक विधा है, जो न केवल शारीरिक स्वास्थ्य, बल्कि मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास में सहायक है। आज विज्ञान भी योग की प्रभावशीलता को स्वीकार कर चुका है। योग केवल आसनों तक सीमित नहीं, यह ध्यान, प्राणायाम, नैतिक अनुशासन और आत्मचिंतन का भी मार्ग है। यह ज्ञान हमें बताता है कि हम अपने भीतर झांककर आत्मा को जान सकते हैं। अनेक वैज्ञानिक शोधों ने यह सिद्ध किया है कि योग न केवल मानसिक तनाव को कम करता है, बल्कि यह हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क और पाचनतंत्र को भी सशक्त बनाता है। MRI, EEG और हृदय दर मॉनिटर जैसे उपकरणों ने यह सिद्ध किया है कि योग मन की स्थिरता, तंत्रिका तंत्र की कार्यप्रणाली और हार्मोन संतुलन को प्रभावित करता है। जब हम कहते हैं कि "योग ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला है", तो इसका आशय है कि योग में न केवल गहन आध्यात्मिक ज्ञान समाहित है, बल्कि यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी प्रमाणित और प्रासंगिक है। यह प्रक्रिया हमें जीवन के गूढ़ रहस्यों से परिचित कराती है। आधुनिक विज्ञान अब योग की उन क्षमताओं को समझ रहा है, जो हजारों वर्षों से भारतीय ऋषियों और मुनियों ने अनुभव से अर्जित की थीं। योग न तो केवल आध्यात्मिक साधना है और न ही केवल शारीरिक व्यायाम, बल्कि यह एक वैज्ञानिक प्रणाली है जो आत्मज्ञान की ओर ले जाती है। योग हमें सिखाता है कि ज्ञान केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर छिपा है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह एक समग्र जीवन पद्धति है जो शरीर, मन और आत्मा को संतुलित और शुद्ध करने का मार्ग प्रदान करती है।

योग का अर्थ और परिभाषा–योग का अर्थ–योग का अर्थ संस्कृत में ''योग'' का अर्थ होता है... ''संयोजन'' या ''एकता''। इसका अन्य विशेष अर्थों में आत्मा और परमात्मा का मिलन, व्यक्ति और ब्रह्मांड का एकत्व व शरीर, मन, और आत्मा का संतुलन से होता है। यह एक समग्र जीवनशैली है जो मनुष्य को सृष्टि के नियमों के अनुरूप जीना सिखाती है।

योग की परिभाषा–

1. पातंजल योगदर्शन के अनुसार– **''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''** – *योगदर्शन 1.2*

* *सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ मैनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, बिलासपुर, छत्तीसगढ़*

व्याख्या–मन (चित्त) को अपने उद्देश्य से विचलित करने वाले बाह्य विषयों (वृत्तियाँ) को दूर करने प्रक्रिया को योग कहते है।

विशेष–यहाँ चित्त को मन और वृत्तियों को अवरोधक विषयों के साथ संबोधित किया है।

2. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार–

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। *–श्रीमद्भगवद्गीता 2.48*

व्याख्या–श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते है कि हे धनंजय! आसक्ति और कामना को त्यागकर सफलता और असफलता में समान भावना रखते हुये योग में स्थित होकर कर्म करो। हर परिस्थितियों में अपने आप को समता का भाव रखो। समता का यह पूर्ण भावना ही योग है।

विशेष–यहाँ जीवन के प्रत्येक परिस्थितियों में समान भावना रखने के लिए कहा गया है।

सृष्टि के ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला के रूप में योग

1. ज्ञान की दृष्टि से योग–योग आत्मज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यह व्यक्ति को स्व–चिंतन, ध्यान, एकाग्रता और आत्म–निरीक्षण सिखाता है। उपनिषदों, भगवदगीता और पतंजलि योगसूत्र में योग को आत्मज्ञान प्राप्त करने का साधन बताया गया है। योगिक दृष्टिकोण से ज्ञान का मुख्य स्रोत अंतर्मुखी साधना और चेतना का जागरण है।

(i) आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत–योग उपनिषद, भगवद्गीता, पतंजलि योगसूत्र आदि ग्रंथों में योग को आत्मज्ञान प्राप्त करने का साधन बताया गया है । ध्यान, धारणा, समाधि जैसे अंग आत्मा की पहचान और ब्रह्मज्ञान की ओर ले जाते हैं ।

(ii) मानव जीवन का मार्गदर्शन–योग जीवन के चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को संतुलित करने की कला सिखाता है । यह हमें सच्चे ज्ञान, विवेक, संयम और आत्म–नियंत्रण की शिक्षा देता है।

(iii) संपूर्ण जीवन के हर पहलू से जुड़ा ज्ञान–योग हमें मानसिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संतुलन का ज्ञान देता है। यम और नियम जैसे सिद्धांत जीवन की नैतिकता को स्थापित करते हैं।

2. विज्ञान की दृष्टि से योग–आधुनिक विज्ञान योग के शारीरिक और मानसिक लाभों को प्रमाणित कर चुका है। अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि योग से तनाव में कमी, हृदय स्वास्थ्य में सुधार, श्वसन क्षमता में वृद्धि तथा मस्तिष्क की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। न्यूरोसाइंस (मस्तिष्क विज्ञान) ने ध्यान और प्राणायाम के प्रभाव को मस्तिष्क तरंगों और न्यूरोप्लास्टिसिटी के संदर्भ में सिद्ध किया है। यौगिक जीवनशैली से इम्यून सिस्टम भी सुदृढ़ होता है, जिसे चिकित्सा विज्ञान भी स्वीकार कर रहा है।

(i) शारीरिक विज्ञान–योगासन और प्राणायाम शरीर की कार्यप्रणाली को सुदृढ़ करते हैं। यह मांसपेशियों, हड्डियों, तंत्रिका तंत्र, पाचन तंत्र आदि को सशक्त बनाते हैं। वैज्ञानिक शोधों में पाया गया है कि नियमित योग करने से रक्तचाप, मधुमेह, थायरॉइड, हृदय रोग आदि में लाभ मिलता है।

(ii) मनोवैज्ञानिक विज्ञान–ध्यान और प्राणायाम से तनाव, चिंता, अवसाद (Depression) आदि मानसिक विकारों में राहत मिलती है। न्यूरो साइंस (तंत्रिका विज्ञान) के अनुसार, ध्यान से मस्तिष्क की तरंगों (Brain Waves) में सकारात्मक बदलाव आता है।

(iii) ऊर्जा और तंत्र विज्ञान–चक्र (energy centers) और नाड़ी (energy channels) के माध्यम से शरीर में ऊर्जा का प्रवाह नियंत्रित होता है। कुण्डलिनी जागरण, तंत्र योग आदि वैज्ञानिक स्तर पर शरीर की ऊर्जा क्षमता को सक्रिय करने के उपाय हैं।

3. योग और शिक्षा में ज्ञान–विज्ञान का समन्वय–आज शिक्षा प्रणाली में योग को शामिल कर बच्चों के एकाग्रता, स्मृति, और रचनात्मकता को बढ़ाया जा रहा है। योगिक तकनीकों का उपयोग कर वैज्ञानिक सोच के साथ–साथ नैतिक मूल्य भी विकसित किए जा सकते हैं। समग्र विकास (Holistic Development) की दिशा में योग एक सेतु का कार्य करता है।

योगविधि का ज्ञान–विज्ञान युक्त पोषण

क्र.	योगविधि	ज्ञान का प्रभाव	वैज्ञानिक प्रभाव
1.	यम–नियम	नैतिक ज्ञान, जीवन मूल्य	मानसिक स्थिरता, सामाजिक समरसता
2.	आसन	अनुशासनशीलता, संयम, स्थिरता	शरीर का लचिलापन, रोग–प्रतिरोधकता, शारीरिक अंगों पर प्रभाव
3.	प्राणायाम	श्वास नियंत्रण, एकाग्रता, इंद्रिय संयम	फेफड़ों की क्षमता, शरीर में आक्सीजन आपूर्ति, शारीरिक अंगों पर प्रभाव
4.	ध्यान	आत्मबोध, अंतर्मुखता, एकाग्रता	तनाव, अवसाद व अन्य गंभीर मानसिक समस्याओं में कमी, मस्तिष्क की सक्रियता

योग : ज्ञान और विज्ञान का संगम–योग केवल मान्यताओं पर आधारित नहीं, बल्कि अनुभव और प्रयोग आधारित विधा है... जो ज्ञान को अनुभव में बदलता है। यह आत्मा (ज्ञान) और शरीर (विज्ञान) के बीच सेतु का कार्य करता है।

उदाहरण–"ध्यान" एक आध्यात्मिक साधना है लेकिन इसका वैज्ञानिक प्रभाव भी मस्तिष्क और व्यवहार पर सिद्ध हुआ है।

4. योग में सृष्टि का ज्ञान (Cosmic Knowledge in Yoga)

4.1. पंचमहाभूत सिद्धांत (Five Great Elements)–योग कहता है कि सृष्टि और मानव शरीर दोनों ही पाँच तत्वों से बने हैं : भूमि, जल, अग्नि, वायु, और आकाश। इनका संतुलन व्यक्ति के स्वास्थ्य, प्रकृति, मौसम, और ग्रहों की चाल से जुड़ा होता है। योगासन और प्राणायाम इन्हीं तत्वों को संतुलित करने में मदद करते हैं।

4.2. प्रकृति और पुरुष (सांख्य दर्शन से जुड़ा ज्ञान)–योग में सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या सांख्य दर्शन के पुरुष और प्रकृति के माध्यम से होती है । पुरुष अर्थात् शुद्ध चेतना (Consciousness) तथा प्रकृति अर्थात् पदार्थ और ऊर्जा (Nature)। जब पुरुष और प्रकृति मिलते हैं, तो सृष्टि (Creation) का आरंभ होता है। योग इस द्वैत को पहचानकर पुनः आत्म–चेतना की ओर लौटने की प्रक्रिया है।

5. योग में विज्ञान (Scientific Understanding in Yoga)

5.1. मन और मस्तिष्क का नियंत्रण–योग के माध्यम से मस्तिष्क की तरंगों (Brainwaves), हार्मोनल संतुलन, और न्यूरोलॉजिकल क्रियाओं को नियंत्रित किया जा सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं कि ध्यान (Meditation) और प्राणायाम से मानसिक तनाव, चिंता, और अवसाद पर प्रभाव पड़ता है।

5.2. ऊर्जा विज्ञान (Energy Science)–चक्र प्रणाली : शरीर में 7 मुख्य ऊर्जा केंद्र होते हैं (मूलाधार से सहस्रार तक)। योग और ध्यान के अभ्यास से इन चक्रों को जागृत कर सृष्टि से जुड़ी ऊर्जा का अनुभव किया जा सकता है।

5.3. प्राण विज्ञान–प्राण का अर्थ है जीवन शक्ति (Vital Force)। योग का अभ्यास विशेष रूप से प्राणायाम के माध्यम से शरीर और ब्रह्मांड में प्रवाहित ऊर्जा को नियंत्रित करता है।

6. योग : सृष्टि के साथ सामंजस्य–योग हमें सिखाता है कि हम सृष्टि से अलग नहीं, बल्कि उसी का एक भाग हैं। जब हम योग करते हैं, तो हम अपने भीतर और बाहर के पर्यावरण से जुड़ते हैं। यह जुड़ाव हमें अधिक जागरूक, संवेदनशील और संतुलित बनाता है।

निष्कर्ष–योग में न केवल सृष्टि का ज्ञान (philosophical understanding of creation), बल्कि उसका विज्ञान (scientific principles of energy, mind, and matter) भी समाया हुआ है। योग न केवल अध्यात्म का

विज्ञान है, बल्कि यह जीवन को वैज्ञानिक, संतुलित और आनंदमय बनाने की कला है। यह ज्ञान और विज्ञान का वह पवित्र संगम है, जहाँ परंपरा और आधुनिकता एक–दूसरे को पूरक बन जाती हैं। आजकल योग के क्षेत्र में एक नारा लगाया जाता है कि "योग अपनाइए–शरीर, मन और आत्मा को एक लय में लाइए"। जीवन के उस शाश्वत सत्य को जानने का प्रयास करना चाहिए जिसे विज्ञान भी अब स्वीकारने लगा है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह ज्ञान (spiritual wisdom) और विज्ञान (empirical science) दोनों का संगम है। यह व्यक्ति को बाहरी और आंतरिक दोनों प्रकार के ज्ञान की ओर ले जाता है। इसलिए यह कहा जाता है कि– "योग, ज्ञान और विज्ञान – दोनों की आधारशिला है।" योग हमें यह सिखाता है कि कैसे हम ज्ञान से समझें, विज्ञान से परखें और अनुभव से जानें।

संदर्भ–सूची

1. Singh, S. (2014), Bhagvad Geeta- A Manual of Spiritual Communication : The Way to Excellence & Perfection. China Media Research, 10(2).

2. Verma, J., Karma Yoga in Bhagavad Gita and Its Application in Practical Life, 400-402.

3. Selye, H. (2017), आध्यात्मिक दृष्टिकोण, *Tanaav evam Karya : Tanaav ko Samajhne evam Prabandhan Sambandhi Drishtikon*, 267.

4. स्वामी रामसुखदास, (1923), श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी (परिशिष्ट सहित), गीतप्रेस गोरखपुर

5. नौटियाल, विनोद प्रसाद, 'योग और स्वास्थ्य', 22–ए सरोजनी नायडू मार्ग, किताब महल, इलाहाबाद

6. गोयन्दका, हरिकृष्णदास (2008), योग दर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Psychology : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 263-268

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Gender Equality and Women Empowerment During Covid -19 and Beyond

*Vidya Kumari**

Gender equality is fundamental to the achievement of human rights and is an aspiration that benefits all of society, including girls and women. The universal advantages of gender equality have been well-documented, and several international frameworks have affirmed its centrality to human rights and sustainable development. The Beijing Declaration and Platform for Action, for example, unanimously adopted by 189 countries in 1995 and still the strongest global consensus for advancing and protecting girls' and women's equality and justice, recognizes that persistent inequalities pose "serious consequences for the well-being of all people."

Yet, despite the promise of equality, progress towards it has been slow, fragile, incremental, and reversible – and dramatically undermined by the COVID-19 pandemic. In fact, in every region of the world, girls and women are still more likely to be poor, illiterate, hungry, unhealthy, underrepresented in leadership positions, legally constrained, politically marginalized, and endangered by violence.

Introduction : We won't stop until girls and women are equal everywhere. Join UN Foundation, partners, and people around the world in the push for faster, lasting progress on gender equality.

The 2021 Generation Equality Forum mobilized diverse stakeholders to accelerate progress for gender equality. We continue to work with partners to implement existing commitments and encourage new stakeholders to join this collective journey towards gender equality.

In partnership with the Spotlight Initiative, the UN Foundation has established a funding vehicle — the WithHer Fund — which provides resources directly to grassroots women's organizations around the world working to end gender-based violence in their local communities.

The UN Foundation is working with partners, like the World Bank, to improve knowledge about discriminatory laws that impede progress for girls and women and advocate for laws that protect the rights of girls and women in every aspect of their lives.

We convene a group of high-level corporate leaders to gather in common cause and share their approaches to gender equity and equality at work, discuss best practices and lessons learned, and promote five key policy asks to achieve gender equality in the workplace.

Reflection : We're transforming our workplaces, our value chain and society at large by applying a gender lens to everything we do in pursuit of our belief that no woman should be left behind.

The World Economic Forum's Gender Gap Report 2021 shows that, at the current rate of progress, women will have to wait around 135 years to close the overall gender gap with men.

* *Research Scholar, University Department of Psychology, T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur*

This is not nearly fast enough. What's holding equality back?

Some of the strongest forces behind persistent gender gaps are harmful social norms and stereotypes that limit expectations of what women can or should do. Women face too many barriers to access, their rights are not respected, and they are too often prevented from fulfilling their potential. Outdated norms that discriminate against women are all around us, and they are deeply ingrained.

Challenging and changing those norms is therefore a vital part of our Unilever Compass strategy, which includes gender as a critical component in our goals on culture and leadership.

We're harnessing our business, our influence, and our partnerships to drive action in the key areas of respecting rights, building skills, and creating opportunities for women. That means we're taking a holistic approach that works to build equality and empowerment throughout our value chain and beyond.

Our model for action makes clear that we can only help make the changes we want to see in society if we ensure our own house is in order by focusing on our workplaces and operations. Gender is at the heart of our strategy for achieving equity in our policies and practices, our employee experience, talent recruitment and selection, and representation and retention. See a beacon of diversity and inclusion for more detail beyond gender.

We're acting across our workplace by progressing our efforts on women in leadership, equal pay and the gender pay gap, via our campaign to #Unstereotype our workplaces and through our framework of inclusive policies.

Some of our longest-running programmes have focused on leadership and gender balance, enabling us to achieve and maintain gender balance at management level between 2019 and 2021. In 2022, women represented 54% of our management employees.

We've made progress through sustained leadership accountability and awareness building, clear targets, and measurement, as well as programmes to recruit, retain and develop female talent, internal and external communications and engagement, and our network of diversity and inclusion champions. But we know we have more to do. At our most senior level, the Unilever Leadership Executive (ULE), women comprised 23% in 2022, while at senior management level (those reporting to ULE), 31% were women. At the end of 2022, women made up 36% of our total workforce of 127,000. See our Annual Report for further details.

Through our Unilever Compass goal, we've set out to eliminate any bias in our practices and policies. We know that biases are most harmful when they affect key decisions, such as appointments and promotions. We want to be at the cutting edge of using results-driven, scientific approaches to tackling bias. To address gender balance, for example, we've used a metric called the Gender Appointment Ratio (GAR) to present our senior leaders with their track record on appointments over a five-year period – raising their awareness and helping them make unbiased choices.

Our compensation structures are intended to be gender neutral, with any pay differences between employees in similar jobs fairly reflecting levels of individual performance and skill. We review our pay structures in each country annually as part of our Framework's compliance process, helping us identify any average pay differences between genders (a 'gender pay gap').

Our analysis of the average pay gap helps us identify any areas of gender representation imbalance, such as in the types of jobs held by women compared to men. We use this information to focus on where we can create more balanced gender representation.

We have more work to do to continue improving our gender balance and related gender pay gaps at various levels and in various countries throughout the business. To achieve this, it's essential to understand how the proportion of women in the workforce varies across job levels as this has a significant impact on average pay differences.

For example, at Work Level 1, our non-management 'blue-collar' grade, women made up 21% of our employee population in 2022. In contrast, at Work Level 1 for our non-management, 'white-collar' grade, women made up 50% of the population. We see a broad trend across our business of a lower pay gap in countries with a larger female Unilever workforce.

Raising living standards describes how we're applying the principles of a living wage to our workforce and suppliers.

Worldwide, women account for 64% of consumer spending and are the fastest-growing group of consumers. Equality for women in the global labour force would add up to $28 trillion to the global economy by 2025, according to the McKinsey Global Institute. That's a huge opportunity for any business.

We want to continue to lead the way as a business, proactively creating initiatives that have the needs of women and girls in mind and using our voice and influence to drive change in our value chain and in wider society. That means applying a gender lens to everything we do, and basing our approach on respecting rights, building skills, and creating opportunity.

This transformation will not only help build a fairer world – it will drive inclusive economic growth across society.

Our Gender Equity Framework helps us consider gender in the design of our programmes.

We're also committed to empowering women by helping them build their skills. Our Unilever Compass includes goals on increasing our spend with diverse businesses and helping small and medium-sized enterprises grow.

We estimate that women own or operate 30–40% of the outlets in what is known as 'traditional trade', the many small stores, kiosks or stalls that sell products the world over. And there are potentially millions of new opportunities for women to enhance their livelihoods by helping us reach consumers in new ways " including in remote or hard-to-reach areas, through what is known as 'last-mile distribution'. Our long-standing Shakti initiative in India is a good example.

COVID-19 poses a number of unique risks to women's physical, social, and economic security.

Women are overrepresented across multiple jobs and demographics that face heightened risk of COVID exposure and/or death, including frontline health and care workers, the elderly, and the global poor. The pandemic has also impacted women's health more generally, as overburdened health systems have led to interruptions in critical health services, such as pre- and post natal care and other reproductive and sexual heath services.

Further, COVID-19 lockdowns and pandemic-related economic and social stressors have driven a spike in gender-based violence, both in homes and public spaces. With health and social services already stretched beyond capacity, resources for survivors have been largely inadequate.

In all, the pandemic threatens to undo decades of progress on gender equality. To prevent this reversal, COVID-19 responses must directly address the specific needs of women and girls.A gender-sensitive COVID-19 response is one that acknowledges the pandemic's gendered impacts and incorporates policies to specifically address them. This includes measures to mitigate gender-based violence, to reduce the burden of unpaid care and domestic work, to promote women's access to jobs and financial resources, and to provide robust and comprehensive social protections for all women and girls.

Crucially, women have been largely excluded from COVID-19 task forces — they represent a mere 24% of COVID-19 task force members worldwide. Further, much of the data on the impacts of the pandemic is not sex-disaggregated, and there is a lack of data on gender-specific issues such as

gender-based violence, both obstacles to identifying the unique needs of women and girls. Promoting women's leadership in pandemic response and recovery processes and increasing the collection of gender data are both key to advancing gender-sensitive policies and budgeting.

Women's empowerment refers to the process of enabling women to have greater control over their lives and to be able to make their own decisions. This can include empowering women to participate fully in the economy and in the political process, as well as empowering them to make decisions about their own health and well-being. Women's empowerment is important because it can lead to a range of positive outcomes, including increased economic growth and development, improved health and well-being, and greater gender equality.

In India, women's empowerment has been a key issue for many years. Despite some progress in recent decades, women in India continue to face significant challenges when it comes to gender equality. These challenges include discrimination, lack of access to education and employment, and gender-based violence.

Some of the Challenges Facing Women in India :

Discrimination : Women in India often face discrimination in many areas of life, including in the home and in the workplace. This can make it difficult for them to access education and employment opportunities and can lead to unequal treatment and lower pay.

Lack of access to education and employment: Women in India face significant barriers when it comes to accessing education and employment. For example, data from the World Bank shows that only around 50% of women in India participate in the labour force, compared to around 80% of men. This is due in part to cultural and social barriers that prevent women from participating in the workforce, as well as lack of access to education and training.

Lack of access to education and employment: Women in India face significant barriers when it comes to accessing education and employment. For example, data from the World Bank shows that only around 50% of women in India participate in the labour force, compared to around 80% of men. This is due in part to cultural and social barriers that prevent women from participating in the workforce, as well as lack of access to education and training.

Gender-based violence is a major problem in India. The National Crime Records Bureau reports that in 2021, there were over 428,278 reported cases of violence against women in India. This included incident of physical and sexual assault, as well as dowry-related violence and female infanticide. The statistics are alarming, with 31,677 reported rapes against women in 2021 alone.

Poverty : Many women in India live in poverty, particularly in rural areas. Poverty can make it difficult for women to access education and employment and can lead to other challenges such as poor health and malnutrition.

Disparities Between Urban and Rural Areas : Women in rural areas of India often face greater challenges when it comes to empowerment. For example, they may have less access to education and health care and may be more isolated and vulnerable to gender-based violence.

Women's empowerment can have a range of positive impacts on women's lives, including improved economic opportunities, greater control over their own lives, increased political participation, and greater gender equality. By empowering women to participate fully in the economy, women can have access to better paying jobs, which can help to lift them and their families out of poverty. Empowering women can also give them more control over their own lives, allowing them to make decisions about their own health, well-being, and future, which can lead to increased self-esteem and confidence, as well as improved mental and physical health.

Our Framework enables all initiatives, whether in our business or with partners and at any stage of their development, to assess the extent to which they've considered gender in their design, delivery, and monitoring. It then prompts our teams to define concrete actions to improve and embed important gender measures over time. We share the definition of gender used by the World Health Organization (WHO). Gender refers to the socially constructed characteristics of women and men – such as norms, roles, and relationships of and between groups of women and men. It varies from society to society and can be changed.

Empowered women play a vital role in reaching our consumers and enabling our business to grow. By building skills among our small-scale distributors and retailers, we're creating new opportunities for women while strengthening our business. Our products reach consumers through millions of retail outlets in more than 190 countries, as well as through direct sales from micro-entrepreneurs. This distribution network is essential to our growth ambitions. It's also one of our biggest opportunities to create a positive social impact, including through creating opportunities for the many women who work in it.We estimate that women own or operate 30–40% of the outlets in what is known as 'traditional trade', the many small stores, kiosks or stalls that sell products the world over. And there are potentially millions of new opportunities for women to enhance their livelihoods by helping us reach consumers in new ways " including in remote or hard-to-reach areas, through what is known as 'last-mile distribution'. Our long-standing Shakti initiative in India is a good example.

Our Beauty & Personal Care and Home Care brands – Sunsilk, Dove and Sunlight for instance – have developed sustainable living purposes around enabling access to skills and training, building confidence, and helping to recognise the fact that unpaid domestic work is disproportionately done by women " and that helping reduce and redistribute the burden of household chores can unlock women's time. See Championing inclusion for more.

Stakeholders across sectors need to work together, and business must be part of the solution. We participate in platforms that help us bring insights into Unilever and share our insights with the wider world. We've aligned with the UN Secretary-General's High-Level Panel on Women's Economic Empowerment and participated in working groups focused on tackling adverse norms and changing business culture. Through UN Women's HeForShe movement we're committed to driving the advancement of women, by encouraging men and boys as agents of change and taking action against negative inequalities faced by women and girls.

We're part of the steering committee for the Generation Equality Forum, a civil society-centred, multi-stakeholder gathering to create urgent action for gender equality. Through its Action Coalition on Economic Justice and Rights, Technology and Innovation and Gender-Based Violence, we've committed to creating safe and empowering places for women through the Women's Safety Accelerator Fund.

And we're co-founders of the Unstereotype Alliance – a UN Women-led initiative in partnership with Unilever and industry leaders including WPP, IPG, Facebook, Google, Mars, Microsoft and Safaricom, which aims to banish stereotypical portrayals of gender in advertising and all brand-led content.

Conclusion : The gender gap is still some way to go in workplaces. India has made significant progress in addressing the gender gap and promoting gender diversity in the first two decades of the 21st century. The National Population Policy 2000 included empowering women for health and nutrition as one of its strategic themes, and India has also committed to promoting gender equality and empowering women through the Millennium Development Goals (MDG) and Sustainable Development Goals (SDG). However, there is still work to be done in order to fully address the gender gap and promote gender diversity in India.

The Global Gender Gap Index 2022 ranks India at 135 out of 146 countries. While this is an improvement from 2021, when India was ranked 140 out of 156 countries, the rank shows that there is still much work to be done. The Index measures various aspects of gender equality, and India fares poorly in terms of economic participation, which includes the percentage of women in the workforce and wage equality for similar work, ranking 143 out of 146 countries.

The digital revolution will continue to unfold with the nature and content of jobs evolving with changes in required skills. The digital future of work is set to provide further opportunities for women to participate with flexible schedules and with greater geographical mobility including from home. This will in turn help women and men combine work and family duties.

A knowledge economy will require employees to be equipped with a wider range of skills, which encompass problem-solving and interpersonal skills. Women must not be left behind in a digitally intensive workforce and must ensure they have the skills required to succeed in this new technological paradigm. Strengthening women's skills can play an important role in narrowing the gender gap.

The post-pandemic world has allowed us to create a supportive environment for gender equality through care and empathy. As Sheryl Sandberg says in 'Lean In: Women, Work, and the Will to Lead', "We must raise both the ceiling and the floor." It is only then that we can free women's access to resources and opportunities to make Gender Equality a reality in 2023.

References

1. The Importance of Women's Empowerment in India, by Narisamta.

2. What does 2023 Hold for Gender Equality, https://www.peoplematters.in/article/diversity/what-does-gender-equality-hold-for-2023-36429

3. Women Empowerment in India - Fighting for Women's Equality, COVID-19 & Gender Equality- UN Women Facts & Figures, Gender Equality is an Aspiration that Benefits all of Society, Including Girls and Women. https://www.googleadservices.com/pagead/aclk?

sa=L&ai=DChcSEwiBmuS0kaKAAxXTlMIKHZl7Dj4YABAAGgJ0bQ&ohost=www.google.com&cid=CAESa-

4. 05-Oct-2022 — "Advancing Women's Empowerment and Working Towards Gender Equality Requires Innovative Solutions, Addressing Constraining Factors Beyond,

5. Understanding Women Empowerment in the Local Context, https://www.rug.nl/feb/research/frn/blog/beyond-external-economic-barriers-understanding-women-empowerment-in-the-local-context?lang=en

6. Gender Equality from a Modern Perspective, Apple Academic Press,

https://www.appleacademicpress.com › gender-equalit...,This volume explores the disparity between genders in terms of the labor market and career advancement, child-rearing practices, education, ...

7. 14-Feb-2021 — WEF's 2020 Global Gender Gap Index figures indicate that just 25% of women formally engage in India's labour market, compared with 82% of …, https://economictimes.indiatimes.com/blogs/et-commentary/empowering-half-of-the-workforce/

8. 15-Jun-2021 — The Past Few Decades Have Witnessed Significant Progress Towards Achieving Gender Equality. And While There is Still a lot of Ground to ... https://yourstory.com/2021/06/myntras-culture-empowering-women-professionals-grow-beyond-boundaries

9. by CON Moser (2017) Cited by 73 — UN Women (2013), A Transformative Stand-alone Goal on Achieving Gender Equality, Women's Rights, and Women's Empowerment : Imperatives and kehttps://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/0956247816662573.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

English Lit. : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 269-273

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Manju Kapur's *Custody* : A Study through A Feminist Lens

Dr. Anamika Gupta*

Manju Kapur was born in 1948 in Amritsar, shortly after India gained freedom from British rule. Kapur acknowledges herself as a writer committed to the cause of women and thus frankly regards herself a feminist. Her concern is to present the situations realistically in her fictional world where socio-political and cultural changes take place and in such background, her protagonists and characters grow and lead. The novelist has six novels to her credit *Difficult Daughters* (1998), *A Married Woman* (2002), *Home* (2006), *Immigrant* (2009), *Custody* (2011), *Brothers* (2016). All the novels offer us to have a reading from a feminist point of view and when we talk about feminism, we are automatically redirected to the terms like modernity, new woman, emancipation, and empowerment. In addition to it, terms like gender, patriarchy, power-politics, intersectionality by default come into considerationsince feminist consciousness arises from and due to these very practices in the society. Since there have been a lot of discussions and debates on feminism and there has been a lot of awareness and activism worldwide, we need not to delve deep into what feminism is or who is supposed to be a feminist. Still, keeping in mind the convenience of the readers, the essence of feminism can be put forth in the following lines of G. D. Anderson:

"Feminism is not about
Making women stronger,
Women are already strong,
It's about changing the way
The world perceives the strength."

As far as the present study is concerned, several aspects can be fetched through the feminist lens from ManjuKapur's*Custody.* The novel, *Custody* has its setting in the mid-90s when the globalization and economic liberalization started touching the Indian territories. At that time, there was the economic boom because of the insurgence in foreign investment, which specifically influenced the lives of people in metropolitan cities and more distinctively the upper and upper-middle class. The plot of the novel also revolves round people residing in thriving, upper middle class colonies of Delhi; it gives the impression that the characters are also under the spell of materialism- be it Shagun (the protagonist), Raman (Shagun's husband) or Ashok Khanna (Shagun's lover).

We find two sets of plot in the novel. The main plot narrates the story of Shagun-Raman-Ashok, and the sub-plot deals with another protagonist, Ishita. The plots move apart till the first third of the novel and merge into one in the last quarter. At the surface level, as the title suggests that it is all about the custody of children but on looking beneath the skin, it offers several contemporary issues intricately linked - marriage versus freedom, failure of marriages, extra-marital affairs, divorce, impact of divorce on children, etc. The important aspect is that the novelist has shown these issues not as the exploitative

* ***Assistant Professor, Department of English, Hindu College, Moradabad***

force on the part of woman, but as a medium, which modern woman dares to take up with a view to lead a meaningful life with dignity if she feels suffocated, unfulfilled and non-exist in the ties of marriage.

The story revolves roundShagun, the heroine of *Custody*. She is presented as the bold, beautiful and ambitious woman who loves to follow the modern way of living and as a seeker of freedom. Like other novels of ManjuKapur, there is not much discussion about the education of the girl or the pre-marriage talks about her marriage, for, Shagun "hadn't really liked studying" (*Custody* 26). So, after completing the graduation, she "puts her books with relief" (26) and expresses her wish to set her career in modelling. But her dream to be a model could not take precedence over her mother, Mrs.Sabharwal's traditional way of thinking. She denies her thatshe cannot go for a "career that would allow all kinds of lechery near her lovely daughter" (11). Like any mother, she thinks that once the daughter gets married, she would be free to act according to her choice but the fact is that it never happens because a girl like an object is transferred to the other home to be ruled by changed authorities-by husband, by mother-in-law, father-in law and in long term by son. Though, Shagun does not react on her mother's denial to go for modelling because the idea of marriage is instilled since her childhood and "she was looking forward to the freedom marriage would provide" (*Custody* 26). Therefore, she accepts the proposal for marriage delightfully and marries Raman Kaushik, an "IIT-Delhi, IIM-Ahmadabad… sincere company worker, hard-working, ambitious, obviously talented" (*Custody* 25). In totality, Raman has everything a modern woman could ask for; material prosperity, modern life style, a life "comfortable, secure and safe" (26).

Shagun enters into a new life having new home, new relations and new responsibilities and of course into the new roles as "she had been brought up to marry, to be wife, mother and daughter-in-law. She had never questioned this destiny, it was the one pursued by everyone she knew" (*Custody* 26). It is observed that a woman does not feel complaining against these roles until the question of existence comes to her mind and the day suffocation due to these roles occur, this question raises its head and the phase of self-discovery begins.Kapurdoes not denounce or devalue the marriage system but she urges women to recognize their existence, their desires and choices in the web of multiple relationships or roles. Feminists hold the process of socialization responsible for this, as it trains a woman to lead the life in relation to others and not in relation to herself. Consequently, a woman takes that conditioning for granted and thinks of it as a part of life. Some women spend their whole life in this way while some realize their 'self' after being a wife and mother or better to say in the middle of the age. MeenaSodhi's observation can be linked to it. In her article, *Indian Women Writers' Autobiographies in English,* while exploring the various facets of women's lives through the autobiographies of eminent personalities, she writes, "Woman's involvement in her early life in responsibilities, duties, preoccupation, living life day to day make her forget her right to be called a woman. But once when age has settled comfortably on her, she may well for the first time be woman herself" (Sodhi 135).

Although Shagun is under the spell of modernization and urbanization but there is an undercurrent of traditionalism too. It is perceptible when within a year of her marriage; she conceives and gives birth to a son, Arjun. There is nothing wrong if she celebrates her motherhood; if she feels glorified but the thought that "she had gotten over the duties of heir-producing smoothly" (*Custody* 15) somewhere reflects the traditional bent of mind. So to speak, it is the harsh reality of our society that when the first child is son, the need of a daughter is not felt whereas, if a daughter is born, the need of a son is acutely felt and people take many chances in the hope of a son. Through this aspect of the protagonist, the novelist suggests that such behavior of a woman in her mature age is the result of the impressions that have been inscribed on her mind since childhood, and it takes time to come out of these impressions.

Through Shagun, Manju Kapur foregrounds the fact that a woman in her life reaches at the stage when these conventional impressions lose its hold and a phase of gradual awareness begins. It is also the phase where the protest and complaints take place; where the clash between the traditional notion of womanhood and woman's individual aspirations arises; where a woman seems to question herself:

"Do you desire self-realization?
Then do not blindly follow others.
Search for the truth in your own self.
There lies wisdom." (Bhagwat 305)

Such phase of the protest, clash and self-realization firmly begins a woman feels dissatisfied in her marital life; when she feels emotionally unfulfilled. Time and again, the problem is not much different. It is seen repeatedly in many novels by various writers; be it ShashiDeshpande, GithaHariharan, Anita Desai and so on. In *Custody* too, Shagun suffers from this lack of emotional fulfilment. This lack actually gives women the space to self-discovery, which is most crucial stage in their journey towards autonomy.

Shagun feels the void expanding in her heart in the same proportion as much as her husband, Raman in want of "more challenge, more prestige, more salary" (*Custody* 16). The more he engages in his pursuit of bonuses and rewards, the more distance grows between them and "Shagun began to protest" (16). The protest becomes louder when she comes to know about her second pregnancy. She feels a strong sense of individuality and realizes that "There might have been empty spaces in her life, but this was not how she chose to fill them" (*Custody* 17). However, Shagun gives birth to the second child; a daughter this time, Roohi.

Shagun once again gets engaged in her familial and motherly duties but as the story unfolds we find her more concerned about herself. The graph of her complaints increases as "she was sick and tired of being alone" (*Custody* 9) and Raman takes no notice to her demands of the emotional satisfaction. Through Shagun, Kapur conveys the idea that besides bread-butter and material prosperity, the modern women need emotional security and stability. If she fails to achieve it within the marital ties, she does not hesitate to cross the boundaries of marriage. Once they realize that the there is nothing promising in their marital life, instead of crying, weeping and accepting the situation as it is, they look forward and transcend the expected code of conduct, which is usually termed as extra-marital relationship, or infidelity or adultery.

In *Custody,* ManjuKapur takes up this issue and allows the reader to deal with it from the feminist viewpoint. Adultery or infidelity has always been a part of complex human relations. Since all rules and regulations, norms and myths have patriarchal undertone; infidelity too is one such notion. It is dualistic in nature as well. Patriarchs hold that "it violates tradition" (Saharan 67). The irony is that this violation actually has everything to do with women and not with men. If seen from present day perspective, although the situation is not inverted, but there is an addition in this phenomenon. Like men, modern women too 'violates' this tradition without any fear and thus challenges this one-sided, oppressive notion and makes it a tool to empower herself. Asha Saharan's observation in her article, *Treatment of Infidelity and Infertility in ManjuKapur's Custody* can be taken into account to understand that in which manner, extra-marital relationship empowers a woman. She writes: "Infidelity empowers a woman… reflects and defends women's right to desiring… permits women to experience their own sexuality as a pleasurable one as they control their gender, their sexuality and their reproductive potential and it challenges the male domination and patriarchal mechanisms of surveillance and control over women bodies" (Saharan 67).

The novelist presents Shagun breaking the notion of 'legitimized female sexuality' when she comes in contact with her husband's boss, Ashok Khanna who becomes enticed to see in her "the perfect blend of East and West" (*Custody* 4). She too feels attracted towards him, allured by his loving words, falls for his glamorous life-style. She takes no time tofall in love with him and leaves behind the essential constraints of marriage. She ignores the sanctity of marriage through sexual transgression. The novelist gives the hint of this extra-marital affair in the very beginning of the novel: "The couple lay among stained sheets and rumpled quilts, eyes closed, legs twisted together like the knotted branches of a low growing tree" (*Custody* 1).

Undoubtedly, Shagun shatters the idea of *'pativrita'* woman. Sexual transgression by woman certainly thwarts the patriarchal myths and standards but it cannot be taken as the end of the journey, since, merely 'violation' does not guarantee the autonomy to her. The fact is observed in the case of several contemporary heroines; some women enjoy the extra-marital relationship but deny the separation from the husband whereas, in some cases, women walk out from the marriage, move for the new one and even then they feel repressed and unfulfilled. Although it cannot be held as the negation of the idea of female sexuality but it is completely materialized when a woman feel privileged and emancipated instead of repression.

In this respect, the first aspect is the change in the temperament of the heroine. The change gets visible when she begins to realize the futility of her relationship with Raman. In company of Ashok, "she felt more real" (*Custody* 27) and the increasing proximity with him not only allows her to make a comparison between her lover and husband but also gives her the space to turn to her inner self. Secondly, instead of remaining silent and waiting for the husband to understand, she not only expresses her wish but also takes the action eventually. She gives voice to her frustration by making Raman realize the very fact that a woman needs more than money and material prosperity, as she says that "I want something else in my life, can't you understand that?"(*Custody* 46). Thirdly, she denies anymore-sexual relationship with her husband in which she succeeds. Although, she has to balance the normal life with Raman along with the secret love life with Ashok but she succeeds in maintaining any physical contact with Raman.

Her mother, Mrs. Sabharwal tries to convince her not to cross the boundary of marriage for the sake of her husband and children and pleads her to come back into the orbit of conventional morality. But she stops giving ear to what her mother suggests.She resolves half of the conflict by declaring her decision to her mother, saying, "That soul, that body that had flowered with Ashok could not now be asked to fold its petals and returns to its budlike state" (*Custody* 96).Shagun comes out of her dilemma of being a wife or a beloved; of going back to the dull and dismal life with Raman or to move forward with her lover, Ashok. She could not stop herself as she feels "the ecstasy of the reunion" with Ashok and that "this was where she belonged, this was where she was most herself" (*Custody* 106). This is what a modern woman expects out of her marriage; the sense of belongingness, the sense of being an individual whose choices and desires must be valued and recognized. She "celebrates her sexuality" which is "an arena of pleasure and agency in which she is empowered to use her body for herself" (Saharan 67). However, she knows as the novelist writes that "she would have to pay heavily for this happiness, but at least, dear God, she would have a happiness she had never before" (*Custody* 108). In fact, she thinks that if she were to die tomorrow, she would at least feel complete and fulfilled.

The above study gives lead to the other issues like divorce and as the title suggests the custody (of children). ManjuKapur has very creatively incorporated the contrasting aspects of the divorce-empowering for one, and distressing and exploiting for other woman in the novel, Ishita; the former is evident through Shagun. Shagun represents that class of women who with a desire for freedom, self-

identification and self-fulfillment ask for divorce to their husband. In-between all the divorce proceedings, Shagun, Raman and their children have to face so much psychological disturbances but Shagun emerges as more rational than emotional. She does not succumb to the pressure nor does she abandon her motherhood because for her motherhood is a choice and not the destiny.If we talk about Shagun's fight for the custody of children, she struggles for them throughout the novel. Her children occupy an equal significant place in her life as that of her individuality and freedom. If she had wanted, she could leave her children at any time and take divorce from Raman but she chooses to take up the challenge to fight for herself and for her children. If Shagun is representative of the modern woman, she is a representative of the modern mother also.

Study done so far makes the novelist's feminist stance evident to a great extent. ManjuKapur brings out the fact that her women do not get rebellious at once but they try to create a space and identity within the social ties to bring a change. If they feel their efforts proving less fruitful, they prefer to leave and move in the new direction. So is with Shagun. The novel carries the significance of the title as it reverberates with the issue of divorce and child custody along with the mechanism of the law-courts. But the major issue that has been discussed from the feminist's lens is the protagonist's search for the freedom that she seeks through marriage. As far as the question of her identity is concerned, she becomes successful as she establishes herself as a businessperson in the foreign soil. Besides, she gets the dignity and respect as a wife and as an individual in her relationship with Ashok. Nevertheless, Shagun is also not free from the weaknesses but we see her asserting her choices throughout the pages of the novel.

Works Cited

1. Bhagwat, Vidyut, Marathi Literature as a Source for Contemporary Feminism.

2. Feminism in India, Ed. Maitrayee Chaudhuri*,* New Delhi : Kali for Women, 2004. 296-317. Print.

3. Kapur, Manju, *Custody,* Gurgaon : Penguin Random House India, 2011, Print.

4. Saharan, Asha, Treatment of Infidelity and Infertility in Manju Kapur's *Custody*, *TJELLS* 2.1 Jan-March 2012. 66-71. Web. 16 July 2017.

5. Sodhi, Meena, Indian Women Writers' Autobiographies in English, *Feminism and Literature : New Points of View*, Ed. K.K. Sharma, K.K. Publications, Delhi, 1996, 122-38. Print.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 274-280

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शिक्षक प्रशिक्षण में व्यावहारिक प्रशिक्षण (इंटर्नशिप) की भूमिका का अध्ययन

*डॉ. उमेश कुमार**

सारांश–*शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण अध्यापन एवं सीखने की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने में शिक्षक प्रशिक्षण का विशेष महत्व है। विशेषकर बी.एड. एवं डी.एल.एड. जैसे प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में व्यावहारिक प्रशिक्षण या इंटर्नशिप को अत्यंत महत्वपूर्ण घटक के रूप में माना गया है। यह चरण शिक्षक–प्रशिक्षुओं के लिए विद्यालयी परिवेश में वास्तविक शिक्षण अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है, जिससे वे सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहार में रूपांतरित कर पाते हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य बी.एड. एवं डी.एल.एड. में व्यावहारिक प्रशिक्षण की भूमिका, उसकी प्रभावशीलता, तथा शिक्षक–प्रशिक्षुओं के पेशेवर विकास पर उसके प्रभाव का विश्लेषण करना है।*

अध्ययन के अंतर्गत यह पाया गया कि इंटर्नशिप अवधि में प्रशिक्षणार्थी न केवल पाठ योजना, शिक्षण विधियों, शिक्षण–सामग्री का प्रयोग एवं मूल्यांकन तकनीकों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं, बल्कि वे कक्षा प्रबंधन, अनुशासन बनाए रखने, विद्यार्थियों की विविध सीखने की आवश्यकताओं को समझने और सहयोगी वातावरण बनाने जैसी महत्त्वपूर्ण शिक्षकीय दक्षताओं का विकास भी करते हैं। इस अवधि में उन्हें अनुभवी मार्गदर्शक शिक्षकों के निरीक्षण, प्रतिक्रिया और सुझावों के माध्यम से अपनी शिक्षण शैली में सुधार का अवसर मिलता है।

शोध निष्कर्षों से यह भी स्पष्ट हुआ कि बी० एड० एवं डी० एल० एड० दोनों पाठ्यक्रमों में इंटर्नशिप शिक्षक–प्रशिक्षुओं के आत्मविश्वास, संप्रेषण कौशल, रचनात्मकता एवं समस्या–समाधान क्षमता को बढ़ाती है। साथ ही, यह उन्हें विद्यालयी प्रशासन, सामुदायिक सहभागिता तथा शिक्षण में प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रति जागरूक बनाती है। व्यावहारिक प्रशिक्षण के दौरान आने वाली चुनौतियाँ. जैसे सीमित संसाधन, समय प्रबंधन, विविध पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के साथ कार्य करना, प्रशिक्षणार्थियों में अनुकूलन एवं नवाचार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती हैं। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि जिन शिक्षक–प्रशिक्षुओं ने इंटर्नशिप को गंभीरता से लिया, उन्होंने अपने आगामी शिक्षकीय करियर में बेहतर प्रदर्शन किया। यह अनुभव उनके लिए केवल एक शैक्षणिक अनिवार्यता नहीं, बल्कि पेशेवर परिपक्वता प्राप्त करने का आधार बन गया। इस शोध में यह सिफारिश की गई है कि व्यावहारिक प्रशिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाने हेतु विद्यालयों एवं प्रशिक्षण संस्थानों के बीच सुदृढ़ समन्वय स्थापित किया जाए, मार्गदर्शक शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाए, तथा इंटर्नशिप अवधि में विविध शिक्षण–अनुभव उपलब्ध कराए जाएँ।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिक्षक प्रशिक्षणमें व्यावहारिक प्रशिक्षण शिक्षक–प्रशिक्षुओं को केवल सिद्धांत के जानकार नहीं, बल्कि सक्षम, संवेदनशील और रचनात्मक शिक्षक बनाने में केंद्रीय भूमिका निभाता है। यह न केवल उनके व्यक्तिगत एवं पेशेवर विकास का आधार है, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता को सुदृढ़ करने में भी निर्णायक योगदान देता है।

मुख्य शब्द–*शिक्षक प्रशिक्षण, व्यावहारिक प्रशिक्षण (इंटर्नशिप), दक्षता, विद्यालयी परिवेश, भूमिका, अध्ययन इत्यादि।*

प्रस्तावना–शिक्षा प्रणाली में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। एक कुशल, संवेदनशील और जागरूक शिक्षक न केवल विद्यार्थियों के शैक्षणिक विकास में योगदान देता है, बल्कि उनके व्यक्तित्व निर्माण में भी अहम भूमिका निभाता है। इसीलिए शिक्षक बनने की प्रक्रिया में केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करना पर्याप्त नहीं

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड. विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन पी.जी. कॉलेज, बलिया, उ.प्र.*

होता, बल्कि उसे व्यावहारिक रूप में लागू करने की क्षमता विकसित करना भी आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में इंटर्नशिप या व्यावहारिक प्रशिक्षण को अनिवार्य रूप से शामिल किया गया है।

इंटर्नशिप का तात्पर्य है– प्रशिक्षणार्थियों को किसी विद्यालय में भेजकर उन्हें वास्तविक शिक्षण परिस्थितियों का अनुभव कराना। इस अवधि में वे कक्षा संचालन, पाठ योजना निर्माण, विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताओं की पहचान, मूल्यांकन की प्रक्रिया, तथा विद्यालयी वातावरण से सीधे रूबरू होते हैं। यह प्रशिक्षण उन्हें शिक्षण के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने का अवसर प्रदान करता है, जिससे उनके अंदर आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता, कक्षा प्रबंधन कौशल और शिक्षण की प्रभावशीलता में वृद्धि होती है।

शिक्षक प्रशिक्षण में इंटर्नशिप की भूमिका बहुआयामी होती है। यह एक सेतु के रूप में कार्य करती है, जो सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहारिक अनुभव से जोड़ती है। इसमें प्रशिक्षणार्थी को न केवल अध्यापन कार्य सिखाया जाता है, बल्कि वह विद्यालय की प्रशासनिक संरचना, सह–पाठ्यक्रमीय गतिविधियाँ, अभिभावक–शिक्षक संवाद, और नैतिक–व्यावसायिक मूल्यों से भी परिचित होता है। इस प्रकार, यह संपूर्ण प्रक्रिया उसे एक समग्र शिक्षक बनने की दिशा में तैयार करती है।

वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में जब शिक्षा प्रणाली तेजी से बदल रही है और नई शिक्षण विधियाँ अपनाई जा रही हैं, तब प्रशिक्षणार्थी के लिए विद्यालयी जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव अत्यंत आवश्यक हो गया है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में भी व्यावहारिक प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया गया है, ताकि शिक्षकों को बदलते समय और प्रौद्योगिकी के अनुसार तैयार किया जा सके।

इस अध्ययन का उद्देश्य यही है कि शिक्षक प्रशिक्षण में इंटर्नशिप की भूमिका का विश्लेषण किया जाए, यह समझा जाए कि यह प्रशिक्षण भविष्य के शिक्षकों को कितनी प्रभावी रूप से तैयार करता है, और इसमें किन–किन सुधारों की आवश्यकता हो सकती है। इस शोध के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रक्रिया, उसकी चुनौतियाँ, लाभ, और संभावनाओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

आवश्यकता एवं महत्व–शिक्षक किसी भी समाज का निर्माता होता है। एक शिक्षक का कार्य केवल ज्ञान का प्रसार करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों में चरित्र, नैतिकता, सोचने की क्षमता और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना भी होता है। इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर्याप्त नहीं होता, बल्कि व्यवहारिक अनुभव भी अत्यंत आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य से शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इंटर्नशिप या व्यावहारिक प्रशिक्षण को अनिवार्य अंग बनाया गया है।

व्यावहारिक प्रशिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे शिक्षक (प्रशिक्षु) को किसी विद्यालय में वास्तविक शिक्षण–अधिगम की स्थिति में कार्य करने का अवसर दिया जाता है। यह प्रशिक्षण उन्हें पाठ योजना बनाने, कक्षा प्रबंधन, शिक्षण विधियों के प्रयोग, मूल्यांकन की तकनीकों तथा विद्यार्थी मनोविज्ञान को समझने का सजीव अनुभव प्रदान करता है। इससे प्रशिक्षु शिक्षक सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहार में लाना सीखते हैं, जो उनके शिक्षण कौशल को प्रभावशाली बनाता है।

इंटर्नशिप की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि शिक्षण एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें केवल विषय–वस्तु का ज्ञान ही नहीं, अपितु संवाद कौशल, सहानुभूति, समस्या–समाधान की योग्यता और नेतृत्व क्षमता भी अपेक्षित होती है। इन सभी गुणों का विकास तभी संभव है जब शिक्षक वास्तविक कक्षा में विद्यार्थियों से संवाद स्थापित करते हुए विभिन्न शिक्षण चुनौतियों का सामना करता है। इंटर्नशिप उन्हें यह अवसर देती है कि वे अपने ज्ञान का अभ्यास करें, गलतियों से सीखें और सुधार की दिशा में आगे बढ़ें।

इंटर्नशिप प्रशिक्षु शिक्षक को आत्म मूल्यांकन का अवसर भी देती है। जब वे अपने प्रदर्शन को देखते हैं, और उनके मेंटर या पर्यवेक्षक उनसे प्रतिपुष्टि (फीडबैक) देते हैं, तब उन्हें अपने कमजोर पक्षों की पहचान होती है। यह सतत विकास की ओर एक महत्वपूर्ण कदम होता है। साथ ही, प्रशिक्षक शिक्षक को विद्यालयी वातावरण, प्रशासनिक प्रक्रिया, सह–शैक्षणिक गतिविधियों और विद्यालयी संस्कृति का परिचय भी मिलता है, जिससे उनका पेशेवर दृष्टिकोण विकसित होता है।

इसके अतिरिक्त, इंटर्नशिप भविष्य में शिक्षक की नियुक्ति या करियर की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कई बार अच्छे प्रदर्शन वाले प्रशिक्षु शिक्षकों को उसी विद्यालय में स्थायी नियुक्ति मिल जाती है। साथ ही, यह अनुभव उनकी बायोडाटा या रिज्यूमे को मजबूत बनाता है और उन्हें अन्य अवसरों के लिए अधिक सक्षम बनाता है।

व्यावहारिक प्रशिक्षण से प्रशिक्षु शिक्षक में आत्मविश्वास का विकास होता है। कक्षा में खड़े होकर शिक्षण करना, विद्यार्थियों की जिज्ञासाओं का समाधान करना, समूह में कार्य करना, सहकर्मी शिक्षकों से संवाद करना– ये सभी क्रियाएं उसे पेशेवर शिक्षक बनने के लिए तैयार करती हैं। यह प्रशिक्षण उनके व्यक्तित्व, आचरण और दृष्टिकोण में एक सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

संक्षेप में, शिक्षक प्रशिक्षण में इंटर्नशिप की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और अपरिहार्य है। यह केवल एक अभ्यास की प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, सजग और सक्षम शिक्षक के निर्माण की आधारशिला है। जब तक एक प्रशिक्षु शिक्षक वास्तविक विद्यालयी जीवन का अनुभव नहीं करता, तब तक वह प्रभावशाली शिक्षक बनने की दिशा में पूर्णतः तैयार नहीं हो सकता। इसीलिए, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में व्यावहारिक प्रशिक्षण को उचित महत्व देना अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम–शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है समयानुसार अध्यापक शिक्षा का विस्तारीकरण होता रहा है, शिक्षक शिक्षा एक ऐसे शैक्षिक कार्यक्रम है जिसमें विभिन्न स्थितियों और वर्गों के अनुरूप अध्यापकों को सूचित करने का प्रयत्न किया जाता रहा है, शिक्षण को एक उद्यम या प्रोफेशन के रूप में स्वीकार करने के लिए या नितांत आवश्यक है। शिक्षक शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम नहीं है बल्कि एक ऐसा मिशन का आयोजन भी है जिसके द्वारा राष्ट्रीय संदर्भ में आधुनिक परिवर्तित अध्यापक की भूमिका के निर्वाह के लिए दक्षता तथा कुशलता प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को सूचित किया जाता है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकारों का विवेचन निम्नांकित है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने पूरे देश में अध्यापक शिक्षा के नियोजित और समन्वित विकास को प्राप्त करने और अध्यापक शिक्षा के लिए मानदंडों और मानकों का विनिमयन और उचित रखरखाव की व्यवस्था करने के आदेश के साथ राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 के अनुसरण में भारत सरकार के एक संवैधानिक निकाय के रूप में 17 अगस्त 1995 को अस्तित्व में आई थी।

इसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसमें सभी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम या पाठ्यक्रम जैसे प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा (डी.एल.एड.) स्नातक प्रशिक्षण (बी. एड.) स्नातकोत्तर प्रशिक्षण (एम.एड.) इत्यादि शामिल हैं। इसमें एन.ई.पी. 2020 के अनुरूप की नई स्कूल प्रणाली के आधारभूत प्रारंभिक, मध्य और माध्यमिक स्तर पर पढ़ाने के लिए छात्रों–अध्यापकों का अनुसंधान और प्रशिक्षण भी शामिल है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा एन. ई. पी. 2020 के अनुरूप अन्य अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में यानि विनयमन, पाठ्यक्रम और डिजिटल वास्तुकला का संशोधन किया जा रहा है। एन.ई.पी. 2020 में सेवा–पूर्व अध्यापक शिक्षा और सेवाकालीन अध्यापक क्षमता निर्माण पर विशेष जोर देने के साथ अध्यापकों की भूमिका में आमूलचूल परिवर्तन की परिकल्पना की गई है। यहाँ हम बी.एड. और डी.एल.एड. पाठ्यक्रम के इंटर्नशिप का अध्ययन करेंगे।

देश भर में संचालित बी.एड. पाठ्यक्रम में इंटर्नशिप का उल्लेख है यह व्यवस्था राज्य और विश्वविद्यालय स्तर पर राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के मार्गदर्शन में भिन्न–भिन्न संरचना में संचालित होता है। यहाँ हम जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया उ.प्र. में संचालित बी.एड. पाठ्यक्रम में निहित इंटर्नशिप संरचना का अध्ययन किया गया है। बी.एड. (Bachler of Education) प्रशिक्षण दो वर्षीय (चार सेमेस्टर) शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम जिसका उद्देश्य माध्यमिक स्तर (कक्षा–6 से कक्षा–10 तक) के लिए योग्य और कुशल शिक्षकों को तैयार करना है। इस प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण भाग इंटर्नशिप है जो प्रशिक्षुओं को वास्तविक विद्यालयी परिवेश में शिक्षण–अधिगम अनुभव प्रदान करता है। इस दो वर्षीय पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के द्वितीय सेमेस्टर और द्वितीय वर्ष के तृतीय सेमेस्टर में विस्तृत संरचना का उल्लेख निम्नलिखित है–

बी.एड. (प्रथम वर्ष) के द्वितीय सेमेस्टर में 4 सप्ताह की इंटर्नशिप में 30 अंकों की निम्नलिखित गतिविधियां/असाइनमेंट करने होंगे।

1. प्रत्येक विद्यालय के लिए दो दिवसीय विद्यालय भ्रमण–प्राथमिक/उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के विद्यालय। (एक सप्ताह)

2. अवलोकन–कक्षा शिक्षण का अवलोकन, कक्षा और विद्यालय परिसर, जिसमें पुस्तकालय, प्रयोगशाला और विद्यालय के भीतर खेल/बाह्य कार्यक्रम शामिल हैं, जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय की रूपरेखा तैयार की जाएगी। (एक सप्ताह)

3. कृत्रिम और सूक्ष्म शिक्षण सत्रों के माध्यम से कौशल विकास (एक सप्ताह)।

4. स्कूल में उपयोग के लिए शिक्षण सहायक सामग्री/प्रदर्शनी/गैजेट्स का सुधार (एक सप्ताह)।

बी० एड० (द्वितीय वर्ष) के तृतीय सेमेस्टर में कुल 16 सप्ताह की इंटर्नशिप में, 150 अंकों की निम्नलिखित गतिविधियां/असाइनमेंट करने होंगे।

A. बी.एड. प्रशिक्षु को प्राथमिक/उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में (चार सप्ताह) और माध्यमिक स्तर पर (दो सप्ताह) के लिए नियुक्त किया जाएगा। इंटर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्य परिप्रेक्ष्य और शिक्षणशास्त्र में पाठ्यक्रमों के सैद्धांतिक ज्ञान को विद्यालय, कक्षा, समुदाय और शिक्षार्थी जैसे विभिन्न क्षेत्रों में संलग्नता के साथ एकीकृत करना है, जिससे 21वीं सदी के वैश्विक विश्व में एक प्रभावी शिक्षक व्यवसाय के लिए आवश्यक शिक्षण दक्षताओं और कौशलों का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके।

B. स्कूल संलग्नता के इस कार्यक्रम के दौरान की जाने वाली गतिविधियाँ निम्नलिखित होंगी–

1. स्कूल शिक्षकों के शिक्षण सत्रों का अवलोकन करना।

2. 40 पाठ पढ़ाना (बी.एड. संकाय द्वारा पर्यवेक्षण)।

3. स्कूल के कार्यों में भागीदारी जैसे प्रार्थना–सभा, सह–पाठ्यचर्या गतिविधियों इत्यादि का आयोजन।

4. पुस्तकालय और प्रयोगशाला प्रबंधन (प्रशिक्षुओं को प्रयोगशालाओं के साथ काम करने के मामले में)।

5. भ्रमण–स्कूल कार्यक्रम के भाग के रूप में अध्ययन दौरे आदि।

6. शिक्षक–अभिभावक बैठकों और विशिष्ट सामुदायिक केंद्रों के दौरे सहित सामुदायिक अंतःक्रियाएँ।

डी.एल.एड. पाठ्यक्रम के चारों सेमेस्टरों में इंटर्नशिप का विस्तृत संरचना है जो निम्नवत् है–

उत्तर प्रदेश में डी.एल.एड. (Diploma in Elementary Education) प्रशिक्षण एक दो वर्षीय शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 8 तक) के लिए योग्य और कुशल शिक्षकों को तैयार करना है। इस प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण भाग इंटर्नशिप (Internship) है, जो प्रशिक्षुओं को वास्तविक विद्यालयी परिवेश में शिक्षण–अधिगम का अनुभव प्रदान करता है।इस दो वर्षीय पाठ्यक्रम के सभी चारों सेमेस्टर्स में इंटर्नशिप (Internship) की व्यवस्था की गयी है।

नीचे डी.एल.एड. प्रशिक्षण में इंटर्नशिप की विस्तृत संरचना दी गई है :

इंटर्नशिप की विस्तृत संरचना

इंटर्नशिप (प्रथम सेमेस्टर)–

क्रम संख्या	विषय	पूर्णांक
1.	कक्षा अवलोकन (शिक्षण विधि)	10
2.	छात्रों के पूर्व ज्ञान का अध्ययन	10
3.	प्रयोग किये जा रहे टी०एल०एम० का विवरण एवं समालोचना	10
4.	रेमेडीयल टीचिंग विधि एवं समालोचना	10
5.	विद्यालय की प्रोफाइल तैयार करना:विद्यालयी भौतिक संसाधनों की स्थिति की समालोचना	10
6.	शैक्षिक गतिविधियों का क्रियान्वयन एवं अभिलेखीकरण	10
7.	विद्यालयी अभिलेखों का विवरण,रख –रखाव एवं समालोचना	10
8.	विद्यालयी अभिलेखों को तैयार करना	10
9.	पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों का विवरण एवं समालोचना	10
10.	सामुदायिक सहभागिता की स्थिति /एस०एम०डी०सी० की स्थिति एवं उसकी समालोचना	10
	योग	100

इंटर्नशिप (द्वितीय सेमेस्टर)–

क्रम सं०	**विषय**	**पूर्णांक**
1.	छात्रों की प्रोफाइल तैयार करना एवं छात्रों के पूर्व ज्ञान का अध्ययन	10
2.	पाठ योजना निर्माण	10
	निर्धारित विषय वस्तु	10
	अवधारित शिक्षण विधि	10
	निर्मित टी0एल0एम0	10
	मूल्यांकन प्रपत्र	10
	उपचारात्मक शिक्षण हेतु तैयार की गयी विधा या माडल, खेल ..	10
3.	पाठ योजना प्रस्तुतिकरण	10
4.	बच्चों की सहभागिता	10
5.	अभ्यास कार्य	10
	योग	**100**

इंटर्नशिप (तृतीय सेमेस्टर)–

क्रम सं०	विषय	पूर्णांक
1.	छात्रों की प्रोफाइल तैयार करना एवं उनका पूर्व ज्ञान अध्ययन करना (पाठ के लिए आवश्यक)	10
2.	पाठ योजना निर्माण	10
	निर्धारित विषय वस्तु	10
	अवधारित शिक्षण विधि	10
	निर्मित टी0एल0एम0	10
	मूल्यांकन प्रपत्र	10
	उपचारात्मक शिक्षण हेतु तैयार की गयी विधा तथा माडल खेल....	10
3.	पाठ योजना प्रस्तुतिकरण	10
4.	बच्चों की सहभागिता	10
5.	अभ्यास कार्य	10
	योग	100

इंटर्नशिप (चतुर्थ सेमेस्टर)–

क्रम सं०	विषय	पूर्णांक
1.	छात्रों की प्रोफाइल तैयार करना एवं उनका पूर्व ज्ञान अध्ययन करना (पाठ के लिए आवश्यक)	10
2.	पाठ योजना निर्माण	10
	निर्धारित विषय वस्तु	10
	अवधारित शिक्षण विधि	10
	निर्मित टी0एल0एम0	10
	मूल्यांकन प्रपत्र	10
	उपचारात्मक शिक्षण हेतु तैयार की गयी विधा तथा माडल खेल....	10
3.	पाठ योजना प्रस्तुतिकरण	10
4.	बच्चों की सहभागिता	10
5.	अभ्यास कार्य	10
	योग	100

इंटर्नशिप का महत्व–बी0एड0 पाठ्यक्रम और उत्तर प्रदेश के डी.एल.एड. (D.El.Ed.) प्रशिक्षण कार्यक्रम में इंटर्नशिप की महत्ता अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शिक्षार्थियों को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ–साथ व्यवहारिक अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है। इंटर्नशिप के माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षक विद्यालयी वातावरण से प्रत्यक्ष रूप से परिचित होते हैं और कक्षा प्रबंधन, पाठ योजना निर्माण, मूल्यांकन प्रक्रिया तथा शिक्षण विधियों को व्यवहार में लाने का अभ्यास करते हैं। इससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है और वे एक कुशल, संवेदनशील एवं जिम्मेदार शिक्षक बनने की दिशा में अग्रसर होते हैं। इसके अतिरिक्त, इंटर्नशिप प्रशिक्षुओं को बालकों की विविध शैक्षिक आवश्यकताओं को समझने और उनके अनुसार शिक्षण रणनीतियाँ अपनाने में भी सक्षम बनाती है। कुल मिलाकर, इंटर्नशिप बी.एड. और डी.एल.एड. प्रशिक्षण का एक अनिवार्य अंग है जो भावी शिक्षकों को व्यावसायिक दृष्टिकोण, व्यवहारिक दक्षता तथा नैतिक मूल्यों से युक्त बनाकर उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए तैयार करता है।

इंटर्नशिप से लाभ–बी.एड. और डी.एल.एड. (डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन) इंटर्नशिप का लाभ शिक्षण कार्य में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इंटर्नशिप के दौरान प्रशिक्षुओं को विद्यालयी परिवेश में सीधे छात्रों के साथ कार्य करने का अवसर मिलता है, जिससे वे शैक्षिक गतिविधियों, कक्षा प्रबंधन, पाठ योजना निर्माण तथा शिक्षण विधियों का वास्तविक अभ्यास कर पाते हैं। यह उन्हें आत्मविश्वासी बनाता है और उनके संप्रेषण, नेतृत्व तथा समस्या समाधान जैसे व्यावसायिक कौशलों का विकास करता है। साथ ही, प्रशिक्षु शिक्षक विद्यालय के वातावरण, छात्रों की विविधता और उनकी सीखने की शैली को समझते हुए अपने शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बना पाते हैं। इंटर्नशिप प्रशिक्षकों को सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में सुधार करने का अवसर भी प्रदान करती है, जिससे वे एक सफल और संवेदनशील शिक्षक बनने की दिशा में अग्रसर होते हैं। इस प्रकार, बी.एड. और डी.एल.एड. इंटर्नशिप एक सेतु का कार्य करती है जो सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक अनुभव से जोड़ती है।

अध्ययन की उपयोगिता–शिक्षक प्रशिक्षण में व्यावहारिक प्रशिक्षण (इंटर्नशिप) की भूमिका का अध्ययन एक अत्यंत महत्वपूर्ण शोध क्षेत्र है, जिसकी उपयोगिता शैक्षिक व्यवस्था को व्यावहारिक दृष्टिकोण से सशक्त बनाने में निहित है। इंटर्नशिप के माध्यम से भावी शिक्षक कक्षा–शिक्षण, विद्यार्थियों की मनोवृत्तियों को समझना, पाठ योजनाएँ बनाना, मूल्यांकन की विधियाँ अपनाना तथा विद्यालयीन वातावरण में समायोजन जैसे अनेक व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करते हैं। यह शोध शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार, प्रशिक्षुओं की दक्षता बढ़ाने, तथा शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम को यथार्थपरक बनाने में सहायक सिद्ध होता है। इसके माध्यम से यह भी जाना जा सकता है कि इंटर्नशिप के दौरान प्रशिक्षुओं को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और उनके समाधान हेतु कौन–कौन से रणनीतियाँ कारगर हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, यह शोध नीति निर्माताओं को प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पुनर्गठन और सुदृढ़ीकरण के लिए आवश्यक सुझाव प्रदान करता है। इस प्रकार, शिक्षक प्रशिक्षण में व्यावहारिक प्रशिक्षण की भूमिका का गहन अध्ययन शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अध्ययन के निष्कर्ष–शिक्षक प्रशिक्षण में व्यावहारिक प्रशिक्षण (इंटर्नशिप) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली होती है। यह प्रशिक्षण भावी शिक्षकों को कक्षा–कक्ष की वास्तविक परिस्थितियों से परिचित कराता है और उन्हें सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में लागू करने का अवसर प्रदान करता है। इंटर्नशिप के दौरान प्रशिक्षु शिक्षक न केवल शिक्षण विधियों और रणनीतियों का अभ्यास करते हैं, बल्कि छात्र व्यवहार, कक्षा प्रबंधन, पाठ योजना, मूल्यांकन तकनीकों तथा स्कूल प्रशासन से संबंधित कार्यों का भी अनुभव प्राप्त करते हैं। यह प्रशिक्षण उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है, व्यावसायिक कौशलों को निखारता है तथा शिक्षक बनने के लिए आवश्यक जिम्मेदारी और नैतिकता का बोध कराता है। साथ ही, उन्हें सहयोगी शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ संवाद एवं सहयोगात्मक कार्य करने की समझ भी विकसित होती है। कुल मिलाकर, इंटर्नशिप शिक्षक प्रशिक्षण का एक ऐसा अनिवार्य अंग है जो शिक्षण की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और एक प्रशिक्षु को एक सक्षम, संवेदनशील एवं प्रभावशाली शिक्षक बनने की दिशा में सशक्त आधार प्रदान करता है।

सन्दर्भ–सूची

1. मिश्रा, पी. डी. (2015), भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक प्रशिक्षण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, लखनऊ।
2. यादव, के. एल. (2016), शिक्षक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आधारशिला, अरिहंत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

3. एन.सी.टी.ई. (जनवरी 2016), स्कूल इंटर्नशिप : फ्रेम वर्क एंड गाइड लाइन।
4. यादव, के. एल. (2016), शिक्षक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आधारशिला, अरिहंत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. गुप्ता, आर. (2017), शिक्षा मनोविज्ञान एवं शिक्षक प्रशिक्षण, विद्या निकेतन पब्लिशर्स, पटना।
6. वर्मा, एम. एल. (2018), शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में इंटर्नशिप की भूमिका, विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली।
7. सिंह, बी. पी. (2018), शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में इंटर्नशिप का महत्व, सारस्वत पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी।
8. शर्मा, आर. ए. (2019), शिक्षक शिक्षा और प्रशिक्षण, लाल बुक डिपो, मेरठ।
9. श्रीवास्तव, एस. के. (2020), शिक्षक प्रशिक्षण का सिद्धांत और व्यवहार, ज्ञान भारती प्रकाशन, वाराणसी।
10. त्रिपाठी, एन. एस. (2021), शिक्षक निर्माण और व्यावहारिक प्रशिक्षण, विनय प्रकाशन, आगरा।
11. जोशी, एस. एम. (2022), शिक्षक शिक्षा में इंटर्नशिप : एक व्यवहारिक अध्ययन, नवभारत प्रकाशन, भोपाल।
12. सक्सेना, आर. आर. (2023), समकालीन शिक्षक प्रशिक्षण में व्यावहारिक अनुभव की भूमिका, राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर।
13. पाण्डेय, डॉ. राहुल कुमार (2023), शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के अंतर्गत इंटर्नशिप, एक अवलोकन, एक शोध पत्र, IJCRT, Volume-11, Issue-3, March 2023
14. स्रोत–जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बलिया।
15. https://www.scert-up-in
16. https://kzncu.ac.in

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Social Work : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 281-292

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति युवाओं का दृष्टिकोण एक सामाजिक अध्ययन

*मयंक शुक्ल** *डॉ. गीतांजलि श्रीवास्तव***

सारांश : *प्रस्तुत अध्ययन उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण की गहन जांच करता है, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पारिवारिक कारकों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उन कारकों की पहचान करना है जो उभयलिंगी समुदाय के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण को आकार देते हैं और यह जानना है कि उभयलिंगी व्यक्तियों को समाज में किस हद तक स्वीकृति प्राप्त होती है। प्रस्तुत शोध में यह भी विश्लेषण किया गया है कि उभयलिंगी व्यक्तियों के समावेश को बढ़ावा देने के लिए कौन–कौन सी रणनीतियाँ प्रभावी हो सकती हैं।*

कार्यप्रणाली : प्रस्तुत शोध में गुणात्मक और मात्रात्मक अनुसंधान पद्धतियों का उपयोग किया गया है। प्रयागराज, उत्तर प्रदेश के दो डिग्री कॉलेजों से 100 युवाओं का चयन सरल यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से किया गया। प्रतिभागियों से आंकड़े एकत्र करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची और प्रश्नावली का प्रयोग किया गया, जिसमें उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति उनके दृष्टिकोण, उनके सामाजिक और पारिवारिक परिवेश और उनके सांस्कृतिक व धार्मिक मान्यताओं से संबंधित प्रश्न सम्मिलित किये गए। आंकड़े का विश्लेषण सांख्यिकीय उपकरणों के माध्यम से किया गया, जिससे विभिन्न कारकों और दृष्टिकोणों के बीच संबंधों को समझा जा सके।

प्रमुख निष्कर्ष : अध्ययन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :

1. **शिक्षा का प्रभाव :** उच्च शिक्षा प्राप्त युवाओं में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण पाया गया, जबकि कम शिक्षित युवाओं में पूर्वाग्रह और अस्वीकृति का स्तर अधिक था।

2. **पारिवारिक दृष्टिकोण :** जिन परिवारों में उभयलिंगियों के प्रति खुलकर चर्चा होती है, वहाँ के युवा अधिक समावेशी और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हैं। इसके विपरीत, जहाँ परिवार में इस विषय पर संवाद की कमी है, वहाँ नकारात्मक दृष्टिकोण अधिक देखने को मिला।

3. **धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ :** 51% प्रतिभागियों ने माना कि उनकी संस्कृति और धर्म उभयलिंगियों के प्रति विशेष दृष्टिकोण रखते हैं, जो उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं। धार्मिक संस्थानों में इस विषय पर अधिक जागरूकता की आवश्यकता है।

4. **मीडिया का प्रभाव :** उभयलिंगियों के प्रति मीडिया में सकारात्मक प्रतिनिधित्व की कमी है। प्रतिभागियों का मानना था कि यदि मीडिया में उभयलिंगियों का सही और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया जाए, तो उनके प्रति समाज में स्वीकृति बढ़ सकती है।

निष्कर्ष : अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि उभयलिंगियों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण में शिक्षा, परिवार, सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उच्च शिक्षा और परिवारों में संवाद की उपस्थिति उभयलिंगियों के प्रति अधिक समावेशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है। धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण है, जो कभी–कभी अस्वीकृति का कारण बनता है। मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का सशक्तिकरण, साथ ही जागरूकता अभियानों का आयोजन, समाज में उभयलिंगियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

** शोध छात्र, समाज कार्य केन्द्र, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

*** सहायक आचार्य, समाज कार्य केन्द्र, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.*

परिचय : भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और विविधतापूर्ण देश में, लिंग पहचान पर चर्चा पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण रूप से उभर कर सामने आई है। यह चर्चा विशेष रूप से उभयलिंगी व्यक्तियों के संदर्भ में प्रासंगिक है, जिनके अस्तित्व और अधिकारों को लंबे समय तक समाज द्वारा नजरअंदाज किया गया था। परंतु हाल के वर्षों में, उभयलिंगी समुदाय को सामाजिक, कानूनी और राजनीतिक स्तर पर एक अलग पहचान और अधिकार दिलाने के प्रयास तेज़ी से बढ़े हैं। इसके परिणाम स्वरूप, समाज के कई हिस्सों में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण और भेदभाव अभी भी व्याप्त हैं।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य आज के युवाओं का उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण को समझना है और उनके विचारों को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी प्राप्त करना है। युवाओं की मानसिकता, सामाजिक परिवेश, शिक्षा, मीडिया और धार्मिक मान्यताओं के प्रभाव का अध्ययन करके यह जाना जा सकता है कि इन कारकों के आधार पर उभयलिंगी समुदाय के प्रति उनके दृष्टिकोण में क्या बदलाव आ रहे हैं या आ सकते हैं।

उभयलिंगीता की अवधारणा : ''उभयलिंगीता'' एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक अवधारणा है, जिसका तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो अपनी जैविक पहचान के विपरीत लिंग पहचान या अभिव्यक्ति के साथ जीते हैं। इस समुदाय को प्रायः सामाजिक, धार्मिक और कानूनी रूप से अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। भारत में, उभयलिंगी समुदाय को तीसरे लिंग के रूप में पहचान दी गई है, और 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने उभयलिंगी व्यक्तियों को ''थर्ड जेंडर'' का कानूनी दर्जा दिया। इस ऐतिहासिक निर्णय ने उभयलिंगी समुदाय के अधिकारों और उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की दिशा में एक मील का पत्थर स्थापित किया। इसके बाद, 2019 में उभयलिंगी व्यक्तियों (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया, जो उभयलिंगी व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करता है और उनके लिए सामाजिक सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन का आश्वासन देता है।

इसके बावजूद, सामाजिक स्तर पर उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति भेदभाव और हाशिये पर धकेले जाने की प्रवृत्ति देखी जाती है। समाज के अधिकांश वर्गों में उभयलिंगी व्यक्तियों को ''अलग'' या ''असामान्य'' के रूप में देखा जाता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि युवाओं की मानसिकता को समझा जाए, क्योंकि वे समाज के भविष्य के संचालक हैं और उनके दृष्टिकोण से समाज में बदलाव संभव हो सकता है।

युवाओं का सामाजिक दृष्टिकोण : युवाओं का दृष्टिकोण समाज के विभिन्न आयामों से प्रभावित होता है, जैसे कि परिवार, शिक्षा, मीडिया, और धर्म। आधुनिक युग में, जहां सूचना और प्रौद्योगिकी के साधन तीव्र गति से विकसित हो रहे हैं, युवाओं के लिए जानकारी का स्रोत केवल पारंपरिक परिवार या शिक्षा तक सीमित नहीं रह गया है। हालांकि, यह भी सच है कि भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में रहने वाले युवाओं के दृष्टिकोण में अंतर हो सकता है। शहरी क्षेत्रों के युवा, जहां सूचना और जागरूकता अधिक उपलब्ध होती है, वे उभयलिंगी समुदाय के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण और समावेशी दृष्टिकोण अपना सकते हैं। वहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां पारंपरिक सामाजिक और धार्मिक मान्यताएँ अभी भी गहराई से जुड़ी हुई हैं, युवाओं के दृष्टिकोण में रूढ़िवादीता अधिक हो सकती है।

शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाता है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे युवाओं के दृष्टिकोण में जागरूकता और संवेदनशीलता अधिक हो सकती है, जबकि शिक्षा की कमी से पूर्वाग्रह और भेदभाव की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। यदि युवा उन समूहों से जुड़े हैं जो सामाजिक समावेशिता और समानता के सिद्धांतों का समर्थन करते हैं, तो वे भी उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं।

साहित्य समीक्षा : उभयलिंगी समुदाय के प्रति समाज का दृष्टिकोण वैश्विक स्तर पर सामाजिक वैज्ञानिकों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, और शोधकर्ताओं के लिए एक प्रमुख अध्ययन क्षेत्र रहा है। पिछले कुछ दशकों में इस क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण शोध और अध्ययन किए गए हैं, जिन्होंने उभयलिंगी व्यक्तियों के जीवन, संघर्ष, समाज में उनकी स्थिति और उनके प्रति विभिन्न समूहों के दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है। यह साहित्य समीक्षा इन अध्ययनों को व्यवस्थित रूप से विश्लेषण करके इस बात का आकलन करेगी कि युवाओं का उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण किन कारकों से प्रभावित होता है और समाज के विभिन्न तत्व जैसे परिवार, शिक्षा, मीडिया और धार्मिक मान्यताओं की भूमिका इसमें कितनी महत्वपूर्ण है।

1. भारतीय जनगणना ने वर्षों से जनगणना आंकड़े एकत्र करते समय कभी भी तीसरे लिंग यानी उभयलिंगी को मान्यता नहीं दी है। हालांकि, 2011 में जनगणना में उभयलिंगी के आंकड़े को लिंग के तहत अन्य श्रेणी में

उनके रोजगार साक्षरता और जाति से संबंधित वितरणों के साथ एकत्र किया गया था जनगणना से पता चला कि उभयलिंगी की कुल आबादी लगभग 4,88,000 है। आंकड़े को मुख्य रूप से पुरुष अनुभाग से जोड़ा गया है क्योंकि उनमें उन्हें आमतौर पर पुरुषों के रूप में गिना जाता है लेकिन अनुरोध पर उन्हें महिलाओं के रूप में गिना जा सकता है। – (Sawant, Neena (2017, Transgender : Status in India.)

2. भारत में उभयलिंगी लोगों के कई सामाजिक सांस्कृतिक समूह है, जैसे कि हिजड़ा, किन्नर और अन्य उभयलिंगी पहचान जैसे– शिव शक्ति, जोग, जोगप्पा, आराधी, सखी आदि। इन उप समूहों के सभी सदस्यों को समकालीन भारत में सभी तरह से गंभीर भेदभाव उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। अपनी पैतृक संपत्ति, सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश में हिस्सेदारी से वंचित करना, तथा परिवार, शैक्षिक संस्थानों, कार्य स्थल, स्वास्थ्य सेवा सेटिंग्स, सार्वजनिक स्थानों जैसी कई स्थितियों में उत्पीड़न।अब तक इन समुदायों का मानना है कि उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन अर्थव्यवस्था और राजनीति और निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रभावी रूप से भाग लेने से बाहर रखा गया है। बहिष्कार का एक प्राथमिक कारण और परिणाम हिजड़े और अन्य की लिंग स्थिति की मान्यता की कमी माना जाता है। –(डॉ. सुब्रजीत चटर्जी (2018), भारत में उभयलिंगी समुदाय के समक्ष आने वाली समस्याएं कुछ अनुशंसाएं)

3. अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय तंत्र देश के उभयलिंगी के लिए बताए गए अधिकारों की रक्षा करता है। अध्ययनों ने इस तथ्य को उजागर किया है कि देश की सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों और योजनाओं में उभयलिंगी को कोई हिस्सेदारी नहीं मिलती है। ये लोग न केवल वर्तमान में बल्कि बहुत पहले से और देश की सामाजिक आर्थिक संस्कृति के माध्यम से संघर्ष का सामना कर रहे हैं। भारतीय संविधान के सभी स्तरों पर सभी के लिए समानता का लक्ष्य रखने के बावजूद, इन लोगों को हमेशा किसी न किसी रूप में समाज में स्वीकृति से भेदभाव किया गया है। दुर्व्यवहार, हमला, यौन उत्पीड़न और अन्य उत्पीड़न बहुत आम अपराध हैं, जो इन लोगों के साथ होते हैं और अभी भी उनका इलाज किया जाता है। सरकार द्वारा पारित उभयलिंगी बिल ने आज तक के कई संघर्षों के बाद उभयलिंगी के जीवन में थोड़ी राहत प्रदान की है। –(राशि शर्मा (2020), भारत में उभयलिंगी और उभयलिंगी अधिकार : एक तुलनात्मक विश्लेषण)

4. लोग विकासोन्मुख होने जा रहे हैं, दुनिया के कई हिस्सों में और हमारे देश में कुछ विशेष समूह, समुदाय, लोग रूढ़िवादी विचारों, जागरूकता की कमी या समाज और विश्व समुदाय के विकास के लिए अनुचित योजना और नीतियों के कारण हमेशा हाशिये पर रहे हैं, बहुत प्रसिद्ध ''हिजड़ा'' समुदाय भी सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, मानसिक–सामाजिक और मानसिक–यौन रूप से हाशिये पर रह रहा है। वे अपनी पहचान और अधिकारों के लिए सैकड़ों वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं। उभयलिंगी बच्चों या व्यक्तियों को मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली या समाज में शामिल किया जाना चाहिए; उन्हें पर्याप्त सीखने के माहौल या सामाजिक स्वीकृति की आवश्यकता है। सेवापूर्व और सेवारत शिक्षकों को कक्षा में उभयलिंगी बच्चों के साथ व्यवहार करने के लिए संवेदनशील बनाया जाना चाहिए। –(चंद्रा, सतीश (2017), उभयलिंगी बच्चों की शिक्षा और समाज में उनका पुनः जुड़ावद्ध

परिकल्पना :

1. वर्तमान में युवा उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।
2. उभयलिंगी व्यक्तियों को मुख्यधारा में लाने में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

उद्देश्य :

1. उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण को समझना एवं समुदाय के प्रति दृष्टिकोण पर सामाजिक, सांस्कृतिक, और शैक्षणिक कारकों के प्रभाव का विश्लेषण करना।
2. उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति ग्रामीण और शहरी युवाओं के दृष्टिकोण के बीच अंतर की पहचान करना।
3. उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण को सुधारने के लिए शिक्षा, मीडिया और जागरूकता अभियानों की भूमिका का विश्लेषण करना।

शोध प्ररचना और कार्यप्रणाली : अध्ययन का मुख्य लक्ष्य उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति युवाओं दृष्टिकोण के बारे में जानना है। इस अध्ययन में प्राथमिक आंकड़े का उपयोग करके खोजपूर्ण अनुसंधान प्ररचना पर आधारित एक मिश्रित दृष्टिकोण का संचालन किया गया। शोध प्रश्नावली में 20 प्रश्न शामिल हैं, जिसमें सभी प्रश्न बंद प्रश्न हैं, जिनसे युवाओं की राय जानी जा सकती है।

नमूनाकरण : अध्ययन का समग्र उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जिले के दो डिग्री कॉलेज (यानी सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज और कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज) से बना है, जिसमें से 100 छात्रों (यानी प्रत्येक कॉलेज से 50) को सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि के प्रयोग द्वारा चुना गया है। आंकड़ों को साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्र किया गया था, जिसमें शोधकर्ता ने युवाओं के साथ आमने–सामने बातचीत की, सभी प्रश्नों को समझाया तथा आंकड़े एकत्र किये। अध्ययन में साक्षात्कार के अतिरिक्त विधि अवलोकन का भी उपयोग किया गया। आंकड़ों को समझने और विश्लेषण करने के लिए उचित आवृत्ति तालिकाओं का उपयोग करके सरल प्रतिशत पद्धति का उपयोग किया गया था और ग्राफ़िकल प्रस्तुति के लिए पाई चार्ट का उपयोग किया गया है।

परिणाम और चर्चा : यह विश्लेषण भारतीय युवाओं के बीच उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण को समझने के लिए सर्वेक्षण आंकड़े का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। निम्नलिखित विश्लेषण विभिन्न पहलुओं में गहराई से जाएगा, जैसे कि आयु, लिंग, शैक्षणिक स्तर, निवास स्थान, व्यक्तिगत अनुभव, जागरूकता, सामाजिक भेदभाव, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता, और सांस्कृतिक एवं पारिवारिक प्रभाव।

तालिका–1 : प्रतिभागियों के जनसांख्यिकीय आंकड़े

S.No.	विशेष	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	**उत्तरदाता की आयु**		
A.	15-20	49	49.00%
B.	20-25	48	48.00%
C.	25-30	3	3.00%
	कुल	100	100%
2.	**उत्तरदाता का लिंग**		
A.	**पुरुष**	50	50.00%
B.	**महिला**	50	50.00%
	कुल	100	100%
3.	**उत्तरदाता का शैक्षिक स्तर**		
A.	**स्नातक**	80	75.00%
B.	**स्नातकोत्तर**	20	25.00%
	कुल	100	100%
4.	**निवास स्थान**		
A.	**शहरी**	62	62.00%
B.	**ग्रामीण**	38	38.00%
	कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि यह उत्तरदाताओं के जनसांख्यिकीय आंकड़ों को दर्शाती है। अध्ययन में 100 छात्र को चयनित किया गया था, जिनमें से 50% पुरुष तथा 50% महिला हैं। उनकी आयु 15 से 30 वर्ष तक भिन्न होती है जिसमें 49% प्रतिभागी 15 से 20 कीआयु के हैं, 48% प्रतिभागी 20 से 25 की आयु के हैं और केवल 3% प्रतिभागी 25 से 30 की आयु के हैं, कोई भी 30 से ऊपर नहीं है। अध्ययन में भाग लेने वालों के पास शिक्षा के भिन्न स्तर हैं जहां 80% प्रतिभागी स्नातक हैं, 20% प्रतिभागी स्नातकोत्तर हैं। 62% प्रतिभागियों का शहरी परिवेश से होना यह सुझाव देता है कि वे ऐसे वातावरण में बड़े हुए हैं जहां सामाजिक विविधता और समावेशिता पर अधिक जोर दिया जाता है। ग्रामीण परिवेश के युवाओं का प्रतिनिधित्व (38%) यह दर्शाता है कि वहाँ की पारंपरिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक कारक उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकते हैं।

तालिका–2 : क्या आप पहले से किसी उभयलिंगी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	25	25.00%
नहीं	75	75.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त सर्वेक्षण में शामिल 75% युवाओं का कहना है कि वे किसी उभयलिंगी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते। इसका मतलब यह है कि इन युवाओं का उभयलिंगी समुदाय से व्यक्तिगत अनुभव सीमित है। जो 25% युवा किसी उभयलिंगी व्यक्ति को जानते हैं, उनके पास अधिक व्यक्तिगत और वास्तविक दृष्टिकोण हो सकता है।

तालिका–3 : आप उभयलिंगी व्यक्तियों के बारे में क्या जानते हैं?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
बहुत कुछ	5	05.00%
कुछ हद तक	79	79.00%
बिल्कुल नहीं	16	16.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के अधिकांश प्रतिभागियों (79%) ने स्वीकार किया कि उन्हें उभयलिंगी व्यक्तियों के बारे में कुछ हद तक जानकारी है, जबकि 16% प्रतिभागियों ने कहा कि उन्हें बिल्कुल भी जानकारी नहीं है। केवल 5% प्रतिभागियों ने उभयलिंगी समुदाय के बारे में अच्छी जानकारी होने की बात कही। यह आंकड़ा स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि युवाओं के बीच जागरूकता का स्तर अभी भी सतही है, और उन्हें इस विषय पर गहन जानकारी की आवश्यकता है। यह स्थिति दर्शाती है कि जानकारी के अभाव के कारण मिथक और भ्रामक धारणाएँ अधिक प्रचलित हो सकती हैं।

तालिका–4 : आपके विचार में, उभयलिंगीता क्या है?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
एक प्राकृतिक यौन अभिविन्यास	87	87.00%
एक सामाजिक प्रभाव	10	10.00%
अन्य	3	3.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के 87% प्रतिभागियों का मानना है कि उभयलिंगीता एक प्राकृतिक यौन अभिविन्यास है। यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि अधिकांश युवाओं का दृष्टिकोण उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक और सहिष्णु है। यह सोच वैज्ञानिक दृष्टिकोण को दर्शाती है, जहाँ लैंगिक पहचान को जैविक और प्राकृतिक समझा जाता है। केवल 10% प्रतिभागियों ने इसे सामाजिक प्रभाव के रूप में देखा, जो यह संकेत देता है कि समाज के कुछ हिस्से में उभयलिंगीता को अभी भी एक सामाजिक निर्माण या बाहरी प्रभाव के रूप में देखा जा रहा है।

तालिका–5 : क्या आप मानते हैं कि उभयलिंगी व्यक्ति समाज में खुले तौर पर अपनी पहचान प्रकट कर सकते हैं?

मत/विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ, बिल्कुल	88	88.00%
कुछ हद तक	12	12.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है किउपर्युक्त अध्ययन के उत्तर से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश प्रतिभागी (88%)मानते हैं कि उभयलिंगी व्यक्ति अपनी पहचान खुलकर प्रकट कर सकते हैं। यह एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, जो दिखाता है कि समाज में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति एक स्वस्थ समझ और स्वीकृति विकसित हो रही है।हालांकि, 12% प्रतिभागियों का ''कुछ हद तक'' उत्तर यह बताता है कि सभी क्षेत्रों में उभयलिंगी व्यक्तियों के लिए स्वीकार्यता समान नहीं है।

तालिका–6 : क्या आपको लगता है कि उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति समाज में भेदभाव होता है?

मत/विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ, अक्सर	65	65.00%
कभी–कभी	31	31.00%
नहीं	4	4.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के 65% प्रतिभागियों का मानना है कि उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति समाज में अक्सर भेदभाव होता है। यह आंकड़ा समाज में उभयलिंगी समुदाय के प्रति गहरे पूर्वाग्रह और अस्वीकृति की स्थिति को दर्शाता है। भेदभाव का अनुभव करना न केवल उभयलिंगी व्यक्तियों की आत्मसम्मान को प्रभावित करता है। 31% प्रतिभागियों ने कहा कि भेदभाव ''कभी–कभी'' होता है, जो यह दर्शाता है कि भेदभाव की गंभीरता भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के आधार पर बदल सकती है। केवल 4% ने भेदभाव को पूरी तरह से नकारा है, जो यह दर्शाता है कि कुछ लोग या तो इस मुद्दे की गंभीरता को नहीं समझते हैं या फिर उनके सामाजिक अनुभव अधिक सकारात्मक हैं।

तालिका–7 : आपके अनुसार, क्या उभयलिंगी व्यक्तियों को समाज में समान अवसर मिलने चाहिए?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	98	98.00%
नहीं	2	2.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन में 98% प्रतिभागियों का यह मानना है कि उभयलिंगी व्यक्तियों को समान अवसर मिलने चाहिए, जो कि सामाजिक समानता और न्याय का एक स्पष्ट संकेत है। यह आंकड़ा दर्शाता है कि युवा पीढ़ी समानता के सिद्धांत का समर्थन करती है और उन्हें विश्वास है कि उभयलिंगी व्यक्तियों को सभी क्षेत्रों में बराबरी के अवसर मिलने चाहिए। हालांकि, 2% प्रतिभागियों का ''नहीं'' उत्तर यह दर्शाता है कि समाज के कुछ हिस्सों में अब भी ऐसे पूर्वाग्रह हैं जो उभयलिंगी व्यक्तियों को समान अवसर देने में रुकावट डालते हैं।

तालिका 8 : क्या आप मानते हैं कि उभयलिंगी व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की विशेष आवश्यकता होती है?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	70	70.00%
नहीं	12	12.00%
कुछ कह नहीं सकते	18	18.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन में 70% प्रतिभागियों का मानना है कि उभयलिंगी व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की विशेष आवश्यकता होती है। यह संकेत करता है कि समाज इस बात को पहचानता है कि उभयलिंगियों को मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं, जो उनके सामाजिक भेदभाव और अस्वीकृति के अनुभवों से उत्पन्न होती हैं।12% प्रतिभागियों ने इस धारणा का विरोध किया है, जो यह बताता है कि कुछ लोग मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं को गंभीरता से नहीं लेते। 18% का अनिश्चितता व्यक्त करना यह दर्शाता है कि मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे पर जागरूकता की कमी हो सकती है।

तालिका–9 : क्या आप किसी उभयलिंगी व्यक्ति को अन्य सामाजिक संबंधों के रूप के रूप में स्वीकार करेंगे?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	62	62.00%
नहीं	7	7.00%
कुछ कह नहीं सकते	31	31.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययनमें 62% प्रतिभागियों ने उभयलिंगी व्यक्तियों को सामाजिक संबंधों में स्वीकार करने की इच्छा जताई है, जो एक सकारात्मक संकेत है। हालांकि, 31% प्रतिभागी इस विषय पर अनिश्चित हैं। यह अनिश्चितता दर्शाती है कि कुछ युवाओं के मन में अभी भी भ्रम या पूर्वाग्रह हो सकते हैं, जो उनकी स्वीकार्यता को प्रभावित कर सकते हैं। 7% प्रतिभागियों का ''नहीं'' उत्तर यह संकेत करता है कि कुछ क्षेत्रों में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति अस्वीकृति बनी हुई है, जो सामाजिक समावेशिता में एक बड़ी चुनौती है।

तालिका–10 : क्या आप उभयलिंगी व्यक्तियों के बारे में सकारात्मक कहानियाँ मीडिया में देखना चाहते हैं?

मत/विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	88	88.00%
नहीं	2	2.00%
कुछ कह नहीं सकते	10	10
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन में शीर्षक 88% प्रतिभागियों का मानना है कि मीडिया में उभयलिंगियों के बारे में सकारात्मक कहानियाँ प्रस्तुत की जानी चाहिए। यह दर्शाता है कि युवा पीढ़ी मीडिया के प्रभाव को समझती है और इसे सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने का एक साधन मानती है। 2% प्रतिभागियों का ''नहीं'' उत्तर यह संकेत देता है कि कुछ लोग अभी भी मीडिया के प्रतिनिधित्व को नकारते हैं। 10% की अनिश्चितता यह दर्शाती है कि कुछ लोग इस विषय पर स्पष्ट राय नहीं रखते।

तालिका–11 : क्या आपको लगता है कि स्कूलों और कॉलेजों में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति समानता के भाव हेतु जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए?

मत/विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	95	95.00%
नहीं	2	2.00%
कुछ कह नहीं सकते	3	3.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन में 95% प्रतिभागियों का मानना है कि जागरूकता कार्यक्रमों की आवश्यकता है। यह दर्शाता है कि युवा पीढ़ी लैंगिक विविधता और समानता के मुद्दों को गंभीरता से ले रही है। वे चाहते हैं कि स्कूलों और कॉलेजों में उभयलिंगियों के अधिकारों और अनुभवों के बारे में शिक्षा दी जाए। केवल 2% प्रतिभागियों ने कहा कि जागरूकता कार्यक्रमों की आवश्यकता नहीं है। यह एक अल्पसंख्यक दृष्टिकोण है, जो यह दर्शाता है कि समाज में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति जागरूकता बढ़ने की संभावनाएँ हैं। 3% प्रतिभागियों ने ''कुछ कह नहीं सकते'' का विकल्प चुना, जो यह बताता है कि कुछ लोग इस मुद्दे पर स्पष्ट राय नहीं रखते हैं।

तालिका–12 : उभयलिंगी व्यक्तियों के समामेलन को बढ़ावा देने के लिए किन रणनीतियों का प्रयोग करेंगे?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
शिक्षा और जागरूकता अभियानों का आयोजन	20	20.00%
कानूनी सुधार	3	3.00%
समाजिक समर्थन समूहों का विस्तार	4	4.00%
मीडिया में सकारात्मक प्रतिनिधित्व	1	1.00%
सभी	70	70.00%
अन्य	2	2.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के यह आंकड़े दर्शाते है कि 70% प्रतिभागियों ने ''सभी'' विकल्प का चयन किया, जिससे यह संकेत मिलता है कि वे मानते हैं कि उभयलिंगियों के समावेश के लिए एक समग्र दृष्टिकोण आवश्यक है। शिक्षा और जागरूकता अभियानों का आयोजन सबसे अधिक पसंद किया गया 20%, जो यह दर्शाता है कि प्रतिभागियों को लगता है कि जानकारी का प्रसार सबसे प्रभावी तरीका है। कानूनी सुधार 3% और सामाजिक समर्थन समूहों के विस्तार 4% के लिए कम समर्थन यह दिखाता है कि युवाओं में इन पहलुओं के प्रति जागरूकता कम है। मीडिया में सकारात्मक प्रतिनिधित्व 1% का समर्थन भी न्यूनतम है, जोयह बताता है कि मीडिया की भूमिका पर विचार करने की आवश्यकता है।

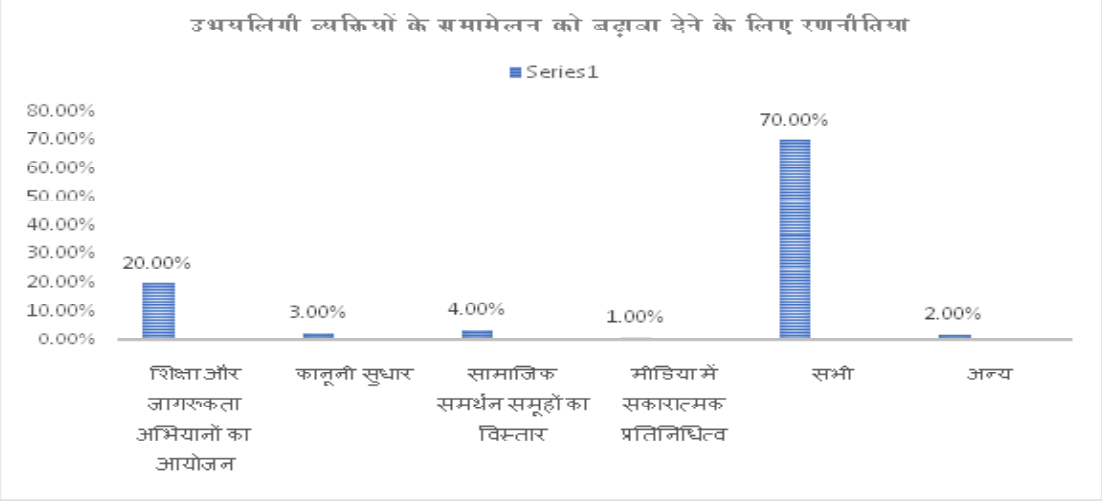

चित्र

तालिका–13 : क्या आपके परिवार में उभयलिंगी व्यक्तियों के बारे में चर्चा होती है?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	37	37.00%
नहीं	63	63.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के 63% प्रतिभागियों का यह कहना कि उनके परिवार में उभयलिंगी व्यक्तियों के बारे में चर्चा नहीं होती, यह दर्शाता है कि परिवारों में लैंगिक विविधता और समावेश के विषय में संवाद की कमी है। यह संवाद की कमी सामाजिक जागरूकता और समझ को बाधित कर सकती है। हालाँकि 37% प्रतिभागियों का परिवार इस विषय पर चर्चा करते हैं, यह दर्शाता है कि कुछ परिवार इस मुद्दे को लेकर संवेदनशील हैं, लेकिन व्यापक रूप से चर्चा की कमी समाज में भेदभाव और गलतफहमियों को बढ़ावा दे सकती है।

तालिका–14 : आपके परिवार का उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति क्या दृष्टिकोण है?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
सकारात्मक	62	62.00%
नकारात्मक	7	7.00%
उदासीन	31	31.00%
कुल	100	100%

उपर्लखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के 62% प्रतिभागियों ने बताया कि उनके परिवार का दृष्टिकोण सकारात्मक है, जो दर्शाता है कि अधिकांश परिवार उभयलिंगियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण हैं। यह एक सकारात्मक संकेत है कि परिवारों में समावेशिता का माहौल बन रहा है। 31% प्रतिभागियों ने उदासीनता व्यक्त की है, जो यह दर्शाता है कि कुछ परिवार इस विषय पर अनजान या अनप्रभावित हैं। केवल 7% प्रतिभागियों ने नकारात्मक दृष्टिकोण का उल्लेख किया, जो यह बताता है कि सामाजिक स्वीकृति में वृद्धि हो रही है।

तालिका–15 : क्या आपकी संस्कृति या धर्म उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति कोई विशेष दृष्टिकोण रखता है?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	51	51.00%
नहीं	24	24.00%
कुछ कह नहीं सकते	25	25.00%
कुल		100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के शीर्षक 51% प्रतिभागियों का कहना है कि उनकी संस्कृति या धर्म उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति कोई विशेष दृष्टिकोण रखता है। यह दर्शाता है कि सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करती हैं, जो सामाजिक समावेश में बाधा डाल सकती हैं। 24% प्रतिभागियों ने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया, जबकि 25% ने अनिश्चितता व्यक्त की। यह सांस्कृतिक विविधता के जटिलता और उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों की आवश्यकता को दर्शाता है।

तालिका–16 : क्या आपको लगता है कि उभयलिंगी व्यक्तियों को समाज में अधिक स्वीकार्यता मिलेगी यदि उनके बारे में अधिक जागरूकता और शिक्षा दी जाए?

मत / विचार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	88	88.00%
नहीं	4	4.00%
कुछ कह नहीं सकते	8	8.00%
कुल	100	100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के 88% प्रतिभागियों का मानना है कि जागरूकता और शिक्षा से उभयलिंगी व्यक्तियों को समाज में अधिक स्वीकार्यता मिलेगी। यह संकेत करता है कि युवा लोग इस बात को मानते हैं कि जानकारी का प्रसार सामाजिक दृष्टिकोण को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। 4% ने इस धारणा को नकारा, जो दर्शाता है कि कुछ प्रतिभागियों को इस विषय पर जानकारी या समझ की कमी हो सकती है। 8% की अनिश्चितता इस बात का संकेत है कि जागरूकता की कमी अभी भी विद्यमान है।

तालिका–17 : आपके परिवार का उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति क्या दृष्टिकोण है?

मत/विचार	संख्या	प्रतिशत
परिवार	1	1.00%
मित्र	3	3.00%
शिक्षा	15	15.00%
मीडिया	11	11.00%
धार्मिक मान्यताएँ	6	6.00%
अन्य	15	15.00%
सभी	49	49.00%
कुल		100%

उपर्लिखित सारणी से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अध्ययन के 49% ''सभी'' विकल्प यह दर्शाता है कि प्रतिभागी मानते हैं कि उभयलिंगियों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं, जैसे कि परिवार, मित्र, शिक्षा, मीडिया, और धार्मिक मान्यताएँ। शिक्षा 15% और मीडिया 11% के प्रभाव को पहचानना यह दर्शाता है कि ये कारक सामाजिक दृष्टिकोण को बनाने में महत्वपूर्ण हैं। परिवार 1% और मित्र 3% के लिए कम प्रतिक्रियाएँ यह सुझाव देती हैं कि व्यक्तिगत संपर्क की कमी के कारण युवा समूहों के प्रभाव को कम समझते हैं।

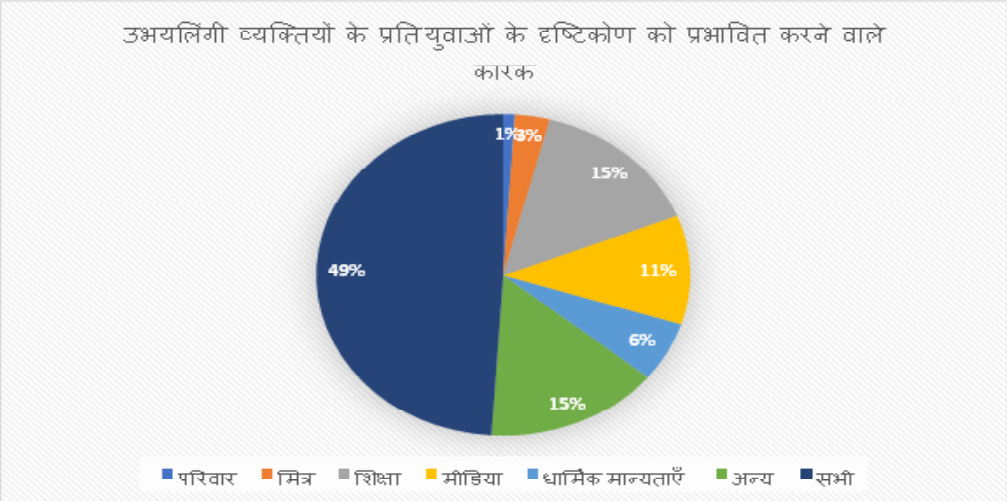

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण को कई प्रमुख कारक प्रभावित करते हैं, जिनमें शिक्षा, परिवार, सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ, और मीडिया का प्रभाव शामिल है।

परिवार और सामाजिक परिवेश भी इस दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित करते हैं। जिन परिवारों में उभयलिंगियों के प्रति सकारात्मक बातचीत होती है, वहाँ के युवा अधिक समावेशी दृष्टिकोण रखते हैं। इसके विपरीत, जहां पारंपरिक मान्यताएँ हावी होती हैं, वहाँ भेदभाव और पूर्वाग्रह की संभावना अधिक होती है।

मीडिया का सकारात्मक प्रतिनिधित्व उभयलिंगियों के प्रति सहानुभूति और स्वीकृति को बढ़ावा देने में सहायक होता है, लेकिन मीडिया में गलत चित्रण या भ्रामक जानकारी समाज में भेदभाव को भी बढ़ावा देती है। धार्मिक मान्यताएँ भी उभयलिंगियों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करती हैं, जिससे समावेशी धार्मिक संवाद और शिक्षा आवश्यक हो जाते हैं।

इस अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि शिक्षा, जागरूकता और सकारात्मक संवाद के माध्यम से उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है। समाज में समावेशिता और समानता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न स्तरों पर कार्य किए जाने की आवश्यकता है, ताकि उभयलिंगियों को उनके अधिकारों और सम्मान के साथ समाज में स्वीकार किया जा सके।

अनुशंसाएँ :

1. शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन : उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति समाज में स्वीकृति और समझ विकसित करने के लिए स्कूलों, कॉलेजों और सामुदायिक स्तर पर जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन आवश्यक है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से लैंगिक विविधता और मानवाधिकारों के प्रति युवाओं में संवेदनशीलता बढ़ाई जा सकती है।

2. सकारात्मक मीडिया प्रतिनिधित्व : मीडिया को उभयलिंगी व्यक्तियों का सटीक और सकारात्मक चित्रण करने पर जोर देना चाहिए। फिल्मों, टीवी शो और सोशल मीडिया पर उभयलिंगी व्यक्तियों की संघर्षशील और प्रेरणादायक कहानियाँ दिखाने से समाज में उनके प्रति सहानुभूति और समझ में वृद्धि हो सकती है।

3. मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार : उभयलिंगी व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की विशेष आवश्यकता को पहचानते हुए, उन्हें सुलभ और समर्पित मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जानी चाहिए। इन सेवाओं में प्रशिक्षित चिकित्सकों द्वारा संवेदनशील और समावेशी देखभाल शामिल होनी चाहिए।

4. कानूनी सुधार और नीतियों का कार्यान्वयन : उभयलिंगी समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कानूनी सुधारों को लागू करने और मौजूदा नीतियों का सही कार्यान्वयन सुनिश्चित करना चाहिए। इसके अंतर्गत शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवाओं में भेदभाव को समाप्त करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

5. धार्मिक और सांस्कृतिक जागरूकता : धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थानों में उभयलिंगी व्यक्तियों के प्रति सहिष्णुता और समावेशिता को बढ़ावा देने वाले संवाद और कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

संदर्भ–सूची

1. Sawant, Neena (2017), Transgender : Status in India, Annals of Indian Psychiatry, 1. 59. 10.4103/aip.aip_43_17.

2. B., Abhijit (2023), Transgender Persons and Affirmative Action : Answering the Why and the How, Journal of Legal Studies & Research, 09. 296-312. 10.55662/JLSR.2023.9304.

3. Wandrekar, Jagruti & Nigudkar, Advaita (2020), What Do We Know About LGBTQIA+ Mental Health in India? A Review of Research From 2009 to 2019, Journal of Psychosexual Health, 2. 26-36. 10.1177/2631831820918129.

4. चंद्रा, सतीश (2017), उभयलिंगी बच्चों की शिक्षा और समाज में उनका पुनः जुड़ाव, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च स्टडीज. II- 875–890.

5. Lori b. Girshick, April (2009), Transgender Beyond Women and Men 10th April 2009 Google Scholar.com www.books.google.com 18-09-2020

6. Shri Raju Ramachandran https://indiankanoon.org/doc/193543132/ 21-06-2020 AIR 2014 SC 1863

7. AlokTewari https://www.lexology.com/library/detail.aspx?g=b49d9488-c484-4d00-882c-2c386a041a07 2-03-2020 18th September 2020 Third Gender Rights in India

8. K. S. Radhakrishan https://translaw.clpr.org.in/case-law/nalsa-third-gender-identity/ 19th September 2020

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Social Work : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 293-304

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Understanding of Youth About Professional Social Work Services : A Study based on two Degree College at Prayagraj District

*Juhi Dass** *Dr. Geetanjali Srivastava***

Abstract : *In today's rapidly evolving societal landscape, Social Work plays a crucial role in addressing a wide range of issues, from child welfare and mental health counseling to community development and social justice advocacy.However, the awareness and comprehension of the scope and importance of Social Work among the general public, particularly among the youth, can vary significantly.Youth, as a significant demographic segment, both benefit from and contribute to the demand for Social Work Services. However, their understanding of Professional Social Work remains inconsistent and often skewed by misconceptions and limited exposure.*

Methodology : This research paper aims to provide an in-depth analysis of how young people understand and perceive Professional Social Work Services, we aim to identify knowledge gaps, misconceptions, and attitudes toward Social Work.The research highlights the need to bridge the gap between youth understanding and the realities of Professional Social Work.The objective of the study was to explore the level of awareness of Social Work Services and the misconceptions about the profession. This study is based on **Primary Data**, where an **Exploratory Research Approach** had been used. The **Universe of the study** is composed of two degree colleges of Prayagraj, Uttar Pradesh from which sample of 100 students had been selected for the study with the application of **Simple Random Sampling**. The data had been collected through a well **Structured Interview Schedule** the questions ranged from basic awareness (e.g., What do you understand by the term Social Work?) to more Detailed Inquiries about specific Social Work Services (e.g., Which of the following services do you associate with Social Work?).

Findings : Findings from the study revealed that general awareness was observed among youth about the existence of Social Work Services, majority of respondent like to opt 'Social Work Profession' as a career, although there is a significant gap in understanding the full scope and depth of the profession. According to the participants opinion, major challenges faced by Social Workers in our country were Low level of payment/remuneration, Lack of resources, Lack of Professional recognition, and Societalundervaluation.To overcome these challenges maximum respondent agrees that government should take initiative to promote more of'Professional Social Work'.

* ***Research Scholar, Center for Social Work, Prof. Rajendra Singh (Rajju Bhaiya) University, Prayagraj, Uttar Pradesh***

** ***Assistant Professor, Center for Social Work, Prof. Rajendra Singh (Rajju Bhaiya) University, Prayagraj, Uttar Pradesh***

Conclusion : It suggests that enhancing youth education about the full range of Social Work Services and the Professional expertise involved could help to bridge the understanding gap. Furthermore, increasing youth engagement with Social Work initiatives, perhaps through volunteer opportunities or educational programs, could foster a deeper appreciation of the profession and encourage future participation in Social Work.

***Key words** : Professional Social Work Services, Youth Understanding.*

Introduction : Social Work as a profession has long played a critical role in addressing various societal issues such as mental health, child welfare, community development, and social justice. Its primary goal is to improve the well-being of individuals, families, and communities, with a special focus on vulnerable populations. Despite its importance, public understanding of Social Work, particularly among youth, remains limited. This gap in understanding raises concerns about the future of the profession, especially as today's youth will soon inherit leadership roles in society and may become the next generation of Social Workers. This research paper aims to explore youth perceptions of Professional Social Work Services, focusing on their awareness, attitudes, and expectations.

Social Work is often misunderstood and narrowly associated with charitable activities or crisis intervention. This limited view underestimates the depth of training, skill, and Professional expertise that Social Workers bring to complex social challenges. To become a Social Worker, individuals undergo rigorous education, including formal degrees and specialized training. Social Workers are tasked with roles that span from mental health counseling and substance abuse rehabilitation to policy advocacy and community organizing. Yet, these Professional capacities are frequently undervalued, which may hinder the effectiveness and reach of Social Work in addressing critical social issues.

Research on youth perceptions of Social Work is essential for several reasons. First, understanding how young people view this profession can offer insights into how they engage with social services and their potential willingness to support these efforts in the future. Second, the findings may reveal gaps in education and outreach efforts related to Social Work, indicating a need for enhanced programs to raise awareness about the field's importance. Lastly, exploring youth perspectives can help the profession evolve, ensuring that it remains responsive to societal needs and continues to attract committed individuals who are prepared to meet the challenges that Social Work presents.

Importance of Studying Youth Perceptions : Youth perspectives on Professional Social Work are of particular interest because they reflect future trends in societal support for the profession. Youth are not only future leaders but also potential beneficiaries and practitioners of Social Work Services. Their understanding of what Social Workers do—and the value they place on these services—will shape how the profession is supported and developed in the future. Moreover, youth attitudes toward Social Work may influence whether they view it as a viable career path, which is critical for addressing the ongoing shortage of qualified Social Workers in many parts of the world.

Literature Review :

- The perception of Social Work profession is very important, because there are people that are beneficiaries of social services. So, if we have positive perceptions, will have a strong relationship between Social Workers and people and the quality of services will be better (Fatbardha Osmanaga1,2019)
- The role of Social Workers provided some support for the contention that the public has an improved awareness about the modern range of Social Worker roles and activities and that overall the public is relatively well aware of the function of Social Workers perform(Craig Winston LeCroy, 2004)he moreover concludes that "it appears that although the situation of Social Work's public image is not as bad as we might imagine there is undoubtedly room for growth and improvement"

• Many of the studies have indicated that there is a perception that Social Workers are principally involved in child protection, and that, other than this association, there is confusion about what we do (Hackett, Kuronen, Matthies, &Kresal, 2003; LeCroy& Stinson, 2004; Davidson & King, 2005; Krumer-Nevo& Weiss, 2006; Schmid&Benbenishty, 2011; Condie, Hanson, Lang, Moss, & Kane, 1978).

Understanding youth perspectives on Social Work Services is a relatively underexplored area in social science research. While studies have delved into public perceptions of Social Work in general, research focusing on the youth demographic is limited. It suggests that enhancing youth education about the full range of Social Work Services and the Professional expertise involved could help bridge the understanding gap.

Hypothesis of the study :

1. There is lack of general awareness of Professional Social Work among the youth.

2. Youth may not recognize the rigorous education and training required to become a Professional Social Worker.

The objectives of the research are as follows:

1. To explore the level of awareness and understanding of Social Work among youth.

2. To identify the common misconceptions about the profession.

3. To assess the willingness of youth to engage with Social Work Services, either as participants or as future professionals.

4. To know the need of Professional Social Workin terms of employment and social well being.

Research Design and Methodology : The study's main goal is to learn about youth's perceptions and misconceptions about Professional Social Work Services. **This study, conducted a Mixed Approach based on Exploratory Research Design using Primary data.**The research questionnaire consists of 16 questions in which 14 close ended questions and 2 are open ended questions to know the opinion of the youth.

Sampling : The Universe of the study is composed of **Two Degree College of Prayagraj, Uttar Pradesh** (i.e. C.M.P Degree college and Kulbhaskar Ashram degree college) From which 100 students(i.e.50 from each college) were selected using **Simple Random Sampling**.The Datawas collected through a **Structured Interview Schedule**in which researcher had face to face interaction with the youth explained all the questions and ask them to write their opinion, therefore**Observation Tool** had been used. To understand and **analyse the Data Simple Percentage Method** is used using proper F**requency Tables** and for Graphical Presentation Pie Chart and Column Chart had been used.

Results and Discussion

Table 1 : The Demographic Data of the Participants

S.No.	Particulars	Frequency	Percentage
1.	**Age of Respondent:**		
A.	15-20	49	49.00%
B.	20-25	48	48.00%
C.	25-30	3	3.00%
	Total	100	100%

2.	**Gender of Respondent:**		
A.	Male	51	51.00%
B.	Female	49	49.00%
C.	Transgender	0	0.00%
	Total	100	100%
3.	**Educational Level of Respondent:**		
A.	Undergraduate	75	75.00%
B.	Postgraduate	24	25.00%
C.	Other	1	01.00%
	Total	100	100%

In the above given table it shows the demographic data of the respondents. In the study we had 100 students, of whom 51% are male, 49% of participants are female and none of the participants are transgender. Their age varies from 15 to 30 years in which 49% of participants are of 15-20 age category, 48% of participants are of 20-25 age category and only 3% of participants are of 25-30 age category ,none are above 30.The participants in the study have different levels of education where 75% of the participants are undergraduate, 24% of the participants are postgraduate and 1% of participants are of other education level.

Table 2 : The data related to general awareness of Social Work among youth :

Table 2.1 : Have you ever heard about "Social Work Profession"?

S.No.	Particulars	Frequency	Percentage
A.	Yes	94	94.00%
B.	No	6	06.00%
	Total	100	100%

The findings as represented in table 2 with respect to the general awareness of Social Work among youth, the first aspect title "Have you ever heard about "Social Work Profession"?" 94% of the respondents are aware of Social Work profession whereas only 6% respondents are unaware of the term Social Work profession. It is clear from the data that majority of the students have heard about "Social Work Profession" which show a positive aspect of the general awareness among the youth.

Table 2.2 : Where did you first learn about "Social Work Profession"?

S.No.	Particular	Frequency	Percentage
A.	School/ college	62	62.00%
B.	Social media	17	17.00%
C.	Friends/ Family	14	14.00%
D.	Personal experience with Social Worker	5	05.00%
E.	Print/ Electronic media	0	00.00%
F.	Other	2	02.00%
	Total	100	100%

In relation to the second aspect of the table 2 and fig.1, title "Where did you first learn about "Social Work Profession"?"almost 62% of the respondent have learn about Social Work in their schools/ colleges, around 17% of the respondent have learn about Social Work on social media, atleast 14% of the respondent have learn about Social Work from their Family and Friends, somewhat 5% of the respondent have learn about Social Work from personal experience with Social Workers, whereas 2% of the respondent have learn about Social Work from other resources and none of the respondent have learn about Social Work from Print and electronic media. In this way we could find out that majority of the students acquire knowledge on Social Work in their schools and colleges.

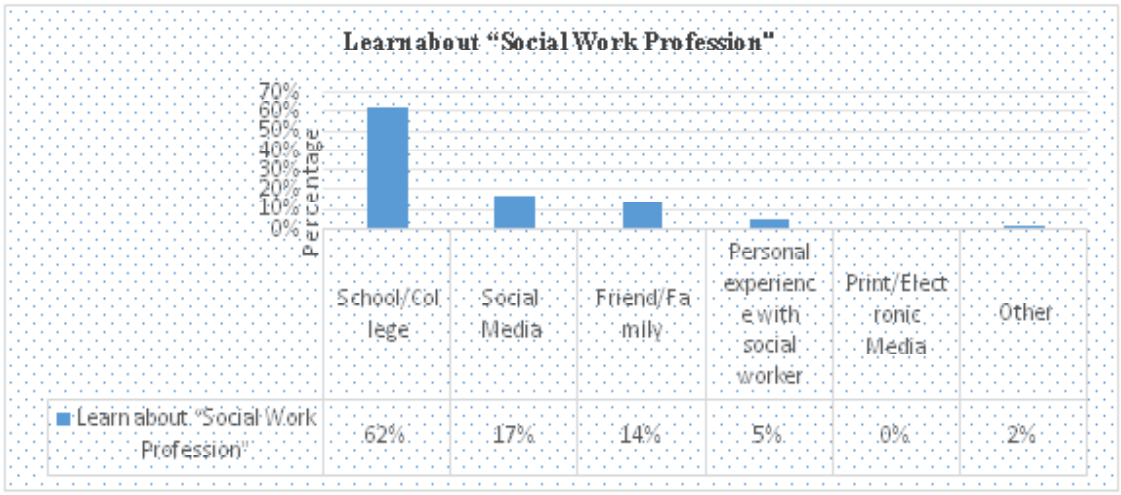

Fig.1

Table 2.3 : What is your opinion about the work of 'Social Worker' ?

S.No.	Particulars	Frequency	Percentage
A.	Doing Charity (providing food, cloths etc.).	20	20.00%
B.	Donation of money.	2	02.00%
C.	Helping the person to help themselves.	78	78.00%
	Total	100	100%

In the third aspect of table 2, title "What is your opinion about the work of 'Social Worker' ?" 78% of the respondent know the gist of Social Work which is to helping the person to help themselves, around 20% of the respondent thinks that Social Workers only do charity(providing food, cloths etc.)whereas 2% of the respondents even thinks that Social Workers job is to donate money. From this study, it can be inferred that the majority students know that Social Work emphasizes empowering individuals to identify their strengths and resources, fostering self-sufficiency, resilience and encourages clients to take an active role in their own healing and decision-making, ultimately leading to sustainable change and improved well-being.Social Work means more than just providing temporary relief, like food, shelter or donate money.

Table 2.4 : Do you think that there is a need of 'Professional Social Worker' in handling social issues ?

S.No.	Particulars	Frequency	Percentage
A.	Yes	95	95.00%
B.	No	4	04.00%
C.	No Response	1	01.00%
	Total	100	100%

In the fourth aspect of table 2, title "Do you think that there is a need of 'Professional Social Worker 'in handling social issues?"95% of the respondent thinks that there is a need of 'Professional Social Worker whereas only 4% of the respondent thinks that there is no need of such Professional and 1% of the respondent didn't answer the question. This suggests that people believe Professional Social Workers possess the necessary skills, knowledge, and expertise to effectively manage and resolve complex social issues, as opposed to relying solely on untrained or informal support systems.

Table 2.5 : Does Social Workers need specialized training and education?

S.No.	Particulars	Frequency	Percentage
A.	Yes	94	94.00%
B.	No	6	06.00%
	Total	100	100%

In the fifth aspect of table 2, title "Does Social Workers need specialized training and education?" 94% of the respondent agreed that yes Social Workers need specialized training and education whereas 6% of the respondent didn't agreed to fact that Social Worker also need specialized training. This suggests that Youth recognize the value of having adequately trained professionals to address complex social issues and provide effective support, emphasizing the need for a well-defined skill set and knowledge base in the field of Social Work.

Table 2.6 : What level of education do you think is required to become a 'Professional Social Worker'?

S.No.	Particular	Frequency	Percentage
A.	Bachelor's degree	36	36.00%
B.	Master's degree with specialization	25	25.00%
C.	Doctorate (PhD)	23	23.00%
D.	Other	15	15.00%
	Total	100	100%

In the sixth aspect of table 2, title "What level of education do you think is required to become a 'Professional Social Worker'?"

36% of the respondent thinks that bachelor's degree will be sufficient to become a 'Professional Social Worker', 25% of the respondent ponder upon that to become a 'Professional Social Worker' a person need atleast master's degree with specialization however 23% of the respondents believe that to

become a 'Professional Social Worker' a person need to have a Doctorate(Ph.D) degree and 15% of the respondents even think that a person must have some other level of education to become a'Professional Social Worker'. It indicates a general consensus or perception that this level is essential for the role, not anyone with any degree can become a Professional Social Worker'.

Table 2.7 : Do you believe that today's youth are well-informed about the role of a 'Social Workers'?

S.No.	Particular	Frequency	Percentage
A.	Yes	35	35.00%
B.	No	63	63.00%
C.	No Response	2	02.00%
	Total	100	100%

In the seventh aspect of table 2, title "Do you believe that today's youth are well-informed about the role of a 'Social Workers'?" 35% of the respondent believe that today's youth are well-informed about the role of a 'Social Workers', on the other hand majority 63% of the respondent believe that No today's youth are not well-informed about the role of a 'Social Workers'.It suggests that there is a lack of general awareness or understanding among young about what Social Workers do. This may indicate a need for more education, outreach, and visibility around the profession to bridge this knowledge gap.

Table 3 : The data related to information about Professional Social Work Services among youth :

Table 3.1 : Do you think that there must be a specialized 'Professional Social Worker' to handle issues related -Child welfare, mental health counselling, substance abuse rehabilitation, community development, elder care, policy advocacy, disability support, domestic violence intervention, etc.

S.No.	Particulars	Frequency	Percentage
A.	Yes	95	95.00%
B.	No	4	04.00%
C.	No Response	1	01.00%
	Total	100	100%

The findings as represented in table 2 with respect to information about Professional Social Work Services among youth. The first aspect title "Do you think that there must be a specialized 'Professional Social Worker"to handle issues related -Child welfare, mental health counselling, substance abuse rehabilitation, community development, elder care, policy advocacy, disability support, domestic violence intervention, etc."95% of the respondent agreed that yes there must be a specialized 'Professional Social Worker' to handle social issues, whereas only 4% of the respondent doesn't feel to have any such profession and 1% didn't answer the question. This indicates a recognition of the value and necessity of having trained and qualified professionals with specialized knowledge and skills to effectively handle these areas and provide appropriate support and intervention.

Table 3.2 : Which of the following services do you believe MUST BE provided by 'Professional Social Worker'?

S.No.	Particular	Frequency	Percentage
A.	Counseling for mental health issues	3	03.00%
B.	Helping families in crisis (e.g., domestic violence, child protection)	11	11.00%
C.	Assisting individuals with substance abuse problems	0	00.00%
D.	Supporting community development and organizing	2	02.00%
E.	Advocating for social justice and policy change	0	00.00%
F.	Providing care and support to elderly individuals	0	00.00%
G.	Assisting homeless individuals in finding shelter and services	2	02.00%
H.	Helping people with disabilities access resources and services	5	05.00%
I.	Providing emergency relief during disasters	2	02.00%
J.	All of the above	75	75.00%
	Total	100	100%

In relation to the second aspect of table 2, title "Which of the following services do you believe MUST BE provided by 'Professional Social Worker'"3% respondent thinks that Social Worker only provide Counseling for mental health issues. 11% respondent believe that Social Worker only Help families in crisis (e.g., domestic violence, child protection). 2% respondent suggests Social Worker only Supports community development and organizing. 2% respondent thinks that Social Worker only Assist homeless individuals in finding shelter and services. 5% respondent believe that Social Worker only Help people with disabilities access resources and services and 2% respondent suggests Social Worker only Provide emergency relief during disasters, whereas 75% of the respondent believe that all the mentioned services must be provided by a 'Professional Social Worker'.

Table 3.3 : Do you think that government should take initiative to promote more of 'Professional Social Work'.

S.No.	Particular	Frequency	Percentage
A.	Yes	95	95.00%
B.	No	5	05.00%
	Total	100	100%

In the third aspect of table 2, title "Do you think that government should take initiative to promote more of 'Professional Social Work'"95% of the respondent believe that government should take initiative to promote more of 'Professional Social Work', whereas only 5% respondent didn't agreed on this. It suggests that there is widespread support for increased governmental involvement in enhancing and promoting the role and recognition of Professional Social Work. This indicates a perceived need for stronger policies, programs, or funding to support the field and its contribution to societal well-being.

Table 3.4: In your opinion what are the biggest challenges faced by Social Workers in our country?

S.No.	Particular	Frequency	Percentage
A.	Low pay	13	13.00%
B.	High emotional demands	27	27.00%
C.	Lack of resources	20	20.00%
D.	Societal undervaluation	13	13.00%
E.	Lack of Professional recognition	9	09.00%
F.	All of these	14	14.00%
G.	Others	4	04.00%
	Total	100	100%

In the fourth aspect of table 2, title "In your opinion what are the biggest challenges faced by Social Workers in our country?", the categories and their corresponding percentages are as follows:

1. High Emotional Demand : 27% - This is the most significant challenge, indicating that more than a quarter of Social Workers find managing emotional stress and demands to be the biggest issue.

2. Lack of Resources : 20% - Many Social Workers face difficulties due to insufficient resources, which impacts their ability to provide effective services.

3. Societal Undervaluation : 13% - Social Workers feel undervalued by society, which affects their motivation and job satisfaction.

4. Low Pay : 13% - Compensation is a notable concern, with many Social Workers considering their pay inadequate for their responsibilities.

5. Lack of Professional Recognition : 9% - There is a lack of Professional acknowledgment and appreciation for the work they do.

6. All of These : 14% - A significant proportion of respondents believe that all the listed issues—emotional demand, lack of resources, societal undervaluation, and low pay—are substantial challenges they face collectively.

7. Other : 4% - This small segment represents other unspecified challenges not covered by the listed categories.

Overall, the chart highlights that high emotional demand and lack of resources are the primary concerns for Social Workers, with a considerable number facing multiple challenges simultaneously.

Biggest Challenges faced by Social Workers in our Country :

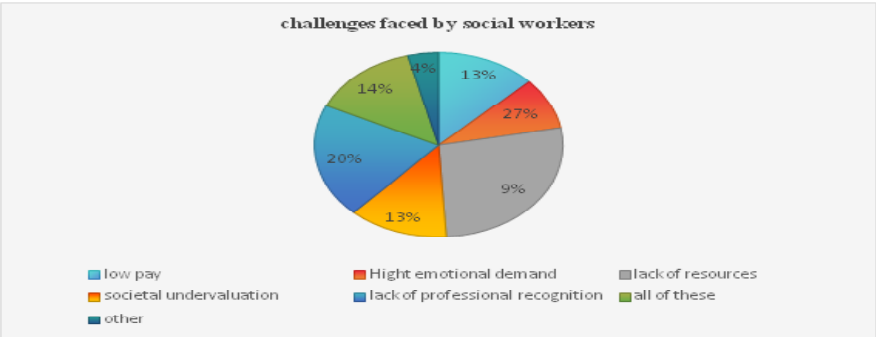

Fig.2 Titled "Challenges Faced by Social Workers" illustrates the distribution of various challenges experienced by Social Workers

Analysis of Open Ended Questions

Q.1. Would you like to opt 'Social Work Profession' as your career?

Willingness of youth to engage with Social Work Services, either as participants or as future professionals.An question asked to the respondent title "Would you like to opt 'Social Work Profession' as your career ?"received a positive response from a significant majority, with 79% of respondents expressing their willingness to pursue Social Work as a career. This indicates a strong interest and preference for the Social Work profession among the participants. On contrary 21% responding "no," indicates that a significantportion of respondents are not interested in pursuing Social Work as a career. This suggests that there may be factors such as limited awareness, lack of appeal, or perceived challenges associated with the profession, influencing their decision.

The respondents who declined to pursue a career in Social Work cited various reasons, including a lack of interest, insufficient knowledge about the profession (a respondent's statement "because i have no proper knowledge about it"), and a perception that Social Work should not be seen as a business but rather as a duty to society (a respondent's statement "This work should not be done as a business but as a duty"). Some felt that self-awareness is crucial, and people should not rely too much on external help(a respondent's statement "Because people have to be self-aware, how long can they continue taking help from others?") , while others believed society might not accept Social Work as a viable career option(a respondent's statement "Society will not accept"). Several respondents emphasized that they are currently focused on their studies and personal success, and thus, do not see Social Work as a priority at this stage. There were also views that Social Work should be done alongside one's career(a respondent's statement "We should do Social Work along with career"), and it is essential to first become successful before contributing meaningfully to society(a respondent's statement "First we will be successful then only we will be able to do something about the society"). This study reflects that there is a belief that Social Workis not be commercialized and that societal acceptance of this profession remains a challenge. This suggests a need for greater awareness and education about the field to address misconceptions and encourage more interest in Social Work as a career option.

Q.2. If you were to advise a friend who is considering a career in Social Work, what would you tell them?

An open-ended question was asked to the respondents to understand their viewpoints its title is"If you were to advise a friend who is considering a career in Social Work, what would you tell them?"the majority of(59%) of respondents answered the question by writing encouraging advice, highlighting the profession's positive aspects such as opportunities to make a meaningful impact, personal fulfillment, and the value of helping others. It reflects a generally positive perception of Social Work as a career choice among the surveyed group.

The respondents provided a diverse range of opinions and advice for individuals considering a career in Social Work. Many emphasized the importance of honesty, dedication, and selflessness, advocating that Social Workers should engage in this profession with integrity and a genuine desire to help others. Several respondents highlighted that Social Work is about understanding and addressing societal issues, especially economic challenges, and working for the welfare of marginalized and underprivileged groups, to be aware of the mental and emotional states of those they serve, and to provide assistance based on individual needs and circumstances. They advised aspiring Social Workers to have empathy, promote social awareness, and advocate for the rights of disadvantaged individuals. Respondents also suggested that Social Workers should gain adequate knowledge and skills, engage deeply with the community, and act without personal interest. Moreover, they recommended balancing Professional growth with social responsibilities, encouraging those entering the field to focus on self-

development first and then serve society. While many believed Social Work is a noble career that brings satisfaction and pride, some acknowledged that it could be challenging due to societal perceptions. Practical advice included having a strong support system, being impartial, and maintaining positivity in the face of adversity.Additionally, a few respondents encouraged pursuing this career as a means to contribute to society while suggesting a backup plan due to the uncertainties in the field. Overall, the collective advice conveyed a strong sense of commitment to society, emphasizing that Social Work is more than just a career—it is a responsibility toward social welfare and human betterment. Respondents encouraged pursuing this field with a true heart, empathy, and dedication, and conveyed a sense of pride and appreciation for those willing to contribute to the welfare of society through Social Work.

On the basis of above mentioned Analysis following are the Recommendations :

1. Enhance Youth Education on Social Work : Integrate comprehensive Social Work education into school and college curricula to address misconceptions and highlight its role in societal development.

2. Promote Volunteer and Engagement Opportunities : Increase youth participation through internships, workshops, and volunteer programs to provide hands-on experience in Social Work.

3. Government Support and Policy Changes : Implement policies that promote Professional Social Work through better pay, resources, and recognition to address challenges faced by Social Workers.

4. Address Professional Challenges : Develop support systems and introduce policies for emotional well-being, resource allocation, and Professional recognition to improve working conditions for Social Workers.

5. Leverage Social Media for Awareness : Use social media campaigns to highlight success stories, promote Social Work careers, and attract youth to the profession.

Conclusion : The study reveals that while youth are aware of the existence of Social Work, their understanding of its Professional nature is limited. Many still associate Social Work with charitable activities, failing to recognize the specialized training and expertise required for the profession. This limited perception is further compounded by the challenges faced by Social Workers, including high emotional demand, lack of resources, and societal undervaluation.

To cultivate a better understanding and appreciation of Social Work among young people, it is essential to enhance educational outreach, provide more engagement opportunities, and promote governmental support. By doing so, we can ensure that future generations not only value the profession but also contribute to its growth and development. This is critical for building a more equitable and just society where Social Workers are equipped to address the complex challenges faced by individuals, families, and communities.

References

1. Amann, Susan C. (2013), Perceptions of Social Work and Collaboration with Clinical Social Workers : Clergy Perspectives, Retrieved from Sophia, the St. Catherine University repository website:https://sophia.stkate.edu/msw_papers/144.

2. Cramer L.B. (2015), The General Public's Perception of Social Work, Thesis Presented in Partial Fulfillment of the Requirements for the Bachelor of Science in Social Work. Ohio State University (link:https://kb.osu.edu/bitstream/handle/1811/68930/1/The_General_Publics_Perception_of_Social_Work.pdf).

3. Veigel, R. (2009), Community Perceptions of Social Workers, Presented in Partial Fulfillment of the Requirements for the Degree of Master of Science in Social Work, The University of Texas, Arlington (Link:http://citeseerx.ist.psu.edu/viewdoc/download?doi=10.1.1.628.3476&rep=rep1&type=pdf) http://fshs-ut.edu.al/departamenti-i-politikave-dhe-punessociale/

4. LeCroy C.W., Stinson E.L. (2004), The Public's Perception of Social Work : Is It What We Think It Is? Social Work. Volume 49, N.2. National Association of Social Workers (Link:http://www2.gbcnv.edu/library/PDFs/perceptions%20of%20social%20work.pdf).

5. Osmanaga.F (2019), Public Perception about Social Work Profession, European Journal of Sustainable Development, ISSN: 2239-5938 Doi: 10.14207/ejsd.2019.v8n2p177

6. Desai, A.(1985), Foundations of Social Work Education in India and Some Issues, Indian Journal of Social Work, 46(1), 41–57.

7. Desai, A. (1984), Social Action and The Social Work Curriculum, In H. Siddique (Ed.), Social Work and Social Action : A Developmental Perspective, New Delhi : Harnam Publications, 65–85.

8. Moorthy, M. (1961), Contemporary Fields of Professional Social Work in India, Indian Journal of Social Work, 22(1), 65–68.

9. Mehta, B. (1952), Historical Background of Social Work in India, Indian Journal of Social Work, 13 (1), 1–14.

10. Bodhi, S.R. (2011), Professional Social Work Education in India A Critical View from the Periphery, THE INDIAN JOURNAL OF Social WorkVolume 72,IJSW, 72(2), 289–300

11. Singh, S., Gurjar, A. (2023), Family Support Related Problems of Elder Women Living in Below Poverty Line (BPL) Families in Lucknow City of Uttar Pradesh, India, International journal on Ageing in Developing Countries, 7(1) : 21-30

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 305-308

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचनात्मक आलोचना दृष्टि

*निशि सिंह**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य जगत् के श्रेष्ठ रचनाकार हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी एक सशक्त साहित्यकार, ललित निबंधकार, मानवतावादी उपन्यासकार, निष्पक्षी आलोचक, समीक्षक एवं इतिहास तथा ज्योतिष के गहन अध्येता हैं। द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के आख्याता, प्रवर्तक और निर्माता हैं। हम कह सकते हैं कि वे संस्कृति संपन्न लेखक हैं। संस्कृति के साथ–साथ इतिहास के पक्ष को उजागर करके उन्होंने अपनी रचनाओं का सौंदर्य बढ़ाया है। द्विवेदी जी के उपन्यास साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनके उपन्यास विशेष रूप से संस्कृति और इतिहास दोनों को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं। प्रत्येक उपन्यास को कई बार पढ़ने के पश्चात् हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में संस्कृति और इतिहास चिंतन को लेकर हिन्दी साहित्य समृद्ध है। आचार्य द्विवेदी का जन्म 20 अगस्त सन् 1907 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के 'आरत दुबे का छपरा' नामक गाँव में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री अनमोल द्विवेदी एवं माता जी का नाम श्रीमती ज्योतिष्मती द्विवेदी था। आपको संस्कृत की शिक्षा पैतृक रूप में प्राप्त हुई। प्रारंभिक शिक्षा गाँव के आस–पास हुई। आपने सन् 1929 में संस्कृत साहित्य में शास्त्री परीक्षा और सन् 1930 में ज्योतिष में शास्त्राचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1930 में शान्तिनिकेतन में आपने हिंदी अध्यापक पद सँभाला। 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिंदी प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के पद पर अधिष्ठित हुए। उसके बाद 1960 से 1967 तक पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के पद पर विभूषित रहे। सन् 1968 से 1970 तक पुनः बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में रेक्टर के पद पर प्रतिष्ठित हुए। 'आपको शान्ति निकेतन में कविवर्य रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं अन्य महनीय व्यक्तियों का संपर्क मिला और यहाँ से ही आपको साहित्य की प्रेरणा मिली।'[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का रचना संसार बहु आयामी हैं। जिसमें उपन्यास–बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचन्द्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा। निबंधों में अशोक के फूल, कल्पलता, कुटज, विचार और वितर्क, आलोक पर्व, विचार प्रवाह। इसी तरह साहित्य का इतिहास में हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य (उद्भव और विकास), हिंदी साहित्य का आदिकाल, नाथ संप्रदाय, नाथ सिद्धों की बानियाँ। इनके साथ ही आपने धर्म–कला–संस्कृति में मध्यकालीन धर्मसाधना, सहज साधना, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण आदि ग्रंथों की रचना की है। आपने अपने आलोचनात्मक ग्रंथों में सूर साहित्य, कबीर, कलिदास की लालित्य योजना, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, साहित्य का मर्म, मृत्युंजय रवींद्र, आधुनिक साहित्य बोध, साहित्य सहचर के साथ ही संपादित ग्रंथों में संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पं. जगन्नाथ तिवारी–अभिनंदन ग्रंथ, संदेश रासक, छिताई चरित (अगरचंद नाहटा के साथ), रामानंद की हिंदी रचनाएँ लिखकर हिन्दी साहित्य को उपलब्धिपूर्ण प्रतिष्ठा दी है। आपने अनुवाद साहित्य में नाटयशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक के साथ लाल कनेर–आदि अनुदित साहित्य की रचना भी की है। इस तरह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सशक्त साहित्यकार, ललित निबंधकार, मानवतावादी उपन्यासकार, निष्पक्षी आलोचक, समीक्षक तथा इतिहास एवं ज्योतिष के गहन अध्येता थे। श्री श्यामनन्दन किशोर ने 'सृष्टि और दृष्टि' शीर्षक निबंध में द्विवेदी जी के संबंध में लिखा है–'वे मंच से बोलते थे तो लगता था कि गंगोत्तरी में गंगा उतर रही है और गोष्ठियों में भाग लेते थे तो लगता था हंस मोती चुग रहा है। निस्संदेह डॉ. द्विवेदी बीसवीं शताब्दी की संपूर्ण भारतीय मनीषा के साहित्यिक चमत्कार थे।'[2] रचना जीवन के सत्य को उद्घाटित करती है और आलोचना रचना के सत्य को। रचना और आलोचना दोनों व्यक्ति और समाज के संबंधों को व्यक्त करती है। आलोचक रचनाकार के जीवन–सत्य का व्याख्याता तथा उसकी अभिव्यक्ति के समस्त उपादानों एवं उसके जीवंत अनुभवों और सृजनशीलता का ग्रहीता

* *शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

तथा समानधर्मा होता है। आलोचक रचनाकार की कृति को एक संश्लिष्ट इकाई मानकर उसके समग्र सौंदर्य का अनुशीलन करता है। इस प्रकार वह रचनाकार के जीवंत अनुभव का साक्षात् द्रष्टा, समशील भावक और आलोचना के मान–मूल्यों का संस्थापक होता है। आचार्य द्विवेदी जी ने स्वतंत्रोत्तर हिन्दी आलोचना की काव्य दृष्टि में गुणात्मक परिवर्तन किया। उन्होंने हिन्दी आलोचना को मानवतावाद उदारता से सम्पन्न वैज्ञानिक दृष्टि देने का प्रयास किया। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'कबीर' आदि समीक्षा में आचार्य द्विवेदी जी ने एक व्यापक सांस्कृतिक परिदृश्य में मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। आपके विचारानुसार में साहित्यकार का मूल लक्ष्य मानव हित की साधन ही सर्वोपरि है।

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, 'आलोचना, आलोचना शास्त्र तथा शोध हिन्दी–साहित्य के अत्यन्त पुष्ट अंग है।'[3] आधुनिक भारतीय भाषाओं के हिन्दी का आलोचना–साहित्य तथा आलोचना शास्त्र निश्चय ही सर्वाधिक प्रौढ़ और समृद्ध हुआ है। आलोचना के क्षेत्र में विविध प्रकार की आलोचनाएँ विद्वानों द्वारा स्थापित हुईं। इसी के साथ बीसवी शताब्दी में साहित्य समीक्षा के नए आयामों के रूप में समाजशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की गई है। यह समीक्षा साहित्य के विविध पक्षों को प्रत्यक्ष स्तर पर विश्लेषण करने के लिए वस्तुपरक दृष्टि को महत्व प्रदान करती है। यह समीक्षा साहित्य–सृजन को मानवीय अन्तः क्रियाओं का परिणाम मानते हुए उसके संरचनात्मक विश्लेषण को भी महत्वपूर्ण मानती है। साहित्य–रचना मानव का सप्रयोजन पुरुषार्थ है। उसके सृजन के मूल में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्ष रहते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है। उसमें सामाजिक उपादेयता का रहना अपेक्षित है। अतः साहित्य में लोकमंगल की भावना उसके व्यावहारिक पक्ष के समर्थन का आधार है। समाजशास्त्रीय समीक्षा में साहित्य समीक्षा का एक नवीन रूप अभिव्यक्त हुआ है।

आज हिन्दी की समीक्षा अधिकांशतः दिशा भ्रमित रूप में है। वह कहीं वर्गवाद में उलझी है, तो कहीं पर वैज्ञानिक अनुसन्धानों के अन्धानुकरण में लगी हुई है। कहीं–कहीं पर यह समीक्षा वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं का प्रकाशन मात्र कर रही है। ऐसी परिस्थितियों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी की समीक्षा को एक अत्यन्त उदात्त और नैतिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। आपने मानवीय व्यापारों और मानवीय कृतियों में सर्वाधिक महत्त्व साहित्य को ही दिया है। आपकी दृष्टि में मनुष्य की सर्वोत्तम कृति साहित्य ही है। यह साहित्य ही समाज को नैतिक, वैचारिक और व्यवस्थित बनाने का कार्य करता है। उनके सभी समीक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त मानवता की पृष्ठभूमि पर ही जन्मते तथा पल्लवित होते हैं। वे साहित्य को साध्य नहीं, अपितु साधन मानना उचित समझते हैं; तभी तो वे कहते हैं कि 'हमारी आधुनिक समस्याओं के अध्ययन के उपयुक्त यदि साहित्य में सामग्री नहीं है, तो वह बेकार है।'[4] मानवता की प्रतिष्ठिता में मनुष्यता की प्राप्ति कराने का एक मात्र साधन साहित्य है। इसीलिए आप साहित्य को सोद्देश्य मानते हैं। आपकी दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य किसी छुद्र राग–द्वेष से प्रेरित और प्रभावित न होकर, उदात्त और गम्भीर है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐसे साहित्य को साहित्य नही माना है जो बाग्जाल में मनुष्य को केवल दुर्गति और हीनता की ओर ले जाये।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी साहित्य के इतिहास को भी मात्र इतिहास न मानकर मानव जीवन की परिस्थितियों के समस्त कोणों के दिग्दर्शन का मानक समझते हैं। आज के समय में अपेक्षित साहित्य के स्वरूप निर्धारण एवं रचना–प्रक्रिया के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के विचार बड़े ही मूल्यवान् हैं। ये विचार उनके सम्पूर्ण साहित्य में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। उनकी समीक्षा दृष्टि के चिन्तन का निष्कर्ष है कि दीर्घ साधना के बाद मनुष्य पशु से विकसित होकर मनुष्य बना है। यदि साहित्य इन्द्रिय–परायणता और तुच्छ मनोभावों अथवा आवेश को बढ़ावा देने वाला हो, तो उसे साहित्य माना जाना चाहिए। जो हित ही नहीं कर सकता, वह साहित्य कैसा? 'जो साहित्य संयम, त्याग और प्रेम की भावना को जगाये वह साहित्य माना जाना चाहिए।'[5] साहित्य का आधार घृणा और द्वेष नहीं हो सकता। प्रेम, त्याग, ज्ञान जैसी बड़ी–वस्तुएँ साहित्य का आधार हो सकती हैं और तभी साहित्य संसार को नया प्रकाश दे सकता है।[6] साहित्य मनुष्य के लिए होता है। अतः उसके उत्थान के लिए ही उसका निर्माण होना चाहिए और इसी आधार पर उसका मूल्यांकन भी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का उद्देश्य अध्यात्मवाद से भी थोड़ा भिन्न पड़ जाता है। वे भक्ति, ज्ञान, शिल्प, अलंकरण सभी को साधन मानते हैं, साध्य नहीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते है कि–'हमारा परम लक्ष्य मनुष्यत्व है। साहित्य सुन्दर का उपासक है, इसीलिए साहित्य असामंजस्य को दूर करने का नाम है। साहित्य यही काम करता है। जो साहित्य मनुष्य को उसके पशु–सुलभ सतह से ऊपर नहीं उठाता, वह साहित्य की संज्ञा ही खो देता है। आचार्य हजारीप्रसाद

द्विवेदी जी नीति परक को भी साहित्य कहते है, उनकी दृष्टि में केवल रसमय रचना ही साहित्य नहीं है। साहित्य युग के मनुष्य की सवलताओं और दुर्बलताओं की भी पहचान करता है।[7]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना–सिद्धांत की रूपरेखा मानवता है। सब बातें गौण है। अलंकार, रस, छंद, इतिहास, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा–सभी मनुष्य की समझने के साधन हैं। साहित्य के उद्देश्य के बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथन को चन्द्रदेव यादव इस तरह व्यक्त करते हैं कि–'वह शास्त्र, वह ग्रंथ, वह कला, वह नृत्य, वह राजनीति, वह समाज–सुधार, वह पूजा–पार्वण और जंजालन्पात्र जिनसे मनुष्य का भला न होता हो, मनुष्य को सुखी बनाने में जिनका उपयोग न होता हो निरर्थक है।'[8] समस्त विषयों को वे मनुष्य मात्र को प्रेम स्वरूप मानते है और प्रेम को ही भगवान का वास्तविक स्वरूप।

रचनाकार और आलोचक दोनों एक ही परिवेश के प्राणी होते हैं। जहाँ रचनाकार अपने जटिल अनुभवों को शब्दों, आलंकारिक उक्तियों, विम्बों, प्रतीकों व्यंजक संघातों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, वहीं आलोचक रचनाकार अभिव्यक्त प्रतीकों के सहारे प्रतिपाद्य को ग्रहण करता है। रचनाकार और आलोचक समानधर्मा हैं। रचनाकार के जीवन्त अनुभव और सृजनशील का आलोचक ग्रहीता होता है। इस प्रकार आलोचक रचनाकार की मनोभूमि में विचरण करने वाला समशील भावक एवं उसकी मनीषा का सर्जक सेतु माना गया है। आलोचक रचनाकार और पाठकों के बीच सेतु के रूप में स्थित होता है। वह रचनाकार का एक आदर्श पाठक होता है। यदि वह सच्चा भावक और प्रतिभावान पाठक नहीं है तो कवि अथवा रचनाकार के साथ न्याय नहीं करने में सक्षम नही होगा। सम्भावना यह भी बनती है कि उसके निर्णय निष्पक्ष और निर्भ्रान्त नहीं हो सकते। इसीलिए आलोचक को तटस्थता का साथी कहा गया है।

आलोचक को एक आदर्श पाठक की संज्ञा प्राप्त है। वह दार्शनिक, आचार्य भाषा–शास्त्री, इतिहासज्ञ और वैज्ञानिक पाठकों से सर्वथा अलग सोच वाला होता है। आलोचक की दृष्टि में भाषा को लेकर सरलता की कामना की जाती है। इसी तरह दार्शनिक सोच वाले आलोचक से यह उम्मीद की जाती है कि वह सरणिबद्ध तत्वों का क्रमबद्ध निर्णय न देखे। किसी मूल्यवान एवं मर्मस्पर्शी रचना के प्रति उसका उदासीन होना अच्छा नही माना जाता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक सोच वाले आलोचक की दृष्टि में कल्पना, बिम्ब अथवा प्रतीक विधान को देखकर उसके महत्व को अस्वीकार न करे। आलोचक रचनाकार की कृति को एक संश्लिष्ट इकाई मानकर उसके समग्र सौंदर्य का अनुशीलन करता है और उसके जीवंत अनुभवों का साक्षात्कार करता है। इस तरह आलोचक रचनाकार का समानधर्मा होता है। इसीलिए आदर्श आलोचक रचना के मर्म का उद्‌घाटन कर पाता है।

द्विवेदी जी साहित्य को बुद्धि–विलास की वस्तु नहीं मानते। 'साहित्यकार कल्पना के शून्य में नहीं घूमता, अपितु वह धरती पर खड़े हुए समाज की समस्याओं का जमकर सामना करता है।'[9] उनकी दृष्टि में परंपरा समर्थित सहृदयता को मात्र कस देना कविता नहीं है। काव्य तो मानव–जीवन की विशाल पट भूमि होता है। जीवन के संस्पर्श से ही साहित्य प्राणवान संवेगमय और रससिक्त होता है। जीवन से असंपृक्त साहित्य मात्र वाग्विलास होता है और जीवन के संदर्भों से कटे रहने के कारण उसमें कभी जीवन्तता नहीं आ पाती। इस तरह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्य और जीवन विषयक दृष्टि व्यापक और उदात्त है। आपकी स्पष्ट धारणा है कि साहित्यकार को मानव–समाज और साहित्य के विकास के लिए वर्तमान युग की समस्याओं और युग–बोध का ज्ञान होना आवश्यक है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य, जीवन, लोक–जीवन, लोकधर्म संस्कृति और सौन्दर्य आदि का विचार मानवतावादी दृष्टि से किया है। भारतीय संस्कृति, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का अवगाहन करते हुए उन्होंने समाज–मंगल, समाज कल्याण और व्यक्ति हित की चर्चा की है। द्विवेदी जी व्यक्ति की स्वतंत्रता में नहीं, मनुष्य की मुक्ति में विश्वास करते हैं। उन्होंने अपने आलोचना– ग्रंथों में इन्हीं बिंदुओं पर विचार करते हुए कहा है कि–'साहित्यकार ने मनुष्य की महिमा को स्वीकार कर लिया है, अगला कदम सामूहिक मुक्ति का है। अगली मानवीय संस्कृति मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका खड़ी करेगी। व्यक्ति मानव के स्थान पर समष्टि–मानव की प्राधानता होगी।'[10] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी किसी भी प्रभाव अथवा वाद से ग्रस्त न होकर साहित्य तथा मनुष्य के पूरे परिवेश में अपने को डुबोकर एक जनतंत्रीय आलोचना की स्थापना करते हैं।

इस तरह रचनाकार के व्यक्तित्व और उसके सत्य की पहचान उसकी कृतियों से होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सभी ग्रंथों के केंद्र में मनुष्य और मनुष्यता ही है। उनके आलोचना–सिद्धांत के केंद्र में भी मनुष्य

और मनुष्यता का वह जनतंत्रीय रूप है जिसको उन्होंने धर्म, संप्रदाय, समाज, राजनीति आदि परिवेशों में खोजते हुए उसकी पहचान को सबके समक्ष उजागर किया है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. कुलकर्णी, डॉ. अरुण, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में संस्कृति और इतिहास, कानपुर, चिन्तन प्रकाशन, प्रथम 2007
2. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, सभ्यता और संस्कृति, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, प्रथम 1955
3. प्रसाद, डॉ. जयकिशन, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, संस्करण 25वाँ, 2013–14
4. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, अशोक के फूल, साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1950
5. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, विचार और विर्तक, सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर, संस्करण 1951
6. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, कल्पता, ज्ञान मण्डल लिमिटेड बनारस, प्रथम संस्करण 1951
7. यादव, चन्द्रदेव, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि (आमुख)
8. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, विचार प्रवाह

संदर्भ–सूची

1. कुलकर्णी, डॉ. अरुण, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में संस्कृति और इतिहास, पृ. 17
2. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, सभ्यता और संस्कृति, पृ. 27,
3. प्रसाद, डॉ. जयकिशन, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 716
4. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, अशोक के फूल, पृ. 170
5. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, विचार और विर्तक, पृ. 203
6. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, अशोक के फूल, पृ. 171,
7. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, कल्पता, पृ. 194,
8. यादव, चन्द्रदेव, आचार्यहजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि (आमुख) पृ. 01
9. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, कल्पता, पृ. 75
10. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, विचार प्रवाह, पृ. 190

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 309-312

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पटना में नगरीय अपशिष्ट (पॉलीथीन-प्लास्टिक) समस्या एवं समाधान का प्रतीकात्मक अध्ययन

*डॉ. अमित कुमार**

सारांश *: नगरीय ठोस अपशिष्ट (एम.एल.डब्लू.) में नगरीय क्षेत्र के अंतर्गत खतरनाक औद्योगिक अपशिष्ट के अतिरिक्त, किन्तु परिष्कृत जैव चिकित्सकीय अपशिष्ट को सम्मिलित करते हुए ठोस अथवा अर्ध ठोस रूप में आवासीय एवं व्यावसायिक अपशिष्ट सम्मिलित है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में वो सभी संक्रियाएँ सम्मिलित हैं जो ठोस अपशिष्ट के स्वास्थ्य, पर्यावरण एवं सौंदर्यात्मक प्रभाव को तलाश कर न्यूनतम कर सके। भारत सरकार द्वारा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की शक्तियों का प्रयोग करते हुए पर्यावरण को संरक्षित एवं संवर्धित करने के लिए तथा मानव व अन्य जीवित प्राणियों के स्वास्थ्य हानि को रोकने के लिए नगरीय ठोस अपशिष्ट (प्रबंधन व संचालन) नियमावली 2000 बनायी गयी जिससे कि नगरीय ठोस अपशिष्ट नियमों के अनुसार नगरीय ठोस अपशिष्ट के संग्रहण, पृथ्ककरण, भण्डारण, परिवहन, प्रसंस्करण एवं निस्तारण के लिए प्रत्येक नगरीय प्राधिकारी उत्तरदायी है।*[1]

शब्द कुंजी–*अपशिष्ट, प्रतिकात्मक, बहुउपयोगी, प्रौद्योगिकी, पॉलिथीन, पारिस्थितिकीय*

अध्ययन क्षेत्र–पटना, बिहार के 38 जिलों में एक जिला है, पटना मगध क्षेत्र और पटना मण्डल का जिला है जिसका मुख्यालय पटना में ही है। इस जिले में 12 उप मंडल, 23 ब्लॉक, 1350 गाँव, 2 लोक सभा और 14 विधान सभा क्षेत्र है। इस जिले का क्षेत्रफल 3202 वर्ग किलोमीटर है। 2011 की जनगणना के अनुसार पटना की जनसंख्या 5,838,465 और जनसंख्या घनत्व 1800 / कि.मी.^{2} व्यक्ति (प्रति वर्ग कि.मी.) है। पटना की साक्षरता 72. 47 प्रतिशत है, महिला पुरुष अनुपात यहाँ पर 897 महिलायें प्रति 1000 पुरुषों पर है, जिले की जनसंख्या विकास दर 2001 से 2011 के बीच 22.34 प्रतिशत रहा है। पटना जिला बिहार, मध्य भाग का जिला है जिसका अक्षांशीय देषांतर विस्तार 25^{0}6'8'' उत्तर से 85^{0}1'0'' पूर्व तक है। समुद्रतल से ऊँचाई 53 मीटर है। पटना के उत्तर में वैशाली, दक्षिण में जहानाबाद, पूर्व में बेगूसराय तथा पश्चिम में भोजपुर जिला स्थित है।

नगरीय अपशिष्ट (पॉलीथीन–प्लास्टिक) समस्या : पटना शहर सहित हर गाँव में, सड़क के किनारे, खेतों में, बाग–बगीचों में कहीं भी, जगह–जगह पर कचरों के ढेरों में, नदियों, पानी निकास के गटरों, छोटे–बड़े नदी नालों आदि स्थानों पर पॉलीथीन की थैलियाँ दिखायी देती हें छोटे–छोटे पाउच एवं पॉलीथीन थैलियाँ जो स्वयं नश्ट नहीं होती हैं, इनको बेतहाशा उपयोग करने और जहाँ तहाँ लापरवाहीपूर्वक फेंक देने के भयानक परिणाम हमें भुगतने पड़ेंगे। इसलिए इनके उपयोग के साथ हमारी कुछ जिम्मेदारी बन जाती है। प्लास्टिक पदार्थ में पॉलीथीन सबसे ज्यादा लोकप्रिय और बहुउपयोगी प्लास्टिक है।[2] यह हमारे जीवन का पर्याय सा हो गया है क्योंकि जब से पॉलीथीन बैगों का प्रचलन शुरू हुआ है, लोगों ने थैले रखने बन्द कर दिये हैं।

वस्तु निर्माता एवं विक्रेता खाने के सामान से लेकर पानी तक पॉलीथीन पैक में दे रहे हैं। इसलिए आज हर घर में प्रतिदिन कम से कम तीन से चार प्लास्टिक की थैलियाँ आना स्वाभाविक हो गया है। हमारी सुविधा के ये उत्पाद हमारे लिये ही खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। यदि अभी तक हम सचेत नहीं हो पाये तो इसके दुष्परिणाम भयानक हो जायेंगे। इन उत्पादों का उपयोग वस्तु निर्माता एवं विक्रेता तथा हम अपनी सुविधा, सहजता, सरलता के कारण तो कर लेते है, परन्तु जब ये उत्पाद उपयोग हेतु नहीं रह जाते तो हम इन्हें लापरवाहीपूर्वक जहाँ–तहाँ

* *यू.जी.सी./नेट, जे.आर.एफ., भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)*

फेंक देते हैं। यही लापरवाही हमारे लिये खतरनाक होगी। प्रायः इस प्रकार असंतुलन एवं समस्याएँ बनाते हैं और शासन, सरकार से अपेक्षा करते हैं कि वह इसके लिये कोई कठोर कदम उठायें।[3] पॉलीथीन के बढ़ते उपयोग और हमारे द्वारा जहाँ–तहाँ फेंक देने से निम्न समस्या एवं खतरे बढ़ते जा रहे हैं–

वनस्पति को नुकसान–पॉलीथीन वनस्पति जगत को नष्ट करने वाला माध्यम होता जा रहा है क्योंकि यह जहाँ–तहाँ पड़ी होकर भूमि में दब जाती है, जिससे वहाँ पर घास–पात उग नहीं पाती। साथ ही धीरे–धीरे वहाँ की जमीन बंजर होती जाती है।

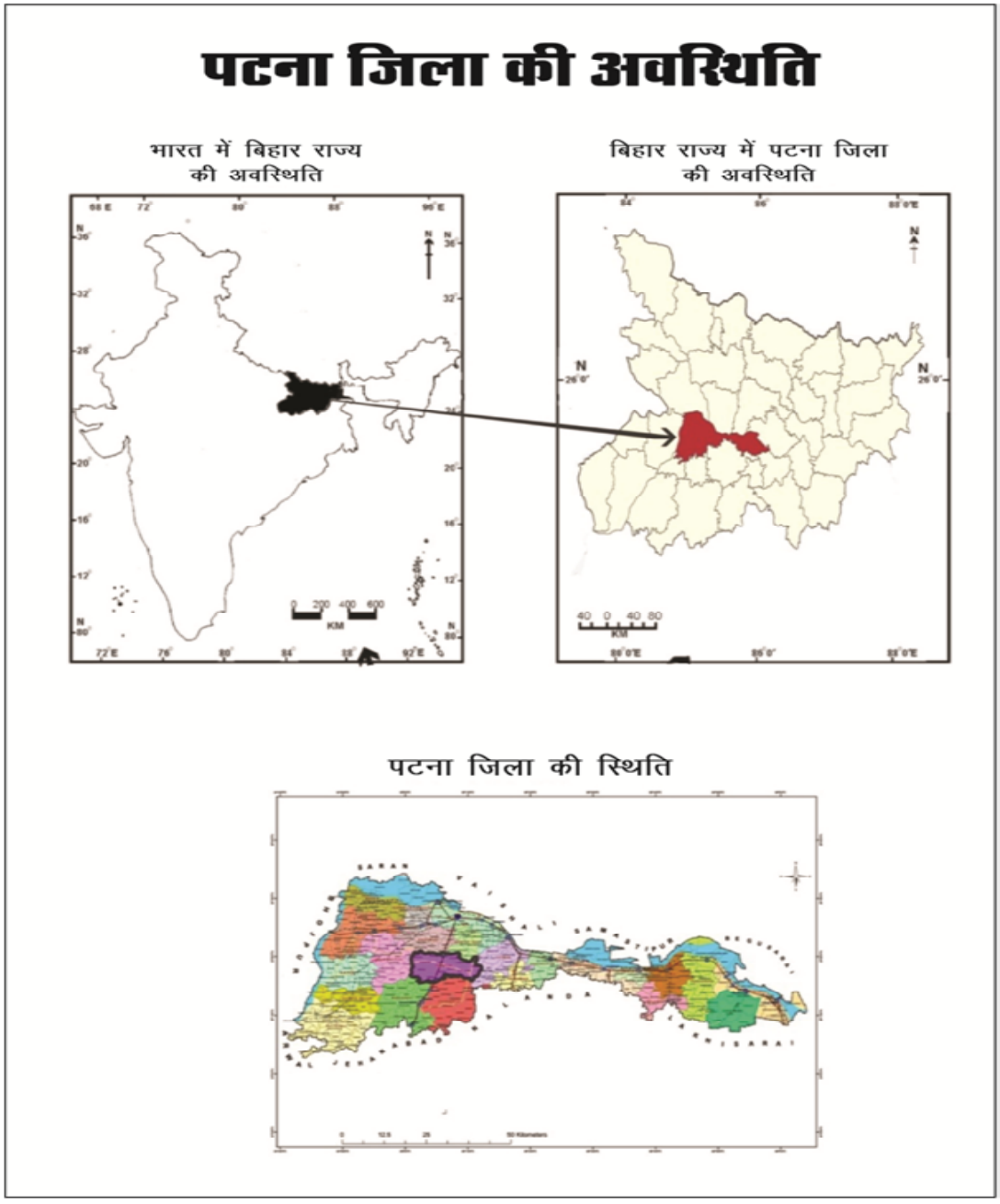

पशुओं के लिए खतरनाक–प्रायः लोग बचे हुए भोज्य पदार्थ को पॉलीथीन में भरकर बाहर फेंक देते हैं, जिससे पशु भोज्य पदार्थ के साथ पॉलीथीन को भी निगल जाते हैं जो कि उनकी मृत्यु का कारण बन सकती है।[4] इस प्रकार की घटना समाचार–पत्रों में पढ़ चुके हैं कि गाय के पेट से कई किलो पॉलीथीन थैलियाँ निकाली गयीं। भारतीय पशु कल्याण बोर्ड की गोष्ठी में भी यह तथ्य सामने आया कि महानगरों में सड़कों से पकड़कर गौ–शालाओं में लाई जाने वाली गायों में साठ प्रतिशत गायें बहुत जल्दी मर जाती हैं और उनकी मृत्यु का कारण पॉलीथीन की थैलियाँ होती हैं।[5]

वायु प्रदूषण का खतरा–विभिन्न कचरे के साथ यदि पॉलीथीन को जलाया जाता है तो विषैली गैस उत्पन्न होगी, जो वायुमण्डल को प्रदूषित करती है।

जल निकासी में अवरोध–प्रायः लोगों के द्वारा इन पॉलीथीनों को जहाँ–तहाँ फेंक देने या वर्षा के माध्यम से बहकर ये नालियों एवं गटरों में पहुँच जाती हैं। मिट्टी भर जाने के कारण ये प्रायः रुक जाती हैं जिससे जल निकासी में रुकावट होती है।

स्वास्थ्य के लिए खतरनाक–प्रायः इनके अन्दर पड़ा भोज्य पदार्थ, पानी या कचरा पड़े–पड़े सड़ता रहता है जो कि मक्खी, मच्छरों को बढ़ाने में सहायक होता है और फिर ये हमारे स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो जाते हैं। अतः हमें इसके फेंकने के तरीके को सुधारना होगा क्योंकि पॉलीथीन की थैलियाँ, पाउच, कचरा आदि फेंकना एक मानवीय सामाजिक समस्या है, न कि पर्यावरणीय समस्या।[6]

चिन्ता की बात है कि मानव के अस्तित्व और उसके पर्यावरण के लिए गम्भीर खतरा बन बैठे इन दुश्मनों (पॉलीथीन एवं प्लास्टिक) की ओर न तो सम्बन्धित षासकीय तन्त्रों का ही ध्यान जा रहा है और न समाज में ही कोई जागरूकता आ रही है।[7] परिणामस्वरूप आज पटना जैसे नगरों के अन्य नगरों एवं महानगरों में पॉलीथीन और प्लास्टिक रूपी दानव अपना शिकंजा शनैः–शनैः कसता जा रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से अब यह सिद्ध हो चुका है कि पॉलीथीन और प्लास्टिक की चीजें जैविकीय तरीके से नष्ट न होन वाली वस्तुएँ हैं। ये वस्तुएँ भूमि में एक कठोर स्तर बनाकर न केवल मृदा की उर्वरक क्षमता को समाप्त करती हैं, वरन् पूरे पारिस्थितिकीय तन्त्र को प्रभावित कर पर्यावरण को ही प्रदूषित कर देती हैं। क्योंकि कागज एक ऐसी वस्तु है जिसे जीवाणु खा लेते हैं, तो वह नष्ट हो जाता है, परन्तु प्लास्टिक और पॉलीथीन को खा जाने वाले जीवाणु अभी प्रयोगशाला तक ही सीमित हैं। पारिस्थितिकीय तन्त्र को ये दोनों इतना प्रभावित करते हैं कि इससे सूर्य का विकिरण, जल का बहाव तथा सूक्ष्म पादक और जन्तुओं के फैलने में रुकावट पैदा होती है। यही रुकावटें मानव, पशु–पक्षी, सूक्ष्म जीव–जन्तु, पौधों तथा मृदा तक के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह भी सिद्ध हो चुका है कि पॉलीथीन, प्लास्टिक और "पीवीसी" (प्लास्टिक का कच्चा माल) किसी भी अम्लीय, क्षारीय स्थिति में यह अनजानी अनेक अभिक्रियाएँ करने के बाद इसको अनेक यान्त्रिक जैसे पाली अरोमेटिक, हाइड्रोजन आदि जो कि कारसीनोजेनिक तथा न्यूट्रोनिक प्रकृति के होते हैं, रिसकर पर्यावरण में आते हैं। ये यौगिक न केवल वर्तमान वरन् आने वाली पीढ़ियों के लिये काफी हानिकारक सिद्ध होंगे।[8]

बिहार की राजधानी पटना में ही यदि पॉलीथीन, प्लास्टिक और रबर की हल्की किस्म की वस्तुओं के हानिकारक पहलुओं पर विचार करें तो परिणाम काफी चिन्ताजनक आयेंगे। लगभग 58 लाख की आबादी वाले निरन्तर फैलते–पसरते इस नगर को पॉलीथीन और प्लास्टिक ने एक तरह से पाट रखा है। दूध की छोटी थैली से लेकर आदमकद के कैरी बैग्स इस नगर के नागरिक, निवासी अपने घरों के बाहर, पीछे अपनी लापरवाही से फेंक कर निश्चिन्त हो जाते हैं। फलों के छिलके, सड़ी सब्जी, कचरा इत्यादि प्लास्टिक बैग्स में बाँधकर गृहिणियाँ फेंक देती हैं। उन प्लास्टिक की थैलियों सहित फेंका गया खाद्य–पदार्थ गाय, बकरी खा जाती हैं और प्लास्टिक इन जानवरों की आँतों में फंसकर इनकी मौत का कारण बनते हैं।[9] इसी प्रकार मांस–मछली की हड़ियाँ अवशेष को खाकर कुत्ते भी मर जाते हैं। इसी तरह इधर–उधर फैली बड़ी प्लास्टिक और पॉलीथीन की थैलियों को इकट्ठा कर सफाई कर्मचारी अक्सर जला देते हैं। इसके जलने से किसी भी स्थिति में खतरनाक किस्म के हाइड्रोकार्बन, बहुलक श्रृंखलाओं के अनेक ज्ञात–अज्ञात यौगिक उत्पन्न होते हैं जो हमारे फेफड़ों तथा शरीर के अन्य हिस्सों को सीधे रूप से प्रभावित करते हें प्लास्टिक, पॉलीथीन और रबर आदि के सामान बनाये जाते हैं इसका कच्चा माल पीवीसी ग्रेन्युअल के रूप में आयात किया जाता है।[10] यदि इस आयात पर कड़ा नियन्त्रण कर दिया जाये तो भी बात बन जाये। यह भी एक विडम्बना ही है कि जिन देशों से हम पी.वी.सी. ग्रेन्युअल आयात करते हैं, उन्हीं देशों ने प्लास्टिक, पॉलीथीन और रबर की वस्तुओं से उत्पन्न स्थिति को को गम्भीरता से लेते हुए उनके उपयोग पर

काफी पाबन्दी लगा रखी है। अपने देश में भी शिमला, बंगलौर, चेन्नई और नोएडा आदि में इन तीनों वस्तुओं के घातक परिणामों के विरुद्ध सफल जन अभियान छेड़ रखा है।[11] किन्तु बिहार में इस दिशा में नगर निगम सहित अन्य सम्बन्धित विभागों ने जन स्वास्थ्य से सम्बन्धित इस महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर से मुँह फेर रखा है। वर्ष में एक बार विश्व पर्यावरण दिवस पर कोई छोटा–सा कार्यक्रम आयोजित कर ये विभाग इतिश्री कर लेते हैं। एक और दुःखद पहलू यह भी है कि इस प्रदेश में इस क्षेत्र में कार्यरत अशासकीय (एन.जी.ओ) भी अत्यधिक निष्क्रिय हैं। जबकि समाज में इस दिशा में युद्ध स्तर पर एक जन अभियान छेड़ने की आज महती आवश्यकता है। प्लास्टिक की थैलियों के प्रयोग पर शासकीय प्रतिबन्ध तत्काल लगाने की आवश्यकता है अन्यथा निकट भविष्य में ही नगरीय उपान्त क्षेत्र किसी उपयोग के न रह पायेंगे।[12]

नगरीय अपशिष्ट का समाधान : वर्तमान समय में पटना सहित अनेक क्षेत्रों में अपशिष्ट पदार्थ एक समस्या बन कर उभरा है। इसके निष्पादन हेतु निम्न विधि या उपाय किया जा सकता है।

(i) भू–निक्षेपण कर
(ii) जलाकर (भष्मीकरण) करके
(iii) मृदा में मिलाकर
(iv) खाद बनाकर (पुनः चक्रीकरण)
(v) विद्युत उत्पादन में प्रयोग करके
(vi) जैव प्रौद्योगिकी अपना कर
(vii) नवीन तकनीकी अनुसंधान/आविष्कार करके
(viii) जन–जागरूकता उपाय
(ix) जनसंख्या वृद्धि को कम करके आदि।[13]

निष्कर्ष : उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में पटना जिला स्थित आस–पास के क्षेत्रों में नगरीय अपशिष्ट के कारण कई समस्याएँ हमारे सामने उभरकर आयी हैं जिसके चलते मानव जीवन कष्टमय होते जा रहा है। अगर समय रहते हम इस समस्या का समाधान नहीं करें तो आने वाला समय बहुत ही खतरनाक होगा। इसलिए तत्काल सरकार सहित आम जनों को भी आगे आकर हमें जैविक जीवन यानी प्राकृतिक के सानिध्य में रह कर उसी के साथ चलना होगा। हमें अवैज्ञानिक चीजों का प्रयोग न के बराबर करना पड़ेगा, नहीं तो नतीजा हमारे सामने है।

संदर्भ–सूची

1. अवस्थी, डॉ. नरेन्द्र मोहन (2007), पर्यावरण अध्ययन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा (उत्तर प्रदेश), पृ. 263
2. वही, पृ. 264
3. वही, पृ. 265
4. अलक्षेंद्र, अभिनव (2009), पर्यावरणीय और शहरीकरण एशिया, सिटी प्रोफाइल, पटना (बिहार), पृ. 374
5. वही, पृ. 375
6. वही, पृ. 376
7. पांडे, एम.के. (2014), पटना में सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट, नेशनल सॉलिड वेस्ट, एसोसिएशन ऑफ इंडिया, पटना, पृ. 22
8. शहरी विकास एवं आवास विभाग (2018), बिहार के शहरी स्थानीय निकायों के लिए व्यापक ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नीति और रणनीति, बिहार सरकार, पटना (बिहार), पृ. 15–20
9. वही, पृ. 16
10. वही, पृ. 17
11. वही, पृ. 18
12. सिंह, डॉ. यू. वी. (2022), पर्यावरणीय भूगोल, राजीव प्रकाशन, मेरठ (उत्तर प्रदेश), पृ. 61
13. वही, पृ. 62

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 313-316

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

*सौरभ कुमार शर्मा** *डॉ. ओम प्रकाश द्विवेदी***

वर्तमान युग में नई पीढ़ी स्वेच्छाचार के कारण पतन की ओर बढ़ रही है। परंपरागत मूल्य मान्यताओं का उल्लंघन करने वाली नई पीढ़ी सद् राह भटक गयी है। पाश्चात्य जीवन शैली का अंधानुकरण युवा पीढ़ी कर रही है। सिगरेट पीना, चरस आदि का शौक, गंदी किताबें पढ़ना एवं तसवीरें देखना इनकी आदत है। जिसमे मोवाइल की भूमिका तो बहुत बड़ी हो गई है। यौन कुंठाओं से ग्रस्त नई पीढ़ी विवाहपूर्व शारीरिक यौन संबंध स्थापित करने में बिल्कुल भी नहीं हिचकिचाती। 'द्रौपदी' नाटक में सुरेंद्र वर्मा जी ने आज की युवा पीढ़ी की पतनावस्था का एकदम सटीक चित्रण किया है। राजेश अलका से कहता है–मेरे पास वो चीज है–तुम बेकार डर रही हो। तुम्हें कुछ नहीं होगा। (विराम) सब लोग करते हैं, मगर तुम हो कि फिजूल की जिद पकड़ के बैठ गयी हो। (विराम) पाँच मिनट का तो सवाल है। 'लाल नकाब वाला व्यक्ति अपनी सैक्स की भूख से संचालित रूप है।' इसी प्रकार एक जगह और 'इस ठंडे और दुखद ठहराव को तोड़ने के लिए वह लगातार नई–नई औरतों के दरवाजों पर दस्तक देता चलता है, कभी रंजना, तो कभी वंदना या कोई और... पत्नी सुरेखा सब कुछ सहती हैं और चुप रहती है।'

आधुनिक युग की यांत्रिक प्रगति एवं अंधी होड़ ने स्त्री–पुरुष सभी प्रकार के रिश्तों को बहुत गहरा प्रभावित किया है। आपाधापी एवं सुविधा संपन्न जीवन जीने की लालसा के परिणाम स्वरूप 'द्रौपदी' नाटक के मनमोहन का परिवार बिखर जाता है। प्रस्तुत नाटक में मनमोहन का पुत्र एवं पुत्री से प्रत्यक्ष संवाद नहीं है किंतु फिर भी उनके संबंधों का बोध अवश्य होता है। मनमोहन बेटे अनिल की अनुपस्थिति में उसके कमरे में दाखिल होता है। पत्नी सुरेखा को वह बताता है–'अभी उसके कमरे में गया था मैं। सिगरेट के टुकड़े एक से एक गंदी किताबें और तसवीरें सुना है, चरस और एल.एस.डी. का भी शौक फर्माते हैं कभी–कभी।" माता–पिता के आचरणों की ही परिणति बच्चों में होती है। मनमोहन तरक्की एवं धनप्राप्ति के चक्कर में नैतिकता को छोड़ देता है। मनमोहन के पास पुत्र एवं पुत्री की ओर ध्यान देने के लिए समय नहीं है। वर्तमान युग का मनुष्य संवेदना शून्य बनता जा रहा है। मनमोहन अपनी बेटी के संबंध में जितनी घटिया स्तर पर जाकर बात करता है उससे यही प्रतीत होता है कि पिता–पुत्री का पावन रिश्ता भी पतित हो रहा है।

वर्तमान युग में नैतिक मूल्य मान्यताएँ टूट रही हैं। मनुष्य अकेलेपन की पीड़ा से त्रस्त है। मशीनी सभ्यता का ही परिणाम कहा जा सकता है कि मनुष्य संवेदनाहीन स्वार्थी बनता जा रहा है। उसके चरित्र में सच्चाई और ईमानदारी नहीं रही। वास्तविकता यह है कि आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन कई चिंताओं से ग्रस्त है। यह चिंताएँ मनुष्य ने खुद निर्माण की है। सुरेंद्र वर्मा ने अपने नाट्य–साहित्य में इसी मूल्य विघटन की प्रक्रिया एवं परिणाम स्वरूप बिखरते परिवारों पर चिंतन किया है। नाटकों एवं एकांकियों के ये सारे पात्र वर्तमान का प्रतिनिधित्व करते दृष्टिगोचर होते हैं।

सुरेंद्र वर्मा ने अपने नाटकों में पति–पत्नी संबंधों का यथार्थ चित्रण किया है। नाटक का कथ्य भले ही आधुनिक, ऐतिहासिक या पौराणिक हो परंतु पति–पत्नी संबंध चित्रण समसामयिक धरातल पर हुआ है। इस संबंध में पूरी ईमानदारी से, बेबाकी के साथ चित्रण किया है।

सुरेंद्र वर्मा ने माता पुत्र या माता–पुत्री के संबंधों का जो अंकन किया है उसके लिए पौराणिक एवं आधुनिक युग के कथ्य को आधार बनाया है। एक ओर जहाँ 'सेतुबंध' नाटक में माता–पुत्र के संबंध का आधार पौराणिक

* *शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

** *सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, यमुना प्रसाद शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरमौर, रीवा (म.प्र.)*

कथ्य है वहीं दूसरी ओर 'द्रौपदी', में 'वे नाक से बोलते हैं' तथा 'हिंडोल इंगुर' में चित्रित ये संबंध अत्यंत आधुनिक धरातल पर आधारित हैं। पौराणिक कथ्य में चित्रित माता–पुत्र या माता–पुत्री के संबंध में आक्रामकता है किंतु आदर एवं विनम्रता भी है। वहीं दूसरी ओर आधुनिक युग के इन संबंधों में आक्रामकता तो है किंतु आदर एवं विनम्रता का सर्वथा अभाव है।

आधुनिक काल का मनुष्य अर्थ प्राप्ति एवं सुविधा संपन्न जीवन जीने के लिए एक प्रकार की अंधी होड़ में जुटा है, जिसके कारण उसका दाम्पत्य–जीवन मात्र त्रासदी बनकर रह गया है। उसके लिए धन, बीमा पॉलिसी और बैंक की पासबुक ही जीवन की मुख्य वस्तुएँ बनकर रह गयी हैं। 'द्रौपदी' नाटक में पति–पत्नी मनमोहन एवं सुरेखा के दाम्पत्य जीवन की भी यही विडंबना है। इनका प्रारंभिक दाम्पत्य जीवन सुखी था परंतु पदोन्नति एवं धनप्राप्ति के चक्कर में मनमोहन परिवार से कट जाता है। पत्नी सुरेखा को ऐसा प्रतीत होता है कि उसका पति अब एक व्यक्ति नहीं रहा बल्कि वह भीतर–ही–भीतर खंडित होकर कई व्यक्तियों में विभक्त हो गया है। मनमोहन के अलग–अलग रूपों की अनुभूति पत्नी सुरेखा को होती है। जिसका जिक्र वह सहेली मंदा के पास करती है। यथा–'सुरेखा जैसे उसके हिस्से हो गये हैं अलग–अलग और कभी एक से तुम्हारा सामना होता है, कभी दूसरे से।", सुरेखा को अपने पति के बदन से दूसरी औरत की बू महसूस होती है किंतु फिर भी वह खामोश है और भुलाने के लिए सहेली मंदा की सलाह पर अनाथ बच्चों की सोसायटी की मेंबर बनकर 'देश–सेवा' करना चाहती है।

सुरेंद्र वर्मा का 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' काम संबंधों के यथार्थ पर प्रकाश डालने वाला नाटक है। नाटक का मूल कथ्य यह है कि स्त्री–पुरुष संबंधों की सार्थकता काम सुख में है। नाटक में काम संबंधों की खुली चर्चा होने के कारण इस नाटक पर अश्लीलता का भी आरोप लगा है। सेक्स के संदर्भ में यह नाटक खुली चर्चा करता है। सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' शास्त्रीय शब्दावली में 'रति' और मनोवैज्ञानिक शब्दावली में 'काम' का अंतरंग चित्रण करने वाला एक ऐसा रसात्मक नाटक है कि जिसका अंगी शृंगार है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने पति–पत्नी के काम–संबंधों का एक अछूता एवं अनूठा पहलू उठाया है। शारीरिक दुर्बलता या अन्य किसी कारण से पत्नी को दैहिक रूप से संतुष्ट न कर सकने वाले पति की मनोदशा का यथार्थ चित्रण इस नाटक के माध्यम से हुआ है। राजा ओक्काक नपुंसक होने के कारण राज्य को उत्तराधिकारी देने में असमर्थ है। इसीलिए अमात्य परिषद महारानी शीलवती को राज्य के उत्तराधिकारी प्राप्ति के लिए 'नियोग' की आज्ञा देती है। वह धर्मनटी बनकर अपने पूर्व वाग्दत्त प्रतोष का उपपति के रूप में चयन करती है और 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' का वह सुखद संभोग उसकी जीवन दशा को ही बदल देता है। उसे पहली बार एहसास होता है कि अब तक उसने कितना कुछ खोया है। पुरुष संपर्क का वास्तविक सुख वह विवाह के पाँच वर्षों बाद अनुभव करती है। पाँच वर्षों तक मर्यादा निभाने में उतना संतोष नहीं मिला, जितनी तृप्ति इस एक रात में मिली है। मिलन तृप्ति आनंद की पराकाष्ठा उसे मर्यादा उल्लंघन के लिए बाध्य करती है वह मूल्य मान्यताओं के प्रति विद्रोही हो उठती है। इसी आनंदात्मक अनुभूति की लगातार आवृत्ति करना चाहती है। 'रात के विभिन्न पहरों में शीलावती प्रतोष के साथ शयन कक्ष में शय्या पर देह सुख छककर प्राप्त कर रही है।... प्रतोष कहता है आदि रात बीत गई। शीलावती सजग हो उठती है। प्रतोष पूछता है नींद आ रही है? शीलावती कहती है, नीद...? आज की रात तो मुझे मृत्यु भी नहीं आयेगी।'

सुरेंद्र वर्मा ने प्रस्तुत नाटक में पति–पत्नी के आपसी नाजुक प्रेम संबंधों को मधुरता एवं कोमलता से प्रस्तुत किया है। कालिदास एवं प्रियंगु के यौन संबंधों की चर्चा उनकी शैया के माध्यम से भी हुई है। प्रियंवदा अनसुइया को कहती है–'कुछ देर चुपचाप उस शैया को परखना। उस पर अधखिली कलियाँ बिखरी होंगी म्लान दोहरी हो चुकी पंखुरियों को हल्के से छूना, तो दो शरीरों के तप्त दबाव का आ होगा।" सुरेंद्र वर्मा ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से साहित्य में श्लीलता–अश्लीलता के प्रश्न को उठाया है।

सुरेंद्र वर्मा ने अपने नाटकों में प्रेमी–प्रेमिका के रूप में स्त्री–पुरुष संबंधों का चित्रण किया है। 'सेतुबंध' में कालिदास एवं प्रभावती के मधुर प्रेम संबंध ही नाटक के कथ्य का आधार हैं। प्रभावती के पुत्र प्रवरसेन को अपनी माँ के कमरे में एक रत्नमंजुषा में कालिदास द्वारा लिखित विश्वविख्यात महाकाव्य 'मेघदूत' की पांडुलिपि मिलती है और कालिदास तथा प्रभावती के मधुर प्रेम संबंधों का रहस्य उद्घाटित होता है। प्रभावती और कालिदास के विवाहपूर्व मधुर प्रेम–संबंधों के माध्यम से सुरेंद्र वर्मा ने स्त्री–पुरुष संबंधों को एक नये कोण से परिभाषित किया है।

'द्रौपदी' नाटक में आधुनिक युग के शहरी उच्च–मध्यवर्गीय परिवार के माता–पुत्र एवं माता–पुत्री का आधुनिक रूप देखने को मिलता है। बच्चों के परवरिश की बहुत बड़ी जिम्मेदारी माँ पर होती है। उसी के विचार, उसी की

भावनाएँ, उसी के आदर्श संतान में पल्लवित होते हैं। माँ के प्रति पुत्र एवं पुत्री की भावनाएँ आदर एवं समर्पण की होनी चाहिए। किंतु वर्तमान स्थितियाँ पतन की ओर उन्मुख हो रही हैं। तभी तो बेटा अपनी माँ से बहन के बारे में युग में यह कहता है कि 'इसकी 'सोशियोलॉजी' की क्लास नहीं बल्कि 'सैक्सोलॉजी' की क्लास है।' प्रस्तुत नाटक में माता–पुत्री के आपसी संवादों से यही प्रतीत होता है कि हमारी संस्कृति, सभ्यता किस हद तक गिरती जा रही है।

स्त्री–पुरुष के काम संबंधों की नैतिकता के बदलते हुए स्वरूप के कारण कई घर परिवार टूटे हैं। वर्तमान युग में भौतिक प्रगति एवं सुख–सुविधाओं के कई साधन उपलब्ध हुए हैं, जिससे मनुष्य का जीवन बाह्य रूप से संपन्न हुआ है। किंतु उसका आंतरिक जीवन उतना ही क्षत–विक्षत एवं पीड़ाओं से ग्रस्त है। विवाहपूर्व स्त्री–पुरुष संबंधों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। विवाह की सीमा के बाहर यौन तृप्ति या विवाह से पूर्व यौन संबंध अब पहले की भाँति चौकाते नहीं हैं। फलतः स्वैरिता, परस्त्री गमन, उन्मुख प्रेम तथा प्रयोगात्मक विवाह जैसी अनेक संकल्पनाएँ जन्म ले रही हैं इन अभिवृत्तियों के मूल में आज की परिवर्तनशील और यौन संबंधों तथा विवाह के संदर्भ में बदलते जीवन को लक्षित किया जा सकता है।

आधुनिक युग में विवाहपूर्व स्त्री–पुरुष संबंध युवा पीढ़ी की बदलती मानसिकता का द्योतक है। भौतिक साधनों के उपभोग की लालसा बढ़ती जा रही है। इसी का परिणाम है कि विवाहपूर्व स्त्री–पुरुष संबंधों में भावना के स्तर पर लगाव कम तथा शारीरिक भाँगों की पूर्ति अहम होती जाती है। सुरेन्द्र वर्मा के बहुचर्चित नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में भी विवाहपूर्व स्त्री–पुरुष संबंध दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत नाटक में स्त्री–पुरुष यौन संबंधों का गहरा अन्वेषण हुआ है। पौराणिक कथ्य पर आधारित इस नाटक में 'नियोग' प्रथा द्वारा स्त्री–पुरुष यौन संबंधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है।

इसी तरह 'एक दूनी एक' नाटक में सुरेंद्र वर्मा ने वर्तमान युग की त्रासदी एवं मशीनी सभ्यता के चलते बदलते स्त्री–पुरुष संबंधों पर विचार–विमर्श किया है। विवाहपूर्व स्त्री–पुरुष संबंध मशीनी सभ्यता के युग में आम बन गए हैं। भौतिक सुख–सुविधाओं के बावजूद मनुष्य त्रस्त है। उसके जीवन में सुकून नहीं है। प्रस्तुत नाटक में केवल दो ही पात्र हैं–आदमी तथा औरत। पुरुष पात्र अपने कई प्रेम प्रसंगों से आक्रांत हैं। उसके जीवन में विवाहपूर्व आनेवाली लड़कियों की सूची लंबी है। प्रेमिकाओं की बेवफाई की वजह से वह विवाह के रिश्ते के प्रति सशंकित हैं। इस नाटक में सुरेंद्र वर्मा ने स्त्री–पुरुष संबंधों के राग–द्वेष तथा तनावपूर्ण रिश्ते को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। यह वर्तमान युग की विडंबना है, मशीनी सभ्यता का दबाव पूरी तरह यहाँ देखा जा सकता है। प्रयोगध र्मी नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने इस नाटक में आदमी : 'कभी–कभी अपने आप को और अपने मन को ढीला भी छोड़ देना चाहिए। औरत : ढीला.....? ये ढीला क्यो? फिर चोट खा जाये इसीलिए?

सुरेंद्र वर्मा विवाहपूर्व स्त्री–पुरुष संबंधों का चित्रण बेबाकी से करते है। ये संबंध प्राचीन काल से दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु इनका वर्तमान युग का रूप अत्यंत अश्लील प्रतीत होता है। युवा पीढ़ी को विवाहपूर्व यौन संबंध स्थापित करने में संकोच नहीं होता। परंपरागत मूल्य–मान्यताओं को मशीनी सभ्यता के युग में तोड़ा जा रहा है। संस्कृति एवं संस्कार दम तोड़ रहे हैं। पाश्चात्य जीवन के अंधानुकरण का यह परिणाम है। विलासिता एवं भोगवादी प्रवृत्ति में निरंतर वृद्धि हो रही है। नैतिक मूल्यों की किसी को कोई परवाह दिखलाई नही दे रही है।

इसी कारण वर्तमान युग का मनुष्य सुकून, शांति की तलाश में दर–दर भटक रहा है किंतु वह उसे प्राप्त नहीं हो रही। तनाव से मुक्ति पाने का तरीका पति ने ढूँढ़ लिया है वह हर शनिवार को दूसरी औरत के साथ जिस्म के माध्यम से मन के सुकून को तलाशने का प्रयास करता है। एकांकी के पुरुष एवं स्त्री शारीरिक संबंध रखते हैं किंतु उनके मन में समाज एवं कानून का डर भी है। स्त्री का संवाद द्रष्टव्य है–"सोचो जरा, अगर वो औरत फोन करके पुलिस को बुला लेती, तो? कितना हंगामा होता! पता है, एडल्ट्री की क्या सजा है?" किंतु समाज की आँखों में धूल झोंकने का रास्ता भी स्त्री के पास है वह कहती है–'स्त्री : डर पड़ा है किसी का! कह देंगे कि मियाँ–बीबी हैं। वर्तमान युग में विवाह बाह्य संबंधों की संख्या दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। जिससे हमारा समाज, संस्कृ ति एवं विवाह संस्था खतरे में है। नाटककार ने इसी सच्चाई को अभिव्यक्ति देने का प्रामाणिक प्रयास किया है। आधुनिक काल में भौतिक सुख सुविधाओं की तलाश में एक अंधी होड़ शुरू हो गई है। परिणामतः नैतिक मूल्य मान्यताएँ टूट रही हैं। मशीनी सभ्यता ने मनुष्य को संवेदनहीन बना दिया है। नैतिक पतन के कारण कई परिवार टूटकर बिखर गए हैं। इसका यथार्थ चित्रण वर्मा जी के नाट्य–साहित्य में दिखाई देता है। एक उदाहरण देखे–प्रियंवदे, की युवक सुने तो उत्तेजित हो जाए और युवतियाँ सुने तो उन्मत्त.....यह काव्य नही मदिरा का मादक चषक है, सुन्दरी'।

हिन्दी का नाटय साहित्य समृद्ध और विशाल है। पंचम वेद माने जाने वाले नाटय साहित्य को आधुनिक हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा मानी गयी है। सुरेन्द्र वर्मा का नाटय साहित्य और उनकी नाटय रचना प्रतिभा में अनेक सम्भावनाएँ शेष है। 'नाटकेषु रम्यं काव्यं' अर्थात् साहित्य की विधाओं में कविता और कविता में नाटक अधिक रम्यं माना गया है। एक साथ दृश्य और श्रव्य दोनों के रूपों में नाटक की अपनी अलग पहचान है और महत्ता भी। निश्चित रूप से सुरेन्द्र वर्मा अपने नाटकों में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के चित्रण में सफल हुये है।

संदर्भ–सूची

1. वर्मा, सुरेन्द, द्रोपदी, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1972
2. वर्मा, सुरेन्द, तीन नाटक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. 1999
3. वर्मा, सुरेन्द, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976
4. राय, डॉ. लक्ष्मी, आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1989
5. वर्मा, सुरेन्द्र, एक दूनी एक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987
6. वर्मा, सुरेन्द्र, आठवाँ सर्ग, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1992

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 317-318

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महाकवि बाणभट्ट कृत कादम्बरी का काव्यात्मक अनुशीलन

*उर्मिला मौर्या**

सारांश : *यह महाकवि बाण की दूसरी गद्यकृति है जो अधिक लोकप्रिय हुई है। दुर्भाग्यवश इसे स्वयं पूर्ण नहीं कर सके, उनके पुत्र भूषणभट्ट (या पुलिंद भट्ट) ने इसे पूरा किया। पुत्र ने पिता की शैली अपना ली तथा अधूरी कथा का सुंदर उपसंहार किया। इसका कथानक बृहत्कथा पर आश्रित है जो कथासरित्सागर (59/22–178) तथा बृहत्कथामंजरी (16/168) में अंकित है। जिस रूप में भूषणभट्ट ने इसका उपसंहार किया है, उसमें यहाँ तीन जन्मों की कथा प्राप्त होती है। इसका नायक प्रथम जन्म में चंद्रमा, द्वितीय जन्म में चन्द्रापीड और तृतीय जन्म में विदिशा का राजा शूद्रक बनता है जिससे कादम्बरी का आरम्भ होता है।*

मुख्य शब्द :

1. *कथासरित्सागर के उनसठवें तरंग के मकरन्दिका वृत्तान्त– सोमदेव*
2. *बृहत्कथा–गुणाढ्य*

कुछ पाश्चात्त्य संस्कृत–आलोचकों को छोड़कर इस विषय में किसी को संदेह नहीं है कि बाणभट्ट संस्कृत–साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गद्यकवि हैं। साहित्य में जिस प्रकार उनका स्थान संदेह से परे है उसी प्रकार उनका इतिवृत्त और उनकी कृतियाँ भी असंदिग्ध हैं। इसका कारण है उनके आश्रयदाता हर्षवर्धन का ऐतिहासिक व्यक्ति होना, उनकी कृतियों में वर्णित घटनाओं का अन्य बहिःसाक्ष्यों द्वारा प्रमाणीकरण तथा हर्षचरितम् के आदिम ढाई उच्छ्वासों में प्रस्तुत उनका आत्मचरित। हर्षचरितम् के प्रथम उच्छ्वास में वाण के वंश का परिचय इस प्रकार मिलता है :

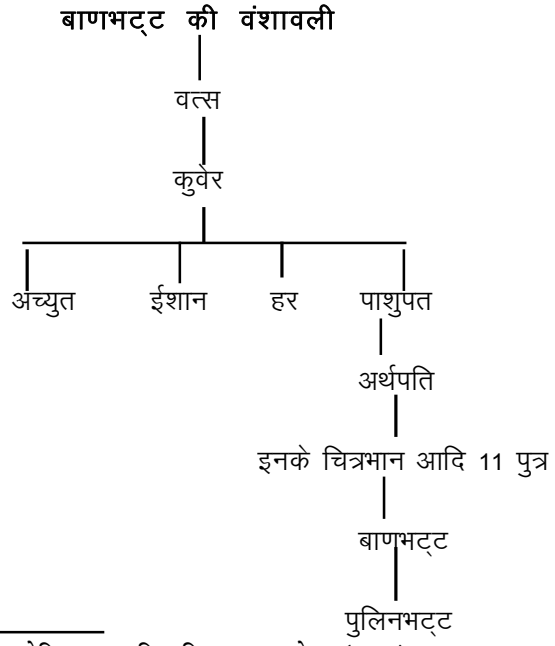

* *शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)*

बाणभट्ट की कृतियाँ : महाकवि की पाँच कृतियाँ प्रसिद्ध हैं–

(1) हर्षचरित, (2) कादम्बरी, (3) पार्वतीपरिणय, (नाटक) (4) चण्डीशतक और (5) मुकुटताडितक।

बाण के समय से ही चार प्रकार की गद्य–शैलियाँ चल पड़ी थीं, जिनमें बाण के साहित्य में तीन मिलती हैं; जैसे एक दीर्घ समास वाली दूसरी अल्प समास वाली, तीसरी समास–रहित। लंबे लंबे समासों वाली शैली को उत्कलिका, छोटे छोटे समासों वाली शैली को चूर्णक और समासरहित शैली को आबिद्ध कहते हैं। बाण को इन तीनों शैलियों में सफलता प्राप्त थी।

बाण स्वयं कादम्बरी में उत्कृष्ट शैली की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं– ''उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्।।'' अर्थात् नाना प्रकार के वर्षों द्वारा नये अर्थ–समूह का प्रतिपादन करने वाला गद्य उत्कृष्ट होता है अथवा वह उत्कृष्ट कवि द्वारा लिखा जाता है।

रीति की दृष्टि से वाण में पाञ्चाली रीति का प्राधुर्य है सरस्वतीकण्ठा–भरण में स्वयं भोजराज ने इसे स्वीकार किया है–

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

बाण का शब्दकोष असाधारण रूप से विशाल है। उन्होंने जिस प्रकार समास–बहुल लंबे–लंबे वाक्यों का प्रयोग किया है उसी प्रकार समास–रहित छोटे–छोटे वाक्यों के प्रयोग में भी कौशल दिखलाया है–

''न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुल–क्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति।" *(कादम्बरी–शुकनासोपदेश)*

उपसंहार–उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि बाणभट्ट की कादम्बरी काव्यात्मक अनुशीलन की दृष्टि से उच्च कोटि का काव्य है, महाकवि बाणभट्ट के जीवन वृत्त तथा वंश का परिचय भूमिका भाग में वर्णित है इनके जन्म व वंश के विषय में कोई सन्देह नहीं है तथा बाण की रचनाओं और काव्य की विशेषताओं वर्णन गया है। बाण की रचनाओं का महत्त्व उनकी कला–पक्ष और भाव पक्ष दोनों के ही कारण हैं।

बाण की काव्य–प्रतिभा या कल्पना शक्ति उत्तमकोटि की है। उनकी सच्ची काव्य–प्रतिभा, गद्य काव्य के माध्यम से ही सहृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करती है । बाणकी एकमात्र उपन्यास रचना कादम्बरी समग्र संस्कृत–साहित्य में उपन्यास के अभाव की पूर्ति करती है। कादम्बरी के साहित्यिक मूल्यांकन से सिद्ध है कि उसकी कथावस्तु बहुत विस्तृत एवं कल्पनाशील व रोमांचकारी है। कादम्बरी की कथाओं का मुख्य तत्व विशुद्ध प्रेम है। और कादम्बरी की कथा का अन्त सुखान्त होता है। जो काव्य की परिपक्वता को दर्शाता है। अद्वितीय प्रतिभाशाली बाणभट्ट की प्रशंसा में यह उक्ति सर्वथा विख्यात है। ''बाणोछिष्टंजगत्सर्वम्''। अर्थात् सम्पूर्ण काव्य जगत बाण का उछिष्ट है। कादम्बरी भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हर्षचरित से उत्कृष्ट है। अतएव यह उचित ही कहा गया है कि कादम्बरी के रसज्ञों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता– ''कादम्बरीरसज्ञानामाहारौपिनरोचते''।

संदर्भ–सूची

1. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. उमाशंकर ऋषि, संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. तारिणीश झा, कादम्बरी कथामुख–प्रकरण
4. इन्साइक्लोपीडिया
5. प्रतियोगिता साहित्य सीरीज

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 319-321

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

डॉ. उमेश प्रसाद सिंह के ललित निबंध

*उषा विश्वकर्मा**

शोध सार–*ललित निबंध विधा को हिन्दी साहित्य के जिन निबंधकारों ने लेखनी से समृद्ध किया है। उसकी अग्रिम पंक्ति के डॉ. उमेश प्रसाद सिंह भी एक ललित निबंधकार हैं जिन्होंने अपने ललित निबंध संग्रहों 'भारत की नई राष्ट्र भाषा', 'हवा कुछ कह रही है', 'रास्ते फिसल रहे है', 'नदी सूखने की सदी में' आदि के माध्यम से आपने इन निबंधों में भारतीय संस्कृति के विविध चित्रों का चित्रांकन किया है। ललित निबंध अपनी भाव विचार मूलक अभिव्यक्ति से एक पूर्ण रचनात्मक अस्तित्व रखता है। इन निबंधों में डॉ. उमेश प्रसाद सिंह ने संस्कृति की अभिव्यक्ति और मानव मूल्यों को संरक्षित कर अपनी लेखनी को समृद्ध किया है। ललित निबंध आत्मपरकता, व्यक्तिव्यंक, काव्यात्मक सौन्दर्य, स्वत्रंत अस्तित्व, लालित्य और मनोरमता के कारण एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी बने हुए है। इसके साथ ही इन निबंधों में सहज सम्पुष्ट अंलकृत भाषा का प्रयोग भी विशिष्ट है।*

मुख्य शब्द–*ललित निबंध, लालित्य, अंलकृत, प्रबंधन, मिथक, सृजनात्मक।*

भूमिका–हिन्दी निबंधों में ललित निबंध भाव तत्व प्रधान होता है। विचार भाव के अन्दर ही प्रकट होता है। ललित निबंधों में जो काव्यात्मकता है वह गद्य गीत के निकट है। इसमें लयात्मक सौन्दर्य, प्रबंधन, मिथक, भाषा ललित निबंध, अंलकृत, शीर्ष आदि की तकनीक भी प्रयुक्त होती है इसी कारण ललित निबंध अधिक स्वत्रंत और आत्मीय बन जाते है। हिन्दी के विद्वान आचार्यों ने इसीलिए ललित निबंध को सृजनात्मक विद्या माना है। ललित निबंधों में काव्यात्मकता और वैज्ञानिकता का समानान्तर प्रवाह होता रहता है। रस और बोध सम्पृक्त रचना ही ललित निबंध है। कुबेरनाथ राय ललित निबंध को शास्त्र और काव्य दोनों मानते हैं। ललित निबंध एक दृष्टि सम्पन्न विधा है। इसमें जीवन का दृष्टिकोण व्यक्त होता है। इसीलिए ललित निबंध अपने आप में स्वयं पूर्ण और सम्पूर्ण साहित्य की परिधि में हैं। ललित निबंध एक लालित्य बोध पर आधारित रहता है। इसमें सब कुछ प्रतिपादित करने का अधिकार होता है। रसात्मक सौन्दर्य की प्रधानता और निबंधकार का मन किसी विषय वस्तु के माध्यम से भाव तरंगों में लहराता और निजी उमंगों में विहार करता है साथ ही निबंध के समाप्त होने के साथ तरंगों का ज्वार भी समाप्त हो जाता है। रचनाकार जिस परिवेश को भोगता है वही उसका सौन्दर्य है। शैली और आकृति दोनों दृष्टियों से यह सर्वथा मुक्त विधा है। निबंध में लालित्य होना इसकी प्रमुख विशेषता है। ललित निबंधकार अपनी सांस्कृतिक चेतना से कटकर नहीं रह सकता। वैयक्तिता ललित निबंध की विशिष्ट विशेषता है। इसमें निबंधकार स्वयं प्रकट होकर पाठकों से तादम्य स्थापित कर लेता है। ललित निबंधों में विषय वस्तु की विवेचना रचनाकार के व्यक्तित्व में लीन हो जाती है। कदाचित इसीलिए डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने इसे व्यक्ति व्यंजक नाम दिया होगा। ललित निबंध अनुभूति, विचार शैली और कल्पना तत्वों का समाहार है। हिन्दी के प्रमुख ललित निबंधकारों में भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. गुलाब राय, पदुमलाल बख्सी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार, डॉ. नगेन्द्र, महादेवी वर्मा, रामविलास शर्मा, प्रकाश चन्द्र गुप्त, अज्ञेय, विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, रामवृक्ष वेनीपुरी, हरिशंकर परसाई, भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. देवराज, कुबेरनाथ राय, मुनि विद्यानन्द जी, श्रीराम परिहार, श्याम सुन्दर दुबे, उमेश प्रसाद सिंह आदि–आदि की परम्परा निर्विघ्न है। उमेश प्रसाद सिंह के कतिपय ललित निबंध संग्रहों के संबंध में हिन्दी के विद्वानों में चन्द्रवली सिंह ने कहा है आपके ललित निबंधों में रूमानी संवेदना से ज्यादा महत्व की चीज उनका यथार्थ बोध है। इसी प्रकार ललित निबंधकार और भारतीय संस्कृति के पोषक विद्यानिवास मिश्र जी ने भी अपने वक्तव्य में कहा है कि उमेश प्रसाद सिंह अपने निबंधों में अपने समय का स्पन्दन ध्यान से सुनते चलते हैं इसीलिए

* *शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

आपके निबंधों में बनाऊपन कम है। भाषा में अनगढ़पन जरूर है पर सहजता भी स्पष्ट है। शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं उमेश प्रसाद सिंह की दृष्टि अपने निबंधों में यथार्थ जीवन से बराबर जुड़ी हुई है। वे अपने पेंचीदे और घुमावदार सवालों से टकराते है। यहाँ चिन्तन का स्वर साफ सुनाई पड़ता है। इसी प्रकार दिनेश कुशवाह जी कहते है कि इन निबंधों में हर कही एक भावुक विचारक का स्वप्नदर्शी और परिवर्तनकामी मन झांकता है।

विषय प्रस्तुतीकरण–ललित निबंधों में अनुभूति के द्वारा ललित निबंधकार उसके विषय का जो रस जुटाते हैं रस की यह अभिव्यक्ति जीवनगत सर्वत्र व्याप्त विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भो की परिचायक है। ललित निबंधकार अपने परिवेश से जुड़कर ही निबंध का सूक्ष्म अध्ययन करता है। स्वतंत्र होने के कारण परिस्थिति का प्रभाव ललित निबंधकार पर पड़ना स्वाभाविक या सहज ही है। भोगे हुए यथार्थ का चित्रण रचनाकार करता है और इसे रचनाकार अपनी उपलब्धि भी मानता है। डॉ. उमेश प्रसाद सिंह के ललित निबंध संग्रहों में 'हवा कुछ कह रही है' ऐसे ही निबंधों का सग्रह है। अपने दौर में उमेश प्रसाद सिंह का लेखन निबंध की पारम्परिक विरासत को नये आयामों में विकसित करने के लिए जाना गया है। आपके ललित निबंध प्रचलित रूपगत और ध्वनिगत अवधारणा को तोड़ते हुए निबंध है। विषय की व्यापकता चिंतन के विस्तृत फलक का स्वयं प्रमाण प्रस्तुत करती है। इसमें मिथक, इतिहास और समकालीन जीवन बोध अलग–अलग न होकर आपस में इस कदर संश्लिष्ट है। इस संग्रह के निबंध संस्कृति विमर्श के निबंध नही है बल्कि संस्कृति की जीवन्त सत्ता के अनुभव बोध के निबंध है। इस संग्रह में 'कुबेर का अभिशाप', 'बसंत बूढ़ा हो गया है', 'वसंत बीमार न हो', 'मानस राग', 'चाह के रंग मो चुनरी रँगइवों', 'आस्था का संकट' 'सूरज का संगीत', 'फिर–फिर मन बौराये', 'कटघरे का शेर' जैसे निबंधों में रचनाकार अपने गॉव के लोकजीवन के निकट जुड़ा हुआ दिखलाई देता है। उसके सारे रोमानी संस्कार और लोकजीवन के सौन्दर्य बोध का स्रोत गाँव का जीवन ही है। भारत के वर्तमान यथार्थ में जो शोषण, गरीबी, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार की तसवीर है वह रोमांच के अनुभव से अलग करती है। लेखक को वसंत बूढ़ा लगता है जबकि आवश्यकता जीवन में उमंग और उल्लास की है। इसी प्रकार 'रास्ते फिसल रहे है' के निबंधों में 'किसने तोडा', 'लापता प्रकाश' 'संविधान पर संकट', 'बादल सिर्फ पानी नही बरसते' 'राष्ट्रगान से बाहर होता राष्ट्र', 'सुन्दर की प्रतिष्ठा ही साहित्य का प्राण है', 'कबीरा खड़ा बाजार मे', 'जय बोलने का जनतंत्र', 'वसंत में सरस्वती की वेदना', 'अभिनय की प्रतिष्ठा' आदि में एक नया यथार्थ बोध दिखलाई देता है। इन निबंधों में चिंतन का परिप्रेक्ष्य व्यापक है। इनमें मनुष्य जाति की गौरवशाली विरासत की गरिमा का यशोगान भी है और सम्यक् जीवन के बिडम्बना बोध की गहन अभिव्यंजना भी है। भाषा में लालित्य और तीखी चुभन यत्र–तत्र सर्वत्र है। भारत की नई राष्ट्र भाषा निबंध ा संग्रह में 'सुख का संताप', 'हम गुलाम तो पैदा नही हुए थे', 'काल की राह में देहरी का दीप', 'पर्दा हटाओं', 'ठहर कर देखो', 'मैं अपने को खोज रहा हूँ', 'नये साल के इंतजार में', 'पाती मेरे नाम की', 'जीवन की पाठशाला में', 'अंजान क्षितिज का सहारा', 'ये वाण शिखण्डी के नही है' आदि निबंधों में डॉ. उमेश सिंह की रचना विकास यात्रा का उद्घोष दिखलाई पड़ता है। विषय की व्यापकता और चिंतन के विस्तृत फलक भी नजर आते है। इन निबंधों की भाषा में सांगीतिक संगति है। इसी प्रकार नदी सूखने की सदी निबंध संग्रह में 'मैं इन्द्रधनुष से खेलूंगा', 'रोशनी का रंग', 'गवाह', 'एक सांझ की ऊँचाई', 'अकाल की शताब्दी का बंजारा मन', 'मुक्ति की मर्यादा', 'झरना से छू जाने पर', 'कंचन मृग' आदि निबंधों में जीवन में निरन्तर खोते जा रहे भाई–चारेपन को बनाये रखने की चिंता चित्रित हुई है। इसी प्रकार मै तुम्हारा पता नही जानता निबंध संग्रह में 'सरस्वती के पुलिन पर', 'जिधर रास्ता नहीं जाता', 'कविता में आमंत्रण', 'आई लव यू', 'गड़बड़ रामायण', 'सोना माटी में जूलूस रूका है', 'सोने की फसल का सपना' आदि निबंधों में अपने समय में इतिहास की धरोहर की स्मृतियों के चिंतन पर शानदार भावों का अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों को यहाँ देखा जा सकता है। 'सुख क्या है?' वह प्रश्न पूछने वाला मेरे सामने मौजूद नहीं है, मगर मैं मर्माहत हूँ। अपने ज्ञान के अहंकार के अवगुंठन के हट जाने से हतप्रभ हूँ। बड़े–बड़े प्रश्नों के जबाव दे सकने के गुमान में फूला हुआ एक छोटे से प्रश्न के सम्मुख निरुत्तर हो जाने के अनुताप से जी विकल हो रहा है। मैं नही जानता यह प्रश्न आपको कैसा लगेगा? मगर, मैं ईश्वर से यह जरूर प्रार्थना करता हूँ कि यह प्रश्न एक बार जरूर आप सबके जीवन के सम्मुख आपकी राह रोककर जवाब मांगने खड़ा हो।

पंचवटी की कुटी में बैठे राम से जब प्रवृत्ति की प्राण सीता ही सुवर्ण–मृग को पाने का आग्रह करें तो राम भला उसे कैसे टाल सकते है। आंखों का प्रमाण, प्रिया का अनुरोध, सौन्दर्य का आकर्षण, अद्भुत की जिज्ञासा, नवीन सत्य शोध का आह्लाद–यह सब क्या इतना सहज आक्राम्य है कि मनुष्य तटस्थ रह सकता है? यदि रह सकता है तो क्या उसका 'मनुष्य' असंदिग्ध होगा? मनुष्य का स्वभाव सतत् परिवर्तन का अकांक्षी और उपासक

है। वह जड़ सत्य के मुकाबले छद्म परिवर्तन को भी अपनाने में नहीं हिचकता।

इसी प्रकार जब वे अपने निबंधों में किसी वस्तु या भाव का चित्रण करते है तो फिर वे उसकी सम्पूर्ण वोकवलरी प्रस्तुत करते चलते हैं। जैसे 'हिन्दी संकल्प और संघर्ष की भाषा है। मेहनत और ईमानदारी की भाषा है। वंचना के दर्द को सहने के साहस की भाषा है। स्वाधीनता में अडिग निष्ठा की भाषा है। राष्ट्रभक्ति की भाषा है। सहिष्णुता की भाषा है। बन्धुत्व की भाषा है। यह भाषा भारतीय राष्ट्र की आत्मा के प्रतीक किसानों की भाषा है। खेतों में धूप, वर्षा और जाड़े में समानभाव से अपनी तितिक्षा के बूते धरती का शृंगार करने वाले मजदूरों की भाषा है। बड़े–बड़े उद्योगों में अपनी छोटी–छोटी जरूरतों के लिये अपना पसीना बहाकर सम्यता की समृद्धि के लिये सामग्री तैयार करने वाले श्रमिकों की भाषा है। अपने अन्धविश्वासों के कारण झूठे आश्वासनों के झांसे में आकर अपने मतदान से सरकार बनाने वाले अत्यन्त साधारण लोगों की भाषा है।'

इसी प्रकार आज के उच्च शिक्षा के सर्वोच्य संस्थानों में पढ़ाने वाले आचार्यों पर उनके विचारो को देखा जा सकता है। 'आचार्य जी का स्पष्ट विचार था कि सूर के संयोग शृंगार के पदों को क्लास में पढ़ाना वाहियात है। उनका विश्वास था कि अच्छी पढ़ाई के लिए एक खुली प्रयोगशाला होनी चाहिए। इसमें एक छोटी सी जमुना, तटों पर छोटे–छोटे तमाल। कुछ करील की झाड़ियाँ, कुछ कदंब के पेड़ होने चाहिए। यहाँ एक अदद राधा हों। दस–पचास राधा की सखियाँ हों। खुद आचार्य कृष्ण हों और सारे छात्र ग्वाल–बाल, तब कहीं जाकर कुछ बात बने। उन्होंने कई बार बताया था कि वे इस आशय की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को भेज चुके है। लोग कहते थे, व्यवस्था में आचार्य की पकड़ बड़ी गहरी है। पता नहीं उस योजना पर क्या विचार हुआ।' यहाँ आज की शिक्षा और शैक्षणिक संस्थानों की गिरावट का उच्च स्तरीय चित्रण है।

इसी प्रकार अपने एक ओर अन्य ललित निबंध संग्रह के निबंध में डॉ. उमेश प्रसाद सिंह जी कहते है–'अब साध तो साध ही है। साध का क्या कहना। साध चाहे जैसी भी हो–चाहे दुःसाध्य हो, चाहे श्रमसाध्य हो, चाहे सहज साध्य हो, चाहे असाध्य, ही क्यों न हो, मगर सबका स्वभाव एक सा ही है। बड़ा मधुर स्वभाव होता है साध का। बड़ा मीठा आस्वाद होता है साध का। बड़ा उत्फुल्ल बड़ा सुगन्धिमय अस्तित्व है साध का। बस जनम भर ले ले मन में। फिर क्या। फिर महक उठता है तन–मन, महमह। रोम–रोम में फूट पड़ती है, एक रस की धारा। धारा अपने में आप्लावित कर लेती है। आंखों में सपने, सपनों में रंग, रंग में रोशनी और भी न जाने क्या–क्या, आने लगता है अपने आप। जी को उमगाने लगता है। साध जीवन को एक उमंग से भर देती है।

उपसंहार–निश्चित रूप से डॉ. उमेश प्रसाद सिंह के ललित निबंधों में प्रचलित रूपगत और ध्वनिगत अवधारणा टूटती है। अर्थव्यंजना के नये रास्तों की तलाश का जोखिम भरा उत्साह यहाँ मिलता है। इन निबंधों में संस्कृति की जीवन्त सत्ता के अनुभव बोध उपस्थित है। समकालीन राष्ट्रीय जनजीवन की वेदना का गान इनमें साफ सुनाई पड़ता है। इन निबंधों के केन्द्र में मनुष्य की जीवन स्थितियाँ है। गहरी रागात्मक संवेदना है। सूक्ष्म विडम्बना बोध है। प्रकृति के साथ आत्मिक संबंध है। राष्ट्रीय उत्थान की ललक है। जातीय जीवन का गौरव बोध है। अपने समय की सम्यक समझ है। आपके ये ललित निबंध सामयिक, सार्थक और प्रासंगिक होने के साथ–साथ प्रेरणास्प्रद मार्गदर्शन करने वाले भी है।

संदर्भ–सूची

1. कुबेरनाथ राय, दृष्टि अभिसार, भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984
2. डॉ. श्री देवी, कुबेरनाथ राय के ललित निबंध एक अध्ययन, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, संस्करण 2014
3. डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, रास्ते फिसल रहे हैं, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम 2018
4. डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, हवा कुछ कह रही है, विचारण चन्दवक, जौनपुर, प्रथम 1990
5. डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, भारत की नई राष्ट्र भाषा, विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली, प्रथम 2016
6. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण नौ, 2023
7. डॉ. विवेक शंकर, हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अभिनव इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2017
8. डॉ. जयकिशन प्रसाद, हिन्दी साहित्य की प्रवत्तियाँ, खण्डेलवाल., अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2013–2014

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 322-324

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नारी की सामाजिक स्थिति

*डॉ. मोनिका कुमारी**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका पालन पोषण समाज में होता है और वह अपनी मानसिक खुराक भी समाज से ही प्राप्त करता है। साहित्यकार समाज का प्राणी होता है। वह तत्कालीन समाज की रीति–नीति, धर्म–कर्म, विचार–व्यवहार और वातावरण से ही अपने सृजन के लिए प्रेरणा ग्रहण करता है। वह संवेदनशील होने के नाते अपनी कला की छाप समाज पर छोड़े बिना नहीं रह सकता। है। उसी समाज का वह चित्रण करता है। अपने समाज के परिदृश्य से परे वह अपनी रचना का ताना–बाना नहीं बुन सकता। साहित्यकार अपने समाज का प्रतिनिधि होता है। वह वही कहता है जिसको वह लोग अनुभव करते हैं, लेकिन जिनको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव शक्ति औरों से बढ़ी–चढ़ी होती है, जहाँ उसे किसी बात की क्षीण–से–क्षीण रेखा दिखाई पड़ी वह उसके आधार पर पूरा चित्र खींच डालता है। साथ ही, वह समाज को अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व के आधार पर नये भाव और विचार भी प्रदान करता है। इस प्रकार समाज साहित्यकार को जन्म देता है और साहित्यकार समाज को परिस्कृत कर सुदृढ़ बनाता है। दोनों में आदान–प्रदान तथा क्रिया–प्रतिक्रिया का भाव चलता रहता है। यही सामाजिक उन्नति का नियामक सूत्र बनता है।

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास साहित्य में जिस समाज का चित्रण किया है वह स्वतंत्रता पूर्व से लेकर 20वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक फैला है। यह समाज भारत विभाजन की विभीषिका भी सहता है और इसे आधुनिक युग की आँधी में भी सम्मिलित होना पड़ता है। ग्राम्य एवं शहरी दोनों प्रकार के समाज का वर्णन राही जी ने अपने औपन्यासिक साहित्य में अपने परिकल्पित पात्रों के माध्यम से किया है। राही जी समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक बल देते हैं। वे उस व्यवस्था को नकारते हैं, जिसमें व्यक्ति का अपना कोई निजी अस्तित्व न हो और वह अपनी इच्छानुसार कोई कार्य न कर सके।[1]

राही मासूम रज़ा अपने समाज के प्रति सजग, सचेत और संवेदनशील है। विपरीत परिस्थितियों को झेलने के बाबजूद उसमें सामाजिक उदासीनता नहीं आयी, बल्कि उनकी सामाजिक चेतना दृढ़ से दृढ़तर होती गयी। अपने उपन्यासों में उन्होंने विविध सामाजिक पहलुओं का स्वाभाविक चित्रण किया है। सामाजिक समस्याओं और स्थितियों के प्रति रज़ा का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। वे हर समस्या के मूल में जाकर उन कारणों की पड़ताल करते हैं, जिसमें वे समस्याएँ पैदा होती है। समाज में ऐसी अनेक समस्याएँ हैं जिनका रूप सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात ही सामने आता है। राही की सामाजिक चेतना ने ऐसी ही समस्याओं को खोज निकाला है और उन समस्याओं के प्रति अपना मत भी व्यक्त किया है। स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक संरचना का विस्तृत निरूपण इन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। रचनाकार का यह मत है कि स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय समाज में अतिवादी

प्रवृत्तियाँ सर उठाने लगी और भारतीय समाज अब भी जाति–व्यवस्था, रूढ़िवाद, अस्पृश्यता आदि से अपने को मुक्त नहीं कर सका है। हमारे यहाँ शिक्षा–नीति भी अस्थिर और उपेक्षित रही है। यही कारण है कि शिक्षित बेकारों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। समाज में दहेज प्रथा, विधवा–प्रथा , वेश्यावृत्ति जैसी भयंकर समस्याएँ विकराल रूप धारण करती जा रही है। देश में हर तरफ उच्छृंखलता और अनाचार की समस्या बढ़ती जा रही है। इन तमाम सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में रज़ा के उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

'आधा गाँव' उपन्यास में राही मासूम रज़ा ने नारी जाति की सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। समाज में नारियों की स्थिति भी दयनीय रही है। उसका समाज में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है और न ही

* *अतिथि प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, महिला महाविद्यालय, खगड़िया*

सामाजिक सरोकारों में या पारिवारिक निर्णयों में उसकी कोई भूमिका है। इस उपन्यास में उन्होंने स्पष्ट किया है कि पुरुष सत्ता के विधान के विपरीत जिसने भी कदम उठाये उसे जीवन पर्यन्त जिल्लत झेलनी पड़ी। 'आधा गाँव' रज़ा के इस उपन्यास में प्रेम विवाह का स्वाभाविक चित्र खींचा गया है। समाज में आज भी प्रेम–विवाह को सहज स्वीकृति नहीं है। प्रेम विवाह प्रायः सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर एक समस्या बनकर उभरती है। क्योंकि प्रेम की परिणिति विवाह के बाद सफल और सुखी जीवन में होगी, यह कहा नहीं जा सकता। सबसे पहले तो प्रेम–विवाह को पर्याप्त सामाजिक समर्थन नहीं मिलता। दूसरा प्रेमी–प्रेमिका के विवाह के पूर्व जो प्रेम का आवेग दिखाई देता है वह गृहस्थ जीवन के शुरू होते ही मन्द पड़ने लगता है। दायित्व का बोझ आते ही दूसरे के दोष खुलकर सामने आते हैं और वे दोष एक दूसरे को खटकने लगते हैं। उपन्यास में रज़ा ने मेजर तन्नू के प्रेम–विवाह को सामने रखकर प्रेम विवाह संबंधी अपने विचार व्यक्त किये हैं। तन्नू अपने चचेरी बहन सईदा से प्यार करता है और युद्ध के समय उससे दूर होने पर वह उसे भूलता नहीं। जब वह युद्ध से वापस आता है, संकोचवश अपने प्रेम को सईदा के सामने कह नहीं पाता। ''वह भला कैसे लिखता कि सईदा, मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ। क्योंकि सईदा तड़ से कह सकती है कि यह कोई खास बात नहीं हुई, क्योंकि हर भाई अपनी बहिन से मुहब्बत करता है।''[2] कुछ दिनों के बाद तन्नू का विवाह सलमा से हो जाता है। इस विवाह से यही सिद्ध होता है कि आदर्श विवाह को सामाजिक समर्थन मिल जाता है और सईदा की मुहब्बत उसके दिल में ही दफन हो जाती है। ऐसी स्थिति में पुरूष तो अपना नया रास्ता चुन लेता है, किन्तु भावनात्मक स्तर पर अधिक संवेदनशील होने के कारण के समझ अनेक चुनौतियाँ खड़ी हो जाती हैं। समाज के बीच उसे उपेक्षा का दंश झेलना पड़ता है।

राही मासूम रज़ा साम्प्रदायिकता की भाँति भारतीय नारियों की विषम सामाजिक दशा के प्रति भी सजग रहे हैं। खासकर वेश्यावृत्ति जिस रूप में यहाँ व्याप्त है और नारियों के अस्तित्व को छिन्न–भिन्न कर दिया है। उसे रचनाकार ने अपने प्रायः उपन्यासों में चित्रित किया है। 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास में उन्होंने महानगरी बंबई की सड़कों पर देह व्यापार करने वाली नारियों की दयनीय दशा का वर्णन किया है। ''जमना कमल के चित्रण से ऐसा लगता है कि बंबई जैसी महानगरी की फुटपाथ पर जीवन बिताने वाली इन नारियों की आर्थिक स्थिति अत्यंत विषम है। अशिक्षा और गरीबी इनकी दयनीय स्थिति का कारण है।''[3] आधा गाँव, हिम्मत जौनपुरी, सीन 75 उपन्यास में वेश्यावृत्ति से जुड़ी महिलाओं ने अपने मनुष्य होने के अस्तित्व का गला घोंट दिया है, उसका देह व्यापार हमारे समाज पर करारा तमाचा है।

देह व्यापार करना किसी भी नारी को पसंद नहीं। मगर विवशता है कि वह इस व्यवसाय से जुड़ी है। अपनी देह को गंदगी से जुड़वाकर किस स्त्री को सुख मिलता है? यह तो उसके जीवन की विडम्बना है, उनकी मजबूरी है, जिस कारण इस घृणित कार्य में ये लोग लग जाते हैं। रचनाकार नारी की इस विडम्बना को सामाजिक संरचना में उकेरते हैं। यहाँ राही जी का मानना है कि सामाजिक दृष्टि में परिवर्तन के बिना इस वीभत्स सामाजिक विषमता को मिटाना कठिन है।

'टोपी शुक्ला' उपन्यास में वैवाहित संस्कार की स्थिति को भी चित्रित किया है। हिन्दू–मुस्लिम के बीच प्रेम , विवाह में परिणत नहीं हुए, जैसा कि टोपी के विषय में हुआ। ''टोपी उस समय वेटिंग रूम में बैठा सलीमा को खत लिख रहा था– तुम चाहो तो यह खत मुमताज आपा को दिखा दाग। और वह चाहे तो मेरा रस्टिकेशन करवा दें। तुम कह सकती हो कि तुम मुसलमान हो और मैं हिंदू। बच्चे बहुत चितकबरे होंगें। परन्तु क्या यह नहीं हो सकता कि बच्चों की बात हम बच्चों पर ही छोड़ दें? जीवन में इस प्रकार की खतों का कोई गुंजाइश नहीं। परन्तु यह खत लिखकर सीने का बोझ हल्का हो गया।''[4] यहाँ स्पष्ट है कि हमारे देश का सामाजिक वातावरण अंतरजातीय विवाह के अनुकूल नहीं है।

'ओस की बूँद' उपन्यास में भी साम्प्रदायिकता और उससे उपजी सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त किया गया है। 'शहला' साम्प्रदायिकता का शिकार होती है। दंगाईयों द्वारा कुचली जाती है। दंगाई दंगा करते हैं और दंगा करने वाले अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। रक्षक का ढोंग रचकर भक्षक बन जाते हैं। वास्तविकता अंधेरे में गुम हो जाती है, सूरज 'ओस की बूँद' ढूँढ़ता रह जाता है। देश–विभाजन की त्रासदी की भेंट नारी समाज चढ़ी है। रज़ा ऐसा कहलवाकर शहला जैसे नारियों में स्वयं को मजबूत बनने के लिए प्रेरणा का भाव जागृत करवाते हैं– ''अंजाम कुछ भी हो ठाकुर साहब, आप मुझे छूने वाले पहले आदमी रहेंगे। यह जो बेहाल शाह बैठा हुआ था, यह भी मुझे छूना चाहता है। लेकिन मैं कुरान नहीं हूँ जिसे हर मुसलमान आँखों से लगा सकता है चूम सकता है और गले में डालकर घूम सकता है। मैं एक लड़की हूँ और मुझे सिर्फ वही छू सकता है जिसे मैं छूने की इजाजत दूँगी।[5]

आपातकाल के पश्चात प्रकाशित 'कटरा बी आर्जू' रज़ा का यह उपन्यास जन सामान्य की वास्तविकता का कच्चा चिट्ठा है। देश में आपातकाल लागू होने पर सामान्य लोगों की सामान्य लालसाओं को जिस क्रूरता से कुचला गया, उसका यथार्थ निरूपण इस उपन्यास में किया है। जिन बुद्धिजीवियों ने आपातकाल का विरोध किया था, उनमें से एक राही मासूम रज़ा भी थे। इस समय देश के न्यायालयों में जो न्याय मिल रहा था, उस न्याय को लेकर भी लेखक ने उँगली उठाई है। देश की जरूरत आपातकाल की रही हो या नहीं, किन्तु इस देश की आम जनता के लिए आपातकाल निश्चित तौर पर महाकाल था। वास्तव में आपातकाल इस देश का काला इतिहास है। इस उपन्यास का घटनास्थल भले ही इलाहाबाद का एक सामान्य मुहल्ला कटरा है किन्तु तत्कालीन भारत की सभी बस्तियों की कहानी है। ''सरकार चाहे नेहरू की हो, चाहे लाल बहादुर की चाहे गाँधी की सरकार पूँजीवाद की दलाल और जनता की दुश्मन है। बजट चाहे मोरार जी बनाये, चाहे सुब्रहामण्यम–काँग्रेस सरकार का हर बजट जनता को लूटने वाला और पूँजी के बड़े घरानों का मददगार है।''[6] आपातकाल के दौरान सड़क चौड़ीकरण के नाम पर घरों को तोड़ने का सिलसिला चला। बिल्लो का भी घर टूटा। किसी ने भी विरोध नहीं किया। परन्तु बिल्लो ने घर बचाने के लिए जान दे दी। इस स्थिति का सबसे अधिक प्रभाव नारी समाज पर पड़ा दिखता है। समाज में जो घटित होता है उसका सीधा असर घर–आँगन की नारियों पर पड़ता है।

निष्कर्ष–इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वांतत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक संरचना के विविध पहलुओं को रज़ा ने अपने उपन्यासों में सशक्त अभिव्यक्ति दी है। हमारे समाज में विघटन मान्यताओं, मूल्यों एवं भावनाओं का है। वर्त्तमान संस्कृति की तीव्र गतिशीलता एवं स्थानांतरण प्रवृत्ति ने सामाजिक और पारिवारिक संबंधों को तोड़ दिया है। वस्तुतः नाश एवं निर्माण का यह क्रम चलता ही रहेगा। तात्पर्य यह कि रूढ़ परम्परा का टूटना ही जीवन मूल्यों का निर्माण करना है।

देश विभाजन के उपरांत भारतीय समाज को साम्प्रदायकिता ने बड़ा आघात पहुँचाया। रज़ा के प्रायः सभी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की विभीषिका का सशक्त चित्रण हुआ है। राही ने साम्प्रदायिक घटनाओं के विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट किया है कि ऐसे अवसरों पर अबोध जनता को ही कष्ट सहना पड़ता है। अतः विसंगति का निदान जन जागृति से ही संभव है।

भारतीय नारी की मनःस्थिति समाज में परिवर्तित दिखलाई देती है। रज़ा के उपन्यासों में नारी को स्वछंद भावना एवं उनके जीवन में आ रहे बदलावों को सहज एवं स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है। इस परिवर्तन के क्रम में कुछ विकृतियाँ भी आयी है। अप्राकृतिक यौन–संबंध उसी विकृति का परिणाम है । यह विकृति शिक्षित–अशिक्षित, निम्नस्तर के लोग तथ उच्च पदाधिकारी सभी में समान रूप से पायी जाती है। उनके उपन्यासों का स्वर समाज की अनेक समस्याओं को लेकर मुखर है। भारतीय जीवन की अधिकांश समस्याएँ उनकी लेखनी का विषय बनी है। विषय वस्तु की व्यापकता और असीम परिधि के कारण ही उनके उपन्यास हिन्दी साहित्य का अपरिहार्य अंग बन गये हैं।

संदर्भ–सूची

1. राकेश नारायण द्विवेदी, राही मासूम रज़ा और उनके औपन्यासिक पात्र, संस्करण द्वितीय 2019, पृ. 100
2. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृ. 19
3. राही मासूम रज़ा, हिम्मत जौनपुरी, वही, पृ. 116
4. राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृ. 115–116
5. राही मासूम रज़ा, ओस की बूँद, पृ. 101
6. राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्जू, पृ. 15

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 325-328

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Some Glimpses of Buddhism and Its Evidence in Uttarakhand

*Prof. (Major) Vimlesh Kumar Pandey**

Uttarakhand & devabhumi (Land of Gods) also known as Uttaranchal consists of 13 districts, is a state in Northern India which is bordered by Himachal Pradesh to the north-west, Tibet to the North, Nepal to the East, Uttarpradesh to the south and south east, with a small part touching Hariyana in the west. The state is divided into two division Garhwal and Kumaun. Previously the state was a part of Uttar Pradesh till 8 November 2000. The state is often referred to as the Devbhumi due to its religious significance and numerous Hindu temple and pilgrimage centres found throughout the state like- Badrinath, Kedarnath,Gomukh, Gangotri and Yamunotri.

Although all around of the state, Kashmir-Ladakh in the west to the Arunachal in the east, including the sovereign states of the Bhutan and the Nepal have been the cradle of Buddhism where the practice of the religion is still and the material evidence are found, but surprising to note that Uttarakhand, Bordering the Himalaya,Seems to be the exception to this general position. There is practically no Buddhist population today in this part of the himalayan border and the material evidence at our disposal is also very scanty to prove that Buddhism had a strong hold here in the past.

According to the Gazetteers of Kumaun and Garhwal[1] there were no Buddhist in Almora Pithoragarh Garhwal Paudi Chamoli Nainital and Kumaun district in 1901, thus, the state remained predominantly Hindu in religious-Composition for centuries. In spite of basically Hindu character of the state it can not be denied that social-religious fabric of the area is an amalgam of Hindu-Bhuddhist beliefs with traces of tantrism and there is evidence - how so ever small it may be - to show that Buddhism was once practiced in this area- Regarding the religious faith of kumaunies Nevill[2] wrote that- "It may be said to consist of a fusion of puranic, the buddhistic and animistic ideas. They fully believe in the law of karma…, these beliefs allow the people to bear the greatest afflictions with a philosophic calm-a truelly buddhistic idea which shows that a strong hold of buddhistic influence still posesses in these parts"[3]. supporting these views Atkinson states that- "in discussing the history of religion we find a curious blending of pre Brahmanical and buddhistic practice which it will take some time and attention to separate and ascribe to their original sources"[4].

It is not safe to say clearly about the prevalence of Buddhism in Uttarakhand because the information regarding is not much available. But it is not totally absent, and one can see through whatever little information is available a moderately good Buddhist past of the region. That Buddhism held sway, though to a small degree, over the border areas of Uttarakhand is attested by literary and archaeological evidence also regarding the fact Atkinson wrote- "Buddhism was fairly established in Kumaon in the seventh century, but between date of Hiuen Tsang's visit towards the middle of seventh century and the period in which Shankaracharya flourished such changes occurred that after his time hardly a

* *Professor, Dept. of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, S.B. P. G. College, Badlapur, Jaunpur (UP)*

single Buddhist temple remained in the region. The local tradition is on the point, and it follows that if the institutions established by Shankaracharya survive to the present day, the Buddhist must have succumbed either before his time or through his influence[5]. We shall latter see Buddhism existed in Uttarakhand up to 10th-11th centuries A.D. and, therefore, this widely held belief that Shankaracharya ditched Buddhism here is not correct. Even Atkinson is not sure about the role of Shankaracharya. The fact is that Buddhism at all most disappeared from Uttarakhand when shankaracharya preached and in spite of the Shankaracharya the religion of Buddha in the dying state continued for some more time.

The fact is to believe that there was Buddhist population in and around the foot hills of Shivalik range of the Himalaya from pre Christian days. We all know that Ashoka selected Kalsi (Dehradun) for the display of the set of is 14 major rock edicts. It may also be noted that Hiuen Tsang visited shrughna in the middle of 7th century A.D. and found Buddhist population there. Shrughna has been identified with the ruins of sughon the right bank of river Yamuna in Saharanpur district. Kalsi is not far away from shrughna.

Historical facts states that the empire of Kannauj at the time of Harshvardhan extended up to Kumaun and Garhwal region.[6] this fact is based on the narrative of Hiuen Tsang. As regards Tibet, Rahul Sankrityayan is of the view that after the death of harshvardhana, when the empire of Kannauj began to disintegrate, the northern parts of the empire including Kumaun and Garhwal districts came under the control of the descendants of Bhandi-the army chief of Harshvardhana. But they could not retain these Himalayan territories under them late in the 8th century A.D. and the region in question passed on to the powerful kingdom of Tibet where in it remained up to the first quarter of 9th century A.D. . Subsequently, this area became part of the kingdom of Palas of Bengal. Inclusion of parts of Uttarakhand in the empire of Kannauj and Tibet must have influenced region and culture of the people of Kumaun and Garhwal considerably and Buddhism must have received grate push.[7] On the basis of iconographic evidence Buddhism flourished here up to 10th-11th centuries A.D. This incidentally also proves that Shankaracharya is not the cause of destruction of Buddhism of Uttarakhand. It may also be noted that Buddhism was never a dominating religion in this region.

Hiuen Tsang, in the course of his travel, reached shrughna from Thaneshwra crossing Ganga to the Mandavar (Bijnaur). There from he went to Mayura or Mayapura (Haridwar) and thence to Brahmpura which lay 80kms north to Mandavar. According Cunningham. "the northern direction is certainly erroneous, as it would have carried the pilgrim across the Ganges and the back again into shrughna, we therefore read north-east, in which direction lie the districts of Garhwal and Kumaun that once formed the famous kingdom of katyuri dynasty.[8] That, this the country intended by the pilgrim is proved by the fact that it produced copper, which must refer to the well-known copper, ones of Dhampur and Pokhari in Garhwal and Kumaun, it tallies will with the description of Hiuen Tsnag who states that this territory was surrounded by all sides by mountains. The climate (of this country) is slightly cold and the people are rough in their manners; a few devote themselves to literature, but the greater number prefer the pursuit of commerce. The inhabitants are naturally uncultivated, and there flowers of both two Buddhist and Brahmanical faiths. There are five monasteries within which reside a few monks and there are some dozen temples of the Gods.[9] According the imperial gazetteer of India the part of Garhwal was probably included in the kingdom of Brahmpura referred to by the Hiuen Tsang. Brahmpura is identified with Barahat in the Bhagirathi valley of Garhwal (Uttarkashi) where he had an ancient and well known sight almost exactly 80kms due north of Haridwar. It has also been identified with Srinagar in Garhwal.[10]

Weakening the rule of Tibet and after the fall of Harsha's empire, The parts of Uttarakhand fell into the kingdom of Pala dynasty of Bengal in 10th-11th centuries. The fact is attested by the discovery of Pandukeshwar Plates.[11] The earlier rulers of Pala dynasty where great patrons of Buddhism though later once were Shaivas and Vaishanavas.

Although the Chinese traveller described some monasteries situated in the kingdom of Brahmpura, but surprisingly there are not know to archaeologists and the prevalence of Buddhism in the region has also not left any trace of its existence. May be one day the material evidence of these monasteries may come forth due to efforts of explorers and by the spade of archaeologists. By the excavation of a Buddhist stupa[12] in Purola (uttarkashi) PGW, Grey Ware, Red Ware and associated pottery of Mouryan period was recovered first time in the region- 15 x 12m brick built structure of stupa was made of 54x45cms large bricks. Few Kuninda copper coins[13] (dated 2nd century BC to 2nd century AD), a Bodhisattava image and some other objects were also recovered. It is obviously a rare discovery and is a first of its kind in the entire Himalaya region.[14] It appears that the whole of Yamuna valley was a locality of Buddhist between Mouryan and Kushan periods. The stupa in question is said to be cruciform in shape which is supposed to be unique. Besides aforesaid stupa, Buddhist antiquities have been discovered at Moradhwaj (Bijnor) also not far away from Haradwara, which has already been reported by Nevill saying- "There can be no doubt that the site is very ancient and the whole country round for several miles is covered with traces of ruined buildings…Within fort towards the middle of the eastern side, is a large mound, locally known by the name Shigri, and this has been conjectured to be a Buddhist stupa though no proper excavation has yet been attempted.[15]

Although there are not much material evidence regarding Buddhism available in the hills of Kumaon and Garhwal, but some images in Uttarkashi, Tungnath, Lata, Barahat (Uttarkashi), Mana, Naulachatti (Chamoli), Almora and Bageshwar (Almora), Srinagar (Pauri) are found which provide reasonable good information about Buddhist connections of this region.

Close to Parashuram temple at Barahat (Uttarkashi), there is metallic image of Buddha worshipped as Dattatrey. From the inscription on the image it appears that it was dedicated by one Deva Bhattaraka Nagaraja. It is considered that the image was dedicated in the beginning of 11th century A D by Nagaraja, son of Khardev, king of Tibet.[16] Another metallic image of the Buddha measuring 22. 75 x 11cms is in Tungnath temple (Chamoli) which is in Yogasana and has two arms, longears, curled hairs and wears civara. The right hand is in earth touching pose (bhoomisparsh mudra) and the left hand is shown in the anjali mudra[17]. Similarly, two inscribed images of the Buddha have been explored in the village Late in Niti Valley near Joshimath (Chamoli). One of these images is 35cms high and is in meditation (dhyan mudra). The right hand of the image has been shown placed on the right leg while the left hand has been with a begging bowl. The curly hair and the civara are also noticeable. The second image is also in meditating pose with the hands shown in the yogic posture- From the inscriptions it appears that these images belong to the 10th century AD[18].

Another Buddha images which are defaces and uncleared due to weathering effect found in Mana village (nearBadrinath). The bronze image of Avlokiteshwara found at Srinagar (Pauri) has four hands and is 7.5 cms high and 10.2 cms wide. In this image the right hand has been shown in Anjali mudra and the left hand hold lotus flower. In the centre of the crown Amitabha Buddha is shown. The garment and jewellery indicate that of Bodhisattva.[19] It is pertiment to observe here that similar Bodhisattva images have been found in good number in the neighbouring state of Himachal Pradesh with which parts of Uttarakhand culturally related.

Our attention deserves an image of Goddess Tara] measuring 30*18.5 cms discovered from village Jakheta (3 km away from Kasaradevi, Almora town) in Kumaon hills. The goddess has two hands and is shown sittingin Yogic posture. She wears heavy jewellery. The right hand of the Goddess is shown bestowing the boon (varad mudra) and the left hand raised upto the bosom holds a lotus bud with stalk. On both sides of the image, we further find lotus buds. The hallow behind the image is shaped as a betel leaf. It is believed to be a 10th century AD image[20].

In Bageshwar (Almora) situated on the confluence of river Sarayu and Yamuna, which is an important pilgramagecentre of the Hindus, there is a cluster of temples constructed sometime 10th

11th and 12th centuries AD. Near the temple of Baganath, there are some broken images of various Gods and Goddess. One of these images which is mutilated is noteworthy. It appears to be the image of Buddha in hhis characteristic earth touching pose[21].

In the various places of Kumaon and Garhwal some scattered evidences of iconography which are discussed above, speak of the existence of Mahayana form of Buddhism. In this context, presence of a votive stupa at Naulachatti (Chamoli on the way to Kedarnath) assumes some significance. 85 cms high votive stupa is locally known as a monument connected with the king Nala of Mahabharat fame. This is obviously the Hinduisation of positively a Buddhist dedicative monument. The stupa belongs to 11th 12th century AD. The stupa in question is remarkable because it is the only votive stupa found in the region. As far as its situation is concerned it stands on the boundary wall of an old Katyury temple by the side of the present road. The temple stores many broken images of Hindu God and Goddesses and also has an inscription dated 1246 AD (Saka 1168) above the door jamb. Naulachatti seems to be a place of antiquity and it is no worder if the stupa in question was retrieved sometime in the past from adjoining fields and installed on the wall of the present temple.

Buddhist remains specially the images in Uttarakhand belog to a period not earlier than 10th-11th centuries AD. These evidences prove that Buddhism in its Mahayana form was introduced in this region quite late through Nepal. The vast planes of North India do not seem to have played any positive role in popularizing Buddhism in Uttarakhand after the reign of Kanishka because it was not on the way to Tibet from Nalanda, Vikramsila, are Swat valley, Taxila and Kasmira and this was perhaps the reason that Buddhist scholars and priests did not come here in the respectable number. In spite of the Buddhism flourished here along with Hinduism from the days of Asoka to 11th – 12th centuries AD. It must be clear that though the Buddha was accepted as one of the incarnations of Vishnu by the Hindus, the presence of Buddhist icons in Uttarakhand is not part Hindu pantheon.

References

1. Walton, H.G., Almora Gazetteer, vol. xxxv (1911), page 92
2. Ibid, page 56
3. Nevil, H.R., Nainital Gazetteer, vol. xxxiv (1910), page 100
4. Atkinson, E.T., The Himalayan Gazetteer, vol. 11, part 11, Cosmo Publication, Delhi, 1973 page 701
5. Ibid, part 1, page 463
6. Tripathi, R.S., History of Kannauj, Indian Book Shop Banaras 1937, page 116
Sankrityayana, Rahul, Himalaya Parichaya, Allahabad 1953, page 68
7. Sankrityayana, Rahul; Ibid, page 69-70, 112
8. Dabral, S.P., Sources of the History of Uttarakhand up to Katyuri Age, Garhwal, 2002
9. Atkinson, Ibid; page 453.
10. Garhwal Gazetteer, vol. xxxvi, 1910, page 113
11. Dabral, S.P.; Ibid
12. Nautiyal, K.P., The Archeology of Kumaon Including Dehradun, Chaukhambha, Varanasi, 1969
13. Alan, J.; Catalogue of the Coins of Ancient India, New Delhi 197
14. ASI Report, 1981-82-83
15. Nevil, H.R., Bijnor Gazetteer, vol. xiv, 1908, page 160-61, 266
16. Sankrityayana, Rahul, Ibid, page 112, 340, 452-53
17. ASI Report, Ibid, page 103
18. Katoch, Yashwant Singh, Madhya Himalaya Ka Puratatva, 1981, page 80
19. Ibid, 20
20. ASI Report, page 10
21. Ibid,

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 329-331

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Fast Moving Consumer Goods & Brand Management in India

*Dr. Amit Kumar Sahu**

Fast Moving Consumer Goods industry, It is also called or Other name isConsumer packaged goods industry. Primary Function or deals with the production, distribution and marketing of consumer packaged goods. The Fast Moving Consumer Goods is those consumables which are normally consumed by the consumers at a regular or Permanent interval. Few of the primary activities of Fast Moving Consumer Goods industry are marketing, financing, purchasing & selling etc. The industry also engaged or Busy in production, general management, operations & supply chain etc.

Fast Moving Consumer Goods industry provides a wide range of consumables and accordingly the amount of money circulated againstFast Moving Consumer Goods products is also very high. The competition among Fast Moving Consumer Goods manufacturers is also growing and as a result of this, investment in Fast Moving Consumer Goods industry is also increasing, specifically in India, Some common Fast Moving Consumer Goods product categories include food and electronics, packaged food products, plastic goods, printing and stationery, dairy products, glassware, paper products, pharmaceuticals, consumer, household products, photography, drinks etc. For examples of Fast Moving Consumer Goods products are detergents, tobacco, coffee, tea, dry cells, greeting cards, gifts and cigarettes, watches, soaps etc. Market potentiality of Fast Moving Consumer Goods industry: Some of the merits of Fast Moving Consumer Goods industry, which made this industry as a potential one, are low operational cost, strong distribution networks, presence of renowned Fast Moving Consumer Goods companies. Population growth is another factor which is responsible behind the success of this industry.

General & Common Fast Moving Consumer Goods products include pharmaceuticals, consumer electronics, packaged foods, plastics, printing and stationery, household goods, photography, drinks, food and dairy, glassware, paper items, etc. Examples include coffee, tea, batteries, greeting cards, gifts, detergents, tobacco, cigarettes, watches, and soaps.

Kinds of Products of Fast Moving Consumer Goods :

- **Personal Care :** Personal soaps, oral care, hair care, skin care, cosmetics; deodorants; perfumes; feminine hygiene; paper products etc.
- **Household Care :** laundry soaps, synthetic detergents, household cleaners, Toilet cleaners, air fresheners, dish cleaners, floor cleaners, insecticides, metal polish, furniture polish, mosquito repellents etc.
- **Food and Beverages Care :** Bottled water; branded flour; branded rice; branded sugar; juices, health beverages; soft drinks; staples/cereals; biscuits, bread, cakes & snacks; chocolates; ice cream; tea; coffee; etc.

* *Assistant Professor & Head, Department of Commerce, Saltant Bahadur P.G. College Badlapur, Jaunpur (U.P.)*

Brand management is the application of marketing techniques and Policy to a specific products or Targeted products of product Chanel orproduct line. It is increase the product's perceived value or forecasting value to the customer. There increase brand franchise and brand equity. Marketers see a brand as an implied promise that the level of quality people have come to expect from a brand will continue with future purchases of the Same/Equality product. This may increase sales by making a comparison with competing products / Homogeneous Product more favorable. It may also enable the manufacturer to charge more for the cost of goods sold& reduced or Increases efficient marketing investment &service has certain qualities or characteristics that make it specific or unique place. The art of creating and maintaining a Fewbrand is called brand management. the power of brands, to cover the whole approach to managing the company. and culture of the company are lined up behind the brand to deliver on the intent. The Understanding the term brand product. The value of the brand is determined by the amount of profit it generates for the manufacturer. This can result from a combination of increased sales and increased price or reduced cost of goods sold.

Brand management begins with having a thorough knowledge of the term & Conditions. It includes developing a promise, making that promise and maintaining its. It means defining the brand, positioning the brand, and delivering the brand. Brand management is nothing but an art of creating and sustaining the brand. Branding makes customers committed to your business. A strong brand differentiates your products from the competitors. It gives a quality image to your business Brand management includes managing the tangible and intangible characteristics of brand. In case of product brands, the tangibles include the product itself, price, packaging, etc. While in case of service brands, the tangibles include the customers' experience. The intangibles include emotional connections with the product / service. Branding is assembling of various marketing mix medium into a whole so as to give you an identity. It is nothing but capturing your customers mind with your brand name. It gives an image of an experienced, huge and reliable business.

Brand Attributes portray a company's brand characteristics. They signify the basic nature of brand. Brand attributes are a bundle of features that highlight the physical and personality aspects of the brand. Attributes are developed through images, actions, or presumptions. Brand attributes help in creating brand identity. A strong brand must have following attributes :

Credibility-A strong brand should do what it promises. The way you communicate your brand to the audience/ customers should be realistic. It should not fail to deliver what it promises. Do not exaggerate as customers want to believe in the promises you make to them.

Inspirational-A strong brand should transcend/ inspire the category it is famous for. For example-Nike transcendent Jersey Polo Shirt.

Uniqueness-A strong brand should be different and unique. It should set you apart from other competitors in market.

Appealing- A strong brand should be attractive. Customers should be attracted by the promise you make and by the value you deliver.

Relevancy- A strong brand must be relevant. It must meet people's expectations and should perform the way they want it to. A good job must be done to persuade consumers to buy the product; else inspire of your product being unique, people will not buy it.

Consistency- A consistent brand signifies what the brand stands for and builds customers trust in brand. A consistent brand is where thecompany communicates message in a way that does not deviate from the core brand proposition.

Proper positioning- A strong brand should be positioned so that it makes a place in target audience mind and they prefer it over other brands.

Sustainable- A strong brand makes a business competitive. A sustainable brand drives an organization towards innovation and success. Example of sustainable brand is Marks and Spencer's.

The Top Branded companies in Fast Moving Consumer Goods sector are–

- Pepsi co. India
- Coca Cola Company
- Parle product limited
- Johnson & Johnson India
- Hindustan Unilever Ltd.
- Tobacco Company India
- Nestlé India
- Amul India
- Dabur India
- Asian Paints India
- Cadbury India
- Britannia India
- Procter & Gamble Hygiene
- Marico limited
- Godrej Consumer Product limited
- Colgate-Palmolive

Importance–In the modern environment, the public's trend towards fast moving consumer goods and brand management is increasing in India.

Source/Reference

1. Google.com
2. www.businessworld.com
3. www.sportzpower.com
4. Journal of Marketing Research
5. Krishna, A., Briesch, R., Lehmann, D.R. and Yuan, H. (2002), A Metaanalysis of the Impact of Price Presentation on Perceived Savings, Journal of Retailing, Vol. 78 No. 2
6. Marketing News (1985), Panelists Offer Pricing Strategy Advice for Consumer and Industrial Products," 19 (3), 1
7. Nandan, S. (2005), An Exploration of the Brand Identity-brand Image Linkage : A Communications Perspective, Journal of Brand Management
8. Raman, Kalyan and Frank M. Bass (1986), A General Test of Reference Price Theory in the Presence of Threshold Effects, Unpublished Working Paper, University of Texas at Dallas.
9. Sinha, I., Chandran, R. and Srinivasan, S. (1999), Consumer Evaluations of Price and Promotional Restrictions : A Public Policy Perspective, Journal of Public Policy & Marketing.

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 332-234

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वैश्वीकरण और हिन्दी भाषा की उपादेयता

*डॉ. राजेश कुमार मीना**

वैश्वीकरण के इस वर्तमान काल में विश्व के अधिकांश देश प्रभावित हुए हैं। वैश्वीकरण का प्रभाव भारत के साथ समस्त विश्व के अधिकांश लोगों के जीवन पद्धति पर पडा है। वेशभूषा, खानपान, रीति–रिवाजों के साथ हमारी आंतरिक एवं बाह्य जीवन शैली प्रभावित हुई है। इस वैश्वीकरण मैं हमारी हिंदी भाषा का वैश्वीकरण होना सहज संभाव्य स्थिति है।

हजारों वर्षों से हमारी भारतीय संस्कृति में स्थित मूल्य विचारधाराओं संस्कारों अर्थात जीवन पद्धति में कुछ परिवर्तन वैश्वीकरण से हो रहा है। इस परिवर्तन को हमारे लिए सहजता से स्वीकारना असंभव तो नहीं किंतु कठिन अवश्य हो गया है। इस वैश्वीकरण का प्रभाव हमारे देश की प्रमुख राजभाषा हिंदी के साथ अन्य प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय एवं बोली भाषाओं पर पड रहा है।

विविध क्षेत्रों के विद्वज, संशोधक उपलब्ध जानकारी के अनुसार वैश्विक स्तर पर कुल 160 के ऊपर ऐसे देश हैं जिनमें 7 से 8 हजार विविध जातियों समूहो एवं संस्कृती के लोग हैं स्वाभाविक है इन सभी जातियों समूह के लोगों की अपनी स्वतंत्र बोली भाषा और क्षेत्रीय भाषा है। जिसमें वे अपना व्यवहार करते हैं। भारत देश इसका अच्छा उदाहरण है जहां बहु जातीय लोग बहु भाषा में अपना व्यवहार करते हैं। विश्व भर में संभवत बहुत कम देश ऐसे है जिनकी एक अधिकृत भाषा नहीं है। ना उस भाषा की प्रमाणित लिपि है किंतु वैश्वीकरण के इस गतिमान युग में अनेक भाषाएं संघर्ष कर अपना अस्तित्व बनाए रखने में प्रयत्नशील है।

भाषा विद्वान इस विषय में निरंतर संशोधन करते हुए कहते हैं कि वैश्विकता के प्रभाव में आने वाले 50 वर्षों में 6 से 7 हजार भाषाएं समाप्त हो जाएगी इन भाषाओं को पढ़ने लिखने तथा व्यवहार करने वाले लोग नहीं रहेंगे।

बीसवीं शती के अंतिम दशक से वैश्विकता का आगाज हुआ औद्योगिकरण होने से रोजगार, व्यवसाय एवं शिक्षा प्राप्त करने हेतु अनेक शहरों का विस्तार हो रहा है इसमें अन्य क्षेत्रों के साथ हिंदी भाषा पर प्रभाव पड़ना सहज संभव है। इस वैश्वीकरण से कुछ भाषाएं विकसित हो रही है तो भाषाओं का अस्तित्व समाप्त होने की कगार पर है। बढ़ती हुई जनसंख्या गांव में स्थित संसाधनों की कमी के कारण विशेषता युवाओं की मानसिकता शहरों की और जाने की रही है। जिसमें ग्रामीण आंचल क्षेत्र में रहने वाला युवक अपनी मातृभाषा आंचलिक भाषा से दूर जाकर कॉरपोरेट जगत की भाषा को स्वीकार करना अनेक युवावर्ग के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

डॉ. रघुनाथ माशेलकर जैसे विद्वज कहते हैं की 2050 तक दुनिया की 50% भाषाएं खत्म हो सकती है ।किंतु यह उन भाषाओं पर नियम लागू हो सकता है जिन भाषाओं का कोई समृद्ध इतिहास एवं उसे प्रयोग करने वाला वर्ग नहीं है। कोई भी क्षेत्रीय प्रादेशिक भाषा जिसे बोलने वाले लोगों की संख्या लाखों, करोड़ों है वह इतनी आसानी से समाप्त नहीं हो सकेगी।

हमारे भारतीय संविधान में कुल 18 प्रमुख भाषाएं हैं। इन सब भाषाओं के अंतर्गत अनेक उप भाषाएं एवं बोलियां आती है इन सब भाषाओं में प्रमुख भाषा हिंदी है जिस भाषा का हजारो वर्षे का स्वर्णमय इतिहास है। और आज भारत के साथ विश्व के अनेक देशों में अधिकांश क्षेत्रों में हिंदी भाषा का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हो रहा है।

वैश्वीकरण के इस युग में क्षेत्रीय भाषाएं सांस्कृतिक समृद्धि के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। हमारी संस्कृति मातृभाषा बोली भाषा में सहजता से अभिव्यक्त हो सकती हैं। क्योंकि प्रथम भाषा आती है उसके बाद संस्कृति।

* *सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय, सवाई माधोपुर, राजस्थान*

वैश्वीकरण के इस काल में विश्व में हमारे भारत देश ने अपनी विशेष पहचान बना ली है। आशियाई देशों में एक प्रमुख शक्ति के रूप में भारत देश ने विगत कुछ वर्षों से अपनी एक स्वतंत्र पहचान स्थापित की है। भारत के विकसित शक्ति को आज न केवल एशियाई देश बल्कि यूरोप के साथ अमेरिका जैसे प्रगतिशील राष्ट्र भी भारत देश की लोकतांत्रिक शक्ति के साथ आर्थिक विकसित स्थिति को स्वीकार कर रहे हैं। ऐसे बहुभाषिक भारत देश में हिंदी एकमात्र ऐसी भाषा है जिसने पूरे राष्ट्र को अनेक वर्षों से एक सूत्र में बांधने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

आज विश्व के अधिकांश देश प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष इस सच्चाई को स्वीकार कर रहे हैं की, हमारे व्यवसायिक,राजनीतिक, प्रशासकीय, तकनीकी, कृषि, औद्योगिक जैसे अनेक क्षेत्रों के लिए संबंध वृद्धिगत करना है तो भारत देश की प्रमुख भाषा हिंदी को स्वीकार करना होगा। संभवत इसी यथार्थ को स्वीकार करते हुए एशियाई देशों के साथ यूरोप एवं अनेक प्रगतिशील राष्ट्र अपने देश के विश्वविद्यालयो में हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन की सुविधा को स्वीकृति दी है। इसी कारण हिंदी भाषा में विगत कुछ वर्षों में अपना वैश्विक दायरा अधिक विस्तृत किया है।

विश्व के प्रमुख देशों में हिंदी का प्रचार प्रसार हो रहा है उनमें से कुछ प्रमुख देश हैं। उदाहरण– मॉरीशस से हमारा 18वीं शती से संबंध रहा है। हमारे देश के अनेक लोग रोजगार प्राप्ति हेतु वहां गए थे और आज भी जा रहे हैं यहां हिंदी का एक स्वतंत्र रूप है। पंडित काशीराम किष्टो, प्रो. वासुदेव विष्णु दयाल जैसे विद्वान मॉरीशस के निवासी हिंदी भाषा में लेखन कर रहे हैं। फिजी देश में 3 लाख से अधिक लोग हिंदी भाषा भाषी है। यहां से जय फिजी जैसी हिंदी पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। वेस्टइंडीज का एक भाग त्रिनिदाद में भारतीय वंश के लोग हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। यहां हिंदी भाषा पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव दिखाई देता है जैसे जैसे तुम को टूम शब्द का प्रयोग किया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका में भी अनेक स्थलों पर हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाता है। ट्रांसवाल, केप जैसे कुछ राज्यों में हिंदी भाषिक लोग रहते हैं। अधिकतर लोग गुजरात एवं भोजपुर प्रदेश के हैं। यहां हिंदी पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। इंग्लैंड देश में भी हिंदी भाषा का प्रयोग अनेक प्रवासी भारतीयों द्वारा हो रहा है। इंग्लैंड देश से तो 150 वर्षों पुराना संबंध है। इटली देश में भी हिंदी भाषा में अनुसंधान हो रहा है। स्टेफनो पियानो ने भारतीय पुराण साहित्य पर अनुसंधान किया है। डॉ. श्याम मनोहर पांडेय नेपल्य विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर के रूप में हिंदी के अध्यापन के साथ अनुसंधान कर रहे हैं।

अमेरिका के लगभग 30 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का अध्ययन अध्यापन हो रहा है। कोरिया देश के कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन होता है। जर्मनी में भी भारतीय भाषाएं संस्कृत, हिंदी भाषा के प्रति आकर्षण है वहां भी अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है। बेल्जियम में फादर कालील बुल्के ने राम कथा साहित्य में अनुसंधान कर भारत देश में काफी मात्रा में प्रशंसा प्राप्त की है।

फ्रांस देश के अनेक विद्वानों ने हिंदी साहित्य, व्याकरण खड़ी बोली पर संशोधन किया है। हिंदी की अनेक साहित्यिक रचनाओं का फ्रेंच भाषा में अनुवाद हुआ है। रशिया से हमारे अनेक वर्षों से मित्रता के संबंध है। भारतीय साहित्य में आधुनिक व्याख्याता के रूप में रूसी विद्वान अले बसन्द्र सिक्केविच प्रसिद्ध है। नेपाल हमारा पड़ोसी है हमारी और उनकी संस्कृति में एक अटूट रिश्ता है ।संस्कृत मैथिली के साथ हिंदी भाषा का स्पष्ट प्रभाव नेपाल के जनमानस में दिखाई देता है। अनेक विद्यालयों विश्वविद्यालयों में वहां हिंदी का अध्ययन और अध्यापन होता है। जापान के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा को महत्त्व पूर्ण स्थान है। प्रोफेसर क्यू बदोई ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिंदी का अध्ययन किया था इसके साथ ही विदेश के अनेक लेखकों में 1715 में जे.जे.केटेलियर ने डच भाषा में हिंदी व्याकरण लिखा था। 1852 में गार्सा द तासी ने फ्रांस में व्याख्यान में हिंदुई, हिंदुस्थानी को भारतीय लोक भाषा बताया था। 1886 में लंदन में प्रकाशित हबसन–जबसन कोश में हिंदी को भारतीयों की राष्ट्रभाषा कहा गया है।

इसके साथ ही सिंगापुर, श्रीलंका, थाईलैंड, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, ईरान, इराक, संयुक्त अमीरात जैसे अनेक राष्ट्रों में हिंदी भाषा का प्रयोग सहज स्वाभाविक रूप में होता है।

हिंदी भाषा का वैश्विक प्रचार एवं प्रसार आकस्मिक नहीं है। हिंदी के प्रचार प्रसार का अधिकतम योगदान प्रवासी भारतीयों को दिया जाना चाहिए। जिन्होंने विदेश में रहकर भी हमारी हिंदी भाषा से लगाव रखा उसे संरक्षण दिया। इसके साथ ही धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्था, व्यवसायिक, नौकरदार एवं कुछ निजी संस्थाएँ तथा

सभी क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों को धन्यवाद देना चाहिए की इन्होंने हिंदी भाषा को वैश्विक रूप देने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

आज संसार के 30 से अधिक देशों में हिंदी का अध्ययन एवं अध्यापन की व्यवस्था है। अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी के स्नातकोत्तर अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था है। भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा भी समय–समय पर हिंदी के प्रचार प्रसार के संदर्भ में प्रशंसनीय कार्य हो रहा है।

अनेक विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में अंतरराष्ट्रीय, सेमिनार, सम्मेलनों में विदेशों के हिंदी के अनेक भाषा साहित्य के विद्वानों को आमंत्रित किया जाता है। हमारे देश के भी अनेक भाषा विद्ववत् तथा साहित्यकार विदेश में जाते है। जहां भाषा एवं साहित्य के वैश्विक रूप पर विचार मंथन होता है।

आज वैश्विक स्तर पर छोटे गांव से बड़े शहरों तक इंटरनेट, ईमेल, व्हाट्सएप, फेसबुक जैसे अत्याधुनिक संप्रेषण माध्यमों धारा सूचनाएं एवं जानकारी सामान्य से सामान्य व्यक्ति तक पहुंच रही हैं। स्वाभाविक है इन माध्यमों द्वारा राजभाषा हिंदी का अधिक प्रयोग होता है। इससे हिंदी देश के छोटे भूभाग से विश्व प्रसिद्ध शहरो तक पहुंच रही हैं।

हमारे देश में भले ही विविध आंचलिक प्रादेशिक भाषाएं हैं किंतु संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में जो भाषा की आवश्यकता हिंदी भाषा ने पूर्ण की है। लोकमान्य तिलक जीने बहुत पहले इस संदर्भ में हिंदी भाषा के महत्व को पहचाना था। उसके बाद अनेक स्वाधीनता सेनानियों ने देश को स्वतंत्रता के लिए जो आंदोलन के नारे एवं जनता से संवाद इसी हिंदी भाषा के माध्यम से किया था देश की स्वातंत्र्य आंदोलन में भी हिंदी भाषा का अनमोल योगदान है। दुर्भाग्य से स्वाधीनता के बाद कुछ संकीर्ण विचारधारा के लोगों द्वारा हिंदी के प्रचार प्रसार में विरोध नहीं होता तो हिंदी का वैश्विक रूप इसके पहले ही और मजबूत होना संभव था।

किंतु बीसवीं सदी के अंत से वैश्वीकरण की प्रक्रिया अधिक गतिमान हुई। अन्य क्षेत्रों के साथ पर्यटन क्षेत्र का बहुत विस्तार हुआ पर्यटन के माध्यम से दो भिन्न भाषिक लोक हिंदी भाषा में व्यवहार करने की प्राथमिकता देने लगे।

वैश्विक स्तर पर विगत कुछ वर्षों से हमारे देश की कृषि, वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक, जैसे अनेक क्षेत्रों में स्वतंत्र प्रगतिशिल राष्ट्र के रूप में एक स्वतंत्र पहचान बनाने में सफल हो रहे हैं। विश्व के अमेरिका, रशिया, जापान, चीन, जैसे प्रगतिशील राष्ट्र के साथ अन्य देशों के प्रमुख भी हमारे देश के कृषि, उद्योग, तकनीकी, जैसे अनेक क्षेत्रों में साझा काम करने की अपेक्षा रखते हैं। स्वाभाविक है हिंदी भाषा इसका प्रमुख माध्यम होगी।

अनेक वर्षों से विश्व के अनेक देशों में हमारे युवाओं के साथ बहुत से लोग रोजगार, व्यवसाय, शिक्षा प्राप्त करने हेतू विदेशों में जा रहे हैं। वहाँ हमारी जनसंख्या बढ़ रही है उसके साथ ही हमारी हिंदी भाषा वहाँ पहुंच रही हैं स्वाभाविक है हिंदी भाषा का वैश्विक दायरा अधिक विस्तृत एवं समृद्ध हो रहा है। और भविष्य में भी उसका दायरा अधिक विस्तृत होगा इसमें संदेह नहीं।

संदर्भ–ग्रंथ

1. डॉ.विजय महादेव गाडे, मीडिया साहित्यिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में
2. कमल नयन काबरा, भूमंडलीकरण के भंवर में भारत
3. डॉ. अंबादास देशमुख, हिंदी भाषा का परिचय

* * * * *

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal : ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-XIII, Vol.-XLIV, March 2025, Page : 335-343

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Revisiting the Past : A Study of Recent Trends in History Writing on Late 18th and 19th Century Himachal Hills

*Dr. Rakesh Kumar Sharma** *Utsav Jai Surya Thakur***

Abstract : *This paper considers recent developments in the writing of history during the late 18th and 19th century of Himachal Hills in western Himalayas. This study focuses on the use of those narratives and historiographical debates in the period of transition from regional kingdoms to British colonial rule. Through a critical review of existing literature, this research identifies three dominant trends: All of these processes have :* ***(1)*** *the resurgence of interest in local histories and local archives;* ***(2)*** *the integration of subaltern perspectives, focussing on experiences of the marginalized communities; and* ***(3)*** *an increased emphasis on environmental and economic histories. This study also examines how these trends ofter a measure of broader changes in methodological and theoretical operations of Indian historiography. This research advances a nuanced understanding of colonialism, regional identity, and historical representation, while looking at how the intersections of colonialism, regional identity and historical representation have shaped the history of Himachal hills, and what this contributes to further debates about how historical knowledge is produced in India.*

Keywords : *Himachal Hills, 19th century, colonialism, late 18th century, history writing, subaltern studies, regional histories, environmental history.*

Introduction : The western Himalayas are home to the Himachal Hills and in the late 18th and 19th centuries they experienced transformative periods. This period spanned the demise of regional kingdoms, British colonial rule, and the regrouping of society, economy, and culture. The survey of the history of the Himachal Hills and the political economy of barter trade has been a fascinating subject for historians since long and there has been an upsurge in the interest in late years.

While this growing attention has led to some negative gaps on the historiography of the region, there continues to be significant debate. In many cases, traditional narratives of the colonial encounter have privileged the local colony-imperial encounter over those of local voices and experiences. Nevertheless, the last few decades have witnessed the rise of alternate histories that have shunted aside these dominant narratives, replacing them with histories that give a regional or subaltern voice, or that centre on environmental histories.

This study aims to respond to these recent trends in the history writing of Himachal Hills during late 18th and 19th century. It argues that our understanding of the region's past has changed; and this research analyses shifting narratives and historiographical debates in the field. Specifically, this study will explore three key trends : **(1)** new interest in regional histories, **(2)** growing attentiveness to subalternge histories (histories of oppressed groups), **(3)** environmental, economic histories.

* ***Assistant Professor, Department of History, Sardar Patel University, Mandi, H.P.***

* * ***Research Scholar, Department of History, Sardar Patel University, Mandi, H.P.***

Through a critical review of existing literature, this research will address the following questions :

To what extent has the recent historiographical turn refigured the understanding of late 18th and 19th century Himachal Hills?

- What part do regional archives and local sources play in revisioning dominant narratives?
- What can subaltern perspectives and environmental histories tell us about the region's past?

A mode of challenging, and hopefully stimulating, the deep and complex histories of Himachal Hills by probing the intersections of colonialism, regional identity, and the project of historical representation is investigated in this paper. This research will also add to ongoing discussions about history education, cultural heritage, and regional identity in the state of Himachal Pradesh.

Scope and Organization : During this period, from 1770 to 1910, this study is concerned with the transition from regional kingdoms to British colonial rule. It will borrow from a continuum of sources– archival materials, manuscripts, books, articles, and oral histories.

Background : Himachal Hills Late 18th and 19th Century

Geographical Context : Himachal Pradesh, located in the western Himalayas, The region was divided into three distinct geographical zones: Middle Himalayas, Outer Himalayas, and the Inner Himalayas. The higher ranges of the Inner Himalayas were the Dhauladhar, PirPanjal and Great Himalayan ranges, making them up, and they were rugged and inhospitable. On the other hand, the Middle Himalayas, comprising the Kangra Valley, Kullu Valley and Shimla hills, had fertile valleys and low ranges suitable for agriculture and human settlement. Estimated population of Himachal during 18th and 19th century was around 1 to 2 million, having different ethnic groups like Khas, Guijars, Gaddis and Pangwals. The mainstay of the economy was Agriculture where crops like wheat, rice and maize were cultivated. Himachal was connected by regional trade networks to Tibet, Punjab and other neighboring regions in the 18th and 19th centuries and as a whole Himachal Pradesh in the 18th and 19th centuries was a place of stunning natural beauty, varied geography and rich cultural heritage.

Late 18th Century (1770-1800) :

1. Regional Kingdoms: The area of Himachal Hills were divided into small kingdoms like Kangra, Kullu, Nurpur, Chamba and Bilaspur.

2. Sikh Empire Expansion: Under Maharaja Ranjit Singh, Sikh Empire expanded into Himachal Hills, taking over of Kangra and some other places.

3. British East India Company: In the region, the British East India Company started to exert influence on trade, as well as strategic alliances.

19th Century (1800-1910) :

1. British Colonial Rule : Himachal Hills were annexed by British East India Company on the basis of Treaty of Lahore (1846) and Doctrine of Lapse (1848).

2. Hill States : Hill States were British created autonomous regions under British paramountcy, viz., Kangra, Kullu, Chamba, etc.

3. Gurkha Wars (1814-1816) : Now the Gurkha Kingdom had controlled part of Himachal.

4. Indian Rebellion (1857) : During the rebellion, the Himachal Hills remained relatively calm and British militarized further.

5. Infrastructure Development : Connects Himachal to the plains by British built roads, bridges, and railways.

6. Social and Economic Changes : Western education, modern agriculture, and forestry practices were introduced by British to the regional economy.

A study of our understanding of power and power dynamics in late 18th and 19th century Himachal Hills had been shaped by recent historiographical trends.

Reshaping the Narrative : Late 18th - 19th Century Himachal Hills and Recent Historiographical Trends

From Colonial Shadows to Local Voices : This is an analysis of the impact of some recent historiographical trends on the late eighteenth and nineteenth centuries in the Himachal Hills. This exploration moves beyond the confines of colonial narratives with the ambition to unravel the intricacies of local societies and their pluralistic interactions with external power. It highlights key shifts in scholarship, analyzes the impact of these shifts on interpretation of history, and demonstrates how they have forced a new view of history during this most important period in the history of the Himalayas. This analysis, by looking at the range of perspectives and methodology located in contemporary historians, strives to offer a more complex and accurate story of the Himachal Hills during that time, allowing for the agency and resilience of local communities to be acknowledged, along with the force of larger historical dynamics.

Beyond the Colonial Lens: Deconstructing Imperials Narratives : The late 18th and early 19th century history of the Himachal Hills was primarily determined through colonial eyes for over many years. Often, these narratives highlighted British influence, viewing the time as one marked by considerable change (held to be a consequence of the British, among other things, and the rule that followed).[1] But scholarship over the past decade has questioned that Eurocentric view, arguing that colonial forces alone couldn't be responsible for history's leading players.[1] This critical reassessment has resulted in a more nuanced understanding of the complexities of local societies, their agency and capacity to adapt and resist colonial pressure.

Challenging Eurocentric Perspectives : This moves away from Eurocentric perspectives in scholarship on the Himachal Hills marking what has been a defining feature of recent scholarship on the Himachal Hills.[1] Historians have begun to question the assumption that the region's history is best seen in terms of British colonialism alone. Instead, they focus on explaining the need to understand the region's internal dynamics, including the pre-colonial history, its plurality of social structures, and the confluence of different local power relations.[1] The thesis takes up the recognition that the Himachal Hills were no passive recipient of colonial influence but a dynamic society with a history, traditions and agency of her own.[1]

Recovering Indigenous Knowledge Systems : A primary aspect of the shift has been the recovery and analysis of indigenous knowledge systems, most notably in relation of resource management.[2] It includes an increased emphasis on colonial authorities' dismissal or neglect of traditional groundwater exploration and utilization practices.[2] As a case in point, scholars point the historical worth of wells dug in the inter mountain valley regions and on mountain tops to show how the seemingly simple traditional water management techniques were not so simple so to be effective.[2] Examining these practices, however, has helped historians point to the significance of local knowledge in understanding the region's ecological and social relationships, and has resisted a colonial narrative in which traditional practices are couched in terms of backwardness or primitiveness.[2]

Challenging the "Absence" of Records : Another significant challenge to colonial narratives has been the questioning of the assumption that Himalayan societies lacked adequate records.[1] Scholars are increasingly recognizing the existence of oral traditions, local chronicles, and other forms of documentation that offer alternative perspectives on the past.[1] This re-evaluation of archival materials has led to a more comprehensive and nuanced understanding of the region's history, incorporating the voices of those who were previously marginalized.[1] For instance, the study of dum (peasant rebellions) in the Himachal Hills has shed light on the social and political dynamics of the region, revealing the agency of local communities in challenging established power structures.[1] This approach recognizes the importance of diverse sources and methodologies in uncovering the complexities of the past, moving beyond the limitations of colonial records to embrace the richness of local narratives.

This study aims to examine these recent trends in history writing on late 18th and 19th century Himachal Hills. By analyzing the shifting narratives and historiographical debates in the field, this research seeks to understand how our understanding of the region's past has evolved. Specifically, this study will explore three key trends : **(1)** the resurgence of interest in regional histories and local archives; **(2)** the integration of subaltern perspectives, highlighting the experiences of marginalized communities; and **(3)** the increasing emphasis on environmental and economic histories.

The Rise of Transnationalism : Connecting Himalayan Histories to Global Networks : The rise of transnationalism in historical scholarship has significantly impacted our understanding of the Himachal Hills, highlighting the region's interconnectedness with global networks.[3] This approach moves beyond the confines of national boundaries to examine the role of trade, religious exchange, and the movement of individuals across borders in shaping the region's cultural landscape.[3]

Understanding Cultural ExchangeTransnational perspectives have shed light on the significance of cultural exchange in shaping the Himachal Hills.[3] The example of the Chamba Rumal, an exquisite piece of embroidery created by the Rani of Chamba in 1898 for her children's governess, Jessie Ann Tuly, illustrates the role of artistic exchange in fostering connections between distant societies.[3] This Rumal, now preserved at the Glasgow Museums Resource Centre, embodies the intricate artistry of Chamba, showcasing the influence of miniature painting on the region's embroidery tradition.[3] By tracing the journey of this object, historians can reveal the complex interplay of cultural exchange, artistic expression, and social relationships that shaped the region's history.[3]

Mapping the Influence of Global Ideas : Transnational perspectives also highlight the impact of global ideas and movements on the Himachal Hills.[4] For example, the spread of Vaishnavism, originating in eastern India, demonstrates how religious beliefs and practices transcended geographical boundaries and influenced local societies.[4] The establishment of thakurdwaras (temples dedicated to Krishna) in the core regions of Sirmaur during the 18th century illustrates the integration of Vaishnavism into the region's religious landscape.[4] This transnational approach allows us to understand the complex interplay of local and global forces in shaping the region's religious landscape, revealing how religious traditions adapted and evolved in new contexts.[4]

Exploring the Impact of Colonialism and Modernization : The transnational lens also allows for a more nuanced understanding of the impact of colonialism and modernization on the Himachal Hills.[5] Scholars are exploring how these global forces interacted with local conditions to shape the region's physical and social landscapes, including the emergence of hill stations like Frasers Hill.[5] Frasers Hill, established as a retreat for British expatriates seeking respite from the tropical lowlands, represents a tangible example of how colonialism shaped the region's landscape.[5] However, this transnational approach also recognizes that colonialism and modernization were not simply imposed from above but were shaped by local responses and adaptations.[5] The creation of hill stations, for instance, involved local labor and resources, highlighting the complex interplay of global forces and local agency.[5]

The Power of Community : Exploring Local Agency and Resilience : Recent scholarship has significantly reframed our understanding of local communities in the Himachal Hills, moving beyond the traditional narrative of colonial control and exploitation.[6] This trend has led to a focus on the historical legacy of community forestry practices and institutions, revealing the agency and resilience of local communities in shaping their own destinies.[6]

Reframing Forest Management : From Colonial Control to Community Participation : The traditional narrative of forest management in the Himachal Hills often focused on colonial control and exploitation, portraying local communities as passive recipients of these policies.[6] However, recent scholarship has challenged this view by highlighting the historical legacy of community forestry practices and institutions.[6] The rakha system, for example, involved a forest guard who was accountable to both

the state and local communities, demonstrating the existence of shared responsibility in forest management.[6] Devban, or sacred groves, illustrate the integration of local belief systems with natural resource management, showcasing the importance of local knowledge and values in shaping forest practices.[6] Forest cooperatives in Kangra district exemplify decentralized forest management with local involvement and support, demonstrating the potential for community-based approaches to resource management.[6] By examining these indigenous practices, scholars are highlighting the role of local communities in shaping forest management and demonstrating their resilience in the face of external pressures.[6]

Recognizing the Role of Local Leaders and Institutions : This focus on community also highlights the role of local leaders and institutions in shaping the region's political and social landscape.[1] Scholars are examining the complex interactions between local rulers, religious figures, and ordinary people in shaping the region's development.[1] For example, the study of the dum (peasant rebellions) reveals the role of local leaders in mobilizing communities to challenge oppressive policies, demonstrating the agency of local actors in shaping their own destinies.[1] This approach recognizes the complex interplay of local and regional power structures, highlighting the importance of understanding the dynamics of local politics and the agency of local communities.[1]

Exploring the Dynamics of Social Change : The focus on community also allows for a more nuanced understanding of the dynamics of social change within the Himachal Hills.[6] Scholars are examining how local communities responded to the challenges of colonialism, modernization, and environmental change, highlighting their ability to adapt and resist.[6] For example, the introduction of Joint Forest Management (JFM) and Sanjhi Van Yojana (SVY) programs in Himachal Pradesh, while aiming to promote community participation, faced challenges related to funding, bureaucratic structures, and existing power dynamics.[6] However, these programs also reveal the complex interactions between government initiatives and local communities, demonstrating the ongoing struggle for control and influence over resources.[6] This approach recognizes the complexity of social processes and the importance of local narratives in understanding historical change, highlighting the dynamism and resilience of local communities in the face of external pressures.[6]

The Interplay of Religion and Society : Exploring the Dynamics of Faith and Power : Recent scholarship has highlighted the significant role of religion in shaping social practices and cultural identities in the Himachal Hills.[3] Scholars are exploring the influence of Hinduism, particularly Vaishnavism, on local customs, beliefs, and artistic expressions.[3] This approach recognizes the importance of religion as a powerful force in shaping the region's history and culture.[3] Religion played a crucial role in shaping social practices and cultural identities in the Himachal Hills during the late 18th and 19th centuries.[3] The influence of Hinduism, particularly Vaishnavism, is evident in local customs, beliefs, and artistic expressions.[3] The Chamba Rumal, for example, depicts Lord Krishna's Ras Leela (dance with Radha and Gopis), showcasing the importance of Vaishnavism in the region's artistic traditions. [3] The devban (sacred groves), often associated with local deities, further illustrate the intertwining of religion and nature in shaping local practices and beliefs.[6] By examining these religious practices and expressions, scholars are gaining a deeper understanding of the social and cultural dynamics of the region, recognizing the powerful influence of faith in shaping people's lives.[3]

The study of religion also sheds light on the dynamics of religious syncretism, where different beliefs and practices blend together.[4] This includes examining the integration of the Jagannath cult from eastern India into the Himachal Hills, illustrating how religious traditions can adapt and evolve in new contexts.[4] The establishment of Jagannath temples in Sirmaur during the 17th-19th centuries demonstrates the process of religious syncretism, highlighting how local communities embraced new deities and practices while retaining their own traditions.[4] This approach recognizes the fluidity of religious boundaries and the importance of understanding the interplay of different faiths in shaping

local societies.[4] Scholars are also exploring the role of religious leaders in shaping the region's political and social landscape.[4] This includes examining the interactions between religious figures, rulers, and local communities, highlighting the influence of faith in shaping power dynamics and social order.[4] The involvement of politically savvy ritual specialists from Rajasthan in facilitating the spread of the Jagannath cult in Sirmaur demonstrates the complex interplay between religion and politics.[4] This approach recognizes the complex interplay between religion and politics in shaping the region's history, highlighting the importance of understanding the role of religious figures in shaping social and political structures.[4]

The Significance of Material Culture: Exploring Objects as Sources of History : Recent scholarship has increasingly emphasized the importance of material culture as a source of historical knowledge.[3] This approach moves beyond textual sources to examine objects, such as the Chamba Rumal, as carriers of cultural meaning and historical information.[3] By analyzing the creation, use, and transmission of objects, scholars can gain insights into the lives, beliefs, and practices of past societies.[3]

Material culture provides a rich source of information about the past, offering insights into the lives, beliefs, and practices of past societies.[3] The Chamba Rumal, for example, not only reveals the artistic skills of its creators but also reflects the influence of Vaishnavism on the region's cultural landscape.[3] The Rumal's journey from Chamba to Scotland also highlights the role of trade and cultural exchange in shaping the region's history.[3] By examining objects like the Chamba Rumal, historians can gain a deeper understanding of the region's social, economic, and cultural dynamics.[3] The study of material culture also allows for a more nuanced understanding of the role of art and craft in the Himachal Hills.[3] Scholars are examining the evolution of embroidery techniques, such as the creation of ChambaRumals, as a reflection of local artistic traditions and social influences.[3] The development of Chamba embroidery, influenced by miniature painting, showcases the region's artistic ingenuity and the interplay of local traditions and external influences.[3] This approach highlights the importance of art and craft as expressions of cultural identity and historical change, revealing the rich tapestry of artistic traditions that have shaped the region's cultural landscape.[3]

The study of material culture also extends to examining the role of architecture in shaping the region's landscape.[5] Scholars are exploring the significance of colonial hill stations, like Frasers Hill, not only as physical structures but also as symbols of power, identity, and cultural exchange.[5] The construction of hill stations like Frasers Hill, designed as retreats for British administrators and their families, reflects the colonial desire to control and transform the region's landscape.[5] However, the use of local labor and resources in the construction of these hill stations also highlights the complex interplay of colonial power and local agency.[5] This approach recognizes the importance of architecture as a material manifestation of historical processes and social transformations, revealing the complex interplay of power, identity, and cultural exchange in shaping the region's physical and social landscape.[5]

Recent historiographical trends have significantly reshaped our understanding of the late 18th and 19th centuries in the Himachal Hills. By moving beyond colonial narratives, embracing transnational perspectives, and recognizing the importance of local agency and material culture, scholars are creating a more comprehensive and nuanced understanding of this crucial period in Himalayan history.[1,3,6,4,5]

Subaltern Perspectives in the Late 18th and 19th Century Himachal Hills : Challenging Dominant Narratives :

The Limits of Dominant Narratives : This paper examines how subaltern perspectives challenge dominant narratives of the late 18th and 19th century Himachal Hills. These dominant narratives, often shaped by colonial and elite perspectives, tend to focus on a limited set of themes :

British Imperialism : The narrative of British imperialism in the region often emphasizes the "pacification" of the hills, focusing on the imposition of British law and administration, as well as the disruption of traditional social structures.[19,20] This perspective often overlooks the complex interactions and negotiations that took place between colonial authorities and local communities.

Hindu Society : Dominant narratives frequently focus on the dominance of Hindu traditions and the role of princely states in shaping the region's social and cultural landscape.[21] This emphasis on Hindu hegemony tends to overshadow the diverse religious practices and beliefs of other communities in the region.

Environmental Determinism : The Himalayas are often viewed as a unique and challenging environment that shaped the lives of its inhabitants.[21,16] This environmental determinist approach, while acknowledging the significance of the Himalayan landscape, can overlook the agency and resilience of local communities in adapting to and shaping their environment.

However, these narratives often overlook or marginalize the experiences of subaltern groups, including Adivasis, Gujjars, and other marginalized communities.[17,18] By exploring subaltern perspectives, we can gain a more nuanced understanding of the complexities of the past and challenge these dominant narratives.

Challenging Imperial Narratives through Subaltern Experiences-

Resistance and Agency : Subverting Colonial Power : While dominant narratives often focus on British conquest, subaltern perspectives highlight the ongoing resistance and agency of local communities.[17,16] Subaltern groups did not simply passively accept British rule; they actively negotiated with colonial power, often adapting to and subverting British rule in ways that maintained their own autonomy and cultural practices.[18,19]

Maintaining Traditional Practices : Despite colonial pressures, subaltern groups often continued to practice their traditional customs, rituals, and beliefs.[20] This resistance to cultural assimilation demonstrates a strong sense of identity and a commitment to preserving their cultural heritage.

Localized Forms of Protest and Rebellion : Subaltern groups engaged in various forms of localized resistance, ranging from non-violent protests to small-scale rebellions.[18] These acts of defiance challenged the colonial order and demonstrated the resilience of local communities.

Informal Networks and Institutions: Subaltern groups relied on informal networks and institutions to maintain their autonomy and resist colonial control.[17] These networks provided channels for communication, information sharing, and collective action.

These examples highlight the active role that subaltern groups played in shaping their own destinies within the context of British colonialism. They demonstrate that the experience of British rule was not a uniform or monolithic one, but rather a complex interplay of power and resistance.

The Impact of Development and Displacement : Unveiling the Costs of Progress : Dominant narratives often portray development as a positive force, but subaltern perspectives reveal the often-negative consequences of modernization and development projects.[21,16] The implementation of these projects often resulted in displacement, forced resettlement, and the loss of land for subaltern communities.[17]

Unequal Distribution of Benefits : Development initiatives often disproportionately benefited elite groups and urban centers, while subaltern communities bore the brunt of the costs.[18,16] This uneven distribution of benefits and burdens highlighted the inherent inequities within development projects.

Forced Resettlement and Loss of Land : Subaltern communities faced displacement and the loss of their traditional lands due to development projects like dams, roads, and infrastructure.[17] This loss of land and livelihood often resulted in social and economic hardship for these communities.

By focusing on the experiences of subaltern groups, we gain a more critical understanding of the impact of development on the region. These perspectives expose the often-hidden costs of progress and challenge the dominant narratives that celebrate modernization without acknowledging its negative consequences for marginalized communities.

The Role of Religion and Identity : Beyond Hindu Hegemony : Dominant narratives often focus on the role of Hinduism in shaping the region, but subaltern perspectives highlight the diversity of religious practices and beliefs.[18] Subaltern groups often utilized religion as a source of identity and solidarity, particularly in the face of colonial and elite pressures.[18,17]

Islam and the Gujjars : The role of Islam in the lives of Gujjars is a significant example of how religion served as a source of identity and resistance.[18] The Gujjars, a Muslim community in the Himachal Hills, faced discrimination and marginalization from both colonial authorities and Hindu elites. They often relied on their Islamic faith as a source of strength and solidarity, utilizing it to navigate a complex and challenging social landscape.

Persistence of Indigenous Religious Traditions : The persistence of indigenous religious traditions among Adivasi communities demonstrates the enduring influence of non-Hindu beliefs in the region.[20] These traditions often served as a counterpoint to the dominant narratives that emphasized Hinduism as the sole source of religious and cultural identity.

Religion as a Tool for Social and Political Mobilization: Subaltern groups often employed religion as a tool for social and political mobilization.[17] Religious institutions and leaders played a role in organizing communities and advocating for their rights and interests. This use of religion for social and political purposes demonstrates its enduring significance in the lives of subaltern groups.

By acknowledging the diversity of religious practices and beliefs, we can challenge the dominant narratives that present a monolithic view of religion in the region. Subaltern perspectives highlight the importance of religion as a source of identity, solidarity, and resistance for marginalized communities.

The Importance of Subaltern Voices in Reframing History : Moving Beyond Dominant Narratives: By incorporating subaltern perspectives, we can move beyond the limitations of dominant narratives and gain a more accurate and nuanced understanding of the past.[17] These perspectives offer valuable insights into the complexities of power, resistance, and social change in the Himachal Hills.

Challenging Eurocentric and Elite-Centric Biases : Examining subaltern perspectives allows us to challenge the often-Eurocentric and elite-centric biases that have shaped our understanding of history.[21] These biases have often obscured the experiences of marginalized communities and have led to an incomplete and distorted view of the past.

By incorporating these perspectives, we can move towards a more inclusive and accurate understanding of the region's history, one that acknowledges the complex and dynamic interactions between different groups and the role of agency and resistance in shaping the past.

Conclusion : Towards a More Inclusive History : This paper has demonstrated how subaltern perspectives challenge dominant narratives of the late 18th and 19th century Himachal Hills. By incorporating the experiences of marginalized communities, we can move towards a more inclusive and accurate understanding of the region's past. This understanding is crucial for understanding the present and shaping a more equitable future.

Exploring Specific Subaltern Groups: Further research could explore the specific experiences of different subaltern groups in the Himachal Hills, such as Adivasis, Gujjars, and other marginalized communities, to gain a deeper understanding of their unique struggles and contributions.

Analyzing Gender in Subaltern Experiences: Investigating the role of gender in shaping subaltern experiences would provide valuable insights into how gender hierarchies intersected with other forms of social and economic marginalization.

Investigating the Impact of Contemporary Development Projects: Research could analyze the impact of contemporary development projects on subaltern communities, examining how they continue to experience displacement, environmental degradation, and social inequity.

Utilizing Oral Histories and Other Subaltern Knowledge: Exploring oral histories and other forms of subaltern knowledge could contribute to a more inclusive understanding of the past, incorporating voices and perspectives that have been traditionally excluded from dominant narratives.

REFRENCES

1. Lally, J., Himalayan Histories : Economy, Polity, Religious Traditions, By Chetan Singh, Mountain Research and Development (2019) 10.1659/mrd.mm248.1.

2. Arya, R., History of Groundwater Development in the Indian Himalayas : Past, Present and Future Scenarios, None (2015), 10.5194/PIAHS-366-159-2015.

3. Jyoti, Jyoti, Stitches Across Time : Tracing the ChambaRumals Journey to Scotland," The Chitrolekha Journal on Art and Design (2024), 10.21659/cjad.82.v8n206.

4. A. Verma, Neelam, The Trail of an Eastern Deity in the Western Himalaya : A Study of Lord Jagannaths Temple in the Sirmaur Region of Himachal Pradesh, European Bulletin of Himalayan Research (2021), 10.4000/ebhr.407.

5. Siti Farrah Zaini, Zuraini Md. Ali, B. Kayan, Frasers Hill 1919-2019 : Review on Landsscapes Evolution and Features Through Archival Record and Site Observation, None (2024), 10.22452/jscp.vol15no1.3.

6. Vasan, S., Community Forestry : Historical Legacy of Himachal Pradesh.

7. Gellner, David N., Borderland Lives in Northern South Asia, Duke University Press (2014).

8. Mandala, Vijaya Ramadas, British Hunts women in Colonial India : Imperialism and Gender Hierarchies, 18901921." ANU Press (2020).

9. Pozza, Nicola Dalla, Wandering Writers in the Himalaya : Contesting Narratives and Renunciation in Modern Hindi Literature, KsigarnaAkademicka (2015).

10. Sohal, Amar. "Pure Kashmir: Nature, Freedom and Counternationalism." Cambridge University Press (2021).

11. Vinita Damodaran, Sangeeta Dasgupta, Special Issue : Multiple Worlds of the Adivasi, An introduction," Cambridge University Press (2022).

12. Axelby, Richard, The Teacher, the Activist, and the Maulvi : Emancipatory Visions and Insurgent citizenship Among Gujjars in Himachal Pradesh." Cambridge University Press (2019).

13. McKay, Alex, Their Footprints Remain : Biomedical Beginnings Across the Indo-Tibetan Frontier, None (2007).

14. "Healing at the Periphery, Duke University Press (2021).

15. Kvanneid, Aase J., Climate Change, Gender and Rural Development : Making Sense of Coping Strategies in the Shivalik Hills, SAGE Publishing (2021).

16. Andrade, Michelle Ruiz, Digital Indias Smart Transform-Nation : Enabling or Discouraging a Chatur Citizenry?, Brill (2019).

17. Daniela Berti, Anthony Good, Introduction, Informa (2023).

18. Ghirardi, Veronica, Sudh Pacaur and Peyaibhatu Postmodern Approaches to Recent Hindi Literature, Edizioni Ca Foscari (2018).

19. Moran, Arik, Kingship and Polity on the Himalayan Borderland, Amsterdam University Press (2019).

20. Borderland Lives in Northern South Asia, None (2014).

21. Ballinger, Pamela, My Father's Wars : Migration, Memory, and the Violence of a Century by Alisse Waterston New York : Routledge, 2014. 198 pp. Wiley (2015)

* * * * *